छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार

कुलपति प्रो. अशोक कुमार कालिया जी की प्रस्तावना से विभूषित

प्रणेता एवं सम्पादक
प्रो. श्रीकिशोर मिश्र

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

छन्दश्शास्त्र

भारतीय छन्दश्शास्त्र का विश्ववाङ्मय में अनितर-साधारण स्वरूप है। इतनी विशाल छन्दोराशि का सैद्धान्तिक उपदेश एवम् उपयोग विश्व की अन्य किसी भाषा में नहीं उपलब्ध है। अतः विश्वसाहित्य को भारत का यह महनीय अवदान है।

भारतीय साहित्य की इस अनुपमेय ज्ञानराशि के महत्त्व को जनसामान्य के सम्मुख सरलरीति से प्रस्तुत करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ में छन्दश्शास्त्र के वैदिक आधार, साहित्यिक विस्तार तथा शास्त्रीय परिधि का विश्लेषण किया गया है। छन्दश्शास्त्र के इस सुदृढ़ दुर्ग में शब्दार्थात्मक वाग्वैभव सुरक्षित है। संस्कृत छन्दश्शास्त्र के समस्त तत्त्वों का मूलस्रोत वेद है, इस तथ्य की आर्ष मान्यता को प्रणेता ने अनेक स्थलों पर सोदाहरण प्रतिपादित किया है।

वैदिक छन्दोविधान का साङ्गीतिक श्रुतिमाधुर्य तथा छन्दों की गणितीय वितानपद्धति छन्दश्शास्त्र को कला-विज्ञान के प्रायोगिक रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, साथ ही निगमाश्रित दर्शनों के अनुसार छन्दों का आध्यात्मिक आधार तथा आगमोक्त आधिदैविक वैभव भी अनुभूत है। इस रीति से आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक-त्रिविध वैशिष्ट्य से संवलित छन्दश्शास्त्र के मुख्य तत्त्वों का अनुशीलन इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है।

कतिपय ज्ञात, अल्पज्ञात तथा लक्षित छन्दों की सूचना, छन्दोलक्षण-ग्रन्थों का विवरण, ऐतिहासिक परम्परा का निरूपण और अनेक उपयोगी अनुक्रमणिकाओं का सञ्चयन इस कृति को परम्परा-प्रतिष्ठित अद्यतन अनुशीलन का वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

*

ISBN : 81-7270-174-8

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

श्रुतम् मे गोपाय

UNIVERSITY-SILVERJUBILEE-GRANTHAMĀLĀ

[Vol. 44]

CHANDAŚŚĀSTRA
KĀ
UDBHAVA EVAṀ VISTĀRA

FOREWORD BY

PROF. ASHOK KUMAR KALIA

VICE-CHANCELLOR

WRITTEN & EDITED BY

PROF. SHREEKISHORE MISHRA

Professor & Head, Department of Sanskrit

Faculty of Arts

Banaras Hindu University, Varanaṣi

V A R A N A S I

2 0 0 6

Research Publication Supervisor—
Director, Research Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

ISBN : 81-7270-174-8

❐

Published by—
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Director, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.

❐

Available at—
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.

❐

First Edition, 500 Copies
Price : Rs. 550.00

❐

Printed by—
Gauri Shankar Press
Madhyameshwar, Varanasi.

विश्वविद्यालय-रजतजयन्ती-ग्रन्थमाला

[४४]

छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार

कुलपति प्रो. अशोक कुमार कालिया जी की प्रस्तावना से विभूषित

प्रणेता एवं सम्पादक

प्रो. श्रीकिशोर मिश्र

आचार्य एवम् अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

कला-सङ्काय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वाराणसी

२०६३ वैक्रमाब्द १९२८ शकाब्द २००६ खैस्ताब्द

अनुसन्धान-प्रकाशन-पर्यवेक्षक :
निदेशक, अनुसन्धान-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी।

ISBN : 81-7270-174-8

□

प्रकाशक :
डॉ० हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी
निदेशक, प्रकाशन-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी—२२१००२

□

प्राप्ति-स्थान :
विक्रय-विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी—२२१००२

□

प्रथम संस्करण : ५०० प्रतियाँ
मूल्य : ५५०.०० रूपये

□

मुद्रक :
गौरीशंकर प्रेस
मध्यमेश्वर, वाराणसी।

प्रस्तावना

प्रो. श्रीकिशोर मिश्र द्वारा लिखित **'छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार'** नामक ग्रन्थ के अवलोकन एवं उसके विषयों की निःसीम व्यापकता को देखने से ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रो. मिश्र ने इस विषय पर एक सर्वथा अनालोचित क्षेत्र का चयन करते हुए जो विमर्शात्मक छन्दश्शास्त्रीय ग्रन्थ प्रस्तुत किया है, उससे निश्चय ही हिन्दी-भाषा के माध्यम से एक बहुमानाधायी ग्रन्थरत्न विद्वत्समुदाय के समक्ष प्रस्तुत हुआ है।

यह ग्रन्थ तीन अध्यायों में विभक्त है तथा नाना प्रकार के छन्दश्शास्त्रीय परिशिष्टों से पुङ्खानुपुङ्ख रूप से ग्रन्थगत पारिभाषिकता का उपबृंहण करता है। प्रो. मिश्र ने नाना प्रकार के पारिभाषिक परिशिष्टों से ग्रन्थगत पारिभाषिकता के अवगुण्ठन को शिथिल किया है, जिससे ग्रन्थ की सुबोधता सबके लिए सहज हुई है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का **प्रकाशन-संस्थान** ऐसी कृतियों की प्रकाशनार्हता को रेखांकित करते हुए संस्कृत-सेवा के क्षेत्र मे ऐसा प्रतिमान स्थापित करता हुआ अग्रेसर हो रहा है, जिससे महाकवि कालिदास की उक्ति— **''ततान सोपानपरम्परामिव''** चरितार्थ हो रही है। वस्तुतः भारतवर्ष में आज धरोहरों की चर्चाओं का युग चल रहा है। देश के प्रथम प्रधानमन्त्री **पण्डित जवाहरलाल नेहरू** जी ने लिखा है कि—**''यदि मुझसे कोई पूछे कि भारत की सबसे बहुमूल्य धरोहर क्या है? तो मैं बेहिचक उत्तर दूँगा कि वह धरोहर संस्कृत-भाषा है।''** संस्कृत-सेवा-क्षेत्र एवं संस्कृत-सेवक ऐसी धरोहर के उत्तराधिकारी हैं। प्रो. श्रीकिशोर मिश्र निश्चय ही उन उत्तराधिकारियों के अग्रगण्य वाहक हैं। प्रो. मिश्र ने इस ग्रन्थ के माध्यम से निश्चय ही सुरभारती की महनीय श्रीवृद्धि की है। उन्होंने ऐसे विषय का स्पर्श करते हुए उसकी अतल गहराइयों में जाकर अपने विचार-मौक्तिकों के माध्यम से भाषा के उस संवेगी तत्त्व का तात्त्विक चिन्तन किया है, जिससे ऋजु-रेखा पर चल रही भाषा में आवेगों, संवेगों का प्रवेश होता है। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** जी ने अपनी

ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा छन्दों के स्वरूप पर गम्भीर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—"छन्द उस आवेग का वाहन है। छन्दोहीन भाषा में कल्पना और सम्मूर्त्तन तो हो जाता है, पर आवेग का कम्पन नहीं होता। प्राचीन कथाओं की गद्य समझी जाने वाली भाषा में भी एक प्रकार का छन्द होता है—एक प्रकार की वक्र कम्पनशील नृत्य-भङ्गिमा। वह भाषा ही छन्दोमयी है।"

(हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– ७, पृ. ६७)

आचार्य द्विवेदी जी आगे लिखते हैं—"बाह्य अर्थों से मुक्त होने पर वह (छन्द) नियत आवेग के रूप में प्रकट होता है; परन्तु काव्य जिस प्रकार शब्द-प्रकाश्य अर्थ के द्वारा बाह्य विषय-सत्ता में बँधा रहता है, उस प्रकार संगीत नहीं बँधा रहता। वह राग, स्वर आदि के माध्यम से अपने आप ही स्पन्दित होता रहता है। तान या लय उसमें उसी प्रकार अनुभूति सत्ता भरते हैं, जिस प्रकार काव्य में छन्द। काव्य और संगीत द्वारा स्पन्दित मानव-चित्त के आवेगों में थोड़ा अन्तर होता है। काव्य में आवेग द्वारा जो स्पन्दन उत्पन्न होता है, वह बाह्य-सत्ता से सम्बद्ध होने के कारण 'नियत' होता है। हम बाह्य घटनाओं की अनुभूति से चालित होते रहते हैं। काव्य पाठक के सुख-दुःख में आवेग उत्पन्न करते हैं।

मनुष्य दूसरों के सुख-दुःख से प्रभावित होता है। उनके साथ उसकी 'समवेदना' होती है और अन्ततोगत्वा उस सुख-दुःख को आत्मसात् करके इस प्रकार काव्य मनुष्य-मनुष्य के बीच विद्यमान 'एकत्व' का प्रतिष्ठापक होता है। काव्य प्रमाणित कर देता है कि व्यक्ति मानव के ऊपरी विभेदों के नीचे एक 'अभेद' है।

आचार्य द्विवेदी जी पुनः आगे लिखते हैं—मानवात्मा के भावावेग को इस प्रकार सर्वसाधारण तक पहुँचा देने की जो व्याकुलता है, उसे ही 'कवि की अनुभूति का साधारणीकरण' कहा जाता है। यह व्याकुलता ही सिसृक्षा का रहस्य है। अपने आपको 'महाएक' के साथ एकमेक करने की व्याकुलता ही निरन्तर कला-प्रयत्नों को उकसाती रहती है और यह उकसावा ही गाढ़-गाढ़तर-गाढ़तम होता हुआ 'छन्द' को जन्म देता है।"

(हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– ७, पृ. ६७-६९)

वस्तुत: आचार्य द्विवेदी का यह चिन्तन मानवात्मा के उल्लसित आवेग का बोध करा देता है। यह तथ्य बहुत पहले छान्दोग्योपनिषद् में निरूपित है—

"चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्य्ध्यूढꣳसाम तस्मादृच्य्ध्यूढꣳ साम गीयते। चक्षुरेव साऽऽत्माऽमस्तत्साम।" (छान्दो०, १.७.२)

अर्थात् नेत्र ही **'ऋग्वेद'** है और उसका प्रतिबिम्ब **'साम'** है। इस प्रकार नेत्ररूप 'ऋग्वेद' में प्रतिबिम्बरूप 'साम' अधिगत है। अत: 'ऋग्वेद' में अधिगत 'सामवेद' का ही गान किया जाता है। नेत्र ही **'सा'** है और आत्मा **'अम'** है। इस तरह वे ही दोनों मिलकर **'सामवेद'** हैं।

मैं ऐसे गूढ़तम विषय पर लेखनी चलाने और उसके 'रस' से विद्वद्वृन्द के चिन्मय प्रकाश को प्रस्फुटित कराने वाले यशस्वी युवा आचार्य श्री श्रीकिशोर मिश्र का वर्द्धापन करता हूँ और श्रीकाशीश्वर विश्वेश्वर से अभ्यर्थना करता हूँ कि **प्रो. श्रीकिशोर मिश्र** आगे भी अपनी महनीय कृतियों से समुद्रकल्प संस्कृत-वाङ्मय की श्रीवृद्धि करते रहेंगे।

इस ग्रन्थ में **प्रो. रमारंजन मुखर्जी**, **प्रो. कैलासपति त्रिपाठी** एवं **प्रो. श्रीनिवास रथ** जी ने अपनी पाण्डित्यपूर्ण शुभेच्छाएँ प्रेषित की हैं। तदर्थ मैं उनकी कृपा के लिए हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

अशोककुमार कालिया

वाराणसी
निर्जला एकादशी,
वि. सं. २०६३
(दिनाङ्क ०७.०६.२००६)

(प्रो. अशोक कुमार कालिया)
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

प्रकाशकीय

आचार्य श्रीकिशोर मिश्र द्वारा प्रणीत ग्रन्थरत्न **'छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार'** पर कुछ अभिप्रायबद्ध होना हमारे लिए कठिन रहा; किन्तु वेदों से लेकर पुराणों एवं नाना शास्त्रों में छन्दोविषयक प्रभूत सामग्री का अवलोकन करते हुए मैं इस ग्रन्थरत्न पर 'प्रकाशकीय' लिखने का साहस कर सका। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायणी कथा में लिखा है—

'श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।

मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती'।। (वा. रा., बालका. २.३१)

महर्षि के इस श्लोक की श्रीराम-प्रणीत **'रामायणतिलक'** व्याख्या में 'छन्द' के प्रथम व्याख्याता प्रजापति ने कहा है—'हे ब्रह्मन्, वेदतत्त्वार्थवेत्त: ! मच्छन्दात् मह्यं मत्कल्याणार्थं छन्द:प्रादुर्भावे सङ्कल्पो यस्य स रामस्तस्मात् छन्दश्शब्दस्य सङ्कल्पपरत्वं नागोजीभट्टैरपि व्याख्यातम् । किञ्च मता स्वविषयकज्ञानेन शं परं कल्याणं ददातीति मच्छन्दो रघुनाथस्तस्मात्तदिच्छात एवेत्यर्थ:। ते तव इयं संक्षिप्तकाण्ड-सप्तकार्थप्रतिपादिका सरस्वती प्रवृत्ता, अत: श्लोक: परमयश:कारणभूतरघुनाथप्रतिपादक एवायं त्वया बद्ध: श्लोकरूपेण सम्पादितोऽस्ति, अतोऽत्र विषये विचारणा अन्यपरोऽप्ययं श्लोक: सम्भवति न वेति विचारो न कार्य:। 'एवास्त्वयं बद्ध' इति भट्टसम्मत: पाठ:।'

अर्थात् यदि हम विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के चिन्तन से उक्त टीका के भावगाम्भीर्य का मेल कराना चहें, तो कह सकते हैं—

"यहाँ पर एक बात ध्यान में रखना जरूरी है, अनिर्वचनीय शब्द का अर्थ अभावनीय नहीं है। ऐसा अगर होता तो वह काव्य, अकाव्य, कुकाव्य कहीं पर काम न देता। वस्तु-पदार्थ की परिभाषा की जा सकती है, रस-पदार्थ की नहीं की जा सकती। तो भी 'रस' हमारी एकान्त अनुभूति का विषय है। गुलाब को हम वस्तुरूप में जानते हैं और गुलाब को हम रसरूप में पाते हैं। इस वस्तु-बोध की व्याख्या हम सादे ढंग से उसके आकार, आयतन, भार, कोमलता आदि बहुविध परिचय के द्वारा कर सकते हैं; लेकिन रस-बोध ऐसा एक अखण्ड व्यापार है कि उसे इस तरह सादे ढंग से बतलाया नहीं जा सकता; लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह अलौकिक

है, अद्‌भुत है, असामान्य है। बल्कि रस की अनुभूति वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा और भी निकटतर, प्रबलतर, गम्भीरतर होती है। इसलिए जब हम गुलाब के आनन्द को दूसरे के मन में पैदा कराना चाहते हैं, तो एक साधारण अभिज्ञता का रास्ता पकड़कर ही ऐसा करते हैं। अन्तर यही है कि वस्तु-बोध की भाषा सीधी-सादी बातचीत का विशेषण होती है; किन्तु रस-बोध की भाषा आकार, इंगित, सुर और रूपक होती है।

'कौन सुनायो श्याम नाम'? घटना के रूप में यह एक सहज-सी बात है। कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सामने तीसरे व्यक्ति का नाम ले रहा है। यह चीज दिन में पचास बार होती है। इतना ही कहने के लिए बात को बहुत खींचने की जरूरत नहीं होती। लेकिन जब नाम कान के भीतर से होकर मर्म को जाकर छूता है, अर्थात् ऐसी जगह पर काम करने लगता है, जो देखने-सुनने के परे है और ऐसा काम करता है, जिसे नापा नहीं जा सकता, तोला नहीं जा सकता, जिसे आँख के सामने खड़ा करके जिसका साक्ष्य नहीं लिया जा सकता, तब बात को घुमाकर उसके पूरे अर्थ से अधिक एक अर्थ उससे हासिल कर लेना पड़ता है। अर्थात् आवेग को प्रकट करने के लिए बात में उसी आवेग का धर्म उत्पन्न करना पड़ता है। आवेग का धर्म है वेग। बात जब उस वेग को ग्रहण करती है, तभी हमारे हृदय के भाव के साथ उसका मेल बैठता है।

श्याम का नाम राधा ने सुना है। घटना की इति हुई। लेकिन जो एक अदृश्य वेग उत्पन्न हुआ, उसकी कहीं इति नहीं है। असल चीज वही है। **उसी के लिए कवि ने छन्द की झंकार में इस बात को झुला दिया। जब तक छन्द रहेगा, तब तक वह झूलना थमेगा नहीं। 'कौन सुनायो श्याम नाम' कहते ही लहरें उठने लगीं। यह कुछ थोड़े-से छपाई के अक्षर यद्यपि भलेमानुष की तरह खड़े रहने का नाटक करते हैं; लेकिन उनके भीतर का स्पन्दन कभी शान्त न होगा। वे अस्थिर हो गये हैं और अस्थिर करना ही उनका काम है।**

हमारे पुराणों में छन्द की उत्पत्ति की जो कथा है, उसे सब जानते हैं। दो पक्षियों में से एक को जब व्याध ने मारा, तब वाल्मीकि के मन में जो व्यथा हुई, उस व्यथा को श्लोक के द्वारा बतलाये विना उन्हें चैन न थी। जो पक्षी मारा गया और दूसरा जो पक्षी उसके लिए रोया, वे दोनों तो न जाने कब लुप्त हो गये; लेकिन इस दारुण व्यथा को तो केवल समय की तराजू से तोला नहीं जा सकता। वह तो अनन्त

के हृदय में बज रही है। **इसीलिये कवि का शाप छन्द का वाहन लेकर काल से कालान्तर की ओर भाग चला।** हाय रे, आज भी वही व्याध भाँति-भाँति के अस्त्र हाथ में लेकर भाँति-भाँति की वीभत्सताओं में अनेक देशों में अनेक आकारों में घूमता फिर रहा है। **लेकिन आदिकवि का वह शाप शाश्वत काल के कण्ठ में ध्वनित है। इस शाश्वत काल की बात को व्यक्त करने के लिए ही तो छन्द है।**

हम अपनी बातचीत में कहते हैं, बात को छन्द में बाँधना। **लेकिन यह बन्धन केवल बाहर से बन्धन है, भीतर से तो मुक्ति है। बात को उसके जड़-धर्म से मुक्ति देने के लिए ही छन्द है। सितार में तार बँधे रहते हैं; लेकिन उन तारों से सुर निकलते हैं। छन्द वही तार-बँधा सितार है, बात के भीतर के सुर को वह मुक्ति देता है। वह धनुष की डोरी है, जो बात को तीर के समान लक्ष्य के मर्म पर फेंकती है।''**

(रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, भाग-२, पृ. २७५-२७७,
प्रकाशक-साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

इसी प्रकार बहुत पहले से नाना शास्त्रों में छन्दों के बारे में उत्तमोत्तम चिन्तन हुए हैं। वेदों से लेकर उपनिषदों तथा शास्त्रों में छन्द के ऊपर तात्त्विक विमर्श हुए हैं। अरण्यकाण्ड के अनुसार पाप-सम्बन्ध का निषेध करने के लिए जो पुरुष को आच्छादित करता है, उसे 'छन्द' कहते हैं। तैत्तिरीयसंहिता के अनुसार जिसके द्वारा संचीयमान अग्नि का उत्ताप आच्छादित होता है, उसका नाम छन्द है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार अपमृत्यु का निषेध करने के लिए जो आच्छादन करता है, उसे छन्द कहा जाता है। छन्द शब्द की व्युत्पत्ति—'छद्' धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में असुन् प्रत्यय द्वारा निपातन में 'छन्दस्' शब्द सिद्ध होता है। पाणिनि मुनि ने 'चदि' धातु के उत्तर में असुन् प्रत्यय करके 'छन्द' शब्द सिद्ध किया है। व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें आह्लाद स्फुटित हो या जो प्रसन्न करे, उसी का नाम 'छन्द' है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भाषा की सृष्टि के अव्यवहित पीछे अथवा ग्रन्थ-रचना-प्रणाली के प्रारम्भ होने से कुछ पहले छन्दोनियम का आविष्कार हुआ।

इस प्रकार नाना मार्मिकार्थों को अपने में समेटे हुए **'छन्दस्'**-विद्या की मीमांसा करते हुए **प्रो. श्रीकिशोर मिश्र** जी ने हिन्दी-भाषा के माध्यम से संस्कृत-भारती को जो ग्रन्थ-पुष्प समर्पित किया है, वह निश्चय ही हमारे चित्त को प्रफुल्लित कर रहा है। मैं यहाँ प्रो. श्री मिश्र को इस ग्रन्थ के प्रणयन हेतु भूयोभूयः शुभाशंसा एवं

धन्यवाद प्रदान करता हूँ। साथ ही प्रो. मिश्र को इस बात के लिए विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने **प्रो. कैलासपति त्रिपाठी**, पूर्व-प्रोफेसर, साहित्य-विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से 'पुरोवाक्' लिखवा लिया, नहीं तो मैं तो २५ वर्षों तक आचार्य श्री त्रिपाठी से करबद्ध प्रार्थना करता रहा कि **'सारस्वती सुषमा'** के लिए अपना निबन्ध-पुष्प प्रदान करने की कृपा करें; किन्तु आचार्य श्री त्रिपाठी ने अपनी ही विश्वविजयिनी पत्रिका के लिए कोई निबन्ध-पुष्प प्रदान नहीं किया। इस महनीय कृति में **प्रो. रमारंजन मुखर्जी** साहब का **'FOREWORD'** मुद्रित हुआ है। साथ ही **प्रो. श्रीनिवास रथ** जी की 'शुभाशंसा' प्रकाशित हो रही है। एतदर्थ इन संस्कृत-सेवा-परिवार के मुखिया-जनों को सम्मानाञ्जलि-सहित प्रणाम करता हूँ।

इस ग्रन्थ के पदे-पदे ईक्ष्यशोधन, सन्दर्भ-सन्तोलन एवं पाठभेदादि के नियोजन हेतु **डॉ. हरिवंश कुमार पाण्डेय**, **डॉ. ददन उपाध्याय** एवं प्रकाशन-सहायक **श्री कन्हई सिंह कुशवाहा** को हार्दिक शुभाशीर्वाद प्रदान करता हूँ। ग्रन्थ के यशस्वी मुद्रक श्री गौरीशङ्कर प्रेस के कर्णधार **श्री शिवप्रसाद रस्तोगी** को भी अपनी स्नेहाञ्जलि प्रदान करता हूँ।

विद्वद्वशंवद

(डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी)
निदेशक, प्रकाशन-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी
ज्येष्ठ-पूर्णिमा,
वि. सं. २०६३
(दिनाङ्क ११.०६.२००६)

छन्दोदेवमङ्गलम्

***

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्यां आ विवेश ।।

(ऋ. ४/५८/३, मा०सं० १७/१९,
तै०आ०१०/१०/२, नि० १३/७)

पातञ्जलनिदानोक्तानि कृतादीनि चत्वारि शृङ्गाणि, शृङ्गग्राहिकया निर्दिश्यमानत्वात् । समार्धसमविषमास्त्रयः पादाः । गाथागद्ये द्वे शीर्षे । नष्टादिप्रत्ययाः सप्त हस्ता वृत्तादानसाधनत्वात् । मात्रावर्णध्रुवप्रस्तारैस्त्रिभिर्बद्धः । वृषो धर्मरूपो, भा ज्ञानं यस्य स वृषभः, रोरवीति शब्दायते । वाक्यशास्त्रात्मकत्वाच्छब्दमयशरीरं छन्दः । पुरुषो महादेवो गौरीनन्द्यादिसम्प्रदायक्रमेण मर्त्यान् शेषगरुडावतारभूतान् पिङ्गलाद्याचार्यानाविष्ट इत्यर्थः ।

अथवास्य छन्दश्शास्त्रस्य चत्वारि शृङ्गा प्रस्तारनष्टोदिष्टमेरवः, चतुर्णामेव पिङ्गलसूत्राष्टमाध्यायेऽभिधानात् । त्रयः पादा वैदिक-मात्रावृत्तवर्णवृत्तरूपा अस्य । द्वे शीर्षे गुरुलघुरूपे, प्रस्तारे गुरुलघ्वोरेव कथनात् । षटकल-पञ्चकल-चतुष्कल-त्रिकल-द्विकलैककलत्रिवर्णगणरूपाः सप्त हस्ताः, सप्तानामेतेषामेव छन्दोग्रन्थेषु सङ्केतितत्वात् । सोऽयं त्रिधा त्रिभिः प्रकारैः समवृत्तार्धसमवृत्तविषमवृत्तरूपैर्बद्धः । वर्षति चतुर्वर्गादिकं प्रयच्छतीति वृषः, भवति प्रभवति जगद्यस्मात् स भः । 'ऋदोरप्' (पा० ३/३/५७) टिलोपश्छान्दसः । वृषश्चासौ भश्च वृषभो रोरवीति पौनःपुन्येन शब्दैराविर्भवति । रुधातोर्यङ्लुङि रूपम् । महस्तेजो ज्योतीरूपो दीव्यतीति देवः । यद्वा महो देवो महादेवः, महो देव इत्येष हि महान् देव इति निरुक्तोक्तेः । मर्त्यानमर्त्यांश्च देवानाविवेश प्रविवेश इति ।

●

छान्दसी भूमिका

***

अङ्गान्तरेषु सकलेष्वपि तेषु तेषु वैदग्ध्यमण्डनमयेषु च सत्सु सत्सु ।
नूनं प्रकाममथ येन विनात्र वेदोऽगम्यो भवेत्तदिह शास्त्रमहो नमामि ।।१।।
लब्ध्वा तु जन्म जगतीवलये यतस्तु कश्चित्पुमान् स्थितिगती लभते स्वशक्त्या ।
एते तु वेदपुरुषो लभते यतोऽसौ छन्दोऽभिधानमहमागममानमामि ।।२।।

अध्यायत्रयरत्नगुम्फितमहाग्रन्थावलीयं मुदा
राराजीति च भूर्भुवस्स्वरितियुग्लोकेषु सप्तस्वहो ।
आद्ये वेदगतः समोऽपि विषयो न्यक्षेण यो रूपितो
नूनं तस्य भवेदिदम्प्रथमता विद्वन्मतैस्सम्मता ।।३।।

अध्यायेषु ततोऽद्वितीयपदभाग्योऽयं द्वितीयोऽस्त्यहो
सत्साहित्यिकविस्तरो ध्रुवमहो तत्रैवमाराजते ।
पश्चाद् यस्तु तृतीय एष कलितोऽध्यायस्तु गाम्भीर्यभृत्
तत्तच्छास्त्रसमीरितास्तु सकलास्ते ते प्रकाराः स्थिताः ।।४।।

वाग्देवीकरपल्लवाङ्गुलिरणच्छ्रीकच्छपीनिक्वणत्
प्रादुर्भूतलयोल्लसत् स-रि-ग-मा-पा-धा-नि-धन्यध्वनिः ।
यत्कीर्तिं ह्युपवीणयत्यनुदिनं त्रैलोक्यभाण्डेष्वहो
नूनं भाति निरन्तरायमहिमाऽयं विश्वविद्यालयः ।।५।।

आ सेतो रामचन्द्राङ्घ्रियुगलकमलद्वन्द्वरेणुप्रतीक्ष्या-
दा शैलाच्चापि पृथ्वीधरमुकुटसुतापादविन्यासधन्यात् ।
आ च प्राच्यप्रतीच्यद्वितयधरणिभागादमुष्मात् समन्तान्-
मान्यानामेकमान्यः स जयति नितरां विश्वविद्यालयोऽयम् ।।६।।

अत्र त्रैपुरुषीमधीतिमगमद् यो वेदशास्त्राण्यहो-
भाग्याद् यो व्यशृणोत् प्रकाममवसत् काश्यां महाभाग्यतः ।
छन्दश्शास्त्रविचारसङ्ग्रहपरग्रन्थं व्यधात्प्रीतये
श्रीविश्वेश्वरशास्त्ररक्षणगुरोः स श्रीकिशोरो मनाक् ।।७।।

श्रीकाशीनाथमिश्राद् विबुधमुकुटमालासुमेरूपमेया-
दा च श्रीकालियाख्यात् कुलपतिनृपतेरद्य यावत्प्रकामम् ।
सच्छास्त्राम्भोधिसम्मन्थनभवसुधयाऽऽप्लाव्य विश्वं समग्रं
भूयो योऽनन्वयश्रीर्जगति विजयते विश्वविद्यालयोऽयम् ।।८।।

एतद्गौरवरत्नराजिमखिलां यद्दिग्विदिक्षु श्रियं
कार्त्स्न्येनैव विकाशयत्यनुदिनं पारेसमुद्रं मुहुः ।
तत्तत्पुस्तकमुद्रणादिभिरहो रात्रिन्दिवं सश्रमं
राजत्येवमहो प्रकाशनमयं संस्थानमारादिदम् ।।९।।

पुरोवाक्

समुपलब्धसाहित्ये ऋग्वेदः प्राक्तनतमं साहित्यमिति समीक्षका वदन्ति। परम्परायां तु वेदोऽनादिरिति मन्यते। ऋग्वेदश्छन्दोमयः। एतावतेदं निश्चीयते यच्छन्दांस्यपि वेदवत् पुरातनानि। छन्दसां महती संख्या। किमिदं छन्दः इति जिज्ञासायां विद्वांसो वदन्ति-छादनात् छन्दः, प्राणाश्छन्दः, अक्षरपरिमाणं छन्दः, इत्यादि। तदत्र विचिकित्सन्ते सुधियः। छन्दांसि कथ्यजातमाच्छादयन्ति।

छन्दोयोगेन कथ्यजातं प्रभावमयं भवति। ऋषिभिर्यदा मन्त्रा दृष्टास्तदा ते छन्दसा युक्ता आसन्। अतएव कस्मिंश्चनाप्यनुष्ठाने ऋषिच्छन्दोदेवतानां नामानि गृह्यन्ते। यदि ऋषीणां छन्दसां देवतानां वा मन्त्रोच्चारणेऽनुध्यानं न क्रियते तदा मन्त्रा ओजोहीना भवन्ति। अतएव छादनात् छन्दः इति विभावना सुधीभिः क्रियते।

एवं प्राणाश्छन्द इदमपि औचित्यमावहति। यतो हि छन्दसामुच्चारणे प्राणानां श्वासप्रश्वासानामुदात्तानुदात्तस्वरितादीनामुपयोगः क्रियते। यथोच्यते—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

स्वरतो वर्णतो वा हीनो मन्त्रो वाग्वज्रः सन् यजमानं हिनस्ति। यदा स्वरतो वर्णतो वा मन्त्रोच्चारणे स्खलनं भवति तदा छन्दांसि त्रुट्यन्ति। इयं त्रुटिर्विपरीतं परिणामं प्रसूते। अतो वेदाध्ययने छन्दसां महत्त्वं गीयते। लोकेऽपि भूयांसि च्छन्दांसि सन्ति। यथा ऋषयश्छन्दोमयीं वाचं ददृशुः एवं लोकेऽपि कवयो महाकवयश्च छन्दांसि रचयामासुः। इदानीमप्यनामानि नूतनच्छन्दांसि आविर्भाव्यमानानि दृश्यन्ते। एतावता इदमायाति यद् यथा वाचामानन्त्यं तथैव छन्दसामप्यानन्त्यम्। अतएव गद्यमपि वृत्तगन्धि भवति। अर्थात् गद्येऽपि वृत्तस्य छन्दसः सौरभं भवति। यथा वाग्भङ्गीनामानन्त्यं तथैव गानस्वराणामप्यानन्त्यम्। सत्यप्यानन्त्यस्य वातावरणे क्रियन्ते कानिचिल्लक्षणानि विभिन्नच्छन्दसाम्। छन्दःशास्त्रविदां तत्त्वार्थदर्शिनी प्रज्ञा विमृशति केषां चिच्छन्दसां लक्षणानि। लोकेऽपि यदि छन्दोभङ्गो भवति तदा सावद्या भवति रचना।

छन्दःशब्दार्थनिरूपणे निरुक्तप्रक्रिया, व्याकरणप्रक्रिया अथ च कोषप्रक्रिया, इति भवति त्रिपथगेव पवित्रा त्रिविधा धारा।

१. छाद्यते छन्द्यते वा अनेन इतिच्छन्दः, इयं नैरुक्तधारा।

२. चन्द्यते अनेनेति छन्दः इति शाब्दिकानां परम्परा।

चदि आह्लादे दीप्तौ चेति भ्वादिगणे परस्मैपदी सेट् धातुः। इदित्वात् "इदितो नुम् धातोः" इति सूत्रेण नुमि चन्द इति रूपं भवति। चन्दनशब्दोऽपि अस्मादेव धातोर्निष्पन्नो भवति। असुनि कृते चकारस्य छकारः, छन्दः इति रूपं 'चन्देरादेश्च छः'

इत्युणादिसूत्रेण चकारस्य छः भवति असुन्प्रत्यये। एतेन चन्दनं छन्दः इत्यपि निष्यन्दितोऽर्थः। अनया व्युत्पत्त्या आह्लादकं छन्दः, दीपकं छन्द इत्यप्यायाति। छन्दांसि श्रोतॄनाह्लादयन्ति तर्पयन्ति आवर्जयन्ति च। श्रोतॄणां हृदये प्रकाशमपि उद्भावयन्ति। एवं लौकिकानि वैदिकानि वा छन्दांसि भवेयुः तानि कथ्यजातं चारुतरं कुर्वन्ति। अतएव राजशेखरेण काव्यमीमांसायां प्रोक्तं सारस्वतेयस्य काव्यपुरुषस्य छन्दांसि रोमाणि भवन्तीति। रोम्णा यथा शरीरं वाय्वादिकं गृह्णाति तथा रोमकूपसाहाय्येन स्वस्थं तिष्ठति, एवमेव छन्दः काव्यं व्याप्नोति, तस्य चिरञ्जीवितामपि साधयति। वैदिकछन्दःसु च दीपन-व्यापन-समाह्लादनप्रभृतयोऽर्थाः संघटिता भवन्ति। वैयाकरणानां व्युत्पत्तिमार्गोऽनुवर्तते कोषेषु च यथा—"छन्दः पद्येऽभिलाषे च" इत्यमरः (३/३/२३२)। छन्दःशब्दो वेदवाचकोऽपि भवति यथा मेदिनीकोषे उक्तं पूर्वम्। व्याकरणे मन्यते-छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति। यथा "बहुलं छन्दसि" इत्यादिपाणिनिसूत्रेषु छन्दःशब्दो वेदवाचकः।

छन्दःस्वरूप विमर्शे बहूनि तल्लक्षणानि प्राप्यन्ते यथा—यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः। इदं लक्षणमृग्वेदे यजुषि च संघटते। तत्र एकाक्षरात् पञ्चत्रिंशदक्षरपर्यन्तं छन्दांसि प्राप्यन्ते। एतावता अक्षरपरिमाणमिति लक्षणं तत्र साधुतामासादयति। किन्तु श्रुतिषु अक्षरपरिमाणाद् भिन्नमपि छन्दसः स्वरूपं दृश्यते। यथा लोकाश्छन्दांसि देवताश्छन्दांसि, तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्रम्, ओजो वा इन्द्रियवीर्यं त्रिष्टुप्, पशवो जागता इत्यादिश्रुतिषु वर्णच्छन्दः अपरवाक्छन्दः इत्येवं विभिन्नतत्त्वानां छन्दस्स्वरूपत्वमुपपद्यते। मीमांसकविज्ञा मन्त्रलक्षणद्रूढं मन्यन्ते छन्दोलक्षणम्। यथा जैमिनीयन्यायमालायाम्—

अहेबुध्निय मन्त्रं म इति मन्त्रस्य लक्षणम्।
नास्त्यस्ति वास्य नास्त्येतदव्याप्त्यादेरवारणात्॥
याज्ञिकानां समाख्यानं लक्षणं दोषवर्जितम्।
तेऽनुष्ठानस्मारकादौ मन्त्रशब्दं प्रयुञ्जते॥

(जै०न्या०मा० २/१/७)

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इति दिशा मन्त्राणामपि छन्दस्त्वम्, ब्राह्मणानामपि च छन्दस्त्वम्। किन्तु ब्राह्मणे छन्दःस्वरूपं किमप्यन्यद् व्याहतं विद्यते, यथा—प्राणमात्राश्छन्दः। प्राणास्तु सर्वत्र सञ्चरन्ति। स्थावरं, जङ्गमं सर्वं सप्राणम्। शतपथब्राह्मणे प्रोक्तं-प्राणे हीमानि भूतानि सम्यञ्चि। अत्रैवमाशयनीयं यत्प्राणमात्रा छन्द इति छन्दोलक्षणे प्राणानां व्यापकत्वात् छन्दसामपि व्यापकत्वं सिद्ध्यति। प्राणमात्राच्छन्दः इति छन्दोलक्षणे छन्दसां व्यापकत्वम् आच्छादकत्वं चोभयं सिद्ध्यति। वाजसनेयश्रुतौ व्याहृतम्-माच्छन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमाच्छन्दः इति। एतेषु सर्वेषु छन्दोलक्षणेषु 'प्राणमात्राच्छन्दः' अस्मिन्नेव लक्षणे तात्पर्यमवतिष्ठते। यतो हि वर्णानां विभिन्नस्वराणामुच्चारणे प्राणतत्त्वस्य

आवश्यकता भवति। ततः तस्य छन्दस उपादानाङ्गीकारे न काप्यनुपपत्तिः। छादनात् छन्दः इत्यपि वदन्ति छन्दोविदः। एकस्माद् वर्णात् प्रारभ्य बहुवर्णान् व्याप्य भवन्ति मन्त्राः। तत्र सर्वत्र छन्दो भवति। अर्थात् एकवर्णात्मकस्यापि मन्त्रस्य कश्चिद् ऋषिर्भवति, काचिद्देवता भवति, किमपि छन्दो भवति। ऋषिणा मन्त्रो दृष्टो भवति। तस्मिन् मन्त्रे यस्य देवस्य वर्णनं भवति तस्य मन्त्रस्य सा देवता भवति। तत्रत्यं कथ्यजातं यो वर्णो व्याहरति तं वर्णं छन्दः आवृणोति। अतएव बीजमन्त्राणामपि छन्दसावरणं भवति। बीजानि एकाक्षराणि सन्त्यपि छन्दसा आवृतानि भवन्ति। अनुष्ठाने ऋषिच्छन्दो-देवतानामनुध्यानमावश्यकं भवति। तेजस्विनो महाप्रज्ञाः ऋषयः मन्त्रान् पश्यन्ति। तत्र ते मन्त्राश्छन्दसा आवृता भवन्ति। तत्र प्रतिपाद्या भवति काचिद् देवता। अनुष्ठाता तेजस्विनमृषिं तेजोमयेन छन्दसा आच्छादितं मन्त्रम् अथ च तेजोमयं देवं संस्मरन् मन्त्रं व्याहरति। एषां समेषां तेजोमयानां प्रभावतोऽनुष्ठातुः समीहितं सम्पन्नं भवति। इयं स्थितिः लघुछन्दस्सु बृहच्छन्दस्सु च सर्वत्र विद्यते। छन्दांसि मन्त्रानाच्छाद्य तिष्ठन्ति।

छन्दोभ्यः सृष्टिरपि भवति। यजुर्वेदस्य माध्यन्दिनसंहितायां चतुस्त्रिंशाध्यायस्य एकोनपञ्चाशत्तमे मन्त्रे सृष्टिवर्णनं प्राप्यते। अत्र सृष्टिविस्तारे ऋषिभिश्छन्दसां सहयोगो निरूपितः। ब्राह्मणग्रन्थेऽपि च त्रैवर्णिकानामुत्पत्तौ त्रिविधच्छन्दसां विनियोगो निरूपितः। यथा गायत्रीछन्दसो विप्रवर्णस्य, त्रिष्टुप्छन्दसः क्षत्रियवर्णस्य, जगतीछन्दसो वैश्यवर्णस्य रचना जातेति मन्यते।

अथ छन्दसां विभक्तिरुच्यते। छन्दो द्विधा वैदिकं लौकिकञ्च, यथोक्तमुपानदानसूत्रे छन्दसामार्षं लौकिकञ्चेति। आर्षं वैदिकम्। तच्च गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगती इति सप्त आर्षाणि। तत्र अतिच्छन्दांसि प्रवर्णितानि-अतिजगती शक्वर्यतिशक्वरी अष्टिरत्यष्टिर्धृतिरतिधृतिः कृतिः प्रकृतिः आकृतिः विकृतिः संकृतिरभिकृतिरुत्कृतिरिति।

एवं लौकिकच्छन्दसामपि द्विधा विभक्तिः क्रियते, यथा—मात्रावर्णविभेदेन छन्दस्तदिह कथ्यते (वृ०र०१/४)। छन्दोमञ्जर्यामपि लौकिकच्छन्दसो द्विधात्वं प्रतिपादितम्—

पद्यं चतुष्पदं तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत्॥

एवं लौकिकच्छन्दसामपि द्विधात्वं प्रतिपादितम्। यथोक्तं हलायुधेन—

आर्याद्युद्गीतिपर्यन्तं गणच्छन्दः समीरितम्।
वैताल्यादि चूलिकान्तं मात्राच्छन्दः प्रकीर्तितम्॥
समान्याद्युत्कृतिं यावदक्षरच्छन्द एव च॥

एवं गणच्छन्दः, मात्राच्छन्दः, अक्षरच्छन्दः इति लौकिकच्छन्दसां त्रिधा विभक्तिरपि सिद्ध्यति। वैदिकच्छन्दसां सुमहान् विस्तारः। वर्णवृत्तानां त्रयोदशकोटि-द्विचत्वारिंशल्लक्ष-सप्तदशसहस्र-सप्तशतषड्विंशतिः भेदाः (१३,४२,१७,७२६) भवन्ति। यथोक्तं वृत्तमौक्तिके—

रसलोचनसप्ताश्वचन्द्रदृग्वेदवह्निभिः ।
आत्मना योजितैर्वामगत्या ज्ञेया मनीषिभिः ।।

एवञ्च—

षड्विंशतिः सप्तशतानि चैव तथा सहस्राण्यपि सप्तपङ्क्तिः ।
लक्षाणि दृग्वेदसुसम्मितानि कोट्यस्तथा रामनिशाकरैः स्युः ।।

(वृ०मौ०पृ० १८०)

मात्रावृत्तानाम् इतोऽतिरिक्ता भेदा भवितुमर्हन्ति । नारायणभट्टेन मात्रावृत्तानां प्रस्तारोऽपि गणितः । आर्याच्छन्दसः प्रस्तारक्रमेण संख्या भवति, अष्टकोटि-ऊनविंशति-लक्षविंशतिसहस्राणि (८१९२००००)। इत्थमतिविशालश्छन्दोराशिः । कैश्चन छन्दोलक्षणकारैः छन्दसां संख्या विंशतिलक्षसहस्रद्वयं पञ्चशतम् (२००२५००) स्वीक्रियते । अनेन विधिना छन्दसां परिशीलने तस्य विशालता अनुभूयते । वेदेषु छन्दोमाहात्म्यं निष्ठया प्रगीतम् । यतो हि छन्दोहीनं समुच्चारणं रहयति मन्त्रस्य तेजः । अतएव ऋषिच्छन्दोदेवतानामनुध्यानं नान्तरीयकं भवति वेदे । लौकिकच्छन्दस्कस्यापि काव्यस्य ऋषिर्भवति । कविवर्ण्यजातं वस्तुपदेन गृह्यते । छन्दस्तत्र किमपि भवति । अत्र पद्यानां कर्त्तारः कवयः सर्वे ऋषित्वेन न गृहीताः यतो हि सर्वाणि पद्यानि मन्त्रत्वेन नाङ्गीक्रियन्ते । ऋषिः स्यान्न वा स्यात्, देवता स्यान्न वा स्यात्, किन्तु छन्दस्तु तत्रापि भवति । इदं छन्दः काव्यस्य चारुतां सम्पादयति । तत्रत्यं वक्तव्यजातं चारुतरेण विधिना सहृदयं समाह्लादयति । काव्येषु किं छन्दः कुत्र प्रयोक्तव्यमिति सुवृत्ततिलके विचारयति क्षेमेन्द्रः, यथा—

शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलक्रीडितं मतम् ।
सावेगपवनादीनां वर्णने स्रग्धरा मता ।।

(सुवृत्ततिलके ३/२२)

इत्थं वर्ण्यस्यानुगुणं किं छन्दो भवतीति क्षेमेन्द्रेण विचारितम् । लौकिकच्छन्दसां नामान्यपि सङ्केतयन्ति यत् कीदृशे वर्ण्ये किं छन्दः प्रयोक्तव्यम् । क्षेमेन्द्रेणास्मिन् विषये विस्तरेण विचारितम् ।

अद्यापि गीतादिषु नवच्छन्दसामाविर्भावो दृश्यते । पुरातनेषु छन्दस्सु एषामन्तर्भावो न क्रियते । अगाधा छन्दोविद्या उपयोगिनी च महती । व्याकरणादिवत् छन्दसामप्यध्ययन-मावश्यकं भवति । छन्दोऽपि वेदाङ्गम्—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।इति ।

अस्मिन् परिगणने छन्दश्शास्त्रस्य प्रथमा चर्चा विहिता । पादाभ्यां सञ्चरणं

भवति। छन्दसामध्ययनं विना वेदाध्ययनं गतिशून्यम्। छन्दश्शास्त्रस्य स्वीयेन वैशिष्ट्येन वेदस्य पर्यायत्वं जातम्। छन्दःपदेन वेदो गृह्यते। एतदीया प्राचीनता, असङ्ख्यता, तेजस्विता, व्यापकता एतस्य महत्त्वं ख्यापयन्ति। लोके वेदे च वक्तव्यजातानि छन्दांसि महत्वभाञ्जि विदधते।

छन्दोविद्याया अयं सागरो गाढमुन्मथितः ग्रन्थकृता प्रो० श्रीकिशोरमिश्रेण। अत्र छन्दसां महत्त्वमुन्मीलितम्, परम्परा प्रदर्शिता, पारम्परिकचिन्तने नवप्रसङ्गोचितं स्वोपज्ञं यथास्थानं परियोजितम्। असाधारणेन श्रमेण, तत्त्वदर्शिन्या प्रज्ञया, अपूर्वेण शास्त्राभ्यासेन ग्रन्थोऽयं परिकल्पितः। छन्दश्शास्त्रपरिशीलनव्यसनिनां महते उपयोगाय कल्पिष्यतेऽसौ ग्रन्थः। एतस्मै महते सारस्वतकर्मणे साधुवादार्हो: भारतीयवाङ्मयार्णवावगाहनप्रवीणः प्रो० श्रीकिशोरमिश्रः। प्रो० मिश्रो गवेषणाप्रवणं सचेतसामाह्लादकरमेवंविधं ग्रन्थान्तरमपि प्रस्तोष्यतीति विश्वसिमि। छन्दश्शास्त्रस्य प्रख्यातानामीषत्ख्यातानाञ्च ग्रन्थानामत्र विशदो विमर्शः समनुष्ठितः। विशेषोऽत्र परिशेषभागो यत्र मुख्यच्छन्दसां वर्णानुक्रमेण सूची लक्षणादिकमध्येतॄणामनुसन्धातॄणाञ्च महते उपयोगाय विद्यते।

छन्दःशास्त्रस्य उद्‌भवमेवं विस्तारं चाधिकृत्य प्रणीतोऽयं ग्रन्थस्त्रिष्वध्यायेषु विभक्तः। वैदिक आधारः, साहित्यिकविस्तारः, अथ च शास्त्रीयप्राकार इति त्रयोऽध्यायाः। तत्र प्रथमाध्याये वेदानधिकृत्य छन्दसां या चर्चा तत्र विभिन्नबिन्दुक्रमेण गभीरो विमर्शः कृतः। न केवलं वेद एवात्र गृहीतः; अपितु पुराणेष्वपि वैदिकच्छन्दसां यत्र क्वचित् गरुडपुराणाग्निपुराण-विष्णुधर्मोत्तरपुराण-नारदीय-प्रभृतिपुराणेषु यद् विवेचनम्, तस्यापि साङ्गोपाङ्गं विशदतया विमर्शः कृतः। द्वितीयाध्याये लौकिकच्छन्दसां तथा च छन्दश्शास्त्रविदामितिवृत्तं वैशिष्ट्यं च परिशीलितम्। अत्र यैराचार्यैर्नवानि कानिचिच्छन्दांसि गवेषितानि तेषामपि विस्तरेण विवरणं समालोचनं च कृतमस्ति। तृतीयाध्याये शास्त्रीयप्राकारे छन्दसां दार्शनिक आधारः, छन्दसः श्रव्यवैशिष्ट्यम्, छन्दोविस्तरे प्रत्ययानां योगदानमेवंप्रभृतयो विषयाः ससमीक्षं विस्तरेण प्रतिपादिताः।

एवं ग्रन्थकारेण श्रीमता श्रीकिशोरमिश्रेण मेधासहकृतगहनपरिशीलनद्वारा छन्दश्शास्त्रे अभिनवचिन्तनमण्डिततोऽत्यन्तमुपादेयो ग्रन्थः प्रस्तुतः। अहं रचनाकारं साधुवादैर्विभूषयामि, अस्य ग्रन्थस्य सुप्रचारार्थं मङ्गलकामनाञ्च करोमि।

कैलासपतित्रिपाठी

समधिगतराष्ट्रपतिसम्मानप्रमाणपत्रः, प्राप्तविश्वभारतीसम्मानः

महामहोपाध्यायः

आचार्योऽध्यक्षचरश्च, साहित्यविभागस्य

सम्मानित आचार्यः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी

FOREWORD

The science of Metrics has a long history of its own. The Vedic literature attaches profound importance to metres and at the outset it declares that before entering into the structure of a Vedic Hymn, it is necessary to know the metre, the seer of the hymn and the ceremony to which the hymn is to be applied for fructification of desires of the man.

Though the science of Metrics has a long history of its own, Pingala possibly was the first to leave a detailed note on the science as also the different metres prevalent in the Vedic literature. The speculations of Pingala had evolved through centuries and at the hands of numerous writers on Metrics these have assumed different shapes through permutation and combination, as a result of which new metres have appeared in the field of literature.

In explaining the necessity of the metre in the Vedic literature, commentators say that the metre serves as the protecting shield to the sacrificer, as a result of which no harm can be done to him by any external agency and no sin can touch him resulting in successful completion of the sacrifice. This concept of protecting sacrificers dies down at the end of the Vedic period and a new concept in regard to the utility of the metre develops. It is said that the metre is necessary for attainment of aesthetic relish. Aesthetic experience is attained when the mind gets concentrated on the form and content of the literary structure, and presence of music helps the connoisseur in concentrating his mind on the form and content of the structure, curved out. Later Sanskrit theoreticians believe that in a specimen of Sublime Poetry what is

necessary is maintenance of a perfect balance between the music of sound and the music of sense, and it is the metre which helps to a great extent in maintenance of this balance. It is because of this that poetry was created first and the creation of prose was effected at a much later stage of cerative activity. The Vedas are written in metres, the Ramayana and the Mahabharata are poetical compositions and similar is the case with the Puranas and the Upapuranas. All this shows the fascination of the ancient Indian mind for the metre, which was regarded as one of the factors essential for attainment of Aesthetic Experience.

In this connection it may not be out of place to mention the concept of generalisation, introduced by Bhaṭṭanāyaka and adopted by Abhinavagupta. The process of generalisation is described as a process which presents the characters and situations and permanent and transient moods in their universal character, and operating in the field of the self of the experiencer, which universalises him also. As a result of which, when the connoisseur tastes 'Rasa', he tastes it in his universal capacity and not in his individual one. Both Bhaṭṭanāyaka and Abhinavagupta maintain that this genaralisation is effected due to the presence of the metres and literary embellishments in the documents of literary art. This means that if 'Rasa' is described as supramundane Bliss generated from the unique confrontation of the universalised subject of experience and the generalised object of experience then a major role is played in effecting this unique confrontation by the metre. It is because of this reason that metre has continued to play a vital role in Sanskrit literature and numerous exponents of the science of metrics have come forward to discuss the structure of different metres. With the passage of time, experimentation on new metres continues, and new metres are brought into being, not only through permutation and combination of the old metres, but also as a result of its admixture with metres popular in vernaculars or even dialects. While Sanskrit theoreticians play a major role in

describing the details of different metres, their counterparts in Prakrit literature do not lag behind in expounding the details of the new metres, which have crept in Prakrit language, to suit the sturcture, not only in the standard Prakrit, but also of the dialect developed from it. A number of Jaina authors and literary theoreticians come forward to explain the details of the metres prevalent in Prakrit and other dialects.

The above discussion shows the vastness of the subject, which is very difficult to deal with, not only because of the multiplicity of the metres, but also because of the fact that, while certain metres have gone into oblivion, other metres have developed and is still developing through the influence of the vernacular literature. To present a cogent analysis of the metres, therefore, is a herculean task and it requires enormous labour to collect all the metres from different sources and write an exposition on them. India of the twentyfirst century is fortunate enough in having a profound scholar in Professor **Dr. Shreekishore Mishra**, Professor of Sanskrit, Banaras Hindu University, who has deep penetration into both Vedic literature and classical Sanskrit literature and, at the same time, who is initiated into the hieroglyphics of the science of Metrics. Dr. Shreekishore Mishra has collected different metres from all available sources, including manuscripts and has tried not only to analyse their forms, but also to trace their evolution. This is a giagantic task, and the enormous labour expended by Dr. Mishra in dealing with this subject reminds one of the profundity of labour expended by Greman scholars, the thoroughness of whom is remarkable. The hair-splitting analysis of different metres given by Dr. Mishra is so sound and so thoroughly backed by reasons, that one is compelled to accept his findings as genuine and beyond doubt. This beautiful analysis of metres made by Dr. Mishra is going to establish itself, not only as a lasting contribution to the field of literary theories, but also to establish itself as a source-book providing inspiration and

guidance to all future research scholars working in the domain of literary criticism.

I congratulate Professor **Dr. Shreekishore Mishra**,- invoke the blessing of the almighty for him, and welcome the work to the arena of literary criticism in general and science of Metrics in particular.

Ramaranjan Mukherji
Formerly Chancellor
Tirupati Sanskrit University
4.6.2005
Formerly Vice-Chancellor
University of Burdwan and
Ravindra Bharati University
(West Bengal)

शुभाशंसनम्

कविकुलगुरु कालिदास की पंक्ति—'**आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया**' की चरितार्थता का एक उदाहरण आज सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के द्वारा डॉ० श्रीकिशोर मिश्र के नवीनतम ग्रन्थ ''**छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार**'' के प्रकाशन में साकार हो रहा है।

ब्रह्मलीन आचार्य बलदेव उपाध्याय जी ने आयुष्मान् श्रीकिशोर को 'संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास' के लिये छन्दश्शास्त्र पर लिखने का निर्देश दिया था। श्रीकिशोर इस गहन शास्त्रीय विषय पर, जो अध्ययन और अध्यापन के क्षेत्र में प्राय: विरल ही था, कुछ भी लिखने में गहन सङ्कोच और असमर्थता का अनुभव करते रहे। अन्तत: अन्त:प्रसुप्त सारस्वत ऊर्जा का उन्मेष आचार्य के स्निग्ध आग्रह से सम्भव हुआ। अभीष्ट आलेख का कलेवर अध्ययन से अर्जित विपुल सन्दर्भों के अनुपात में छोटा लगने लगा। वर्तमान प्रकाशन उसी अध्ययन की परिणति है।

यहाँ एक प्रासङ्गिक प्रश्न उपस्थित होता है कि आचार्य जी ने इस कार्य के लिये श्रीकिशोर को ही क्यों चुना था? उपाध्याय जी श्रीकिशोर के परिवार में वेदाध्ययन की अविच्छिन्न परम्परा से परिचित थे। श्रीकिशोर के पितामह को तो लोग 'वेद-भगवान्' ही कहते थे। छन्दस्शब्द वेद का वाचक है और छन्दश्शास्त्र वेदाङ्गों में परिगणित है। अष्टाध्यायी के लगभग पच्चीस-तीस सूत्रों में पहला पद 'छन्दस्' शब्द से बना है और वह सर्वत्र वेद का ही वाचक है। कालिदास ने भी '**प्रणवश्छन्दसामिव**' कह कर इसी अर्थ को प्रमाणित किया है। बहुत सम्भव है कि आचार्य ने छन्दश्शास्त्र का कार्य वेदाध्यायी परिवार के नवाङ्कुर को सौंप दिया। इस तार्किक समाधान का एक तर्कातीत पक्ष भी है।

हम उपाध्याय जी को बीसवीं शताब्दी की संस्कृत चेतना का जङ्गम कल्पवृक्ष मानते हैं। आज हमें इस बात पर गर्व और गौरव का अनुभव होता है कि हमने किसी ऐसे महापुरुष को सशरीर चलते-फिरते देखा है,जिनके लिये हमारे पूर्वज ऋषि, मुनि या सर्वज्ञ आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। उनका अखण्ड ज्ञान त्रिकालदर्शी होता था। ऐसी ही किसी स्थिति में भवभूति ने कहा था—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ।।

आज उनकी सर्वज्ञता प्रमाणित हुई है। विद्वान् लेखक ने बृहत् इतिहास के लिये अभीष्ट लेख अर्पित करने के उपरान्त ही समझा कि परिक्रमा के विना देवदर्शन अधूरा होता है। 'छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार' के प्रकाशन से अब यह प्रदक्षिणा पूर्ण हुई है। वर्तमान लेखक के सामर्थ्य को उपाध्याय जी जानते थे।

शास्त्रसाधना के क्षेत्र में पूर्णता का भी अपना ही गणित होता है—**'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'** अर्थात् वह पूर्णता सनातन और अक्षय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में तीन अध्याय है। प्रथम अध्याय में छन्दश्शास्त्र के 'वैदिक आधार' का आकलन **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'** के अनुरूप पौराणिक सन्दर्भों को भी स्वीकार करता है। द्वितीय अध्याय लौकिक साहित्य अर्थात् संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में पल्लवित छन्द:प्रसार का अत्यन्त उपयोगी एवं श्रमसाध्य समुच्चय सिद्ध होगा। तृतीय अध्याय पारिभाषिक शब्दावली के साथ ही दार्शनिक धरातल पर छन्द:प्रकर्ष के विवेचन के द्वारा ग्रन्थ की परिणति का आवाहन करता है। परिशेष भाग में विभिन्न तालिका और संग्रह सूची का समावेश शोध अध्ययन के लिये ग्रन्थ की उपादेयता को रेखाङ्कित करता है।

'छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार' के विद्वान् लेखक आयुष्मान् श्रीकिशोर मिश्र शास्त्रपरम्परा के मौलिक अध्येता हैं और तत्त्व-चिन्तन में कुशल हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना प्रक्रिया में पग-पग पर गुरु के अनुग्रह का आभास लेखक को मिलता रहा है। यह लेखकीय अनुभव ग्रन्थ की सार्थकता का सच्चा परिचय है। अस्तु,

सारस्वतं व्रतमनन्यधिया चरिष्णुर्वन्द्यः शताब्दपुरुषो बलदेवनामा ।
छन्दःप्रयोगमधिकृत्य नवं प्रबन्धं श्रीश्रीकिशोरमदिशद् ग्रथितुं गुणज्ञः ।।१।।
छन्दःप्रसारकलनासु गुरोर्नियोगाद्रात्रिन्दिवं विधिवदध्ययनात्तचित्तः ।
ग्रन्थाङ्गभूतपरिमाणमितं प्रबन्धं भक्त्या निवेद्य गुरवेऽन्वभवत् प्रसादम् ।।२।।
वेदाङ्गरूपेण विनैव कारणं छन्दांस्यधीतानि मनीषिभिः पुरा ।
कालक्रमेणाश्रितवान् दुरूहतां लोकेषु शास्त्रस्य नवार्थविस्तरः ।।३।।
नियोगेन गुरोश्छन्दश्शास्त्रस्योद्भवविस्तरः ।
वेदे समीक्ष्य लोके च श्रीकिशोरेण वर्णितः ।।४।।
ग्रन्थः शास्त्रविदां प्रीत्यै जायतां वस्तुगौरवात् ।
श्रीकिशोरः सुधीर्भूयाद्यशसां भाजनं कृती ।।५।।

॥ इति शम् ॥

उज्जयिनी
बुद्धपूर्णिमा, संवत् २०६२

श्रीनिवास रथ
उपाध्यक्ष
महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान
(भारत शासन)
पूर्व निदेशक- कालिदास अकादमी,
पूर्व प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष-संस्कृत विभाग,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

स्वकीय निवेदन

[१]

वेदपुरुष शब्दब्रह्म की अक्षरोपासना भगवती वाङ्मयी मूर्ति के अनुग्रह से ही सम्पन्न हो सकती है। इस उपासना के अन्तर्गत शास्त्रमयी पराम्बा तथा शास्त्रप्रवर्तक परमेश्वर की सारस्वत सपर्या के अकिञ्चन प्रसून के रूप में मेरे द्वारा **'छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार'** नामक पुस्तक प्रस्तुत करने में विश्वेश्वर की कृपा ही कारणभूत है।

वेद का विद्यार्थी होने के कारण छन्दों से मेरा परिचय तो दीर्घकालिक है; किन्तु छन्दश्शास्त्र के विषय में अल्पज्ञता का अवबोध मेरे लिये नया अनुभव है। छात्रावस्था में पिङ्गलच्छन्दस्सूत्र के वैदिक प्रकरण और अन्य कतिपय संस्कृत-छन्दों का सामान्य अध्ययन मैने परीक्षा की दृष्टि से किया था। अध्यापनकाल में पूज्य पितृचरण वेदशास्त्रमहोदधि स्व० पं० गोपालचन्द्र मिश्र जी के पूर्वनिर्देशानुसार उनकी स्मृति में कात्यायनीय छन्दस्सूत्रों को दो भाष्यों के साथ मैंने प्रकाशित किया। 'वैदिकच्छन्द:पर्यालोचनम्' नामक इस पुस्तक का अवलोकन कर स्वनामधन्य प्रगुरुवर्य **आचार्य बलदेव उपाध्याय** जी ने मुझे संस्कृतवाङ्मय के बृहद् इतिहास के अन्तर्गत छन्दश्शास्त्र के इतिहासलेखन का स्नेहपूर्ण आदेश दिया था। इस बृहद् इतिहास के काव्यशास्त्रीय खण्ड के आद्य सम्पादक श्रद्धेय पं० करुणापति त्रिपाठी जी ने पूज्य उपाध्याय जी के आदेश को शीघ्र क्रियान्वित करने का स्नेहबलिष्ठ निर्देश देकर मुझे छन्दश्शास्त्रीय अध्ययन के लिये प्रेरित किया, यह इस प्रस्तुति की आधारभूमिका है।

इस रचना की प्रस्तुति में इन दोनों श्रद्धेय आचार्यों की प्रेरणा ही मूल है। यद्यपि मैने पूज्य आचार्य उपाध्याय जी के चरणों में अनेक बार यह निवेदन किया कि वैदिक छन्दों के विषय में तो कथञ्चित् मैं लिखने का प्रयास कर सकता हूँ; किन्तु लौकिक छन्दोवितति के निरूपण में अल्पज्ञता के कारण इस अंश के लेखन का साहस करना मेरे लिये उचित नहीं होगा। इस पर आचार्य उपाध्याय जी ने अपने आदेश को गुर्वाज्ञा में परिवर्तित कर दिया तथा अपने महाप्रयाण के कुछ दिनों पूर्व तक छन्दश्शास्त्र-सम्बन्धी मेरे कार्य की प्रगति की सूचना प्राप्त करते रहे।

मैं इसको अपने जीवन का सौभाग्य मानता हूँ कि ऋषिकल्प आचार्य बलदेव उपाध्याय जी ने मुझे छन्दश्शास्त्रीय कार्य के लिये आदिष्ट किया एवम् इसकी सम्पूर्ति उनके स्नेहसिक्त आशीर्वाद से सम्भव हो सकी है। वस्तुत: छन्दश्शास्त्र के इतिहाससम्बन्धी लेखनकार्य का औपचारिक आरम्भ मैने उनके महाप्रयाण के अनन्तर आज्ञापूर्ति के द्वारा गुरुवाक्य के परिपालन की भावना से किया तथा इसका प्राथमिक स्वरूप उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान (लखनऊ) से प्रकाशित संस्कृतवाङ्मय के बृहद् इतिहास के काव्यशास्त्रीय अष्टम खण्ड में अन्तर्भुक्त मुद्रित हुआ है। इस इतिहासखण्ड

की कलेवरसीमा के अन्तर्गत मेरे द्वारा संगृहीत अनेकविध सामग्री का उपयोग नहीं हो पाया था और सामग्रीसङ्कलन के प्रसङ्ग में संस्कृतछन्दश्शास्त्र की अनितरसाधारण विविध विशिष्टताओं के प्रति मेरी रुचि भी अभिवर्धित हुई। इस सन्दर्भ में अनेक ग्रन्थों का संकलन हुआ तथा क्रमशः अधिक सामग्री संकलित हो जाने पर मैंने इसके पुस्तकाकार प्रकाशन की योजना सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के यशस्वी प्रकाशन-निदेशक **डॉ० हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी** जी के सम्मुख प्रस्तुत की। विद्याव्यसनी तथा शास्त्रसंरक्षा के एकनिष्ठ व्रती डॉ० त्रिपाठी जी ने सहर्ष इस पुस्तक का प्रकाशन स्वीकार किया। अतः इस पुस्तक की प्रस्तुति में आचार्य डॉ०. हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी जी का सौजन्यावदान मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है।

इस पुस्तक के लेखनक्रम में प्राप्त अनुभवों को भी सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना सामयिक होगा। मेरी दृष्टि से भारतीय छन्दश्शास्त्र का विश्ववाङ्मय में अद्वितीय स्वरूप है। इतनी विशाल छन्दोराशि (२२ करोड से अधिक) का सैद्धान्तिक उपदेश एवम् उपयोग विश्व की किसी भाषा में उपलब्ध नहीं होता। अतः विश्वसाहित्य को भारत का यह महनीय अवदान है। संस्कृत-छन्दश्शास्त्र के समस्त तत्त्वों मूल-स्रोत वेद है, इस तथ्य की आर्ष मान्यता को इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर सोदाहरण प्रतिपादित किया गया है। वैदिक छन्दोविधान का साङ्गीतिक श्रुतिमाधुर्य तथा छन्दों की गणितीय वितानपद्धति छन्दश्शास्त्र को कला-विज्ञान के प्रायोगिक रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। निगमाश्रित दर्शनों के अनुसार छन्दों का आध्यात्मिक आधार तथा आगम के निर्देशानुकूल इनका आधिदैविक वैभव भी अनुभूत है। इस रीति से आधिभौतिक, आधिदैविक एवम् आध्यात्मिक—त्रिविध वैशिष्ट्य से संवलित छन्दश्शास्त्र का अध्ययन वाग्देवी की सारस्वत उपासना का प्रमुख उपादान सिद्ध होता है।

संस्कृत के अनेककोटि छन्दों की प्रस्तारराशि के विषय में एक ग्रन्थ में अनुशीलन प्रस्तुत करना असम्भव है। कतिपय ज्ञात, अल्पज्ञात, लक्षित छन्दों की सामान्य सूचना, छन्दोलक्षणग्रन्थों का यथोपलब्ध संक्षिप्त विवरण तथा छन्दश्शास्त्रीय मुख्य तत्त्वों का समासतः सङ्कलन मात्र मैं यथामति इस पुस्तक में कर सका हूँ। परन्तु मेरी धारणा है कि छन्दश्शास्त्र के अग्रिम अनुशीलन में अध्येताओं को इस ग्रन्थ से किञ्चित् सहायता मिलेगी। साथ ही मेरा यह भी अभिमत है कि इतने विशाल छन्दोवैभव से समृद्ध होकर भी भारतीय रचनाकार विशेषतः संस्कृत-कविवर्ग यदि छन्दोहीन अथवा मुक्तच्छन्दस्क रचना का आश्रय लेता है, तो वह अपने मतिकार्पण्य अथवा गुणज्ञता के दारिद्र्य से उपहत प्रतीत होता है।

भारत में छन्दश्शास्त्र का अध्ययन, अनुसन्धान इस शास्त्र की व्यापकता के अनुपात में बहुत कम हो पाया है। इस कार्य में **प्रो० हरि दामोदर वेलणकर** के हम ऋणी हैं, जिन्होंने छन्दश्शास्त्र-संरक्षा में सर्वाधिक श्रम किया है। **प्रो० शिवप्रसाद भट्टाचार्य, आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रो० डॉ० गोपालचन्द्र मिश्र** जी आदि

मनीषियों के छन्दश्शास्त्रीय ग्रन्थ एवं लेख मेरी इस प्रस्तुति में आधार रहे हैं। मैं इन सभी मनीषियों का अनुगृहीत हूँ। **पं. युधिष्ठिर मीमांसक** द्वारा लिखित 'वैदिक-छन्दोमीमांसा' तथा 'पिङ्गलछन्दस्सूत्र' के **यादवप्रकाश** विरचित 'छन्दोविचितिभाष्य' (१९८८ ई.) आदि ग्रन्थों के प्रकाशन द्वारा रामलाल कपूर ट्रस्ट (हरियाणा) ने भी छन्दोऽनुशीलन में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस कृति की विषयगत सम्पन्नता में अनेक प्राचीन-नवीन मनीषियों के ग्रन्थ, लेख, मत-सिद्धान्त, वैचारिक दिशा, प्रकाशन आदि का आश्रय मैंने लिया है तथा उनका यथोचित उल्लेख भी किया है। मैं इन समस्त ज्ञात, अज्ञात आचार्यों, विद्वानों, सम्पादकों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

छन्दोविषयक सामग्रीसङ्कलन हेतु मैंने देश के अनेक विश्वविद्यालयों में, पुस्तकालयों तथा विद्वज्जनों से पत्राचार किया तथा व्यक्तिगत निवेदन भी किये। परन्तु किसी भी संस्था अथवा विद्वान् ने इस विषय में उत्साह प्रदर्शित नहीं किया एवं किसी पत्र का कोई उत्तर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। मैं इन विद्वानों तथा पुस्तकालयों के ज्ञानलाभ से वञ्चित रहा, इसका मुझे खेद है। स्व० **पं० बच्चूलाल अवस्थी** के छन्दोविषयक ग्रन्थ का परिचय प्राप्त करने हेतु मैं उज्जयिनी में उनके निवास पर गया, परन्तु वे स्वयं अपनी कृति के विषय में कुछ भी सूचना न दे सके। विशेषत: सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वतीभवन ग्रन्थालय से तो औपचारिक रूप से अनेकविध प्रयासों के बाद भी किसीप्रकार का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। यह अत्यन्त आश्चर्यावह है कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली इस पुस्तक के लिये वहीं के अधिकारियों तथा पुस्तकालय से सहयोग नहीं मिला। परन्तु मैं स्व० **रमापद चक्रवर्ती** प्रभृति मित्रबन्धुओं का आभारी हूँ, जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से सरस्वतीभवन से सम्बद्ध सूचनाओं के संग्रह में यथाशक्ति अनौपचारिक सहायता की है। पुस्तकालयीय सहयोग के लिये मैं श्री विश्वनाथ पुस्तकालय (गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी) का भी आभारी हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि संस्कृतज्ञ विद्वज्जन तथा पुस्तकालयों के अधिकारी अपनी उदासीनता का परित्याग कर शास्त्रानुशीलन और अनुसन्धान के विकास के लिये जिज्ञासुओं को अपने ज्ञान का लाभ प्रदान करने हेतु सन्नद्ध होंगे।

मेरे पूज्य पितामह आहिताग्नि **म०म०स्व०पं० भगवत्प्रसाद मिश्र जी** (पूर्ववेद-विभागाध्यक्ष, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) के आशीर्वाद तथा मेरे पूज्य पितृचरण स्वाध्यायतपोमूर्ति स्व० **डॉ० गोपालचन्द्र मिश्र जी** (पूर्व प्रोफेसर एवं वेदविभागाध्यक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) के अध्यापन, अनुशासन एवम् अमोघ अनुग्रह से ही मैं इस प्रस्तुति के लिये मनाक् शक्तिसामर्थ्य सञ्चित कर सका हूँ। इस कार्य हेतु मेरे पूज्य अग्रज वेदविद्वरिष्ठ **प्रो० युगलकिशोर मिश्र** जी (प्रोफेसर एवं वेदविभागाध्यक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) ने निरन्तर उत्साह तथा आशीर्वाद प्रदान किया है। इस कार्य की सम्पूर्ति के अवसर पर मैं अपनी इस गुरुत्रयी को सश्रद्ध प्रणत्ति अर्पित करता हूँ।

लेखन के क्रम में मैंने **आचार्य श्री श्रीनिवास रथ** (उज्जयिनी), **पं० श्री मनुदेव भट्टाचार्य** (सं०सं०वि०वि०), **स्व० डॉ० पूर्णिमा मिश्र** (वाराणसी), **प्रो० भीम सिंह** (कुरुक्षेत्र) आदि मनीषियों से अनेकविध परामर्श प्राप्त किये हैं। मैं इनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस कृति को **प्रो० रमारञ्जन मुखोपाध्याय** जी (पूर्वकुलपति, बर्दवान एवं रवीन्द्रभारती विश्वविद्यालय, प०बंगाल) **आचार्य श्री श्रीनिवास रथ** जी (उपाध्यक्ष, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी) तथा **म०म०प्रो० कैलासपति त्रिपाठी** जी (सम्मानित आचार्य एवं पूर्व साहित्यविभागाध्यक्ष, सं०संस्कृत विश्वविद्यालय) ने अपने शुभाशंसन-अभिप्रायों से अलङ्कृत किया है। इन विद्वत्त्रयी के अनुग्रह हेतु मैं अधमर्ण हूँ। इस कार्य की प्रस्तुति में मेरे अभिन्न मित्रगण **डॉ० चन्द्रकान्त द्विवेदी** (स०निदेशक, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान), **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र** (संयुक्त निदेशक संस्कृत शिक्षा, राजस्थान शासन), **डॉ० मनुलता शर्मा** (रीडर, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) का सहयोग प्राप्त हुआ है। एतदर्थ अपनी हार्दिक प्रश्रयप्रसृत शुभेच्छा समर्पित करता हूँ।

विविध क्षेत्रों से इतिहाससामग्री का सङ्कलन, पुस्तकसंग्रह, प्रेसकापी तथा अनुक्रमणिकाओं का निर्माण, प्रूफसंशोधन आदि अनेक कार्यों की सम्पन्नता एकाकी मेरे द्वारा सम्भव नहीं थी। इन कायों में मेरे निर्देशानुसार वैदिक अन्तेवासियों ने श्रम किया है। इनमें प्रमुख हैं—श्रीपट्टाभिरामशास्त्री वेदमीमांसा अनुसन्धान केन्द्र के **डॉ० गंगाधर मिश्र, पं० सुशील कुमार पाण्डेय, डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय, पं० विजय कुमार शर्मा, पं० आलोक मिश्र,** उन्नयन संस्थान के **पं० शालिग्राम शर्मा, डॉ० शैलेन्द्रनाथ दीक्षित, डा० समता मिश्र, पं० देवेन्द्र कुमार शर्मा** तथा **डॉ० राजेन्द्र पाण्डेय** (स० वेदविभागाध्यक्ष, संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी), **डॉ० गोपाल प्रसाद शर्मा** (वेद प्राध्यापक, ला०ब०शा० राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली), **डॉ० ऋषिराम रेग्मी** (वेदप्राध्यापक, महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय, नेपाल), **डॉ० रवीन्द्रनाथ भट्टाचार्य** (प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)। इन समस्त भविष्णु वेदानुशीलकों के लिये आशीर्वादपूर्वक वेदपुरुष के अनुग्रह की कामना करता हूँ।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय प्रकाशन संस्थान के यशस्वी निदेशक **आचार्य श्री हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी** जी के स्नेहपूर्ण औदार्य के साथ उनके सहयोगीगण **श्री ददन उपाध्याय, डॉ० हरिवंश कुमार पाण्डेय** आदि ने भी इस प्रकाशन में बहुमूल्य सहयोग किया है। एतदर्थ मैं प्रकाशनविभागीय सदस्यों का कृतज्ञ हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का प्रारम्भ **प्रो० 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र जी** के कुलपतित्व में हुआ था तथा सम्पूर्ति **प्रो० अशोक कुमार कालिया जी** के

कुलपतित्व में हो रही है। अतः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व-कुलपति प्रो० राजेन्द्र मिश्र जी तथा वर्तमान कुलपति प्रो० अशोक कुमार कालिया जी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

मुद्रण कार्य में गौरीशंकर प्रेस का सहयोग भी अविस्मरणीय है। एतदर्थ **श्री शिवप्रसाद रस्तोगी** (भगत जी) धन्यवाद के पात्र हैं।

शेषावतारप्रोक्त छन्दश्शास्त्र की अपरिमित वितति को ग्रन्थ की मर्यादा में सञ्चित करना मेरे जैसे सीमित मतिशक्तिवाले अध्येता के लिये अत्यन्त दुष्कर है; तथापि मैंने यावद्बुद्धिबलोदय यह कृति पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की है। इसमें मानवसुलभ त्रुटियाँ स्वाभाविक हैं। विशेषत: पिङ्गलछन्द:सूत्र, भरतनाट्यशास्त्र आदि आर्ष प्राचीन ग्रन्थों के विविध संस्करणों में अनेकविध पाठभेद, क्रमभेद आदि होने के कारण उनकी सन्दर्भसंख्या एवं पाठों में भिन्नता इस प्रस्तुति में अनेकत्र दृष्टिगोचर हो सकती है। यद्यपि मैंने इसके सामञ्जस्य का यावच्छक्य प्रयत्न किया है, तथापि इन ज्ञाताज्ञात त्रुटियों एवं मुद्रणाशुद्धियों के लिये मैं विद्वज्जनों का क्षमाप्रार्थी हूँ। इस कृति से विश्वेश्वर की कृपा एवं विद्वद्वर्ग का अनुग्रह मुझे प्राप्त हो, यही इस कार्य की सफलता मानता हूँ।

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
श्रुते जातापराधानां त्वमेव शरणं श्रुते॥
शास्त्रोक्तवादान् प्रतिपद्य तेषां समन्वयायैष कृतः प्रयत्नः।
असाधु यत्तत्र स नः प्रमादो यत्साधु सर्वः स गुरुप्रसादः॥

[२]

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

एवं

प्रकाशन-संस्थान का महनीय अवदान

विद्यागौरवरत्नराजिमखिलां यद्दिग्विदिक्षु ध्रुवं
कात्स्न्येंनैव विकाशयत्यनुदिनं पारेसमुद्रं मुहुः।
तत्तत्पुस्तकमुद्रणादिभिरहो रात्रिन्दिवं सश्रमं
राजत्येतदहो प्रकाशनमयं संस्थानमारादिदम्॥

वाग्देवी सरस्वती के प्रत्यक्ष विग्रहस्वरूप ग्रन्थों का प्रकाशन किसी भी शिक्षण-प्रतिष्ठान के लिये शुभोदर्क का प्रकाशक है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा ग्रन्थ-प्रकाशन की महनीय परम्परा तो उस पावन सारस्वत प्रवाह के समान है, जिसने असंख्य ज्ञानपिपासुवों को आत्मतृप्ति के साथ पुण्य-राशि के वरदान से भी अनुगृहीत किया है।

दो शताब्दियों से भी अधिक समय से काशिक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्रादुर्भूत **यह ज्ञान-परम्परा सरस्वतीभवन ग्रन्थालय में लक्षाधिक हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित है।** सुरभारती की इस अद्भुत ज्ञानराशि को जनसामान्य के लिये सुलभ कराने की दृष्टि से ग्रन्थ-प्रकाशन की योजना ने मूर्त रूप धारण किया। राजकीय संस्कृत महाविद्यालय से प्रारम्भ कर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय और सम्प्रति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय तक की इस सतत ज्ञान-यात्रा में अद्यावधि प्रायशः १५०० विशिष्ट प्रकाशनों की अपूर्व ज्योत्स्ना-शृङ्खला है, जिसके अन्तर्गत वेद, व्याकरण, ज्योतिष, न्यायवैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, तन्त्रागम, काव्यशास्त्र, श्रमणसाहित्य आदि विषयों के अनेकविध ग्रन्थरत्न प्रकाशित हैं।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के **प्रकाशन-संस्थान** की ज्ञानस्रोतस्विनी त्रिपथगा होकर प्रवाहित हो रही है। इसकी **प्रथम धारा** अनुक्रमणी तथा पत्रिकादि के रूप में प्रसृत है। सरस्वतीभवन-ग्रन्थालय में संरक्षित लक्षाधिक पाण्डुलिपियों की विवरणात्मिका सूची (कैटलॉग) के महत्त्वपूर्ण ३१ भाग अद्यावधि यहाँ से प्रकाशित हैं तथा सम्पूर्ण विश्व में प्राच्य-विद्याओं के शोधार्थियों के लिये अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त १८६६ ई० से १९१७ ई० तक प्रकाशित तथा अतिशय सम्मानित **'पण्डित-पत्रिका'** (काशीविद्यासुधानिधि) का पुनर्मुद्रण **'पण्डित-परिक्रमा'** के रूप में एवं संस्कृतजगत् की प्रतिष्ठित शोधपत्रिका **'सारस्वती सुषमा'** के अङ्क और विविध महनीय विशेषाङ्क, विश्वविद्यालयीय परिसंवाद, सङ्कायपत्रिका आदि का प्रकाशन-संस्थान द्वारा नियमित प्रकाशन संस्कृतविद्या के अक्षुण्ण प्रवाह का संवाहक है।

प्रकाशन-संस्थान की **द्वितीय धारा** आर्ष शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रकाशन, दुर्लभ पाण्डुलिपियों के पुनरुद्धरण, संस्कृतशास्त्रों के प्राचीन ग्रन्थों का पुनर्मुद्रण आदि के

द्वारा ज्ञानपिपासुवों के लिये अमृतस्यन्दिनी है। इस प्रकल्प में अनेक पुण्यश्लोक मनीषियों का योगदान प्रकाशन-संस्थान को प्राप्त हुआ है। **पं. रामाज्ञा पाण्डेय** द्वारा व्याकरणदर्शन, **पं. सुधाकर द्विवेदी** द्वारा सूर्यसिद्धान्त, **पं. हरिहरकृपालु द्विवेदी** द्वारा बृहदारण्यकवार्तिकसार, **पं. नीलमेघाचार्य** द्वारा न्यायसिद्धाञ्जन, **पं. रघुनाथ शर्मा** द्वारा वाक्यपदीय, **पं. राजेश्वरशास्त्री** द्वारा कौटिलीय अर्थशास्त्र, **पं. दुर्गाधर झा** द्वारा प्रशस्तपादभाष्य, **पं. गौरीनाथ शास्त्री** द्वारा किरणावली तथा प्रामाण्यवाद, **पं. बदरीनाथ शुक्ल** द्वारा विधिवाद, **पं. बलदेव उपाध्याय** द्वारा शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र, **पं. करुणापति त्रिपाठी** द्वारा शारदातिलक, **पं. गोपालचन्द्र मिश्र** द्वारा काण्वसंहिताभाष्य, **पं. रामप्रसाद त्रिपाठी** द्वारा रुद्रयामल, **पं. केदारनाथ ओझा** द्वारा रसगङ्गाधर आदि शतशः आकर-ग्रन्थों तथा उनकी वैदुष्यपूर्ण टीकाओं, भाष्यों के प्रकाशन का कार्य इस संस्थान द्वारा इदम्प्रथमतया किया गया है।

प्रकाशन-संस्थान की **तृतीय धारा** में अद्यतन मौलिक कृतियों, शास्त्रीय अनुशीलन तथा साम्प्रतिक विचारों से उपबृंहित ग्रन्थरत्न प्रकाशित होकर शास्त्रपरम्परा को अध्येताओं की अग्रिम पीढ़ी में संक्रान्त करने की अजस्र स्फूर्ति प्रदान करते हैं। इस धारा में **पं. गोपीनाथ कविराज, डॉ. सम्पूर्णानन्द, पं. कुबेरनाथ शुक्ल, डॉ. जे. ए. जैकब. पं. विद्यानिवास मिश्र, प्रो. लक्ष्मीनारायण तिवारी** आदि मूर्धन्य विद्वानों के संस्कृत, हिन्दी, अंग्रजी, पालि प्रभृति भाषाओं के माध्यम से प्रस्फुटित मौलिक चिन्तन को शैक्षणिक जगत् के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका अतिशय महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि अनेक आधुनिक नवीन लेखकों की रचनाओं को प्रकाशित कर इस संस्थान ने उनको विद्याक्षेत्र में प्रतिष्ठित किया है। संस्कृत के आधुनिक अध्येताओं के लिये यह अवसर भविष्य की प्रगति तथा उन्नति हेतु महान् उपकारक सिद्ध हुआ है।

प्रकाशन-त्रिपथगा का यह पावन-प्रवाह जिस यशस्वी आचार्य के भगीरथ-प्रयास से प्रथित हुआ है, वे मनीषी प्रकाशन-संस्थान के कीर्तिविश्रुत निदेशक **डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी** जी हैं। आज विश्व में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का जो परिचायन है, उसमें यहाँ के विशिष्ट प्रकाशनों की उज्ज्वल परम्परा ही मूलभूत है। प्रकाशन-संस्थान के सम्मान्य निदेशक डॉ. त्रिपाठी जी के तत्त्वावधान में

उनके सहयोगी सदस्यों के द्वारा शास्त्रों के सम्पादन-प्रकाशन हेतु अहर्निश प्रयास किया जा रहा है तथा इन दुष्प्राप्य ग्रन्थों को अनुशीलनकर्ताओं के लिये सुगमरीति से उपलब्ध कराया जा रहा है, यह अतिशय पुण्याधायक है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लेख है कि—

कपिलादानसहस्रेण सम्यग् दत्तेन यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकैकप्रदानतः।।

पुस्तकों के द्वारा यशःसाम्राज्य भी वर्णित है—

पुराणं तर्कशास्त्रञ्च छन्दोलक्षणमेव च ।
वेदं मीमांसकं दत्त्वा शिवधर्मञ्च वै नृप ।।
सप्तद्वीपपृथिव्याञ्च राजराजो भवेद्धि सः।।

इस शास्त्रीय वचन से स्पष्ट है कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की राजमान विश्वविश्रुति का प्रमुख कारण ग्रन्थ-प्रकाशन की यह समाजोपकारक श्रेष्ठ परम्परा ही है।

वाराणसी
चैत्र-पूर्णिमा,
वि.सं. २०६३

विद्वदनुग्राह्य
श्रीकिशोर मिश्र
आचार्य एवम् अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
कला-संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

ग्रन्थसङ्केततालिका

अ०पु०	अग्निपुराण
अथ०, अ०सं०	अथर्ववेद संहिता
अ०को०	अमरकोष
अभिनव०	अभिनवभारती
अ०वृ०र०	अभिनववृत्तरत्नाकर
आर्षेय ब्रा०	आर्षेय ब्राह्मण
उ०सू०	उणादिसूत्र
उ०नि०सू०	उपनिदानसूत्र
ऋ० (सं०), ऋग्०	ऋग्वेद संहिता
ऋ०भा०भू०	ऋग्वेद भाष्य भूमिका (सायणीया)
ऋ०प्रा०	ऋग्वेदप्रातिशाख्य
ऐ०ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
क०द०	कविदर्पण
क०द०वृ०	कविदर्पण वृत्ति
का०	कारिका
का०श्रौ०	कात्यायन श्रौतसूत्र
का०मी०	काव्यमीमांसा
कौ०ब्रा०	कौषीतकिब्राह्मण
कुमार०	कुमारसम्भव
किरात०	किरातार्जुनीय
ग०पु०	गरुडपुराण
गो०ब्रा०	गोपथब्राह्मण
गा०ल०	गाथालक्षण
च०, चन्द्रि०	चन्द्रिका
छा०उप०, छा०उ०	छान्दोग्य उपनिषद्
छन्दो०, छन्दोनु०	छन्दोनुशासन
छ०कौ०	छन्द:कौस्तुभ
छ०म०, छन्दोम०	छन्दोमञ्जरी
छ०सू०	छन्दस्सूत्र (पिङ्गल)

जय०, ज०छ०	जयदेवच्छन्दः
जयकी०, ज०की०	जयकीर्ति
जा०छ०वि०, छ०वि०	जानाश्रयी छन्दोविचिति
जै०ब्रा०	जैमिनीय ब्राह्मण
तर्कवा०, त०वा०	तर्कवाचस्पति
ता०ब्रा०	ताण्ड्य ब्राह्मण
तै०सं०	तैत्तिरीय संहिता
तै०आर०, तै०आ०	तैत्तिरीय आरण्यक
ना०	नारायणी टीका
ना०शा०	नाट्यशास्त्र
नि०	निरुक्त
नि०सू०	निदानसूत्र
पा०	पाणिनिसूत्र
पा०शि०	पाणिनीय शिक्षा
पि०, पि०सू०	पिङ्गलछन्दःसूत्र
पि०छ०सू०, छ०सू०	पिङ्गलछन्दःसूत्र
प्र०र०	प्रस्तारादिरत्नाकर
प्र०चि०	प्रस्तारचिन्तामणि
प्रा०पि०सू०	प्राकृतपिङ्गलसूत्र
प्रा०, प्रा०पै०	प्राकृत पैङ्गल
पु०	पुराण
बृ०स०	बृहत्संहिता
भा०रा०	भाष्यराज
म०को०	मणिकोश
मनु०	मनुस्मृति
मा०, मा०सं०	माध्यन्दिनीय संहिता
मं०म०	मन्दारमरन्दचम्पू
मु०चि०	मुहूर्तचिन्तामणि
या०स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति
र०म०	रत्नमञ्जूषा
रघु०	रघुवंश
ल०स०	ललितासहस्रनाम
वृ०	वृत्त

वृ०मु०	वृत्तमुक्तावली
वृ०मौ०	वृत्तमौक्तिक
वृ०च०	वृत्तचन्द्रोदय
वृ०र०ना०	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका
वृ०र०	वृत्तरत्नाकर
वृ०म०को०	वृत्तमणिकोश
वृ०स०, वृ०जा०स०	वृत्तजातिसमुच्चय
वृ०र०प०	वृत्तरत्नाकर पञ्चिका
वि०क०	विशल्यकरणी टीका
वे०मा०छ०	वेङ्कटमाधवीय छन्दोनुक्रमणी
वाग्व०, वा०व०	वाग्वल्लभ
वा०भू०	वाणीभूषण
वै०छ०मी०	वैदिक छन्दोमीमांसा
वा०सं०	वाजसनेय संहिता
श०ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शु०य० सर्वा० (भा०)	शुक्लयजुस्सर्वानुक्रमसूत्र भाष्य
शिशु० व०	शिशुपालवध
श्रु०बो०	श्रुतबोध
सा०	सामवेद
सु०ति०	सुवृत्ततिलक
सौ०भा०	सौभाग्यभास्कर व्याख्या
सं०शा०इ०	संस्कृत शास्त्रों का इतिहास
सं०छ०उ०वि०	संस्कृत छन्दों का उद्भव और विकास
स्व०छ०	स्वयम्भूच्छन्दः
हला०	हलायुध
है०छ०अ०, है०छन्दोनु०	हैम छन्दोऽनुशासन
है०छ०अ०टी०	हैम छन्दोऽनुशासन टीका
ABORI	Annals of Bhandarkar Oriental Researeh Institute.
JBBRAS	Journal of Bombay Branch of Royal Asiatic Society
JRAS	Journal of Royal Asiatic Society

विषयानुक्रमणिका

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
	प्रथम अध्याय – वैदिक आधार	**१ - ६८**
१.	छन्दश्शास्त्र के आद्य उल्लेख	१
२.	वैदिक ग्रन्थों में छन्दश्शास्त्र का महत्व	२
३.	छन्दश्शास्त्र की परम्परा	५
४.	छन्दः शब्द का अर्थ	८
५.	छन्दों का विभाग	१०
६.	वैदिक छन्दों के प्रतिपादक ग्रन्थ	१२
७.	ऋक्-प्रातिशाख्य (शौनक)	१२
८.	शांखायन श्रौतसूत्र-छन्दःप्रकरण	२२
९.	निदानसूत्र (पतञ्जलि)	२३
१०.	प्रथम सप्तक में लक्षित छन्द	२४
११.	द्वितीय सप्तक के अतिच्छन्द	२५
१२.	तृतीय सप्तक के अतिच्छन्द	२६
१३.	अन्तःस्थ छन्द-प्राग्गायत्री पञ्चक	२६
१४.	द्वापरछन्दों में प्रथम सप्तक	२६
१५.	द्वापरछन्दों में द्वितीय सप्तक	२६
१६.	द्वापरछन्दों में तृतीय सप्तक	२६
१७.	द्वापरछन्दों में प्राग्गायत्री पञ्चक	२६
१८.	दैवासुरप्राजापत्यार्षपूर्वक प्रथम सप्तक के छन्द	२६
१९.	दैवासुरप्राजापत्यार्षपूर्वक द्वितीय सप्तक के छन्द	२७
२०.	उपनिदानसूत्र (गार्ग्य)	२९
२१.	पिङ्गलछन्दः सूत्र (वैदिक-प्रकरण)	३१
२२.	पिङ्गलाचार्य के काल-निर्धारण में विभिन्न मत	३१
२३.	ऋक्सर्वानुक्रमणी (कात्यायन)	३३
२४.	यजुस्सर्वानुक्रमणी-छन्दःसूत्र (कात्यायन)	३४
२५.	जयदेवच्छन्दः-वैदिकप्रकरण (जयदेव)	३५
२६.	जयदेव के स्वतन्त्र लक्षित छन्द	३६
२७.	ऋगर्थदीपिका-छन्दः प्रकरण (वेङ्कटमाधव)	३८

२८.	पुराणों में वैदिकछन्दोविमर्श	३९
२९.	वैदिक छन्दों के प्रतिपादक अन्य ग्रन्थ	४०
३०.	वैदिक छन्दों की विशिष्टता	४०
३१.	वैदिक छन्दों में वर्ण-गुरु-लघु-विचार	४०
३२.	वैदिक छन्दोव्यवस्था के मुख्य नियम	४१
३३.	ऋग्वेद के छन्दों की गणना	४२
३४.	वैदिक छन्दों का विभाजन	४२
३५.	छन्दों की स्तुतिविषयता	४३
३६.	ऋग्वेद के छन्द	४४
३७.	छन्दों की दैविकता	४५
३८.	यजुर्वेद के छन्द	४६
३९.	सामवेद तथा अथर्ववेद के छन्द	४७
४०.	सप्तकत्रय के वैदिक छन्द और उनके भेद	४९
४१.	गायत्री के भेद-उदाहरणस्थल	४९
४२.	उष्णिक् के भेद-उदाहरण स्थल	५०
४३.	अनुष्टुप् के भेद-उदाहरणस्थल	५१
४४.	बृहती के भेद-उदाहरणस्थल	५१
४५.	पङ्क्ति के भेद-उदाहरणस्थल	५२
४६.	त्रिष्टुप् के भेद-उदाहरणस्थल	५४
४७.	जगती के भेद-उदाहरणस्थल	५५
४८.	अतिजगती के भेद-उदाहरणस्थल	५५
४९.	शक्वरी के भेद-उदाहरणस्थल	५६
५०.	अतिशक्वरी के भेद-उदाहरणस्थल	५६
५१.	अष्टि के भेद-उदाहरणस्थल	५६
५२.	अत्यष्टि के भेद-उदाहरणस्थल	५६
५३.	धृति के भेद-उदाहरणस्थल	५६
५४.	अतिधृति के भेद-उदाहरणस्थल	५७
५५.	कृति के भेद-उदाहरणस्थल	५७
५६.	प्रकृति के भेद-उदाहरणस्थल	५७
५७.	आकृति के भेद-उदाहरणस्थल	५७
५८.	विकृति के भेद-उदाहरणस्थल	५७
५९.	संकृति के भेद-उदाहरणस्थल	५८
६०.	अभिकृति के भेद-उदाहरणस्थल	५८

६१.	उत्कृति के भेद-उदाहरणस्थल	५८
६२.	वैदिक छन्दोविधान का आदिकाव्य में विस्तार	५८
६३.	लौकिक छन्दों के विकास की परम्परा	६१
६४.	महाभाष्यकार के छन्दःप्रयोग	६२
६५.	पिङ्गल से पूर्ववर्ती परम्परा	६३
६६.	पौराणिक साहित्य में छन्दः प्रकरण	६४
६७.	अग्निपुराण	६४
६८.	अग्निपुराणोक्त लौकिक छन्द	६५
६९.	गरुडपुराण	६७
७०.	विष्णुधर्मोत्तरपुराण	६७
७१.	नारदीयपुराण	६७
	द्वितीय अध्याय – साहित्यिक विस्तार	**६९-२३२**
७२.	संस्कृत के लौकिक छन्दश्शास्त्रीय ग्रन्थ	६९
७३.	पिङ्गलछन्दःसूत्र (आचार्य पिङ्गलनाग)	६९
७४.	पिङ्गलाचार्य की प्राचीनता	७०
७५.	पिङ्गलाचार्य का देश-काल	७१
७६.	पिङ्गलछन्दःसूत्र का विषयक्रम	७२
७७.	पिङ्गलाचार्य के सम्बन्ध में अन्य ऐतिहासिक मत तथा जनश्रुतियाँ	७४
७८.	पिङ्गलछन्दःसूत्र की टीकासम्पत्ति	७५
७९.	पिङ्गलाचार्य के नवीनलक्षित वैदिक छन्द	७७
८०.	छन्दःसूत्र के लौकिक छन्द	७८
८१.	महर्षि सैतव के छन्द	७८
८२.	ऋषि माण्डव्य का दण्डक	७८
८३.	पिङ्गल के कतिपय विशेष-लक्षित लौकिक छन्द	७८
८४.	उष्णिग्वृत्ति-सप्ताक्षरपाद	७८
८५.	अनुष्टुब्वृत्ति अष्टाक्षरपाद	७८
८६.	बृहतीवृत्ति नवाक्षरपाद	७९
८७.	पङ्क्तिवृत्ति दशाक्षरपाद	७९
८८.	त्रिष्टुब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद	७९
८९.	जगतीवृत्ति द्वादशाक्षरपाद	७९
९०.	अतिजगतीवृत्ति त्रयोदशाक्षरपाद	७९
९१.	शक्वरीवृत्ति चतुर्दशाक्षरपाद	८०

९२.	अतिशक्वरीवृत्ति पञ्चदशाक्षरपाद	८०
९३.	अष्टिवृत्ति षोडशाक्षरपाद	८०
९४.	अत्यष्टिवृत्ति सप्तदशाक्षरपाद	८०
९५.	धृतिवृत्ति अष्टादशाक्षरपाद	८०
९६.	अतिधृतिवृत्ति एकोनविंशत्यक्षरपाद	८०
९७.	कृतिवृत्ति विंशत्यक्षरपाद	८०
९८.	प्रकृतिवृत्ति एकविंशत्यक्षरपाद	८०
९९.	विकृतिवृत्ति त्रयोविंशत्यक्षरपाद	८०
१००.	संकृतिवृत्ति चतुर्शित्यक्षरपाद	८०
१०१	उत्कृतिवृत्ति षडविंशत्यक्षरपाद	८०
१०२.	दण्डक	८०
१०३.	अर्धसमवृत्त	८१
१०४.	विषमवृत्त	८१
१०५.	द्विपदमात्रावृत्त	८२
१०६.	चतुष्पदमात्रावृत्त	८२
१०७.	नाट्यशास्त्र-छन्दोविचिति (आचार्य भरतमुनि)	८४
१०८.	भरतमुनि की प्रतिपादन-शैली	८४
१०९.	भरत के नवीनलक्षित छन्द	८६
११०.	उक्ता वृत्ति एकाक्षरपाद	८६
१११.	अत्युक्ता वृत्ति द्व्यक्षरपाद	८६
११२.	मध्या वृत्ति त्र्यक्षरपाद	८६
११३.	प्रतिष्ठा वृत्ति चतुरक्षपाद	८६
११४.	सुप्रतिष्ठा वृत्ति पञ्चाक्षरपाद	८६
११५.	गायत्री वृत्ति षडक्षरपाद	८६
११६.	उष्णिग् वृत्ति सप्ताक्षरपाद	८७
११७.	अनुष्टुब् वृत्ति अष्टाक्षरपाद	८७
११८.	बृहती वृत्ति नवाक्षरपाद	८८
११९.	पङ्क्ति वृत्ति दशाक्षरपाद	८८
१२०.	त्रिष्टब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद	८८
१२१.	जगती वृत्ति द्वादशाक्षरपाद	८९
१२२.	अतिजगती वृत्ति त्रयोदशाक्षरपाद	८९
१२३.	शक्वरी वृत्ति चतुर्दशाक्षरपाद	९०
१२४.	अतिशक्वरी वृत्ति पञ्चदशाक्षरपाद	९०

१२५.	अष्टि वृत्ति षोडशाक्षरपाद	९०
१२६.	अत्यष्टि वृत्ति सप्तदशाक्षरपाद	९०
१२७.	धृति वृत्ति अष्टादशाक्षरपाद	९०
१२८.	अतिधृति वृत्ति एकोविंशत्यक्षरपाद	९०
१२९.	कृति वृत्ति विंशत्यक्षरपाद	९०
१३०.	प्रकृति वृत्ति एकविंशत्यक्षरपाद	९१
१३१.	आकृति वृत्ति द्वाविंशत्यक्षरपाद	९१
१३२.	विकृति वृत्ति त्रयोविंशत्यक्षरपाद	९१
१३३.	संकृति वृत्ति चतुर्विंशत्यक्षरपाद	९१
१३४.	अभिकृति वृत्ति पञ्चविंशत्यक्षरपाद	९१
१३५.	उत्कृति वृत्ति षड्विंशत्यक्षरपाद	९१
१३६.	अर्धसमवृत्त	९१
१३७.	विषमवृत्त	९१
१३८.	द्विपदमात्रावृत्त	९२
१३९.	चतुष्पदमात्रावृत्त	९२
१४०.	बृहत्संहिता-छन्दोविवेचन (वराहमिहिर)	९२
१४१.	छन्दोविचिति (जनाश्रय)	९३
१४२.	जनाश्रय के नवीनलक्षित छन्द	९५
१४३.	जनाश्रय द्वारा संस्कृतरूपित छन्द	९७
१४४.	जयदेवच्छन्दः (जयदेव)	९७
१४५.	जयदेवच्छन्दः का विषयविस्तार	९९
१४६.	जयदेव के नवीनलक्षित छन्द	९९
१४७.	श्रुतबोध (कालिदास)	१००
१४८.	श्रुतबोध की प्रतिपादनशैली	१०१
१४९.	श्रुतबोध का काल-पौर्वापर्य	१०२
१५०.	श्रुतबोध की टीकाएँ	१०३
१५१.	श्रुतबोध के नवीनलक्षित छन्द	१०३
१५२.	छन्दोऽनुशासन (जयकीर्ति)	१०४
१५३.	यति की मान्यतावादी परम्परा	१०५
१५४.	यति की अमान्यतावादी परम्परा	१०५
१५५.	जयकीर्ति की प्रतिपादनशैली	१०५
१५६.	जयकीर्ति का विषय-वैशिष्ट्य	१०६
१५७.	जयकीर्ति के नवीनलक्षित छन्द	१०७

१५८. मृतसञ्जीवनी व्याख्या (हलायुध भट्ट) ११३
१५९. पिङ्गलनागछन्दोविचिति-भाष्य (यादवप्रकाश) ११४
१६०. सुवृत्ततिलक (क्षेमेन्द्र) ११५
१६१. क्षेमेन्द्र की प्रतिपादन-शैली ११६
१६२. वृत्तरत्नाकर (केदारभट्ट) ११८
१६३. वृत्तरत्नाकर की प्रतिपादनशैली ११८
१६४. वृत्तरत्नाकर का रचनाकाल ११९
१६५. वृत्तरत्नाकर की टीका-सम्पत्ति १२०
१६६. वृत्तरत्नाकर का विषयविस्तार १२५
१६७. भट्टकेदार के नवीनलक्षित छन्द १२५
१६८. बृहत्संहितावृत्ति (उत्पलभट्ट) १२६
१६९. भट्ट उत्पल के नवीनलक्षित छन्द १२६
१७०. वृत्तजातिसमुच्चय-पञ्चमनियम (विरहाङ्क) १२७
१७१. छन्दःशेखर (राजशेखर) १२७
१७२. रत्नमञ्जूषा (अज्ञातकर्तृक) १२८
१७३. रत्नमञ्जूषा का कर्तृत्व एवं विषय १२९
१७४. रत्मञ्जूषाकार के नवीनलक्षित छन्द १३०
१७५. छन्दोऽनुशासन (हेमचन्द्र) १३१
१७६. हेमचन्द्र की प्रतिपादन-शैली १३२
१७७. हेमचन्द्र का काल-परिचय १३३
१७८. हेमचन्द्र का विषय-वैशिष्ट्य १३३
१७९. हेमचन्द्र का शास्त्रीय अवदान १३४
१८०. हेमचन्द्र द्वारा नवीन-लक्षित छन्द १३५
१८१. छन्दोरत्नावली (अमरचन्द्र सूरि) १३९
१८२. सुकविहृदयानन्दिनी टीका (सुल्हण) १४१
१८३. सुल्हण के नवीनलक्षित छन्द १४१
१८४. कविदर्पणवृत्ति १४२
१८५. अजितशान्तिस्तवटीका (जिनप्रभ) १४२
१८६. जिनप्रभ का नवीन-लक्षित छन्द १४२
१८७. कविकल्पलता (देवेश्वर) १४२
१८८. सङ्गीतराज-पाठ्यरत्नकोश (राणाकुम्भा) १४३
१८९. सङ्गीतराज का काल १४३
१९०. सङ्गीतराज की छन्दः-सामग्री १४४

१९१.	वाणीभूषण (दामोदर मिश्र)	१४६
१९२.	दामोदर मिश्र की प्रतिपादन-शैली	१४७
१९३.	वाणीभूषण में संस्कृतरूपित छन्द	१४७
१९४.	दामोदर मिश्र के नवीनलक्षित छन्द	१४८
१९५.	छन्दोगोविन्द (पुरुषोत्तम भट्ट)	१४८
१९६.	छन्दोमञ्जरी (गङ्गादास)	१४८
१९७.	छन्दोमञ्जरी का काल	१४९
१९८.	छन्दोमञ्जरी की विषयवस्तु	१५०
१९९.	गङ्गादास की प्रतिपादन-शैली	१५०
२००.	गङ्गादास के नवीन-लक्षित छन्द	१५१
२०१.	वृत्तवार्तिक (रामपाणिवाद)	१५१
२०२.	वृत्तवार्तिक की विषयवस्तु	१५२
२०३.	वृत्तरत्नावली (वेङ्कटेश)	१५३
२०४.	विबुधकृत वृत्तरत्नाकरटीका (रामचन्द्र विबुध)	१५५
२०५	रामचन्द्रविबुध के नवीन-लक्षित छन्द	१५५
२०६.	वृत्तमौक्तिक-प्रथम खण्ड (चन्द्रशेखर भट्ट)	१५५
२०७	वृत्तमौक्तिक का विषयविस्तार	१५७
२०८.	चन्द्रशेखरभट्ट के नवीनलक्षित छन्द	१५८
२०९	चन्द्रशेखरभट्ट के संस्कृतरूपित छन्द	१५९
२१०.	वृत्तमौक्तिक-द्वितीय खण्ड (लक्ष्मीनाथ भट्ट)	१६०
२११	लक्ष्मीनाथभट्ट के नवीनलक्षित छन्द	१६१
२१२.	लक्ष्मीनाथ भट्ट के संस्कृतरूपित छन्द	१६१
२१३.	वृत्तमौक्तिक की टीकायें	१६२
२१४.	वृत्तमौक्तिकवार्तिकदुष्करोद्धार (लक्ष्मीनाथभट्ट)	१६२
२१५.	वृत्तमौक्तिक-दुर्गमबोधटीका (मेघविजय गणि)	१६३
२१६.	मन्दारमरन्दचम्पू (श्रीकृष्ण कवि)	१६३
२१७.	सुगमा वृत्ति (समयसुन्दर)	१६४
२१८.	समयसुन्दर के नवीन-लक्षित छन्द	१६४
२१९.	प्रस्तारचिन्तामणि (चिन्तामणि दैवज्ञ)	१६५
२२०.	प्रस्तारचिन्तामणि की विषयवस्तु	१६६
२२१.	सेतुटीका (हरिभास्कर)	१६६
२२२.	हरिभास्कर के नवीन-लक्षित छन्द	१६७
२२३.	नारायणी टीका (नारायण भट्ट)	१६७

२२४.	नारायण भट्ट के नवीन-लक्षित छन्द	१६७
२२५.	नारायण भट्ट के संस्कृतरूपित छन्द	१६८
२२६.	छन्दोरत्नावली (रघुनाथ पण्डित)	१६८
२२७.	छन्द:कौस्तुभ (भास्करराय)	१६९
२२८.	भाष्यराज का वैशिष्ट्य	१७१
२२९.	वृत्तमुक्तावली (श्रीकृष्णभट्ट)	१७२
२३०.	श्रीकृष्णभट्ट के नवीन-लक्षित छन्द	१७३
२३१.	श्रीकृष्णभट्ट के संस्कृतरूपित छन्द	१७४
२३२.	भावार्थदीपिका टीका (जनार्दन)	१७४
२३३.	जनार्दन के नवीन-लक्षित छन्द	१७४
२३४.	छन्द:कौस्तुभ (राधादामोदर)	१७५
२३५.	राधादामोदर के नवीन-लक्षित छन्द	१७६
२३६.	छन्द:पीयूष (जगन्नाथ मिश्र)	१७६
२३७.	छन्द:प्रस्तारसरणि (कृष्णदेव त्रिपाठी)	१७६
२३८.	छन्द:सुधाकर (कृष्णराम)	१७६
२३९.	छन्द:सुधाचिल्लहरी (जानी महापात्र)	१७६
२४०.	वृत्तप्रत्ययकौमुदी (रामचरण शर्मसूरि)	१७६
२४१.	छन्दोङ्कुर (गङ्गासहाय)	१७७
२४२.	छन्दोगणितम् (कृष्णराम भट्ट)	१७८
२४३.	वाग्वल्लभ (दु:खभञ्जन कवि)	१७८
२४४.	वाग्वल्लभ का रचनाकाल-विचार	१७९
२४५.	वाग्वल्लभ की प्रतिपादनशैली	१७९
२४६.	दुखभञ्जन कवीन्द्र के नवीन-लक्षित छन्द	१८०
२४७.	प्रस्तारादिरत्नाकर (अमरदास वर्मा)	१८९
२४८.	छन्दश्चिह्नप्रकाशनम् (आत्मस्वरूप उदासीन)	१८९
२४९.	वृत्तविवेचनम् (दुर्गासहाय)	१९०
२५०.	वृत्तालङ्कार (छविलाल सूरि)	१९०
२५१.	छन्द:सारहारावली (आनन्दनाथ)	१९१
२५२.	वृत्तमणिकोश (श्रीनिवास)	१९१
२५३.	छन्द:सारसंग्रह (चन्द्रमोहन घोष)	१९२
२५४.	छन्दोबोधिका (भुवनमोहन विद्यारत्न)	१९२
२५५.	पिङ्गलसूत्रपरिशिष्ट-व्याख्या (जीवानन्द विद्यासागर)	१९२
२५६.	वरवर्णिनीटीका (म०म०देवीप्रसाद सुकुल)	१९३

२५७.	देवीप्रसाद के नवीन-लक्षित दण्डक	१९४
२५८.	छन्दोमन्दाकिनी (गुरुप्रसाद शास्त्री)	१९४
२५९.	छन्दःकौमुदी (नारायणशास्त्री खिस्ते)	१९४
२६०.	काव्यकला (मथुराप्रसाद दीक्षित)	१९५
२६१.	वृत्तमञ्जरी (वसन्त शेवडे)	१९६
२६२.	वृत्तमञ्जरी की विषयवस्तु	१९६
२६३.	छन्दःसन्दोह (दीनेशचन्द्र दत्त)	१९७
२६४.	छन्दस्कलावती (रामकिशोर मिश्र)	१९८
२६५.	छन्दस्कलावती के नवीन-लक्षित छन्द	१९८
२६६.	छात्रोपयोगी अन्य छन्दःपुस्तिकायें	२०५
२६७.	संस्कृत-छन्दश्शास्त्र से उद्धृत अन्य छन्दश्शास्त्रीय ग्रन्थ	२०५
२६८.	प्राकृत एवम् अपभ्रंश के छन्दोग्रन्थ	२०६
२६९.	वृत्तजातिसमुच्चय (विरहाङ्क)	२०६
२७०.	वृत्तजातिसमुच्चय की विषयवस्तु	२०७
२७१.	विरहाङ्क के नवीन-लक्षित छन्द	२०७
२७२.	स्वयम्भूच्छन्दः (स्वयम्भू)	२०८
२७३.	स्वयम्भू का कालविचार	२०९
२७४.	स्वयम्भूच्छन्दः की विषयवस्तु	२१०
२७५.	स्वयम्भू के नवीन-लक्षित छन्द	२१०
२७६.	गाथालक्षण (नन्दिताढ्य)	२१२
२७७.	गाथालक्षण का रचनाकाल	२१३
२७८.	नन्दिताढ्य की प्रतिपादनशैली	२१४
२७९.	नन्दिताढ्य के नवीन-लक्षित छन्द	२१४
२८०.	छन्दःशेखर (राजशेखर)	२१५
२८१.	छन्दोऽनुशासन (हेमचन्द्र)	२१६
२८२.	कविदर्पण	२१७
२८३.	प्राकृतपैङ्गल	२१८
२८४.	प्राकृतपैङ्गल का कालविचार	२१९
२८५.	प्राकृतपैङ्गल का रचयिता	२१९
२८६.	प्राकृतपैङ्गल की विषयवस्तु	२२१
२८७.	प्राकृतपैङ्गलकार के नवीन-लक्षित छन्द	२२१
२८८.	प्राकृतपैङ्गल की टीकायें	२२४
२८९.	छन्दःकोश (रत्नशेखर)	२२५

२९०.	प्राकृत-छन्दों के अनुपलब्ध लक्षणग्रन्थ	२२६
२९१.	पालि-भाषा के छन्दोग्रन्थ	२२६
२९२.	अन्य छन्दोग्रन्थ	२२६
२९३.	नेपाल में उपलब्ध कतिपय छन्दोग्रन्थ	२२८
२९४.	संस्कृतवाङ्मय-कोष में सूचित छन्दोग्रन्थ	२३०
२९५.	न्यू कैटेलागस् कैटेलागोरम् में सूचित छन्दोग्रन्थ	२३१
	तृतीय अध्याय – शास्त्रीय प्राकार	**२३३-३१५**
२९६.	छन्दःपदार्थ	२३३
२९७.	छन्द का श्रव्यैशिष्ट्य	२३५
२९८.	छन्दोलय का दार्शनिक आधार	२३६
२९९.	छन्दों की साङ्गीतिक लयात्मकता	२३६
३००.	छन्दोलय की समसामयिक अवधारणा	२३८
३०१.	पद्यच्छन्दों का वर्गीकरण	२३८
३०२.	वर्णच्छन्द एवं मात्राछन्द	२४०
३०३.	गद्य, पद्य तथा मिश्र-छन्दोभेद	२४१
३०४.	पादात्मक पद्य	२४३
३०५.	सम, अर्धसम तथा विषम-छन्दोभेद	२४३
३०६.	गाथा-छन्द	२४५
३०७.	उपजातिविचार	२४७
३१८.	छन्दों की अक्षरवृत्ति अथवा जाति	२४९
३०९.	गणनिरूपण	२५१
३१०.	वर्णगण	२५१
३११.	वर्णगणना में पिङ्गलाचार्य एवं भरतमुनि की शैली	२५२
३१२.	अष्टादश गण	२५३
३१३.	मात्रागणों का मूल	२५३
३१४.	मात्रागण	२५४
३१५.	गणों के पारिभाषिक शब्दसङ्केत	२५५
३१६.	गणभेद-विवेचन	२५५
३१७.	लघु-गुरु-वर्णविचार	२५९
३१८.	यतिनियम	२६१
३१९.	प्रत्ययविवेचन	२६५
३२०.	प्रस्तार	२६६
३२१.	नष्ट	२६७

३२२.	उद्दिष्ट	२६७
३२३.	लगक्रिया	२६७
३२४.	संख्यान एवम् अध्वयोग	२६७
३२५.	अन्य प्रत्यय	२६७
३२६.	छन्दोविस्तार में प्रत्ययों का योगदान	२६८
३२७.	छन्द:परिचय	२६९
३२८.	वर्णवृत्त (समचतुष्पाद आदि)	२७०
३२९.	सम दण्डक (वर्णवृत्त)	२८०
३३०.	असीमित दण्डक (वर्णवृत्त)	२८१
३३१.	अर्धसमचतुष्पदी	२८१
३३२.	विषम वर्णवृत्त	२८१
३३३.	मात्रावृत्त	२८२
३३४.	विरुदावली छन्द	२८३
३३५.	गद्यच्छन्द	२८५
३३६.	दण्डकच्छन्द	२८६
३३७.	ग्रन्थों में लक्षित छन्दों की प्रभेदतालिका	२८७
३३८.	समपाद छन्दों के वर्णित प्रभेद	२८७
३३९.	दण्डक छन्दोभेद	२८८
३४०.	छन्दोवृद्धि की प्रक्रिया	२८८
३४१.	संस्कृतकाव्यों में प्रयुक्त छन्द	२८९
३४२.	प्रसिद्ध काव्यों में मुख्यत: व्यवहृत छन्द	२९०
३४३.	अलङ्कारशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के छन्द	२९२
३४४.	छन्दों की पारस्परिक निर्मिति	२९२
३४५.	काव्यरस तथा वर्ण्य-प्रसङ्गानुरूप छन्दों का प्रयोग	२९५
३४६.	अर्थज्ञान की दृष्टि से छन्दश्शास्त्र का महत्त्व	३०३
३४७.	छन्दश्शास्त्र के विषय-विस्तर की परम्परा	३०५
३४८.	छन्दश्शास्त्रीय विवेचन के उत्स	३०६
३४९	छन्दोग्रन्थों का विषयगत स्वरूप	३०८
३५०.	छन्दोग्रन्थों का रचनागत स्वरूप	३०८
३५१.	छन्द:शास्त्र की आचार्य-परम्परा का समीक्षण	३०९
३५२.	पिङ्गलसूत्रपाठ तथा व्याख्या की हलायुध से पूर्ववर्ती परम्परा	३११
३५३.	पिङ्गलाचार्य से परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों का योगदान	३१२

३५४. परवर्ती ग्रन्थों में वैदिक छन्दोविवेचन ३१३
३५५. परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों की प्रतिपादन-शैली ३१४
३५६. संस्थापन ३१५

परिशेषभाग

प्रथम परिशेष — प्रमुख वैदिक छन्दों की वर्णानुक्रमशः सूचिका ३१९-३२१
द्वितीय परिशेष — वैदिक छन्दों की अक्षरसंख्यानुसार नाम-तालिका ३२२-३२८
तृतीय परिशेष — प्रमुख वैदिक छन्दों का पादाक्षरानुसार स्वरूप तथा उदाहरणस्थल-सूचिका। ३२९-३३२
चतुर्थ परिशेष — यजुश्छन्दों की अक्षरगणनानुसार उदाहरण सूचिका ३३३-३३४
पञ्चम परिशेष — प्रमुख वर्ण-वृत्तों के स्वरूप, नामभेद एवं लक्षणग्रन्थ ३३५-४३४
षष्ठ परिशेष — प्रमुख मात्राछन्दों के स्वरूप, नामभेद एवं लक्षणग्रन्थ ४३५-४४४
सप्तम परिशेष — गाथादि छन्दोभेदों के लक्षण एवं नाम-भेद ४४५-४५२
अष्टम परिशेष — मुख्य-लक्षणग्रन्थोक्त छन्दों की वर्णानुक्रमशः सूचिका ४५३-४९१

परिशिष्ट

१. उद्धृत कृति-ग्रन्थकार-नामादि अनुक्रमणी ४९३-५०५
२. सहायकग्रन्थतालिका ५०७-५१३

छन्दश्शास्त्र का उद्भव एवं विस्तार

प्रथम अध्याय
वैदिक आधार

गणपतिमीशं करुणावरुणालयमन्तरायपूगहरम् ।
श्रीश्यामं भगवन्तं भवभयखेदच्छिदं वन्दे ।।१।।
यस्माच्चातुर्वर्ण्यं चत्वारश्चाश्रमास्त्रयो लोकाः ।
सिद्ध्यन्ति यज्ञपुंस्वाः कालत्रितयं नमोऽस्तु वेदाय ।।२।।
सहस्रवदनोद्भूतच्छन्दोविज्ञानविस्तरम् ।
सारतः सङ्गृहीतुं तां छन्दस्सारामुपाश्रये ।।३।।

छन्दश्शास्त्र भारतीय वाङ्मय की अद्वितीय विशेषताओं में अन्यतम है। विश्व के किसी भी साहित्य में छन्दों का इतना व्यापक और सूक्ष्म अनुशीलन नहीं हुआ है, जितना संस्कृत-साहित्य में विद्यमान है। विश्व की अन्य भाषाओं में कतिपय गिने-चुने छन्द ही प्रचलित हैं तथा उनका विस्तार भी सीमित है। परन्तु संस्कृत- साहित्य का छन्दोवैभव इतना विस्तृत है कि इसे स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में मान्यता दी गयी है।

भारतीय मनीषियों ने छन्दःशास्त्र की अपरिमेय विस्तारशक्ति को दृष्टिगोचर करते हुये इसकी आधिदैविक स्वरूप में भी उपासना की है[1]।

छन्दश्शास्त्र के आद्य उल्लेख

संस्कृत-साहित्य का आद्य स्रोत तथा मूलाधार वेद-शब्दराशि है तथा इस अपौरुषेय शब्दराशि को 'छन्दः' शब्द से व्यवहृत किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण संस्कृत-वाङ्मय का आध्यात्मिक मूल आधार छन्दों में ही सुरक्षित है। परवर्ती संस्कृत-कवियों ने अपने कालजयी महाकाव्यों तथा रचनाओं को विविध छन्दों से समृद्ध करते हुये छन्दोविचिति की आधिभौतिक अपरिहार्यता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। इसप्रकार भारतीय मनीषा ने छन्दों का आधिदैविक, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक महत्त्व अङ्गीकार किया है। किं बहुना, आगम-

---

१. सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राह्मण में प्रजापति को **छन्दःपुरुष** कहा गया—प्रजापतेर्वा एतान्यङ्गानि यच्छन्दांसि (२/१८)। पापप्रणाशक छन्दःपुरुष का न्यास ब्रह्मयज्ञ के आरम्भ में अनुष्ठाता अपने शरीर में करता है। (द्र० कात्यायनीय छन्दःसूत्र ३/६४-८४)। पौराणिकों ने विष्णु को ही छन्दःपुरुष माना है—छन्दो विष्णुस्तथैवाग्निरधिदेवता। **छन्दोदे ग** का स्वरूप इस श्लोक में वर्णित है—

जपाकुसुमसङ्काशं छन्दो ज्ञेयं विपश्चिता।
चकोरास्यं जपाक्षं तु शक्तिं बिभ्रच्छिखान्विताम्।
लोहकुण्डलकोपेतं प्रवालकृतकुण्डलम्॥

सम्प्रदाय में तो प्रत्येक वर्ण का छन्द निरूपित किया जाता है। इस रीति से पूरा वर्णसमाम्नाय छन्दों में आबद्ध है। सुप्रथित वैदिक **पुरुषसूक्त** में सृष्टि के प्राथमिक तत्त्वों के अन्तर्गत छन्दों के उद्भव का प्रतिपादन किया गया है[१]। मुण्डकोपनिषद् में अपरा विद्या के रूप में छन्दश्शास्त्र को मान्यता प्रदान की गयी है। छन्दों के दार्शनिक स्वरूप का अनुशीलन भी **छन्दःसमीक्षा** आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है[२]।

संस्कृतसाहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान की दृष्टि से छन्दःशास्त्र का अनेक शास्त्रों के प्रति उपकार है। छन्दोज्ञान के अभाव में वैदिक कर्मानुष्ठान सफल नहीं होता। अतः कल्पाङ्ग एवं धर्मशास्त्र के लिये छन्दःशास्त्र का विशेष महत्त्व है। संस्कृत छन्दों के सुनियत वर्णविन्यास के कारण अध्येता को उच्चारणसौष्ठव तथा ध्वनि की शुद्धि सहज प्राप्त हो जाते हैं। इस दृष्टि से वेदाङ्ग शिक्षा, व्याकरण तथा उपाङ्ग प्रतिशाख्यों (छन्दोभाषा) का उपकारक छन्दश्शास्त्र है। गान्धर्ववेद एवं तदनुगत भारतीय सङ्गीतशास्त्र के लिये तो छन्दश्शास्त्र का सहयोग सर्वातिशायी है। मात्रा, यति एवं पादनियमों के फलस्वरूप छन्दों के द्वारा श्रुतिसुखद आनन्दानुभूति तथा नादब्रह्म के साक्षात्कार का माध्यम छन्दश्शास्त्र ही है।

अध्ययन एवम् अनुसन्धान में उपयोग की दृष्टि से छन्दों के व्यावहारिक स्वरूप का अनुशीलन ही अपेक्षित होता है। अतः ऐतिहासिक क्रम के अनुसार वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध छन्दों के स्वरूप से प्रारम्भ करते हुए सम्प्रति संस्कृत-साहित्य के अन्तर्गत छन्दोनिरूपण करने वाले ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

वैदिक ग्रन्थों में छन्दश्शास्त्र का महत्त्व

'छन्दः पादौ तु वेदस्य' (पा० शि० ४१-४२) इस वचन के अनुसार छन्दस्तत्त्व वेदपुरुष का गतिकारक पादाङ्ग है। छन्दोरूप मानदण्ड को लेकर ही वैदिक दर्शन की परिधि निर्धारित हो सकती है। छन्दस्तत्त्व के ज्ञान के बिना वैदिक साहित्य या दर्शन का वास्तविक ज्ञान करना असम्भव है। ऋग्वेद में उपदिष्ट है—

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः।

(ऋग्वेद सं० १०/१४४/९)

समस्त मूल छन्दों का तत्तत् देवता-सहित निर्देश भी अपौरुषेय वाणी के द्वारा समुपदिष्ट है—

---

१. छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् (ऋ० १०/९०/९)।

२. द्र० पं० मधुसूदन ओझा द्वारा प्रणीत 'छन्दःसमीक्षा' (१९९१ में जयपुर से प्रकाशित) तथा 'छन्दोनिरुक्ति' भूमिका (निर्णयसागर १९३८ संस्करण, पिङ्गलछन्दःसूत्र)।

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ।।
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान् देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ।।
(ऋग्वेद सं० १०/१३०/४-५)

ऋग्वेद में कहा गया है कि छन्दस्तत्त्व के यथार्थ ज्ञान से अमृतत्व की प्राप्ति होती है—

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ।।
(ऋग्वेद सं० १/१६४/२३)

वाजसनेय-संहिता में भी कहा गया है कि छन्दों के सहयोग से ही सृष्टि-यज्ञ का अनुष्ठापन हो सकता है—

सहच्छन्दस आवृतः (मा० सं० ३४/४९)

छन्दों के निरूपण की यह परम्परा वेद से प्रारम्भ कर अभीतक अविच्छिन्न रूप से आ रही है। शास्त्रान्तरों में प्रतिपादित छन्दों का जो लौकिक स्वरूप है, उन सभी छन्दों का मूल वैदिक छन्द ही हैं[१] ।

वेदार्थ के सहायक षडङ्गों में छन्दःशास्त्र का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वेदाध्ययन के लिए यह केवल उपकारक साधन ही नहीं माना जाता है, अपितु स्वतन्त्र विद्यास्थान भी है[२] । छन्दों का ज्ञान इतना प्राचीन है कि गायत्री से जगती-पर्यन्त सातों छन्दों का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद[३] में ही मिलता है। इनमें चार-चार अक्षरों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, इसका स्पष्ट प्रतिपादन अथर्ववेद[४] में है। छन्दों के साथ स्तोमों के सम्बन्ध की चर्चा भी अथर्ववेद में है[५] । अक्षर-गणना के आधार पर छन्दों का निर्धारण ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी प्राप्त है[६] । प्रगाथ छन्दों का यज्ञ में प्रयोग भी बहुत प्राचीन है[७]। अग्निचयन में वेदि की असंख्य इष्टकायें छन्दों के रूप में वर्णित की

---

१. द्र० वैदिकच्छन्दःपर्यालोचनम् पृ० २
२. पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चर्तुदश ॥ (या० स्मृ० १/३)
३. ऋग्० १०/१३०/४-५
४. अथ० ८/९/१९-सप्तच्छन्दांसि चतुरुत्तराणि।
५. अथ० ८/९/२०
६. ऐ० ब्रा० १/५
७. ऐ० ब्रा० ३/१६/४/१०; श० ब्रा० १५/२/४/१; जै० ब्रा० १७४;
ता० ब्रा० ४/३/७; गो० ब्रा० २/३/२१ आदि।

गयी हैं, जिनमें से मा, प्रमा, प्रतिमा तथा अस्त्रीवय सहित १२ छन्दों का उल्लेख (मा० सं० १४/१८) है। (द्र० तै० आर० ४/५-मा, प्रमा, प्रतिमा, समा, विमा, उन्मा)।

छन्दों का मुख्य कार्य मन्त्रों का परिमाण बतलाना है। ऋग्वेद में कहा गया है—**गायत्रेण प्रतिमिमीते अर्कम्**[1], गायत्र छन्द से प्रत्येक स्तोम को मापा जाता है। ऋग्वेद में सात छन्दों के अक्षरात्मक रूप का भी संकेत है[2]। छन्द यज्ञ में देवताओं के साझीदार हैं[3]। छन्दों को—देविका[4], देव्य:[5] तथा देवताओं के 'देवता'[6] कहा गया है। छन्दों के द्वारा ही देवताओं ने स्वर्गलोक को प्राप्त किया[7]। इनका प्रधान कार्य सभी दिशाओं में रक्षा करना है[8]। ये सभी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं[9] तथा शक्ति प्रदान करते हैं[10]। ये असुरों के विरुद्ध देवताओं का पक्ष लेकर उन्हें विजय दिलाते हैं[11]। इन समस्त तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के कारण छन्दों का यज्ञ में बहुत महत्त्व है।

गायत्री ब्राह्मण है और त्रिष्टुभ् क्षत्रिय है (तै० सं० ५/१/४/५)। गायत्री प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुई है, त्रिष्टुभ् बाँहों से और अनुष्टुभ् चरणों से (तै० सं० ७/१/१/४-६)। छन्दों के कार्यों के अन्तर्गत मुख्य ये है— रक्षा (वा० सं० १०/१०-१४), संग्रह (तै० सं० १/७/५/४ एवं १/५/९/७) इच्छापूर्ति (तै० सं० ३/४/९/१-५), शक्ति-प्रदान (तै० सं० ४/४/१२/३ एवं ३/३/७/१-२, श० ब्रा. ८/५/२/१), उन्नयन (श० ब्रा० ५/९/३/१० एवं ६/५/४/७) देवताओं की विजय कराना (श० ब्रा० १/४/१/३४ एवं १/६/४/२), सृष्टि की उत्पत्ति में सहायता देना (श० ब्रा० ६/५/२/४ तु० वा० सं० ११/५८) तथा देवताओं तक आहुति पहुंचाना (श० ब्रा० ४/४/३/१ एवं ४/४/१०१/३)। ऐतरेय ब्राह्मण में छन्दों को विविध देवशक्तियों से सम्पन्न जानकर ही सम्भवत: (१/३/५, पृ० १०६) इन्हें **"साध्या देवा:"** कहा गया है।

---

१. ऋ० १/१६४/२४
२. ऋ० १/१६४/२४
३. स एष यज्ञस्तायमानो देवेभ्यस्तायते...........छन्दोभ्य: (श० ब्रा० १/३/२/६)
४. तै० सं० ३/४/९/१
५. श० ब्रा० ९/५/१/३९
६. श० ब्रा० ३/४/१/१५
७. श० ब्रा० ३/९/३/१०
८. वा० सं० १०/१०-१४
९. तै० सं० ३/४/९/१५
१०. तै० सं० ४/४/१२/३
११. श० ब्रा० १/४/१/३४

जयतीर्थ ने मध्व-रचित ऋग्भाष्य की व्याख्या में स्कन्दस्वामी के मत का खण्डन करते हुये वेदार्थ में छन्दोज्ञान का उपयोग माना है[१]। मीमांसा-शास्त्र के अनुसार ऋक् का लक्षण है कि जिसमें अर्थ के अनुरोध से पाद की व्यवस्था हो[२]। इसी तथ्य को वेङ्कटमाधव और माधवभट्ट ने भी स्वीकार किया है[३]। इसमें सन्देह नहीं कि वेदार्थबोध में पादव्यवस्था सहायक होती है[४]। इसलिये छन्द समेत षडंगों के ज्ञान की आवश्यकता पर इतना अधिक बल दिया गया है कि जो इनके ज्ञान से रहित ब्राह्मण से यज्ञ कराता है या अध्यापन कराता है, वह घोर पाप का भागी होता है[५]।

छन्दश्शब्द की निरुक्ति से भी इस शास्त्र का महत्त्व ज्ञात होता है। छन्दःशास्त्र की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की जाती है। निरुक्तकार का निर्वचन है—**छन्दांसि छादनात्**[६]। यहाँ छन्द √छदि-संवरणे धातु से निष्पन्न है[७]। इस निर्वचन का मूल श्रुतियों में है[८]। **क्षीरस्वामी** ने अमरकोष (३/२/२०) की टीका में—"छन्दयति आह्लादयते इति छन्दः" यह व्युत्पत्ति की है।

छन्दश्शास्त्र के अनेक नाम परम्परा में प्रसिद्ध हैं[९], यथा—छन्दोविचिति, छन्दोमान, छन्दसां लक्षण, छन्दसां विचय, छन्दोऽनुशासन, छन्दोविवृति तथा वृत्त।

छन्दःशास्त्र की परम्परा

ब्राह्मणग्रन्थों के उपलब्ध छन्दःसम्बन्धी विचारों का क्रमबद्ध सर्वप्राचीन विवरण ऋक्प्रातिशाख्य के छन्दःप्रकरण में मिलता है, जो कात्यायनकृत ऋक्-सर्वानुक्रमणी से प्राचीन है। छन्दों का स्फुट उल्लेख शांखायन श्रौतसूत्र में भी है।

ऋक्प्रातिशाख्य के इस प्रकरण से प्रतीत होता है कि इसके पूर्व भी अनेक

---

१. पत्रा० १३ क०।

२. मीमांसासूत्र ३/१/३५—यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। द्र. पादैश्छन्दोभिश्च बद्धा ऋचः, अनियताक्षराण्यपादबद्धानि च यजूंषि, प्रगीता मन्त्राः सामानि (का० श्रौ० १/३/१ सरलावृत्ति)

३. वेमा० ८/१४ तथा ऋ० १/२५/१९ पर।

४. द्र० मीमांसक, वै०छ०मी० पृ० ६२, पृ० २४४-२४६।

५. यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो-दैवतब्राह्मणेन याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पतति प्र वा मीयते पापीयान् भवति (ऋ०सं०भा० आरम्भ में, आर्षेय ब्रा० १/१, दुर्गाचार्य निरुक्तभाष्य, उपोद्घात)।

६. नि० ७/१२।

७. भ्वादिगणीय छदिरूर्जने अथवा छदि संवरणे इकार की इत्संज्ञा वाले धातु से नुमागम द्वारा छन्दति विग्रह में 'छन्द' से उणादि सूत्र द्वारा असुन् प्रत्यय होनेपर सान्त छन्दस् शब्द निष्पन्न होता है।

८. छा० उप० १/४/२, तै०सं० ५/६/६/१। तु० चुरादिः छदि संवरणे, चुरादिणिचो विकल्पत्वम् पचाद्यच्। अदन्तोऽपि शब्दः।

९. छन्दश्शास्त्र के नामों में 'छन्दोभाषा' संज्ञा का उल्लेख भ्रमपूर्ण है। छन्दोभाषा प्रातिशाख्यशास्त्र की संज्ञा है। छन्दोभाषा वेद के उपाङ्गों में परिगणित है (द्र० चरणव्यूह—प्रतिपदमनुपदं छन्दोभाषा धर्मो मीमांसा न्यायस्तर्क इत्युपाङ्गानि) तथा छन्द वेदाङ्गों के अन्तर्गत पृथक् शास्त्र है। अतः 'वेदाङ्ग' (डा० कुन्दनलाल शर्मा पृ० ४७०) का उल्लेख चिन्त्य है।

आचार्यों ने छन्दों पर अपने विचार व्यक्त किये थे। पिङ्गल-छन्दःसूत्र में निम्नलिखित आचार्यों का नामतः उल्लेख किया गया है—तण्डी (३/३४), क्रौष्टुकि (३/२९), यास्क (३/३०), सैतव (५/८), काश्यप (७/९), रात (७/३३), माण्डव्य (७/३४)।

पिङ्गलछन्दःसूत्र के टीकाकार **यादवप्रकाश** ने अपनी टीका के अन्त में छन्दःशास्त्र के आचार्यों की परम्परा इस श्लोक में प्रस्तुत की है—

छन्दोज्ञानमिदं भवाद् भगवतो लेभे सुराणां गुरुः,
तस्माद् दुश्च्यवनस्ततोऽसुरगुरुर्माण्डव्यनामा ततः।
माण्डव्यादपि सैतवस्तत ऋषिर्यास्कस्ततः पिङ्गलः,
तस्येदं यशसा गुरोर्भुवि धृतं प्राप्यास्मदाद्यैः क्रमात्॥[१]

इसके अनुसार छन्दश्शास्त्र की प्रवचन-परम्परा इस प्रकार है—

भगवान् शिव, बृहस्पति, इन्द्र, शुक्र, माण्डव्य, सैतव, यास्क, पिङ्गल। किन्तु इसीमें एक और परम्परा भी लिखित है, जो इसप्रकार है—

शिव, गुह (कार्तिकेय), सनत्कुमार, बृहस्पति, इन्द्र, शेष (पतंजलि) और पिङ्गल।

निदानसूत्र में **पतञ्जलि** ने भी सात छान्दसाचार्यों के मत को इन साङ्केतिक पदों के द्वारा उद्धृत किया है—'पाञ्चालाः, एके, उदाहरन्ति, बह्वृचाः, आचक्षते, ब्रुवते, प्रतिजानते'। छन्दःसूत्र में आठ आचार्य निर्दिष्ट हैं। उपनिदानसूत्र में सात आचार्य सङ्केतित हैं, यथा—ज्योतिष्मतीति पाञ्चालाः, उरोबृहतीति यास्कः, महाबृहतीत्येके, द्विपदा विस्तार-पङ्क्तिश्च ताण्डिनः। उपनिदानसूत्र में परम्परा का उल्लेख भी है, यथा—

ब्राह्मणात्ताण्डिनश्चैव पिङ्गलाच्च महात्मनः।
निदानादुक्थशास्त्राच्च छन्दसां ज्ञानमुद्धृतम्॥[२]

छन्दोऽनुशासन में **जयकीर्ति** ने दश प्राचीन आचार्यों को यति के विषय में स्मरण किया है—

वाञ्छन्ति यतिं पिङ्गल-वसिष्ठ-कौण्डिन्य-कपिल-कम्बलमुनयः।
नेच्छन्ति भरत-कोहल-माण्डव्या-श्वतरसैतवाद्याः केचित्॥

हेमचन्द्र ने भी छन्दोऽनुशासन में अहीन्द्र, सैतव, भरत, काश्यप, पिङ्गल, जयदेव, स्वयम्भू इत्यादि सात पूर्वाचार्यों के नाम उल्लिखित किये हैं तथा 'केचित्, कश्चित्, अन्यः, अन्ये, अपरे, एके, पूर्वाचार्याः, मागधाः, आम्नायः, यदाह, यदाहुः,

---

१. द्र०वै०छ०मी० पृ० ५७-५९

छन्दःशास्त्रमिदं पुरा त्रिनयनाल्लेभे गुहोऽनादित-
स्तस्मात् प्राप सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात् सुराणां गुरुः।
तस्माद् देवपतिस्ततः फणिपतिस्तस्माच्च सत्पिङ्गल-
स्तच्छिष्यैर्बहुभिर्महात्मभिरथो मह्यां प्रतिष्ठापितम्॥

यह पद्य ग्रन्थकार की रचना नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि किसी हस्तलेख में भाष्य के अन्त में यह उद्धृत है।

२. उपनिदानसूत्र ८/१।

वृद्धाः, सङ्ग्रहश्लोकाः, इत्युपदेशोपनिषच्च—इत्यादि साङ्केतिक पदों के द्वारा चौदह आचार्यों के मत को प्रकाशित किया है।

छन्दोमञ्जरी में **गङ्गादास** ने यतिविरोध के विषय में **श्वेतमाण्डव्य** आदि के मत-प्रकाशन के अनन्तर अपने गुरु **पुरुषोत्तम भट्ट** का स्मरण किया है।[१] **राजवार्तिककार** ने तो एक अन्य छन्दःशास्त्रपरम्परासूचक उल्लेख किया है—

शिव-गिरिजा-नन्दि-फणीन्द्र-बृहस्पति-च्यवन-शुक्र-माण्डव्याः।
सैतव-पिङ्गल-गरुडप्रमुखा आद्या जयन्ति गुरुचरणाः।।

चन्द्रशेखरभट्ट ने **वृत्तमौक्तिक** में अपने ग्रन्थरचनाधार के विषय में चार आचार्यों का एवं यतिनिरूपण में आठ आचार्यों का नामोल्लेख किया है।[२] सुवृत्ततिलक में **व्यास** तथा वाग्वल्लभ में **अगस्त्य** भी छान्दस आचार्य निर्दिष्ट हैं। विरहाङ्क ने छन्दश्शास्त्र की प्रस्तारप्रक्रिया में **वासुकि** तथा **माण्डव्य** आचार्यों का विशेष उल्लेख किया है—

ये पिङ्गलेन भणिता बासुकिमाण्डव्यछन्दस्काराभ्याम्।
ततः स्तोकं वक्ष्यामि शातोदरि षट्प्रकारैः।।(वृ.जा.स. ६/१)

पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने छन्दोमर्मज्ञ भगवान् शिव से प्रारम्भ कर आचार्य गार्ग्य पर्यन्त चारों युगों के छन्दःप्रवक्ताओं को पौर्वापर्यक्रमपूर्वक इस प्रकार उल्लिखित किया है—

कृतयुग	**त्रेता**	**द्वापर**	**कलियुगारम्भ में**
१. शिव	१०. माण्डव्य	१५. यास्क	२५. उक्थशास्त्रकार
२. पार्वती	११. वसिष्ठ	१६. रात	२६. शौनक
३. नन्दी	१२. सैतव	१७. क्रौष्टुकि	२७. पिङ्गल
४. गुह	१३. भरत	१८. कौण्डिन्य	२८. कात्यायन
५. सनत्कुमार	१४. कोहल	१९. ताण्डी	२९. गरुड
६. बृहस्पति		२०. अश्वतर	३०. गार्ग्य
७. इन्द्र		२१. कम्बल	
८. शुक्र		२२. काश्यप	
९. कपिल		२३. पाञ्चाल (बाभ्रव्य)	
		२४. पतञ्जलि	

नन्दी शिवभक्त आचार्य थे। ये पार्वती के शिष्य[३] एवं कामसूत्र के आचार्य हुए[४]। आचार्य शौनक ने ऋक्-प्रातिशाख्य में छान्दसाचार्य के रूप में **यास्क** का उल्लेख किया है[५]। पिङ्गल के पहले छन्दःशास्त्र[६]-विषयक स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता है, किन्तु इनसे पहले जिन चार आचार्यों के द्वारा अपने ग्रन्थों में छन्दों पर विचार

१. छन्दोमञ्जरी १/१४।
२. 'रविकर-पशुपति-पिङ्गल-शम्भुग्रन्थान् विलोक्य निर्बन्धान्' (वृत्तमौक्तिक, पृष्ठ-२७३)
३. वृत्तमौक्तिकभूमिका, पृष्ठ-९।
४. वात्स्यायनकृत कामसूत्र १/१/८।
५. "न दाशतय्येकपदा काचिदस्तीति वै यास्कः" (ऋ० प्रा० १७/२५)
६. द्र. वा शरि (पा. ८/३/३६)

किया गया, वे आचार्य हैं—भरत, पतञ्जलि, शौनक एवं कात्यायन। पिङ्गल के द्वारा छन्दःसूत्र में जिन आठ आचार्यों के उल्लेख किये गये हैं, उनके छन्दोग्रन्थ तो नहीं मिलते हैं; किन्तु छन्दोविषयक मत हैं, जिसके आधार पर उनके द्वारा किये गये छन्दोनामकरण के सङ्केत मिलते हैं। यथा—

१. माण्डव्यकृत छन्दोनाम—चण्डवृष्टिप्रपात (दण्डक), (छन्दःसूत्र—७/३६)
२. सैतवकृत छन्दोनाम—विपुलाऽनुष्टुप् और उद्धर्षिणी (छन्दःसूत्र—५/१८, ७/१)
३. यास्ककृत छन्दोनाम—उरोबृहती (न्यंकुसारिणी), (छन्दःसूत्र—३/३०)
४. रातकृत छन्दोनाम—चण्डवृष्टिप्रपात (दण्डक), (छन्दःसूत्र—७/३६)
५. क्रौष्टुकिकृतछन्दोनाम—स्कन्धोग्रीवी (न्यंकुसारिणी), (छन्दःसूत्र—३/२९)
६. ताण्डिकृत छन्दोनाम—सतोबृहती (महाबृहती), (छन्दःसूत्र—३/३६)
७. काश्यपकृत छन्दोनाम—सिंहोन्नता (वसन्ततिलका), (छन्दःसूत्र—७/९)
८. शाकल्यकृत छन्दोनाम—मधुमाधवी (वसन्ततिलका), (छन्दःसूत्र—७/११)

यास्ककृत उरोबृहती छन्द का स्कन्धोग्रीवी नामान्तर है। इसी प्रकार मधुमाधवी का सिंहोन्नता नामान्तरमात्र है। उरोबृहती छन्द का न्यंकुसारिणी, सतोबृहती का महाबृहती, सिंहोन्नता का वसन्ततिलका—ये पिङ्गलोक्त नामान्तर हैं।

वैदिक छन्दःशास्त्र के विषय में मुख्यतः उपलब्ध सामग्री इन ग्रन्थों में सुरक्षित है—ऋक्प्रातिशाख्य (१६ से १८ पटल), ऋक्-सर्वानुक्रमणी, निदानसूत्र यजुस्सर्वानुक्रमसूत्र, पिङ्गलच्छन्दःसूत्र, उपनिदानसूत्र, वेंकटमाधवकृत ऋगर्थदीपिका (छन्दोभाग), जयदेवकृत जयदेवच्छन्दः आदि।

छन्दः-शब्द का अर्थ

छन्दःस्वरूप के परिशीलन के सन्दर्भ में प्राचीन काल से दो सिद्धान्त प्रचलित हैं, प्रथम—नैरुक्तसिद्धान्त और द्वितीय—वैयाकरणसिद्धान्त। निरुक्तकार छन्दः शब्द की व्युत्पत्ति 'छाद्यते छन्द्यते वा अनेन' करते हैं। वैयाकरणों ने 'चन्द्यते अनेन' इस प्रकार व्युत्पत्ति की है। इन दोनों सिद्धान्तों में शब्दगत प्रकृतिवैशिष्ट्य ही विचारवैभिन्न्य का मूल है। निरुक्तकारों ने अपौरुषेय वेद-शब्दराशि को लक्षित करके छन्दः शब्द की व्युत्पत्ति की है। किन्तु व्याकरणकारों ने लौकिक शब्दसङ्घात के आधार पर छन्दश्शब्द की व्युत्पत्ति की है। वैयाकरणों के सिद्धान्त के अनुसार भ्वादिगण में पठित 'चदि आह्लादे दीप्तौ च' परस्मैपदी सेट् धातु से नुम् होकर 'चन्द' शब्द बनता है। अतः 'चन्दनं चन्द्यते अनेन वा' इसप्रकार विग्रह में **'चन्देरादेश्च छः'**[१] इस औणादिक सूत्र से असुन् प्रत्यय करके आदिवर्ण चकार का छकार होकर छन्दस् शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ आह्लादन अथवा प्रकाशन करना है।

१. उ० सू० ६६८, चदि आह्लादने अस्मादसुन आदेःछकारश्च, अकारान्तोऽप्ययम्, अभिप्रायवशौ छन्दौ इत्यमरद्विरूपकोशाविति तत्त्वबोधिनी।(द्र० अदन्तोऽप्ययमिति शाकटायनः)

वैयाकरण-सिद्धान्त को आधार मानकर **मेदिनी** तथा अमरकोषकार ने भी पद्य और छन्द को पर्यायवाची शब्द के रूप में ग्रहण किया है। अमरकोषकार छन्द शब्द को अनुष्टुप् आदि पद्यार्थक मानते हैं[१]। इसी भांति मेदिनीकोष में पद्यार्थक छन्द शब्द वेदवाचक भी है—**'छन्दः पद्ये च वेदे च स्वैराचाराभिलाषयोः'**।

महर्षि कात्यायन की **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'**[२] परिभाषा द्वारा मन्त्र तथा ब्राह्मणभाग दोनों वेद हैं। इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों के प्रमाण तथा परम्परागत प्रसिद्धि के आधार पर भी वेद-शब्द मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों भागों का वाचक है। मन्त्रों का बहुल भाग पद्यात्मक होने पर भी ब्राह्मणभाग पूर्णतः गद्यात्मक है। अतः छन्दः शब्द को पद्य का पर्यायवाची मानने पर समस्त वैदिक शब्दराशि में निर्दिष्ट छन्दोविधान प्रभावित हो जाता है। गद्यरूप अपौरुषेय शब्दराशि में भी छन्दों का विधान होने के कारण अपौरुषेय शब्दराशि में छन्दोनिर्देश रूढ तथा सामान्य लक्षणों से व्यतिरिक्त भी है। केवल वेद में ही नहीं; अपितु **दुर्गासप्तशत्यादि** पौराणिक मन्त्रों में भी लौकिक लक्षण से अतिरिक्त[३] गायत्र्यादि छन्दों का निर्देश होने से वस्तुतः गद्य और पद्य उभयविधात्मक वैदिक-पौराणिक आदि आर्ष शब्दराशि में छन्द प्रायः रूढ माना गया है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने **'छन्दोबद्धमिदं पद्यम्'** यह लक्षण करके पद्य और छन्द में भेद किया है। इस लक्षण के अनुसार पद्यकाव्यों में छन्दों का होना अनिवार्य है। किन्तु वस्तुतः यहाँ पद्य और छन्द का अभेद उपदिष्ट नहीं है। उक्त लक्षण में छन्दों का व्यापकत्व और पद्य का एकदेशवर्तित्व तथा सभी गद्यों में छन्दों का अभाव न होना भी ध्वनित होता है।

---

१. छन्दः पद्येऽभिलाषे च (अ०को० ३/३/२३२)।

२. प्र०प०सू० २।

३. पौराणिक मन्त्रों में भी छन्दोनिर्देश रूढ माना जाता है। वैदिक मन्त्रों में तो अन्यच्छन्दस्क ऋचाओं में तदितर छन्दोधर्मों का अतिदेश अनेकत्र है। यथा कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक (प्र० ४/५ अनु०) में सायणभाष्य में स्पष्ट किया गया है—तास्वृक्षु गायत्रीधर्ममतिदिशति, त्रिष्टुभः सतीर्गायत्रीरिवान्वाह, गायत्रो हि प्राणः, प्राणानेव यजमाने दधाति (५/४/८) इति। यद्यपि ब्रह्मजज्ञानमित्यादयस्त्रिष्टुभस्तथापि गायत्रीवदनुवचनं कुर्यात्, गायत्रीरूपं ध्यात्वा पठेदित्यर्थः। प्राणस्य गायत्रत्वाद् गायत्रीसमानानुवचनेन यजमाने प्राणं स्थैर्येण स्थापयति। गायत्र्या रक्ष्यमाणत्वात् प्राणस्य गायत्रत्वम्, तद् रक्ष्यत्वञ्च प्राणस्य वाजसनेयिनः समामनन्ति-प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद् यद् गयांस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम इति (तै०आ० पृ० २९८)।

इस रीति से मन्त्रों का छन्दोनिर्देश भी आर्ष, परम्परागत, अतीन्द्रिय तथा अपौरुषेय सिद्ध होता है। लक्षणसमन्वय स्थूल है तथा मुख्यतः लौकिक साहित्य को नियमित करने हेतु किया जाता है।

आचार्य **राजशेखर** ने भी 'सारस्वतेयः काव्यपुरुषः' इस प्रसङ्ग में **'तस्य रोमाणि छन्दांसि'** यह कहकर काव्यरूपी शरीर में लोमरूप छन्दों की अपरिहार्यता मानी हैं। उन्होंने भी—

'त्वत्तः पूर्वे हि विद्वांसो गद्यं ददृशुर्न पद्यम्'[१] इस उक्ति के द्वारा गद्यपद्योभयात्मक छन्द के नैरुक्त सिद्धान्त का पोषण किया है।

निरुक्तकार **यास्क** के अनुसार विविध अर्थ में प्रयुक्त होने वाला छन्दःशब्द आवरणार्थक 'छदिरूर्जने' धातु से निष्पन्न होता है[२]। अक्षरसंख्याविशिष्टात्मक **यजुर्मन्त्र** भी अपनी नियत अक्षर-संख्याओं से आवृत होते हुये मन्त्रगत और पदगत अर्थ-विशेष के प्रच्छादक होने के कारण छन्दः शब्द से अभिहित होते हैं।

ब्राह्मणग्रन्थों में छन्दःशब्द के निर्वचन के प्रसङ्ग में एक आख्यायिका उपदिष्ट है[३]। किसी काल में देवता मृत्यु से त्रस्त होकर अपनी भयनिवृत्ति तथा स्वसंरक्षण के लिए छन्दों के द्वारा आवृत होकर मृत्यु के भय से मुक्त हो गये। इस आख्यायिका के आधार पर आङ्पूर्वक 'छद' धातु के अर्थ में छन्दः शब्द का प्रयोग होता है। अतः मन्त्रब्राह्मणरूप ऋग्यजुःसामात्मक सम्पूर्ण वेदराशि में छन्द व्याप्त है। क्योंकि सभी अपौरुषेय वैदिकवाक्यसमूह पाप और तापों से अध्येता को ढककर (छिपाकर) संरक्षण देता है। अत एव निरुक्तकार यास्क मन्त्र-शब्द के निर्वचन में मन्त्रों के मनन से त्रिविध तापों का विनाश होने का वर्णन करते हैं।

छन्दों का विभाग

अपरिमित छन्दोविस्तार में सुविधा की दृष्टि से वैदिक और लौकिक भेद से छन्दों का विभाजन दो प्रकार से किया गया है[४]। उपनिदानसूत्र में कहा है— **'छन्दसामार्षं लौकिकं च'**[५]। यहाँ आर्ष का अर्थ वैदिक है। वैदिक छन्दों में सात मुख्य छन्द और चौदह अतिच्छन्द, इस प्रकार कुल इक्कीस छन्द हैं। उपनिदान-सूत्र के अनुसार इनके नाम इस प्रकार हैं—

---

१. का० मी० अ० ३।

२. छन्दांसि छादनात् (नि० ७/१२)।

३. देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशँस्ते छन्दोभिरच्छादयन्, यदेभिरच्छादयँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् (छा०उ० १/४/२)।

४. **वैदिक छन्दों** का तात्पर्य है, अपौरुषेय वैदिकसाहित्य में अधिकतम दृष्ट वेदागत छन्द तथा **लौकिक छन्दों** का भाव है लौकिक साहित्य में अधिकरूप से प्रयुक्त छन्द। वस्तुतः गायत्री आदि छन्द मूलभूत हैं तथा इनसे अन्य वर्ण-मात्रावृत्तों का विकास हुआ है, यह पारम्परिक मान्यता है। इसका स्पष्टीकरण आगे किया जायेगा।

५. उ०सू० १/५।

(क) मुख्य वैदिक छन्द[1]**–**

१. गायत्री, २. उष्णिक्, ३. अनुष्टुप्, ४. बृहती, ५. पंक्ति, ६. त्रिष्टुप् और ७. जगती।

(ख) अतिच्छन्द[2]**–**

१. अतिजगती, २. शक्वरी, ३. अतिशक्वरी, ४. अष्टि, ५. अत्यष्टि, ६. धृति, ७. अतिधृति, ८. कृति, ९. प्रकृति, १०. आकृति, ११. विकृति, १२. संकृति, १३. अभिकृति, १४. उत्कृति।

(ग) लौकिक छन्द–

लौकिक छन्द लघु, गुरु, मात्रा और वर्णादि का नियामक होता है। वह भी मात्रा और वर्ण के भेद से दो प्रकार का है। कुछ मनीषी मात्रा-छन्द और गण-छन्द-इसप्रकार दो विभाग करते हैं, किन्तु वह समीचीन नहीं है। मात्रा और गण-छन्दों के विभाग में 'श्री' आदि एकाक्षर वाले छन्दों का संग्रह नहीं हो सकता है। अत: मात्रा और वर्ण के भेद से लौकिक छन्दों के दो विभाग मानना ही उचित है।

वृत्तरत्नाकर में भी मात्रा और वर्ण के भेद से लौकिक छन्दों के दो विभाग किये गये हैं—

पिङ्गलादिभिराचार्यैर्यदुक्तं लौकिकं द्विधा।
मात्रावर्णविभेदेन छन्दस्तदिह कथ्यते।। (१/४)

छन्दोमञ्जरी में वृत्त और जाति के रूप में छन्दों के दो विभाग हैं—

पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत्।। (१/४)

इसप्रकार मात्रा और वर्ण के रूप में छन्दों का विभाग करने पर मात्राछन्द में ही गणच्छन्दों का भी संग्रह होता है। अत: मात्रा और वर्ण के भेद से लौकिक छन्दों का दो विभाग करना युक्ततर है। भास्करराय ने तो—**'न पुनरनुष्णाशीतवत् तृतीया विधा'** का सिद्धान्त स्थिर करते हुए तृतीय प्रकार का स्पष्ट खण्डन (पि० ४/१५ भाष्यराज पृ० १६४) किया है।

कुछ विचारक गण, मात्रा और अक्षर के रूप में छन्दों के तीन विभाग करते हैं। जैसे—

आदौ तावद् गणच्छन्दो मात्राच्छन्दस्ततः परम्।
तृतीयमक्षरच्छन्दश्छन्दस्त्रेधा तु लौकिकम्।।

पिङ्गलोक्त छन्द:शास्त्र में **हलायुध** ने तीन प्रकार के छन्दों का विभाग इस प्रकार किया है—

---

१. उप०सू० १/२।
२. उप०सू० २/१४-१५।

आर्याद्युद्गीतिपर्यन्तं गणच्छन्दः समीरितम्[१] ।
वैताल्यादि चूलिकान्तं मात्राच्छन्दः प्रकीर्तितम्[२] ।।
समान्याद्युत्कृतिं यावदक्षरच्छन्द एव च ।।[३]

यहाँ नारी, मृगी, कन्यादि[४] को गण-छन्द, आर्यादि को मात्रा-छन्द और श्री[५] आदि को अक्षर-छन्द के रूप में ग्रहण किया है। यहाँ भी गण-छन्दों का मात्रा-छन्दों में संग्रह होने के कारण मात्रा-छन्द और वर्ण-छन्द के रूप में लौकिक छन्दों के दो विभाग करना युक्तिसङ्गत है।

वैदिक छन्दों के प्रतिपादक ग्रन्थ

अपौरुषेय वैदिक शब्दराशि में उपलब्ध छन्दों का प्रतिपादन मुख्यतः वेदाङ्ग, उपाङ्ग तथा अनुक्रमणी-साहित्य में अनेकत्र है। परन्तु पिङ्गलाचार्य तथा अन्य परवर्ती मनीषियों ने भी अपने लौकिक छन्दोविधानों के प्रारम्भ में वैदिक छन्दों का निरूपण किया है। उनके वैदिक छन्दःसाहित्य के ग्रन्थों का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऋक्-प्रातिशाख्य (शौनक)

आचार्य शौनक द्वारा अठारह पटलों में निबद्ध ऋक्-प्रातिशाख्य के अन्तिम तीन पटलों (१६, १७, तथा १८ पटलों) के कुल २०४ सूत्रों में वैदिक छन्दों का निरूपण किया गया है। ऋक्प्रातिशाख्य में वैदिक छन्दों के उदाहरण तथा लक्षण विस्तार से दिये गये हैं, किन्तु ऋक्प्रातिशाख्य ने भी ब्राह्मणों का ही अनुकरण किया है। यह छन्दो-निरूपण कात्यायन-कृत ऋक्सर्वानुक्रमणी से पहले का है, क्योंकि जहाँ कहीं **शौनक** और **कात्यायन** में विरोध प्राप्त होता है, वहाँ कात्यायन का पक्ष अधिक सङ्गत है और शब्दसंहिता में स्वीकृत किया गया है। कात्यायन ने ऋक्प्रातिशाख्य में सन्निविष्ट छन्दःप्रकरण में अनेक परिवर्धन करके विशिष्टता की है और प्रातिशाख्य के वचनों के समक्ष में अपने पक्ष को स्थापित किया है।

अतः ऋक्प्रातिशाख्य का छन्दःप्रकरण कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणी से प्राचीन है और यास्क से अर्वाचीन है[६]। **यास्क** के सर्वमान्य कालनिर्धारण के विषय

---

१. आर्या से उद्गीति तक पि०छ० सू०४/१५ से ३२।
२. वैतालीय से चूलिका तक पि०छ० सू०४/३३ से ५३।
३. पि०छ०सू० ४/११ में हलायुध का वचन।
४. पि०छ०सू० ६/४।
५. पि०छ०सू० ६/२।
६. आचार्य शौनक के काल के सम्बन्ध में द्र० ऋग्वेद प्रातिशाख्य—एक परिशीलन (प्रो० वीरेन्द्र कुमार वर्मा)।

में कुछ कहना कठिन है। पिङ्गल के छन्द:सूत्र तथा गार्ग्य के उपनिदानसूत्र में भी यास्क का नाम आया है। छन्द:शास्त्र की आधारशिला ऋक्-प्रातिशाख्य में सन्निविष्ट छन्द:प्रकरण से बहुत पहले पड़ चुकी थी, इसमें सन्देह नहीं है। **पाणिनि** के गणपाठ (४/३/३७) में 'छन्दोविचिति' तथा 'छन्दोमान' पद हैं। वेद के षड् अंगों का उल्लेख बौधायनधर्मसूत्र, गौतमधर्मसूत्र तथा गोपथ ब्राह्मण में भी आया है।

अत: ग्रन्थरचना के सन्दर्भों के आधार पर आचार्य शौनक, कात्यायन से पूर्ववर्ती एवं यास्क के परवर्ती सिद्ध होते हैं।

ऋक्प्रातिशाख्य में ऋग्वेद की शाकल शाखा की शैशिरीय उपशाखा का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। यह ऐतरेय आरण्यक के संहितोपनिषद् का अक्षरश: अनुसरण करता है। इसमें आरण्यक के निर्दिष्ट **माण्डूकेय**, माण्डव्य, अगस्त्य, **शूरवीर** आदि नामक आचार्यों के संहिताविषयक मतों का प्रतिपादन है। शाखा से सम्बद्ध शिक्षा, छन्द एवं व्याकरण के नियमों का प्रतिपादन प्रत्येक प्रातिशाख्य का प्रयोजन माना गया है।[१] ऋक्प्रातिशाख्य में १८ पटल हैं, जिनमें स्वर, वर्ण, सन्धि एवं छन्दों का उत्तम वर्णन है। इस ग्रन्थ के अन्तिम तीन (१६, १७, १८) पटलों में १८८ छन्दों के लक्षण मिलते हैं। इन छन्दों में भी महर्षि शौनक के स्वतन्त्र रूप से लक्षित ६४ छन्द हैं। अन्य छन्द पहले भी लक्षित कर दिये गये हैं; परन्तु शौनक ने उनमें कतिपय छन्दों का नामान्तर भी कर दिया है।

आचार्य शौनक ने गायत्री आदि प्रथम सप्तक में याजुष, साम, आर्च एवं ब्राह्म-पूर्वक गायत्री आदि सात छन्दों को स्वीकार किया है। इन छन्दों में याजुषपूर्व वाले गायत्री से जगती पर्यन्त छ: वर्णों से १२ वर्णों तक एक-एक अक्षर की वृद्धि होती है। सामपूर्व वाले छन्दों में गायत्री से जगती पर्यन्त १२ वर्णों से २४ वर्णों तक की दो अक्षरों की वृद्धि हुई है। आर्चपूर्व वाले छन्दों में गायत्री से जगती पर्यन्त १८ वर्णों से ३६ वर्णों तक तीन-तीन वर्णों की वृद्धि हुई है। इसीप्रकार ब्राह्मपूर्व वाले छन्दों में गायत्री से जगती पर्यन्त ३६ वर्णों से ७२ वर्णों तक छ:-छ: वर्णों की वृद्धि हुई है।[२] इनका विवरण इस प्रकार है—

(क) गायत्री—१. याजुषी गायत्री (६), २. साम्नी गायत्री (१२), ३. आर्ची गायत्री (१८), ४. ब्राह्मी गायत्री (३६)।

---

१. शिक्षाछन्दोव्याकरणै: सामान्येनोक्तलक्षणम्।
तदेवमिह शाखायामिति शास्त्रप्रयोजनम्॥
(उव्वटकृत प्रातिशाख्यभाष्य का प्रारम्भिक पद्य)

२. ऋक्प्रातिशाख्य १६/६-९।

(ख) उष्णिक्—१. याजुष्युष्णिक (७), २. साम्न्युष्णिक् (१४), आर्च्युष्णिक (२१), ब्राह्मयुष्णिक् (४२)।

(ग) अनुष्टुप्—१. याजुष्यनुष्टुप् (८), २. साम्न्यनुष्टुप् (१६ वर्ण), ३. आर्च्यनुष्टुप् (२४), ४. ब्राह्मयनुष्टुप् (४८)।

(घ) बृहती—१. याजुषी बृहती (९), २. साम्नी बृहती (१८), ३. आर्ची बृहती (२७ वर्ण), ४. ब्राह्मी बृहती (५४)।

(ङ) पङ्क्ति—१. याजुषी पङ्क्ति (१०), २. साम्नी पङ्क्ति (२०), ३. आर्ची पङ्क्ति (३०), ४. ब्राह्मी पङ्क्ति (६०)।

(च) त्रिष्टुप्—१. याजुषी त्रिष्टुप् (११), २. साम्नी त्रिष्टुप् (२२), ३. आर्ची त्रिष्टुप् (३३), ४. ब्राह्मी त्रिष्टुप् (६६)।

(छ) जगती—१. याजुषी जगती (१२), २. साम्नी जगती (२४), ३. आर्ची जगती (३६), ४. ब्राह्मी जगती (७२ वर्ण)।

ऋक्प्रातिशाख्य में **शौनक** के अन्य नवीन[1] लक्षित छन्द इस प्रकार हैं—

गायत्री

१. अतिनिचृद् गायत्री (६+६+७) = १९ वर्ण।
२. अतिनिचृद् गायत्री (७+६+७) = २० वर्ण।
३. पादनिचृद् गायत्री (७+७+७) = २१ वर्ण।
४. पादनिचृद् वर्धमाना गायत्री (६+७+८) = २१ वर्ण।
५. वर्धमाना गायत्री (८+६+८) = २२ वर्ण।
६. द्विपदा गायत्री (१२+१२) = २४ वर्ण।
७. यवमध्या गायत्री (७+१०+७) = २४ वर्ण।
८. उष्णिग्गर्भा गायत्री (६+७+११) = २४ वर्ण।
९. पदपङ्क्ति गायत्री (४+६+५+५+५) = २५ वर्ण।
१०. भुरिग्गायत्री (८+१०+७) = २५ वर्ण।
११. पदपङ्क्ति गायत्री (५+५+५+५+६) = २६ वर्ण।
१२. भुरिक्पदपङ्क्ति गायत्री (५+५+५+६+६) = २७ वर्ण।

उष्णिक्

१३. ककुम्न्यङ्कुशिरानिचृदुष्णिक् (११+१२+४) = २७ वर्ण।
१४. तनुशिरा उष्णिक् (११+११+६) = २८ वर्ण।
१५. पिपीलिकमध्योष्णिक् (११+६+११) = २८ वर्ण।

---

१. पतञ्जलि द्वारा लक्षित छन्दों से अतिरिक्त शौनकोक्त छन्द यहाँ गृहीत हैं, क्योंकि पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने पतञ्जलि को पूर्ववर्ती माना है (वै०छ०मी० पृ० ५९)।

१६. अनुष्टुब्गर्भोष्णिक् (५+८+८+८)= २९ वर्ण।

अनुष्टुप्

१७. विराडनुष्टुप् (१०+१०+१०)= ३० वर्ण।

१८. काविराडनुष्टुप् (९+९+१२)= ३० वर्ण।

१९. महापदपङ्क्तिरनुष्टुप् (५+५+५+५+५+६) = ३१ वर्ण।

२०. नष्टरूपानुष्टुप् (९+१०+१३)= ३२ वर्ण।

बृहती

२१. पिपीलिकमध्या बृहती (१३+८+१३) = ३४ वर्ण।

२२. विष्टारबृहती (८+१०+१०+८)= ३६ वर्ण।

२३. विषमपदा बृहती (९+८+११+८)= ३६ वर्ण।

पङ्क्ति

२४. विराट्पङ्क्ति (१०+१०+१०+१०) = ४० वर्ण।

त्रिष्टुप्

२५. विराट्स्थाना त्रिष्टुप् (९+९+१०+११)= ३९ वर्ण।

२६. विराट्स्थाना त्रिष्टुप् (९+१०+११+११) = ४१ वर्ण।

२७. विराट्स्थाना त्रिष्टुप् (१०+१०+९+११)= ४० वर्ण।

२८. विराट्पूर्वा त्रिष्टुप् (१०+१०+८+८+८) = ४४ वर्ण।

२९. पूर्वज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (८+१२+१२+१२) = ४४ वर्ण।

३०. पश्चाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (१२+१२+१२+८) = ४४ वर्ण।

३१. पूर्वमध्या ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (१२+८+१२+१२) = ४४ वर्ण।

३२. पश्चान्मध्या ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (१२+१२+८+१२) = ४४ वर्ण।

३३. यवमध्या त्रिष्टुप् (८+८+१२+८+८) = ४४ वर्ण।

३४. अभिसारिणी त्रिष्टुप् (१०+१०+१२+१२) = ४४ वर्ण।

३५. महापङ्क्ति त्रिष्टुप् (८+८+७+६+७+९) = ४५ वर्ण।

३६. उपजगती त्रिष्टुप् (१२+१२+११+११) = ४६ वर्ण।

ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार ऋग्वेद में गायत्री से अतिधृति पर्यन्त १४ छन्द हैं। शेष—कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अभिकृति तथा उत्कृति नामक अतिच्छन्द **दाशतयी** में नहीं मिलते, सुभेषज में उपलब्ध हैं[१], यह ऋक्प्रातिशाख्य का कथन है। इन २१ मुख्य छन्दों के अतिरिक्त यहाँ—मा, प्रमा, प्रतिमा, उपमा

१. ऋ०प्रा० १६/८७-८८।

और समा नाम के पाँच प्राग्गायत्री-छन्दों का भी उल्लेख है[1]। ये छन्द चार अक्षरों से प्रारम्भ होते हैं और चार-चार की उत्तरोत्तर वृद्धि से समा के २० अक्षर होते हैं। किन्तु इन प्राग्-गायत्री छन्दों का प्रयोग भी कहीं होता है अथवा नहीं, इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। अन्य ग्रन्थों में इन पाँचों छन्दों के नाम भिन्न-भिन्न दिये गये हैं[2]। पिङ्गल ने इनका उल्लेख नहीं किया है। **वेङ्कटमाधव** ने भी इन छन्दों का संकेतमात्र किया है।

इन छब्बीस छन्दों में दो-दो अक्षरों के न्यून होने पर उनका नाम **विराट्** होता है। इनके स्वतन्त्र नाम भी दिये गये हैं, यथा—

	अक्षरसंख्या	नाम
प्राग्-गायत्री (क)	२	हर्षीका
	६	सर्षीका
	१०	मर्षीका
	१४	सर्वमात्रा
	१८	विराट्कामा[3]
गायत्री आदि (ख)	२२	राट् (ताराट्)
	२६	विराट्
	३०	स्वराट्
	३४	सम्राट्
	३८	स्ववशिनी[4]
	४२	परमेष्ठी
	४६	प्रतिष्ठा
अतिजगती आदि (ग)	५०	प्रत्न
	५४	अमृत
	५८	वृषा
	६२	शुक्र
	६६	जीव

१. ऋ०प्रा० १७/१९, / तु०वा०सं० १४/१८—माच्छन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमाच्छन्दो अस्रीवयश्छन्दः उष्णिक्-छन्दो बृहतीच्छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप्छन्दो जगतीछन्दः।

२. द्र० मीमांसक, वै०छ०मी० पृ० ८६।

३. ऋ०प्रा० १७/२०।

४. ऋ०प्रा० १७/५।

अक्षरसंख्या	**नाम**
७०	पय:
७०	तृप्त[१]
कृति आदि (घ) ७८	अर्ण:
८२	अंश
८६	अम्भ:[२]
९०	अम्बु
९४	वारि
९८	आप:
१०१	उदक।

छन्दों के निश्चित अक्षरों में एक या दो अक्षरों की न्यूनता अथवा अधिकता से छन्दों में भेद नहीं होता। ब्राह्मणग्रन्थों में कहा गया है—**न वा एकाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्**[३]। तथापि एक छन्द का दूसरे से भेद करने केलिये इन न्यूनाधिक अक्षरोंवाले छन्दों का नामकरण आवश्यक था। अत: एकाक्षर-न्यूनवाले छन्दों से पूर्व **निचृत्** विशेषण तथा एकाक्षर अधिक होने पर **भुरिक्** विशेषण लगाया जाता है। दो अक्षर अधिक होने पर **स्वराट्** विशेषण होता है। यथा—निचृद् गायत्री, भुरिक् गायत्री, स्वराड् गायत्री[४] आदि।

त्रिपाद उष्णिक्, अनुष्टुप् और बृहती में यदि मध्य का पाद छोटा हो, तो उन्हें **पिपीलिकमध्या** का विशेषण दिया गया है[५]। यदि त्रिपाद गायत्री के प्रथम तथा अन्तिम पादों में ७-७ अक्षर हों और मध्य में १० अक्षर हों, तो उसे **यवमध्या** का विशेषण दिया जाता है[६]। ८+८+१२+८+८=४४ इस प्रकार के त्रिष्टुप् को **यवमध्या** त्रिष्टुप् कहा गया है[७]।

पादबद्ध मन्त्रों के अक्षरों में यदि विहित पादाक्षर-संख्या पूरी नहीं होती, तो उस संख्या की पूर्ति के लिए उस पाद में किसी संधि को तोड़कर दो अक्षरों का निर्माण किया जाता है। इसे **व्यूहन** कहते हैं और उस पूर्ति को **सम्पत्ति** या **सम्पद्** कहते हैं। ऋक्प्रातिशाख्य में उस पाद की सम्पद् के लिए एकाक्षरीभाव, सवर्ण,

---

१. ऋ० प्रा० १७/५।
२. ऋ० प्रा० १७/५।
३. ऐ०ब्रा० १/६, २/३६ श०ब्रा० १३/२/३/३ तथा कौ०ब्रा० ७/१।
४. ऋ० प्रा० १७/२; ३।
५. ऋ० प्रा० १६/३४; १६/३९; १६/५२।
६. ऋ०प्रा० १६/२७।
७. ऋ० प्रा० १६/७२।

दीर्घ, गुण, वृद्धि, पूर्वरूप-सन्धियों के व्यूहन तथा क्षैप्रवर्ण (य, व) के संयोगों को तत्सदृश स्वरों से व्यवधानयुक्त (इय् - उव् भाव) करने का विधान है[1]। यथा— "**सास्माकेभिरेतरी न शूषैः**" (ऋ० ६/१२/४) इस त्रिष्टुप् के चरण में ११ के स्थान पर १० अक्षर हैं। इस न्यूनता की सम्पत्ति के लिए **सा अस्माकेभिः** इस प्रकार सन्धि-विच्छेद (व्यूह) करना चाहिये। इसीप्रकार गुण-वृद्धि तथा पूर्वरूप सन्धियों का भी व्यूहन किया जा सकता है[2]।

वैदिक छन्दों के दो मुख्य भेद हैं[3]—पादाक्षरगणनानुसारी तथा केवल अक्षर-गणनानुसारी। ऋक्प्रातिशाख्य में अक्षरगणनानुसारी छन्दों के अवान्तर भेद ये हैं—

(क) दैव, आसुर, प्राजापत्य, आर्ष।

(ख) याजुष, साम्न, आर्च, ब्राह्म।

ये दैव आदि छन्द केवल गायत्री आदि प्रथम सप्तक के ही यहाँ निरूपित किये गये हैं।

दैवी-गायत्री एकाक्षरा होती है और एक-एक अक्षर की उत्तरोत्तर वृद्धि से दैवी जगती ७ अक्षरों की होती है।

आसुरी गायत्री १५ अक्षरों की होती है तथा एक-एक अक्षर के उत्तरोत्तर ह्रास से आसुरी जगती ९ अक्षरों की रह जाती है। प्राजापत्या गायत्री ८ अक्षरों की होती है और चार-चार अक्षरों की उत्तरोत्तर वृद्धि से प्राजापत्या जगती के ३२ अक्षर होते हैं।

आर्षी गायत्री २४ अक्षरों की होती है और चार-चार अक्षरों की उत्तरोत्तर वृद्धि से आर्षी जगती ४८ अक्षरों की होती है[4]।

याजुषी-गायत्री के ६ अक्षरों में क्रमशः एक-एक अक्षर की वृद्धि करके याजुषी जगती के १२ अक्षर माने गये हैं।

साम्नी गायत्री के १२ अक्षरों में क्रमशः २-२ अक्षरों की वृद्धि करके साम्नी जगती के २४ अक्षर बनते हैं।

आर्ची-गायत्री के १८ अक्षरों में ३-३ अक्षरों की वृद्धि करके आर्ची जगती के ३६ अक्षर होते हैं।

---

१. ऋ० प्रा० १७/२२-२३।

२. व्यूहन से सम्बद्ध पाश्चात्त्य-विचारों के लिये द्रष्टव्य बर्नान आर्नल्ड की पुस्तक— Vedic Metre in its Historical Development (1905) तथा थियोडोर बेन्फे एवं जे० जुबाती के लेख १८७४-१८८० और पुनः प्रकाशित विचार (J. Zubaty 1888-1891)।

३. अक्षरसम्पत्ति के लिये पाश्चात्त्य विद्वान् ग्रासमान के— Worterbuch zum Rgveda (1873) ग्रन्थ में कल्पित विचार भी द्रष्टव्य हैं।

४. ऋ०प्रा० १६/१-९।

ब्राह्मी-गायत्री के सम्पादक के तीन छन्दों के अक्षरों का योग ३६ अक्षर होता है। इनमें ६-६ अक्षरों की वृद्धि से ब्राह्मी-जगती के ७२ अक्षर होते हैं[१]।

ऋक्प्रातिशाख्य में उदाहरण केवल आर्ष-छन्दों के ही दिये गये हैं। ब्राह्मणों में आर्ष-छन्दों के अतिरिक्त केवल दैव और आसुर छन्दों का ही वर्णन मिलता है[२] और भेद भी केवल गायत्री आदि प्रथम सप्तक के ही पाये जाते हैं।

गायत्री के अनेक भेद दर्शाये गये हैं। गायत्री एकपदा, द्विपदा, त्रिपदा, चतुष्पदा तथा पञ्चपदा भी होती है। **यास्क** के मत में सम्पूर्ण ऋग्वेद के दस मण्डलों में एक ही एकपदा गायत्री है। वह भी दश अक्षरों की विराड् गायत्री है[३]। अन्य आचार्यों के मत में अन्य एकपदा गायत्री-छन्द केवल पूर्णगामी ऋचाओं के अन्त्यभाग हैं। अन्य आचार्य पाँच अन्य ऋचाओं को भी एकपदा गायत्री मानते हैं[४]। द्विपदा गायत्री में १२-१२ अक्षरों के दो ही पाद होते हैं[५]।

उष्णिक् छन्द के भी अनेक भेद किये गये हैं। चतुष्पाद उष्णिक् के प्रत्येक पाद में ७-७ अक्षर होते हैं[६]। इसके उदाहरणभूत दो मन्त्रों (ऋ० ८/६९/२ एवं १०/२६/४) के विषय में कहा गया है कि ये अक्षर-गणना से तो उष्णिक्-छन्दस्क हैं, परन्तु पादों की गणना से अनुष्टुप् हैं। अनेक अवस्थाओं में पाद समान होने पर भी दो छन्दों के मध्य निश्चय करना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में **शौनक** ने व्यवस्था दी है कि इसका निर्णय सूक्त के अधिकांश छन्दों के आधार पर किया जाना चाहिये। सामान्य त्रिष्टुप् में ४४ अक्षर होते हैं, किन्तु उपजगती त्रिष्टुप् में ४६ अक्षर होते हैं। जागतप्राय मन्त्रों में यह जागत कहलायेगा और त्रिष्टुप्प्राय मन्त्रों में त्रैष्टुप्[७] होगा।

जिस छन्द में १२+१२ (=२४) अक्षरों के दो पाद हों, उसे द्विपदा गायत्री कहा गया है। इस छन्द का निर्देश केवल ऋ० प्रा० में ही किया गया है[८]।

विराड् ऊर्ध्वबृहती में १२-१२ अक्षरों के तीन पाद होने चाहिये। इसके उदाहरणस्वरूप—**अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ** (ऋ० ९/११०/४) मन्त्र दिया गया

---

१. ऋ०प्रा० १६/१०-१३।
२. वै०छ०मी० पृ० ११५।
३. ऋ० १०/२०/१, ऋ०प्रा० १७/४२।
४. ऋ०प्रा० १७/४३ तथा इन दो सूत्रों पर द्र० मंगलदेव शास्त्री सं० ऋ०प्रा०, भाग ३, आंग्लानुवाद, टि० पृ० २८४-२५१।
५. ऋ०प्रा० १६/२६।
६. ऋ० प्रा० १६/३२।
७. ऋ०प्रा० १६/६५।
८. वै०छ०मी०, पृ० १२७।

है, जिसके प्रथम पाद की अक्षरपूर्ति दो अक्षरों के व्यूह से करनी पड़ती है। जबकि इसी सूक्त में एक अन्य मन्त्र ऐसा है, जिसमें व्यूह की आवश्यकता नहीं पड़ती[१]। इससे प्रतीत होता है कि ऋ०प्रा० का उदाहरण परम्परागत ग्रन्थों से लिया गया है[२]। इसी प्रकार विराड्रूपा त्रिष्टुप्[३] तथा विराट्स्थाना[४] त्रिष्टप् में अक्षरों की पूर्ति न करने का सिद्धान्त भी किसी ब्राह्मण-वचन के आधार पर स्वीकार किया गया है। फलस्वरूप इन अक्षरों (९+९+१०+११=३९) वाला छन्द भी त्रिष्टुप् है, किन्तु उदाहरण नहीं दिया गया। इसीप्रकार (९+१०+११+११=४१) ४१ अक्षरों वाले विराट्स्थानात्रिष्टुप् छन्द का भी उदाहरण नहीं है। त्रिष्टुप् के एक और भेद पुरस्ताज्ज्योति (८+१२+१२+१२=४४) का भी उदाहरण नहीं दिया गया।[५]

महापंक्ति जगती (८×६=४८)[६] या षट्पदा जगती[७] के जो उदाहरण दिये हैं, उनमें (ऋ० ८/३७/२-६ तक की) सभी ऋचाओं में सर्वानुदात्त पद "वृत्रहन्" पाँचवें पाद के आरम्भ में आता है। किन्तु **कात्यायन** ने प्रथम मन्त्र में अतिजगती छन्द मानकर पाद-विभाग 'माध्यन्दिनस्य सवनस्य' के स्थान पर **'माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्'**—यहाँ तक किया है, जिससे उपर्युक्त समस्या का परिहार हो जाता है। अन्य मन्त्रों में कात्यायन ने भी महापंक्ति ही स्वीकार की है।

द्वितीय सप्तक–अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति तथा अतिधृति नामक अतिच्छन्दों के नामों तथा अक्षरसंख्या की चर्चा ऋक्प्रातिशाख्य में की गयी है[८] और संक्षेप में एक-एक उदाहरण भी दिया गया है[९]। इनकी पादसंख्या तथा अक्षरसंख्या का विस्तार से वर्णन **शौनक** के नाम से प्रसिद्ध रचना **'पादविधान'**, **वेङ्कटमाधव** की **ऋगर्थदीपिका** तथा **षड्गुरुशिष्य** विरचित **ऋक्सर्वानुक्रमणी** की टीका **वेदार्थदीपिका** में किया गया है। इस वर्णन का आधार पादविधान ही है, किन्तु इन छन्दों के भेदों-प्रभेदों की चर्चा कहीं भी नहीं की गयी है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

छन्द	**पादसंख्या**	**अक्षरसंख्या**
अतिजगती	५	(१२+१२+१२+८+८=) ५२।
अतिशक्वरी	५	(१६+१६+१२+८+८=) ६०।

१. ऋ० ९/११०/९।
२. ऋ०प्रा० १६/४७-४८।
३. ऋ०प्रा० १६/६९।
४. ऋ०प्रा० १६/६७।
५. ऋ०प्रा० १६/७० उवट ने भी इसका उदाहरण नहीं दिया है।
६. ऋ०प्रा० १६/७५।
७. पि०सू० ३/४९।
८. ऋ०प्रा० १६/८०-८६।
९. ऋ०प्रा० १६/९१, पं० मीमांसक ने इन उदाहरणों का उवट के नाम से उल्लेख किया है, (वै०छ०मी० पृ० १७१, १७८) जो चिन्त्य है।

छन्द	पादसंख्या	अक्षरसंख्या
अत्यष्टि	७	(१२+१२+८+८+८+१२+८=) ६८ ।
अतिधृति	८	(१२+१२+८+८+८+१२+८+८=) ७६ ।
शक्वरी	७	(७×८=) ५६ ।
अष्टि	५	(१६+१६+१६+८+८=) ६४ ।
धृति	७	(१२+१२+८+८+८+१६+८=) ७२ ।

तृतीय सप्तक—इसके कृति (८०), प्रकृति (८४), आकृति (८८), विकृति (९२), सङ्कृति (९६), अभिकृति (१००) तथा उत्कृति (१०४) छन्दों के उदाहरण ऋग्वेद की शाकल-संहिता में उपलब्ध नहीं होते।[१] किन्तु पिङ्गलछन्दः सूत्र के सम्पादक **पं० केदारनाथ** ने इन छन्दों को याजुष मन्त्रों में खोज निकाला है तथा इन उदाहरणों को हलायुध की टीका में प्रक्षेप करने का भी साहस किया है[२]।

प्रगाथ—ऋक्प्रातिशाख्य के छन्दःप्रकरण की एक विशेषता प्रगाथ-छन्दों का विवरण है। जब किसी याज्ञिकक्रिया की सिद्धि के लिए अथवा किसी अन्य कारण से दो-तीन छन्दों का समुदाय बनाया जाता है, तब उस छन्दःसमुदाय को प्रगाथ कहते हैं[३]। इस शब्द का मुख्यतः प्रयोग सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में किया गया है।

प्रगाथों के नामकरण ऋ०प्रा० में तीन प्रकार से किये गये हैं—

१. प्रथम छन्द के अनुसार, यथा—बृहती+सतोबृहती=बार्हत[४]।

२. अन्तिम छन्द के अनुसार, यथा—बृहती+विपरीता=विपरीतान्त[५]।

३. उभय छन्दों के अनुसार यथा—गायत्री+ककुप् = गायत्रकाकुभ[६] अथवा ककुप् + पंक्ति = पाङ्क्तकाकुभ[७]।

ऋक्प्रातिशाख्य में २३ प्रगाथों का वर्णन उपलब्ध होता है, जिनमें लक्षण तथा उदाहरण दोनों दिये गये हैं।

ऋ०प्रा०[८] में छन्दों के देवताओं का विवरण ऋग्वेद की दो ऋचाओं[९] के आधार पर दिया गया है। किन्तु पंक्ति छन्द वसुओं का है। अतिच्छन्द प्रजापति के हैं, **विच्छन्द** वायु देवता के हैं, द्विपदा का देवता पुरुष है तथा एकपदा ब्राह्मी है।

१. ऋ०प्रा० १६/८७-८८।
२. पि०छ०सू० निर्णयसागर बम्बई, सन् १९५७, पृ० ४२ टि०।
३. प्रगथ्यते संमेल्यते छन्दसा छन्द इति प्रगाथः, ऋ०स० परिभाषा ११.१ पर षड्गुरुशिष्य।
४. ऋ०प्रा० १८/४।
५. ऋ०प्रा० १८/१५।
६. ऋ०प्रा० १८/६।
७. ऋ०प्रा० १८/८।
८. ऋ०प्रा० १७/६-१२, तु० बृ० दे० ८/१०५-१०९।
९. ऋ० १०/१३०/४-५।

छन्दों के वर्ण (रंगों) का उल्लेख भी यहाँ किया गया है[१]—

गायत्री का श्वेत, उष्णिक् का कृष्ण-शुक्ल, अनुष्टुप् का लाल-भूरा (पिशङ्ग), बृहती का कृष्ण, विराट् का नीला, (पंक्ति तथा अनुष्टुप्—उवट १५), त्रिष्टुप् का रक्त, जगती का स्वर्ण, पंक्ति का अरुण, अतिछन्दों का श्याम (शुकवर्ण—उवट), विच्छन्दों का गौर (सिद्धार्थवर्ण—उवट), द्विपदा का कपिल, एकपदा का नकुलवर्ण है। द्व्यक्षर ऊन (विराट्) का पृश्नि, निचृत् का गहरा भूरा (श्याम), भुरिक् का बुन्दियाला (पृषत्) वर्ण है। ऋक्प्रातिशाख्य के भाष्यकार उवट ने इन छन्दःसम्बन्धी सूत्रों पर भाष्य किया है तथा प्रो० वीरेन्द्र कुमार वर्मा द्वारा हिन्दी-अनुवाद एवं विस्तृत टिप्पणी आदि सहित यह प्रकाशित किया गया है[२]।

शांखायन श्रौतसूत्र-छन्दःप्रकरण

शांखायन (सांख्यायन) श्रौतसूत्र (७/२७/१-३०) के भी तीस सूत्रों में वैदिक छन्दों का निरूपण किया गया है। वस्तुतः ब्राह्मणग्रन्थों में विभिन्न स्थानों पर प्रतिपादित छन्दोलक्षणों का एकत्र व्यवस्थित उल्लेख सम्भवतः श्रौतसूत्रों के अन्तर्गत यह सर्वप्रथम मिलता है। इसमें निचृत् एवं भुरिक् संज्ञाओं का भी वर्णन है। कालक्रम की दृष्टि से सूत्रकाल के अन्तर्गत होने के कारण यह ऋक्प्रातिशाख्य के समकालिक माना जा सकता है। परन्तु यह ऋक्प्रातिशाख्य के छन्दःपटल से प्रभावित नहीं प्रतीत होता। छन्दों के विषय में शांखायन के सूत्र निम्नलिखित हैं—

त्रिपदा गायत्री ॥ १ ॥
उष्णिक् ॥ २ ॥
पुरउष्णिक् ॥ ३ ॥
ककुप् ॥ ४ ॥
विराट् च पूर्वा ॥ ५ ॥
चतुष्पदोत्तरपदा विराट् ॥ ६ ॥
बृहती ॥ ७ ॥
सतोबृहती ॥ ८ ॥
जगती ॥ ९ ॥
अनुष्टुप् ॥ १० ॥
त्रिष्टुप् च ॥ ११ ॥
पञ्च पङ्क्तेः ॥ १२ ॥
षट्सप्तेत्यतिच्छन्दसाम् ॥ १३ ॥

---

१. ऋ०प्रा० १७/१४-१८।
२. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृतशोध प्रकाशनमाला (सं०५) में १९७० में प्रकाशित।

'स हि शर्धो न मारुत'—मित्यष्टौ ॥ १४ ॥
द्वौ द्विपदायाः ॥ १५ ॥
तेऽष्टाक्षराः प्रायेण ॥ १६ ॥
द्वादशाक्षरा जगत्याः ॥ १७ ॥
तृतीयौ चोष्णिग्बृहत्योः ॥ १८ ॥
सतोबृहत्याश्च प्रथमतृतीयौ ॥ १९ ॥
मध्यमः ककुभः ॥ २० ॥
प्रथमः पुरउष्णिहः ॥ २१ ॥
एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्विराजोः ॥ २२ ॥
उत्तरस्या दशाक्षरः ॥ २३ ॥
तामक्षरपङ्क्तिरित्यप्याचक्षते ॥ २४ ॥
पञ्चभिः पञ्चाक्षरैः पदपङ्क्तिः ॥ २५ ॥
षडप्यष्टाक्षरा जगत्याः ॥ २६ ॥
एकेन द्वाभ्यामित्यूनके निचृत् ॥ २७ ॥
अतिरिक्ते भुरिक् ॥ २८ ॥
सम्पाद्य पादभागेनाहार्यस्यर्चः सम्मितास्तस्य पादभागेन सम्पन्नाः ॥ २९ ॥

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्बृहत्यौ पङ्क्तिश्च त्रिष्टुप्जगत्यावित्यानुपूर्व्यं छन्दसां चतुर्विंशत्यक्षरादीनां चतुरुत्तराणाम् ॥ ३० ॥

यद्यपि इन सूत्रों से छन्दों का बहुत व्यवस्थित स्वरूप नहीं प्राप्त होता है। सम्भवतः याज्ञिक-मन्त्रों के प्रयोग में सामान्य परिज्ञान की दृष्टि से यह परिचय मात्र दिया गया है। श्रौतसूत्रों का विषय छन्दोनिरूपण नहीं है। अतः इस प्रकरण का परिचयात्मक उपयोग ही है।

निदानसूत्र (पतञ्जलि)

निदानसूत्र सामवेद की कौथुमशाखा से सम्बद्ध ग्रन्थ है। इसके प्रथम सात खण्डों में छन्दों का विवरण दिया गया है और इस प्रकरण का नाम **छन्दोविचिति** है। इस निदानसूत्र के कर्त्ता का नाम **पतञ्जलि** प्रसिद्ध है। यद्यपि निदानसूत्र के सम्पादक के अनुसार कर्त्ता का यह नाम सर्वथा सुनिश्चित नहीं है, तथापि अन्य विद्वान् इसे पतञ्जलि की कृति मानते हैं[1]। क्योंकि वैयाकरण **महाभाष्यकार** पतञ्जलि

१. निदानसूत्र, उपोद्घात पृ० २८, अथ भगवान् छन्दोविचितिकारः पतञ्जलिः....। (निदानसूत्र, पेत्ताशास्त्री, हृषीकेश शर्मा कृत व्याख्या)। 'पतञ्जलिकृत-निदानसूत्रे छन्दोविचितिः समाप्ता'—बड़ौदा का हस्तलेख, निदान० उपो०, पृ० २५ पर उद्धृत।

के सम्मुख **निदानसूत्र** उपस्थित था[१], अतः यह तृतीय शती ई० पू० से अर्वाचीन नहीं हो सकता।

श्री युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार निदानसूत्र के आचार्य पतञ्जलि शौनक के पूर्ववर्ती द्वापरकालीन हैं।[२]

निदानसूत्र में दस प्रपाठक हैं एवं प्रत्येक प्रपाठक में तेरह खण्ड हैं। प्रथम प्रपाठक के प्रथम सात खण्डों में छन्दोविषयक वर्णन मिलते हैं। प्रथम छः खण्डों में छन्दों के लक्षण हैं एवं सातवें खण्ड में यतिविषयक वर्णन हैं। ग्रन्थ के छन्दोविषयक भाग पर **तातप्रसाद** विरचित तत्त्वसुबोधिनी नामक वृत्ति है। शेष सम्पूर्ण ग्रन्थ यतिविषयक वर्णन प्रस्तुत करता है। इस ग्रन्थ में निम्नांकित वैदिक छन्द लक्षित हैं—

प्रथम सप्तक में लक्षित छन्द

(१) १— एकपदा गायत्री—८ वर्ण।
२— द्विपदा गायत्री—८+८=१६ वर्ण।
३— गायत्री—८+८+८=२४ वर्ण।
४— चतुष्पाद् गायत्री—६+६+६+६=२४ वर्ण।
(२) ५— उष्णिक्—८+८+१२=२८ वर्ण।
६— ककुबुष्णिक्—८+१२+८=२८ वर्ण।
७— पुरउष्णिक्—१२+८+८=२८ वर्ण।
८— चतुष्पादुष्णिक्—७+७+७+७=२८ वर्ण।
(३) ९— अनुष्टुप्—८+८+८+८=३२ वर्ण।
१०— पिपीलिकमध्यानुष्टुप्—१२+८+१२=३२ वर्ण।
११— पुरस्ताज्ज्योतिरनुष्टुप्—८+१२+१२=३२ वर्ण।
१२— उपरिष्टाज्ज्योतिरनुष्टुप्—१२+१२+८=३२ वर्ण।
(४) १३— बृहती—९+९+९+९=३६ वर्ण।
१४— पथ्याबृहती—८+८+१२+८=३६ वर्ण।
१५— पुरस्ताद् बृहती—१२+८+८+८=३६ वर्ण।
१६— उपरिष्टाद् बृहती—८+८+८+१२=३६ वर्ण।
(५) १७— पङ्क्ति—८+८+८+८+८=४० वर्ण।
१८— सिद्धाविष्टारपङ्क्ति—१२+८+१२+८=४० वर्ण।

---

१. प्रभुदयालु अग्निहोत्री, पतञ्जलिकालीन भारत पृ० ४६५, (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना सन् १९६३)
२. वैदिकच्छन्दोमीमांसा, पृष्ठ-५९।

१९— विपरीतापङ्क्ति—८+१२+८+१२=४० वर्ण।

२०— आस्तारपङ्क्ति—८+८+१२+१२=४० वर्ण।

२१— प्रस्तारपङ्क्ति—१२+१२+८+८=४० वर्ण।

२२— संस्तारपङ्क्ति—१२+८+८+१२=४० वर्ण।

२३— विष्टारपङ्क्ति—८+१२+१२+८=४० वर्ण।

२४— अक्षरपङ्क्ति—५+५+५+५=२० वर्ण।

२५— द्विपदा अक्षरपङ्क्ति—१०+१०=२० वर्ण।

२६— एकपदा विराट्पङ्क्ति—१०=१० वर्ण।

२७— पदपङ्क्ति—५+५+५+५+५=२५ वर्ण।

२८— द्विपदापङ्क्ति—१२+८=२० वर्ण।

(६) २९— त्रिष्टुप्—११+११+११+११=४४ वर्ण।

३०— ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्—११+११+११+८=४१ वर्ण।

३१— पञ्चपदा त्रिष्टुप्—८+८+८+८+१२=४४ वर्ण।

३२— द्विपदा त्रिष्टुप्—११+११=२२ वर्ण।

३३— त्रिपदा त्रिष्टुप्—११+११+११=३३ वर्ण।

३४— एकपदा त्रिष्टुप्—११=११ वर्ण।

(७) ३५— जगती—१२+१२+१२+१२=४८ वर्ण।

३६— एकपदा जगती—१२=१२ वर्ण।

३७— द्विपदा जगती—१२+१२=२४ वर्ण।

३८— पञ्चपदा जगती—८+८+८+१२+१२=४८ वर्ण।

३९— विष्टारपङ्क्ति जगती (प्रवृद्धपदा)—६+६+६+६+६+६+६+६=४८ वर्ण।

४०— विषमपादा जगती—९+१४+११+१३=४७ वर्ण।

४१— ज्योतिष्मती जगती—१२+१२+१२+८=४४ वर्ण।

४२— विषमपदा जगती—६+१०+११+८=३५ वर्ण।

ये प्रथम सप्तक के छन्द हैं।

द्वितीयसप्तक के अतिच्छन्द

१— विधृति (५२ वर्ण)। २— शक्वरी (५६ वर्ण)।

३— अष्टि (६० वर्ण)। ४— अत्यष्टि (६४ वर्ण)।

५— मंहना (६८ वर्ण)। ६— सरित् (७२ वर्ण)।

७— सम्पा (७६ वर्ण)।

तृतीय सप्तक के अतिच्छन्द

१— सिन्धु: (८० वर्ण)। २— सलिलम् (८४ वर्ण)।
३— अम्भ: (८८ वर्ण)। ४— गगनम् (९२ वर्ण)।
५— अर्णव: (९६ वर्ण)। ६— आप: (१०० वर्ण)।
७— समुद्र: (१०४ वर्ण)।

अन्त:स्थ छन्द (प्राग्गायत्री पञ्चक)

१— कृति: (४ वर्ण)। २— प्रकृति: (८ वर्ण)।
३— संकृति (२२ वर्ण)। ४— अभिकृति: (१६ वर्ण)।
५— आकृति: (२० वर्ण)।

द्वापरच्छन्दों में प्रथम सप्तक

१— राट् (२२ वर्ण)। २— सम्राट् (२६ वर्ण)।
३— विराट् (३० वर्ण)। ४— स्वराट् (३४ वर्ण)।
५— स्ववशिनी (३८ वर्ण)। ६— परमेष्ठा (४२ वर्ण)।
७— अन्तस्स्था (४६ वर्ण)।

द्वापरच्छन्दों में द्वितीय सप्तक

१— प्रत्न: (५० वर्ण)। २— अमृतम् (५४ वर्ण)।
३— वृषा (५८ वर्ण)। ४— जीव: (६२ वर्ण)।
५— तृप्त: (६६ वर्ण)। ६— रस: (७० वर्ण)।
७— शुक्र: (७४ वर्ण)।

द्वापरच्छन्दों में तृतीय सप्तक

१— अर्णा: (७८ वर्ण)। २— अंश: (८२ वर्ण)।
३— अम्भ: (८६ वर्ण)। ४— अम्बु (९० वर्ण)।
५— वारि (९४ वर्ण)। ६— आप: (९८ वर्ण)।
७— उदकम् (१०२ वर्ण)।

द्वापरच्छन्दों में प्राग्गायत्री पञ्चक (द्व्यक्षरन्यून)

१— हर्षीका (२ वर्ण)। २— सर्षीका (६ वर्ण)।
३— मर्षीका (१० वर्ण)। ४— सर्वमात्रा (१४ वर्ण)।
५— विराट्कामा (१८ वर्ण)।

दैवासुरप्राजापत्यार्षपूर्वक प्रथम सप्तक के छन्द

(१) गायत्री-१— दैवीगायत्री (१ वर्ण)। २— आसुरी गायत्री (१५ वर्ण)।

३— प्राजापत्या गायत्री (८ वर्ण)। ४— आर्षी गायत्री (२४ वर्ण)।
(२) उष्णिक—१— दैव्युष्णिक् (२ वर्ण)। २— आसुर्युष्णिक् (१४ वर्ण)।
३— प्राजापत्योष्णिक् (१२ वर्ण)। ४— आर्ष्युष्णिक् (२८ वर्ण)।
(३) अनुष्टुप्—१—दैव्यनुष्टुप् (३ वर्ण)। २— आसुर्यनुष्टुप् (१३ वर्ण)।
३— प्राजापत्यानुष्टुप् (१६ वर्ण)। ४— आर्ष्यनुष्टुप् (३२ वर्ण)।
(४) बृहती—१—दैवी बृहती (४ वर्ण)। २— आसुरी बृहती (१२ वर्ण)।
३— प्राजापत्या बृहती (२० वर्ण)। ४— आर्षी बृहती (३६ वर्ण)।
(५) पङ्क्ति—१—दैवी पङ्क्ति (५ वर्ण)। २— आसुरी पङ्क्ति (११ वर्ण)।
३— प्राजापत्या पङ्क्ति (२४ वर्ण)। ४— आर्षी पङ्क्ति (४० वर्ण)।
(६) त्रिष्टुप्—१—दैवी त्रिष्टुप् (६ वर्ण)। २— आसुरी त्रिष्टुप् (१० वर्ण)।
३— प्राजापत्या त्रिष्टुप् (२८ वर्ण)। ४— आर्षी त्रिष्टुप् (४४ वर्ण)।
(७) जगती—१—दैवी जगती (७ वर्ण)। २— आसुरी जगती (९ वर्ण)।
३— प्राजापत्या जगती (३२ वर्ण)। ४— आर्षी जगती (४८ वर्ण)।

दैवासुरप्राजापत्याऽऽर्षपूर्वक द्वितीय सप्तक के छन्द

(१) विधृतिः—१—दैवी विधृतिः (८ वर्ण)। २— आसुरी विधृतिः (८ वर्ण)।
३— प्राजापत्या विधृतिः (३६ वर्ण)। ४— आर्षी विधृतिः (५२ वर्ण)।
(२) शक्वरी—१—दैवी शक्वरी (९ वर्ण)। २— आसुरी शक्वरी (७ वर्ण)।
३— प्राजापत्या शक्वरी (४० वर्ण)। ४— आर्षी शक्वरी (५६ वर्ण)।
(३) अष्टिः—१—दैव्यष्टिः (१० वर्ण)। २— आसुर्यष्टिः (६ वर्ण)।
३— प्राजापत्याष्टिः (४४ वर्ण)। ४— आर्ष्यष्टिः (६० वर्ण)।
(४) अत्यष्टिः—१—दैव्यत्यष्टिः (११ वर्ण)। २— आसुर्यत्यष्टिः (५ वर्ण)।
३— प्राजापत्यात्यष्टिः (४८ वर्ण)। ४— आर्ष्यत्यष्टिः (६४ वर्ण)।
(५) मंहना—१—दैवी मंहना (१२ वर्ण)। २— आसुरी मंहना (४ वर्ण)।
३— प्राजापत्या मंहना (५२ वर्ण)। ४— आर्षी मंहना (६८ वर्ण)।
(६) सरित्—१—दैवी सरित् (१३ वर्ण)। २— आसुरी सरित् (३ वर्ण)।
३— प्राजापत्या सरित् (५६ वर्ण)। ४— आर्षी सरित् (७२ वर्ण)।
(७) सम्पा—१—दैवी सम्पा (१४ वर्ण)। २— आसुरी सम्पा (२ वर्ण)।
३— प्राजापत्या सम्पा (६० वर्ण)। ४— आर्षी सम्पा (७६ वर्ण)।

इसप्रकार इन छन्दों का योग—१४४ है।

दैवपूर्व वाले गायत्री से सम्पा तक छन्द एक वर्ण से चौदह वर्णों तक के होते हैं। आसुर छन्द गायत्री से सम्पा तक पन्द्रह वर्णों से दो वर्णों तक के हैं। प्राजापत्य

छन्द गायत्री से सम्पा पर्यन्त आठ वर्णों से ६० वर्णों तक चार-चार अक्षरों की वृद्धि लेकर पूर्ण हुए हैं। इसीप्रकार आर्ष छन्द गायत्री से सम्पा तक २४ वर्णों से ७६ वर्णों तक चार-चार अक्षरों की वृद्धि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार निदानसूत्र में १४४ छन्द पतञ्जलि के द्वारा लक्षित हैं।

छन्दोविचिति में अनेक प्राचीन आचार्यों के मतों का उल्लेख है। यथा—पाञ्चालाः (पृ० ३), बह्वृचाः (पृ० ३), एके (पृ० १, २, ५) इत्यादि। **पिङ्गल** ने मुख्यतः २१ वैदिक छन्दों का विवरण प्रस्तुत किया है। परन्तु निदानसूत्र में पतञ्जलि ने २७ छन्दों के भेद-प्रभेदों की चर्चा की है। प्राग्गायत्री पाँच छन्दों के नाम भी इसमें ऋक्प्रातिशाख्य के नामों से भिन्न हैं। यहाँ उनको क्रमशः कृति, प्रकृति, सङ्कृति, अभिकृति तथा आकृति की संज्ञा दी गयी है[1]। द्वितीय सप्तक के अतिजगती-प्रभृति छन्दों की संज्ञा यहाँ क्रमशः विधृति, शक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, अंहः (मेहना), सरित् और सम्पा है। तृतीय सप्तक के कृति-प्रभृति छन्दों को निदानसूत्र में क्रमशः सिन्धु, सलिल, अम्भस्, गगन, अर्णव, आपः तथा समुद्र कहा गया है।

प्राग्गायत्री तथा प्रथम सप्तक के दो-दो अक्षरों से न्यून विराट्छन्दों के नाम तो ऋक्प्रातिशाख्य के नामों के समान ही हैं, किन्तु द्वितीय सप्तक के नामों में कुछ भेद हैं। ७२ अक्षरों वाले विराट् अष्टि को ऋक्प्रातिशाख्य में 'शुक्र' कहा गया है, किन्तु निदानसूत्र में 'जीव' नाम से यह उल्लिखित है। ऋक्प्रातिशाख्य के जीव को तृप्त, पयः को रस तथा तृप्त को शुक्र की संज्ञा दी गयी है। तृतीय सप्तक में कोई भेद नहीं है।

निदानसूत्र में उपर्युक्त २७ छन्दों को **कृत** तथा एकाक्षर-न्यून होने पर **त्रेता** संज्ञा दी गयी है। दो अक्षर वाले हर्षीका से लेकर १०२ अक्षर वाले उदक-संज्ञक छन्दःपर्यन्त सभी को **द्वापर** तथा उनमें एकाक्षर की न्यूनता होने पर **कलि** नाम से स्मरण किया गया है।

एक और विषय में भी **पतञ्जलि** ने नवीनता दिखलायी है। अन्य छन्दःशास्त्री तथा ब्राह्मणग्रन्थ केवल प्रथम सप्तक के छन्दों के ही दैव, आसुर, प्राजापत्य तथा आर्ष—चार भेद करते हैं। परन्तु निदानसूत्र में ये भेद द्वितीय सप्तक (अतिजगती आदि) के भी माने गये हैं।

इन छन्दों की अक्षर-संख्याओं के सम्मिश्रण से एक ऐसा वृत्त बनता है, जिसके पूर्व-अर्धभाग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और उत्तरार्ध में क्रमशः ह्रास होता है। इसप्रकार पूरे वृत्त के २८ विभाग बनते हैं[2]। याजुष आदि द्वितीय चतुष्क के छन्दों की इसमें चर्चा नहीं की गयी है। निदानसूत्र में अर्थ को प्राधान्य दिया गया है।

---

१. नि०सू० पृ० ८।

२. वै०छ०मी० पृ० ११६।

अत: यहाँ पादों के नियत अक्षरों का **अभिक्रमण** (वृद्धि) तथा **प्रतिक्रमण** (ह्रास) करने का विधान इस प्रकार किया गया है—

अष्टाक्षर आपञ्चाक्षरताया: प्रतिक्रामति-विश्वेषां हित इति। आचतुरक्षरताया इत्येके। आदशाक्षरताया अभिक्रामति-वयं तदस्य सम्भृतं वसु इति।

अष्टाक्षरपाद पाँच अक्षर तक छोटा हो जाता है, वहीं अष्टाक्षर पाद दस अक्षर तक बढ़ जाता है, जैसे—**वयं तदस्य** (ऋ० ८/४०/६) में। इसीप्रकार एकादशाक्षर तथा द्वादशाक्षर पाद की वृद्धि तथा ह्रास का भी विधान किया है और यह विधान **अर्थ** को प्रधान मानकर किया गया है[1]। शेष विषयों में निदानसूत्र अन्य वैदिक छन्द:- शास्त्रों से प्राय: समानता रखता है।

उपनिदानसूत्र (गार्ग्य)

सामवेद के छन्दों का विवरण उपनिदानसूत्र में उपदिष्ट है। यद्यपि मुख्यत: यह ग्रन्थ सामवेद से सम्बद्ध है और पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक के छन्दों के विषय में विचार प्रस्तुत करता है, तथापि इसमें सामवेद के अतिरिक्त विविध छन्दों पर भी सामान्यत: प्रकाश डाला गया है। इसी छन्दोरचना के नाम—**छन्दोविचय:, सामगानां छन्द:, छन्द: परिशिष्ट** आदि भी उपलब्ध होते हैं।

इसके कर्ता गार्ग्य के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि इसके अन्त में पुष्पिका है—**इत्याह भगवान् गार्ग्यो गार्ग्य:**। गार्ग्य के देशकाल तथा इतिवृत्त के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इन्होंने स्व-उपजीव्य छन्द:शास्त्रों का उल्लेख एक श्लोक में इस प्रकार किया है—

ब्राह्मणात् तण्डिनश्चैव पिङ्गलाच्च महात्मन:।
निदानादुक्थशास्त्राच्च छन्दसां ज्ञानमुद्धृतम्॥

अर्थात्—ताण्ड्यमहाब्राह्मण, पिङ्गल, निदानसूत्र तथा उक्थशास्त्र से छन्दों का ज्ञान उद्धृत किया गया है।

अत: यह निदानसूत्र और पिङ्गलछन्द:सूत्र दोनों से अर्वाचीन ज्ञात होता है। इन्होंने **पाञ्चाला:** (पृ० १) तथा **यास्क** (पृ० २) का भी विशेष उल्लेख किया है। **उक्थशास्त्र** यजुर्वेद का परिशिष्ट ग्रन्थ है। यजु:सर्वानुक्रमणी की व्याख्या में **देवयाज्ञिक** ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। देवयाज्ञिक सायण से अर्वाचीन हैं, क्योंकि उन्होंने सायण को उद्धृत किया है[2]।

---

१. द्र० इस स्थल पर तातप्रसाद की व्याख्या—'अर्थवशेन पादव्यवस्था इति न्यायविद:'। यह टीका अभी तक अप्रकाशित है (वै० छ० मी०, पृ० ७२, २१०)

२. द्र० मंगलदेव शास्त्री, उ०नि०सू० की भूमिका।

अनुक्रमणीशैली में विरचित यह ग्रन्थ दो पटलों तथा आठ अध्यायों में विभक्त है।

इस ग्रन्थ में प्रायः ६६ वैदिक छन्दों का निरूपण है। इनमें से निम्नाङ्कित दो छन्द स्वतन्त्र रूप से लक्षित हैं—

१. स्वराड् गायत्री (९+९) = १८ वर्ण।

२. विष्टारपङ्क्ति (८+१२+८+१२) = ४० वर्ण।

इनमें भी द्वितीय ताण्डि-निरूपित छन्द है। **उपनिदानसूत्र** के प्रथम तीन अध्यायों में वैदिक छन्दों का सामान्य परिचय दिया गया है। प्रथम अध्याय में सात आर्ष छन्दों तथा उनके भेदों की चर्चा है।

दूसरे अध्याय में दोषपूर्ण छन्दों तथा अतिच्छन्दों पर विचार किया गया है। सन्देहास्पद छन्दों के विषय में निर्णायक हेतुओं का उल्लेख भी यहीं किया गया है। तृतीय अध्याय में दैव, आसुर, प्राजापत्य, आर्ष तथा याजुष, साम्न, आर्च तथा ब्राह्मछन्दों का विवरण दिया गया है। दैवादि तथा याजुषादि भेद केवल गायत्री आदि प्रथम सप्तक के ही माने गये हैं। चतुर्थ तथा पञ्चम अध्यायों में सामवेद के पूर्वार्चिक एवं छठे अध्याय में आरण्यकाण्ड तथा महानाम्न्यार्चिक, सप्तम अध्याय में उत्तरार्चिक के छन्दों पर क्रमशः विचार किया गया है। उत्तरार्चिक-सम्बन्धी छन्दों के वर्णों तथा देवताओं का भी उल्लेख है। यहाँ आरण्यक आदि के छन्दों को रहस्यच्छन्दों की संज्ञा दी गयी है[१]।

प्रागगायत्री छन्दों के नाम यहाँ निदानसूत्र से भिन्न निर्दिष्ट किये गये हैं, यथा— उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा तथा सुप्रतिष्ठा[२]। **भरतमुनि** के नाट्यशास्त्र में भी यही नाम उल्लिखित किये गये हैं[३]।

निदानसूत्र के समान उपनिदानसूत्र में भी अतिच्छन्दों के अन्तर्गत द्वितीय तथा तृतीय दोनों सप्तकों का ग्रहण किया गया है। विच्छन्दों के विषय में चर्चा करते हुए **गार्ग्य** ने लिखा है—

विच्छन्दःस्वक्षरपरिमाणाः सङ्कृतिप्रभृत्यूर्ध्वं विज्ञेयाः[४]

अर्थात् विच्छन्दों के अक्षर-परिमाण सङ्कृति आदि से आगे जानने चाहिये। इसका आशय है कि १०४ अक्षरों तक के अतिच्छन्दों से अधिक अक्षरोंवाले छन्दों को **विच्छन्द** कहते हैं। छन्दों के देवताओं के विषय में गार्ग्य ने पिङ्गल और शौनक दोनों के मतों का सम्मिश्रण करके दोनों पक्षों के समन्वय का प्रयास किया है[५]।

---

१. द्र० "अथ रहस्यच्छन्दांसि" (षष्ठाध्याय, द्वितीय पटल का आरम्भ) कैलेण्ड के अनुसार **रहस्य** का अर्थ यहाँ **आरण्यक** है (द्र० पञ्च० ब्रा० उपोद्घात, पृ० ६)

२. उपनि० सू० २/१६, पृ० ६।

३. ना०शा० १४/४६।

४. अध्याय ६, पृ० १६, तु० ऋक् प्रा० १७/१०।

५. अग्निर्गायत्र्याः—पंक्तीनां मित्रावरुणौ वसवो वा (उ०नि०सू०, पृ० २१-२२)।

पिङ्गलच्छन्दःसूत्र (वैदिक-प्रकरण)

पिङ्गल-छन्दःसूत्र (अथवा छन्दश्शास्त्र) आठ अध्यायों में विभक्त है। इनमें से तीन अध्यायों और सात सूत्रों में वैदिक छन्दों का विवरण दिया गया है। शेष अध्यायों में लौकिक छन्दों का निरूपण है। इसप्रकार वैदिक छन्दों का वर्णन १०४ सूत्रों में किया गया है तथा लौकिक छन्दों का निरूपण २०४ सूत्रों में है[1]। इतने लघु-आकार के इस ग्रन्थ में छन्दों का शास्त्रीय विवेचन अत्यन्त प्रौढरीति से किया गया है।

पिङ्गल ने सात पूर्वाचार्यों के छन्दश्शास्त्र-सम्बन्धी विचार भी व्यक्त किये हैं। वे हैं—तण्डी, क्रौष्टुकि, यास्क, सैतव, काश्यप, रात तथा माण्डव्य। इनमें से सैतव, काश्यप, रात और माण्डव्य का उल्लेख लौकिक छन्दों के सन्दर्भ में किया गया है। **मत्स्यपुराण** (१९६/६, ३२) के अनुसार नग के पुत्र होने के कारण पिङ्गल को नाग विशेषण प्राप्त हुआ है।[2]

पिङ्गलाचार्य के कालनिर्धारण में विभिन्न मत

डा० वेबर ने प्रथमतः तो पिङ्गलच्छन्दःसूत्र को वैदिक सूत्रकाल अर्थात् ५०० ई० पू० के आसपास रखने का प्रस्ताव किया था और इसके दूसरे-तीसरे अध्यायों को शेष की अपेक्षा पूर्वकालीन माना था। किन्तु बाद में **भरतनाट्यशास्त्र** के प्रकाश में आने पर उसके छन्दःप्रकरण को पिङ्गलसूत्र से कम विकसित देखकर उन्होंने पिङ्गलसूत्र को भरतनाट्यशास्त्र से पश्चात्कालिक माना तथा इसका काल ४००-७०० ई० के मध्य में कल्पित कर निर्धारित किया। पाश्चात्त्यों के अनुसार भी वैदिक छन्दों का पिङ्गलसूत्र में व्यवस्थित निरूपण है। लौकिक छन्दों का निरूपण बहुत उत्तम तथा उत्कृष्ट कोटि का है।

डा० मनोमोहन घोष के विवेचन के अनुसार पिङ्गलसूत्र के प्रथम अध्याय तथा ४-८ अध्याय (चतुर्थ के प्रारम्भ के ७ सूत्रों को छोड़कर) एक इकाई बनाते हैं तथा द्वितीय और तृतीय अध्याय ग्रन्थ के अविच्छेद्य अङ्ग नहीं हैं, यह उनका मत है। परन्तु वास्तव में द्वितीय तथा तृतीय अध्याय ही पिङ्गल-कृत छन्दोवेदाङ्ग का मूल रूप हैं[3]। पिङ्गलच्छन्दःसूत्र के वैदिक छन्दःप्रकरण का ध्यानपूर्वक विवेचन करने से

---

१. द्र० पं० सीताराम भट्टाचार्य सम्पादित हलायुधवृत्ति-सहित पिङ्गलछन्दःसूत्र (कलकत्ता १८३६, शाके) पिङ्गलसूत्रों की संख्या में भेद होने के साथ अध्यायों के विभाजन में भी मतभेद है। भास्करराय कृत अध्याय-विभाग सबसे पृथक् है। उनके षष्ठ अध्याय में मात्र १४ सूत्र हैं। निर्णयसागर प्रेस, बम्बई के संस्करण में छठें अध्याय में ४३ सूत्र होने के कारण कुल सूत्र ३०७ होते हैं। यादवप्रकाश के अनुसार यह सं[illegible] २८८ है तथा भास्करराय के अनुसार ३०० है।

२. द्र०याः षट् पिङ्गलनागाद्यैश्छन्दोविचितयः कृताः (निदानसूत्र भू० पृ० २५)

३. पि०सू० के तृतीय अध्याय के अन्त में छन्दों के ऋषियों, देवताओं, स्वरों तथा वर्णों का उल्लेख वैदिक छन्दःप्रकरण की समाप्ति का संकेत है।

यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें वैदिक छन्दों का विवरण ऋक्प्रातिशाख्य, निदानसूत्र तथा ऋक्सर्वानुक्रमणी के विवरण की अपेक्षा छन्द:शास्त्र की आरम्भिक अवस्था को प्रस्तुत करता है। अत: यह ऋक्प्रातिशाख्य के छन्द:प्रकरण से कहीं प्राचीन है। **कात्यायन** का स्थितिकाल ७०० ई० पूर्व के लगभग माना जा सकता है। ऋक्प्रातिशाख्य का छन्द:प्रकरण उससे अवश्य प्राचीन है। अत: इस दृष्टि से पिङ्गल का काल ८०० ई०पू० के आसपास होना चाहिए। यह अनेक विद्वानों का मत है।

पिङ्गल द्वारा संख्या-निर्देश के लिए वसु, ऋतु आदि शब्दों के प्रयोग के कारण वेबर ने इसे बहुत बाद की रचना माना है। किन्तु यह मत उचित नहीं है; क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण[१] में ८ वसुओं, ११ रुद्रों तथा १२ आदित्यों का उल्लेख किया गया है। अत: स्पष्ट ज्ञात होता है कि संख्याओं के लिए शब्दों का प्रयोग बहुत पहले सम्भव हो गया था[२]।

इन्हीं संख्यावाचक शब्दों को लेकर पुन: पिङ्गल को **वेबर** के निर्दिष्ट काल ४००-७०० ई० में प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया गया है[३] और यह तर्क दिया गया है कि गुप्तकाल से पहले ऋतुओं की ६ संख्या निरूढ नहीं हो पायी थी। क्योंकि **शक-कुषाणों** के ब्राह्मी-शिलालेखों में भी वर्ष में तीन ऋतुएँ कही गई हैं। किन्तु यह तर्क युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के चौदहवें मन्त्र में तीन ऋतुओं का उल्लेख है और आज भी स्थूल रूप में सर्दी, गर्मी तथा वर्षा—इस प्रकार तीन ही ऋतुएँ कहने का प्रचलन है। इसके समानान्तर अथर्ववेद के भूमिसूक्त में ६ ऋतुओं की स्पष्ट गणना है। इस आधार पर यह तर्क अप्रतिष्ठित है। अत: पिङ्गलसूत्र को ८०० ई०पू० के आसपास मानना ही युक्तिसङ्गत हैं।

कालनिर्णय के सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि कहीं-कहीं ऋक्प्रातिशाख्य तथा पिङ्गलसूत्र में परस्पर मतभेद दृष्टिगत होता है। यदि पिङ्गलसूत्र सर्वानुक्रमणी के बाद का होता, तो यह कभी सर्वानुक्रमणी तथा ऋक्प्रातिशाख्य द्वारा सम्मत संहिता में प्रतिपादित छन्दों के विरुद्ध नहीं जा सकता था। पिङ्गल के अनुसार वैदिक छन्दों की संख्या २१ हैं। जिनमें गायत्री से अतिधृति तक चौदह छन्दों को कात्यायन ने स्वीकार किया है। कृति से अभिकृति-पर्यन्त सात छन्दों का पिङ्गल ने विवरण दिया है। किन्तु मा, प्रमा, प्रभृति पाँच प्राग्गायत्री छन्दों का उल्लेख नहीं किया है। ऋक्प्रातिशाख्य के समान ही पिङ्गल ने भी निचृत्, विराट्, स्वराट्, भुरिक्, शङ्कुमती, पिपीलिकमध्या, यवमध्या प्रभृति संज्ञाओं का उन्हीं अर्थों में प्रयोग किया है[४]। किन्तु यहाँ **भुरिक्** विशेषण

---

१. ऐ०ब्रा० ३/२२; १५।
२. मनोमोहन घोष : इ०हि०क्वा०, भाग १, पृ० ७२७-७३४।
३. डी०सी० सरकार, इण्डियन कल्चर, भाग ६, पृ० ११०-११२।
४. मनोमोहन घोष का यह कथन असत्य है कि 'पिपीलिकमध्या' का उल्लेख ऋ०प्रा० में नहीं दिया गया और यास्क ने यह नाम (निरुक्त ७/८/९) पिङ्गल से लिया यह प्रतीत होता है। इ०हि०क्वा०, ७, पृ० ७३०-३१); पिं०सू० ३/५३-६०।

उन सभी छन्दों के लिये प्रयोक्तव्य है, जिनमें एक अक्षर अधिक हो। किसी विशेष छन्दोभेद का स्वतन्त्र नाम ''भुरिग्गायत्री'' नहीं है। इसी प्रकार अन्य भी विशेषण ही हैं। यहाँ पादसम्पद् के लिये इय-उव-भाव का विधान किया गया है।[१] दैवादि छन्द भी केवल प्रथम सप्तक के दर्शाये गये हैं। इसी प्रकार यजुष् आदि भेदों का केवल प्रथम सप्तम में उल्लेख किया गया है। अनेक स्थलों पर इसमें ऋक्प्रातिशाख्य प्रभृति से भेद भी स्पष्ट प्रकट होते हैं।

पिङ्गलसूत्र में देवताओं का भी उल्लेख किया गया है[२]। ऋग्वेद में मित्रावरुण विराट्छन्द का देवता है[३], परन्तु पिङ्गल ने मित्रावरुण को पंक्ति का देवता माना है। अत: पिङ्गल ने विराट् का ही अर्थ पंक्ति किया है (**पङ्क्तिर्वै परमा विराट्**[४]) यह प्रतीत होता है। गायत्री आदि सात छन्दों के स्वरों (३/६४) तथा वर्णों (३/६५-६६) का भी यहाँ उल्लेख किया गया है। परन्तु इन समस्त मतभेदों के कारण पिङ्गलाचार्य का ऋक्प्रातिशाख्यकार **शौनक** से पूर्ववर्ती होना बाधित हो जाता है। **पिङ्गलाचार्य** द्वारा प्रतिपादित वैदिक नवीन छन्दोलक्षणों का विवेचन भी लौकिक छन्दों के सातत्य में निरूपित है।

ऋक्सर्वानुक्रमणी (कात्यायन)

कात्यायन के द्वारा प्रणीत ऋक्सर्वानुक्रमणी[५] में ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त का प्रतीक, ऋक्संख्या, ऋषि तथा देवता के निर्देश के साथ प्रत्येक सूक्त अथवा उसके भागों के छन्दों का भी पूर्ण विवरण दिया गया है। ऋक्सर्वानुक्रमणी ऋक्प्रातिशाख्य के छन्द:प्रकरण से बाद की रचना हैं और अधिकतर ऋक्प्रातिशाख्य के द्वारा निर्दिष्ट छन्दों का अनुसरण करती है। किन्तु कहीं-कहीं उससे भिन्न मत भी व्यक्त करती है। वर्तमान **शाकलसंहिता** में प्रातिशाख्य के विरुद्ध इसका मत ही स्वीकार किया जाता है। इसमें छन्द का लक्षण इस प्रकार किया गया है—

यदक्षरपरिमाणं तच्छन्द:[६]।

कात्यायन ने ऋग्वेद में गायत्री से अतिधृति-पर्यन्त कुल चौदह छन्द माने हैं। उन्होंने प्रायश: शौनकीय प्रातिशाख्य के छन्द:प्रकरण का अनुसरण किया है[७]।

---

१. इयादिपूरण: (पिं०सू० ३/२)।
२. पिं०सू० ३/६३।
३. ऋ० १०/१३०/४-५।
४. ताण्ड्य ब्रा० २४/१०/२।
५. इसका विशुद्ध तथा उपादेय संस्करण मैक्डानल द्वारा हार्वर्ड ओरियेन्टल सीरिज (ग्रन्थ सं० ५-६) के अन्तर्गत दो भागों में १९०४ में प्रकाशित हैं। प्रथम भाग में भूमिका तथा मूलग्रन्थ है तथा दूसरे भाग में अंग्रेजी में अनुवाद है।
६. ऋक्सर्वा० २/६।
७. आचार्य कात्यायन के कालनिर्धारण हेतु द्रष्टव्य ग्रन्थ—वाजसनेय प्रातिशाख्य—एक परिशीलन (प्रो० युगलकिशोर मिश्र) सं०सं०वि०वि०, वाराणसी से प्रकाशित तथा कात्यायनीय-मूल्याध्याय-परिशिष्टम् की भूमिका (आचार्य गोपालचन्द्र मिश्र—ग्रन्थमाला, तृतीय पुष्प, २०४७ वि० में वाराणसी से प्रकाशित)।

इस ग्रन्थ में ६८ छन्दोभेदों का निरूपण है। इनमें आचार्य कात्यायन द्वारा स्वतन्त्ररूप से लक्षित निम्नाङ्कित ९ छन्द पूर्वाचार्यों द्वारा लक्षित नहीं हैं—

१—प्रतिष्ठा गायत्री (८+७+६)=२१ वर्ण।

२—विराट् शङ्कुमती गायत्री (१०+१०+५)=२५ वर्ण।

३—स्वराड् गायत्री (८+८+१०)=२६ वर्ण।

४—विषमपदोष्णिक् (७+१०+११)=२८ वर्ण।

५—यजुरन्तानुष्टुप् (८+८+७+८+१०)=४१ वर्ण।

६—विपरीता बृहती (८+११+८+१०)=३७ वर्ण।

७—स्वराट् पङ्क्ति (१०+१०+११+११)=४२ वर्ण।

८—विराट् पङ्क्ति (१०+१२+१०+१२)=४४ वर्ण।

९—सावित्री त्रिष्टुप् (७+८+८+७+८+६)=४४ वर्ण।

ऋक्सर्वानुक्रमणी में दैव आदि छन्दों की चर्चा नहीं की गयी है तथा मा, प्रमा, प्रभृति प्राग्गायत्री छन्दों का भी उल्लेख नहीं किया गया है। गायत्री का एक भेद **ह्रसीयसी गायत्री** है, जिसमें ६+६+७=१९ अक्षर होते हैं। इसे ऋक्प्रातिशाख्य में **अतिनिचृत्** कहा गया है। उष्णिक् के अन्तर्गत **ककुम्न्यङ्कुशिरा:** (११+१२+४=२७) का उल्लेख है, जिसे ऋक्प्रातिशाख्य[1] में **न्यङ्कुशिरा निचृत् ककुप्** का नाम दिया गया है।

अतिजगती से अतिधृति तक के द्वितीय सप्तक के छन्दों की पादसंख्या तथा अक्षरसंख्या का षड्गुरुशिष्य का वर्णन शौनकीय पादविधान पर आधृत है[2]। कात्यायन ने बार्हत, काकुभ, महाबार्हत, विपरीतोत्तर और आनुष्टुभ इन पाँच **प्रगाथों** का भी वर्णन किया है।

यजुस्सर्वानुक्रमणी-छन्द:सूत्र (कात्यायन)

वस्तुत: ये छन्द:सूत्र ऋग्वेदानुक्रमणिका से ही सम्बद्ध हैं। छन्दोविधान में इन सूत्रों के अत्यन्तोपयोगी होने के कारण यजुर्वेदियों ने भी शुक्लयजुर्वेदानुक्रमणिका के पञ्चमाध्याय के रूप में इन्हें स्वीकार किया है। अत: यहाँ प्रतिपादित सभी गायत्री आदि के भेदों में से अनेक उदाहरण वाजसनेय संहिता में नहीं मिलते हैं। इन सूत्रों को ग्रन्थान्तर से संगृहीत होने के विषय में यह भी अवधेय है कि—

''तस्मादेतन्नाब्रह्मचारिणे नातपस्विने नासंवत्सरोषिताय नाप्रवक्त्रेऽनुब्रूयात्''

(शु०य०सर्वा० ४ अ०)

इत्यादि फलप्राप्तिरूप ग्रन्थ-समाप्ति का चिह्न शुक्लयजु:सर्वानुक्रम के चतुर्थाध्याय

१. ऋ०प्रा० १६/३३।
२. द्र० वै०छ०मी०, पृ० १७०।

के अन्त में ही है। अत: तदनन्तर कात्यायन के अनुयायियों ने उक्त सूत्रों की उपयोगिता को देखकर पञ्चमाध्याय के रूप में इनको स्वीकार किया है। ऋक्सर्वानुक्रमणी भी कात्यायन के द्वारा ही प्रणीत होने से उनका कात्यायनीयत्व तो है ही। कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी पाश्चात्त्य मतों के अनुसार विक्रम से ३०० संवत्सर पूर्व की है। परम्परागत भारतीय मत में तो यह उससे भी अधिक पूर्व की रचना है।

ऋक्सर्वानुक्रमणी के छन्द:सूत्रों पर **षड्गुरुशिष्य** का भाष्य है। शुक्ल-यजुस्सर्वानुक्रमणी के छन्द:सूत्रों पर **देवयाज्ञिक** का भाष्य उपलब्ध है। इन दोनों भाष्यों को एक साथ संयोजित करते हुए कात्यायनीय छन्द:सूत्र का सम्पादन (डा० श्रीकिशोर मिश्र द्वारा) किया गया है तथा विस्तृत भूमिका, टिप्पणी आदि के साथ १९९० में इसका प्रकाशन हुआ है[१]।

देवयाज्ञिक-भाष्य में यजुर्वेद के भी उदाहरण दिये गये हैं तथा व्याख्यान कुछ विस्तृत है। इन दो कारणों से यह षड्गुरुशिष्य-भाष्य से भिन्नता रखता है। आचार्य देवयाज्ञिक षड्गुरुशिष्य से स्पष्टत: परवर्ती है, क्योंकि षड्गुरुशिष्य के भाष्य की उक्तियाँ देवयाज्ञिक ने अनेक स्थानों पर 'तदुक्तम्' संकेत करते हुए यथावत् प्रस्तुत की हैं[२]। कुछ स्थानों पर पाठभेद से भी उद्धृत हैं[३]। ऋक्प्रातिशाख्य के भाष्यकार **उवट** से भी देवयाज्ञिक अर्वाचीन ज्ञात होते हैं। क्योंकि १/६ सूत्र की व्याख्या में देवयाज्ञिक का भाष्य उवटभाष्य (ऋ०प्रा० २७/२१) से पूर्णत: प्रभावित है। **सायण** (सर्वा० भा० १/१९, सं० ५ अ०) तथा **हरिस्वामी** (मा० सं० २१/२९-४०, पृ० २३५) का देवयाज्ञिक भाष्य में उल्लेख होने के कारण देवयाज्ञिक इन दोनों से परवर्ती सिद्ध होते हैं।

जयदेवच्छन्द:-वैदिकप्रकरण (जयदेव)

जयदेवछन्द: के कर्त्ता जयदेव जैन आचार्य प्रतीत होते हैं, क्योंकि **भट्टहलायुध** ने इनके मत का खण्डन **श्वेतपट** नाम से किया है[४]। **अभिनवगुप्त** ने इनके मत का उल्लेख **अभिनवभारती** में किया है[५]। वृत्तरत्नाकर के टीकाकार **सुल्हण** (रचनाकाल, ११९० ई०, १२४६ सं०) ने भी "श्वेतपट" के नाम से इनके मत का खण्डन किया है। जैन ग्रन्थकार **जयकीर्त्ति, नमिसाधु** तथा **हेमचन्द्र** इन्हें आदरपूर्वक उद्धृत करते हैं। अत: जयदेव का समय ८५० ई० से अर्वाचीन नहीं हो सकता।

१. आचार्य गोपालचन्द्र मिश्र ग्रन्थमाला (चतुर्थ पुष्प) में वाराणसी से प्रकाशित।
२. द्र० २/२६, ३६, ३७, ४६, ४९, ५१, ५७, ५९ आदि।
३. द्र० २/६, ९, १८, ५२, ५३, ५५, ५६, ५८ आदि।
४. पिं० सू० १/१० तथा ५/८ पर।
५. अभिनव०, १४/८३-८४ (बड़ौदा)।

प्राकृतभाषा के छन्दोग्रन्थ स्वयम्भूच्छन्द के लेखक (अष्टम शताब्दी) **स्वयम्भू** ने यतिसमर्थन के विषय में **जयदेव** का उल्लेख किया है।[१] यथा—

जयदेअ पिङ्गला सवकयंमि दोच्चि अ जइं समिच्छंति।
मंडव्ब-भरह-कासव-सेवत-पमुहा न इच्छंति ॥[२]

छन्द:सूत्रवृत्तिकार (दशमशताब्दी) **हलायुध** अपनी वृत्ति में जयदेव को उनके उपनाम 'श्वेतपट' के द्वारा उद्धृत करते हैं। यथा—

वान्तेग्वक्र इति प्रोक्तं यैश्च श्वेतपटादिभि:। तथा—
अन्यदतोऽपि वितानं श्वेतपटेन यदुक्तम् ॥[३]

जयदेव को जैनेतर लोग श्वेताम्बर जैन होने के कारण 'श्वेतपट' विशेषण द्वारा अलङ्कृत करते थे। कन्नड़छन्द:शास्त्रीय ग्रन्थ **छन्दोऽम्बुधि** में रचयिता नागवर्मन् के द्वारा ९९० ई० में जयदेव का उल्लेख किया गया है।[४] परवर्ती छन्द:शास्त्र के रचयिताओं में **त्रिविक्रमभट्ट**[५], जयकीर्ति[६], हेमचन्द्र[७] आदि ने जयदेव का नामोल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। अत: जयदेव का समय सप्तम शताब्दी माना जाता है।

आठ अध्यायों में निबद्ध **जयदेवच्छन्द:** ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में लघु-गुरु वर्ण, गण, यति आदि विचार है। द्वितीय एवं तृतीय में वैदिक छन्दों का विवेचन, चतुर्थ से सप्तम पर्यन्त लौकिकवृत्तनिरूपण एवं आठवें अध्याय में छन्द:प्रस्तारप्रक्रिया का प्रतिपादन है। इसकी **हर्षट**-कृत विवृत्ति मिलती है, जिसमें छठें अध्याय के ३९वें सूत्र तक एवं सप्तम अध्याय के ३४वें सूत्र[८] तक छन्दों का विवरण मिलता है; परन्तु जयदेवच्छन्द के षष्ठ अध्याय में ४६ एवं सातवें अध्याय में ३७ सूत्र हैं। जयदेव द्वारा लक्षित वैदिक छन्दों में स्वतन्त्र १३ छन्द हैं।

जयदेव के स्वतन्त्र लक्षित छन्द

१— सतोबृहती (८+८+१०+१०) = ३६ वर्ण।

---

१. स्वयम्भूर्ध्रुवधारावर्षस्य ७८०-७९४ ईशवीये वर्षे मन्त्रिरयडाधनञ्जयस्याऽऽश्रितकविरासीत् (द्र० राहुल सांकृत्यायनकृत हिन्दीकाव्यधारा, पृ० २२)
२. स्वयम्भूच्छन्द १/७१, १४४।
३. हलायुधकृत छन्द:सूत्रवृत्ति १/१०, ५/८।
४. द्रष्टव्य—कुन्दनगार, बम्बई विश्वविद्यालय पत्रिका, सितम्बर-१९४७, पृष्ठ-९।
५. त्रिविक्रमकृत वृत्तरत्नाकर-व्याख्या (द्रष्टव्य—पिटरसन की चतुर्थ रिपोर्ट पृष्ठ-२७ P. 27, B. of ms. No. 12, of BBRAS, Bombay)
६. जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन ८/१९।
७. हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन वृत्तिभाग ३/५२/१।
८. ह० दा० वेलणकर द्वारा सम्पादित जयदामन में जयदेवच्छन्द-विवृत्ति षष्ठ अध्याय समाप्ति पृष्ठ-३१, सप्तम अध्याय समाप्ति पृष्ठ-३६।

२— आर्षीपङ्क्तिः (८+१२+१०+१०) = ४० वर्ण।
३— वृद्धार्षीपङ्क्तिः (१२+१२+१०+१०) = ४४ वर्ण।
४— आर्ष्यक्षरपङ्क्तिः (५+५+१०+१०) = ३० वर्ण।
५— आर्षी त्रिष्टुप् (१२+८+८+८+८) = ४४ वर्ण।
६— पुरस्ताज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (८+११+११+११) = ४१ वर्ण।
७— पूर्वमध्ये ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (११+८+११+११) = ४१ वर्ण।
८— उत्तरमध्ये ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (११+११+८+११) = ४१ वर्ण।
९— उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (११+११+११+८) = ४१ वर्ण।
१०— आर्षी जगती (१२+१२+८+८+८) = ४८ वर्ण।
११— शंकुमती (५+६+६) = १७ वर्ण।
१२— ऋक् पिपीलकमध्या (८+५+८) = २१ वर्ण।
१३— ऋक् यवमध्या (८+९+८) = २५ वर्ण।

आठ अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम तीन अध्यायों में वैदिक छन्दों का विवरण जयदेव ने प्रस्तुत किया है।

वैदिक छन्दों के विवरण में इन्होंने पिङ्गल के समान ही प्राग्गायत्री छन्दों का उल्लेख नहीं किया। अतिच्छन्दों (अतिजगती से उत्कृति तक) के नाम भी पिङ्गलानुसारी है। पिङ्गल के अनुसार ही जयदेव ने पादसम्पत्ति के लिये इय, उव की कल्पना का निर्देश किया है और उसी के समान इयादिभाव के स्थान का संकेत नहीं किया। किन्तु इसके टीकाकार **हर्षट** ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इय, उव भाव की कल्पना क्यों करनी चाहिये।

पिङ्गलसूत्र के समान इसमें भी दैव-आसुर आदि तथा याजुष आदि छन्दोभेद केवल गायत्री आदि प्रथम सप्तम के ही माने गये हैं, अन्य छन्दों के नहीं। जयदेव ने—पुरस्ताज्ज्योतिः त्रिष्टुप् (८+११+११+११=४१), मध्येज्योतिः त्रिष्टुप (११+११+८+११=४१) तथा उपरिष्टाज्ज्योतिः त्रिष्टुप (११+११+११+८=४१) के लक्षण दिये हैं, किन्तु उदाहरण नहीं दिये। इसीप्रकार पुरस्ताज्ज्योतिर्जगती (८+१२+१२+१२=४४), मध्येज्योतिः जगती (१२+१२+८+१२=४४) तथा उपरिष्टाज्ज्योतिः जगती (१२+१२+१२+८=४४) के भी उदाहरण नहीं दिये गये हैं।

जयदेव ने जैन विद्वान् होते हुए भी वैदिक छन्दों का निरूपण किया, यह शास्त्र-प्रेम का उदाहरण है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वैदिक छन्दों के अभाव में अपने छन्दोग्रन्थ की अपूर्णता अथवा एकाङ्गी होने के आरोप से मुक्त होने के उद्देश्य से जयदेव ने वैदिक छन्दों का भी प्रतिपादन किया होगा।

ऋगर्थदीपिका-छन्दःप्रकरण (वेङ्कटमाधव)

वेङ्कटमाधव-रचित ऋगर्थदीपिका में ऋग्वेद के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में कारिकाओं के रूप में भाष्यकार द्वारा, स्वर, आख्यात, उपसर्ग, समास, ऋषि, छन्द, देवता-प्रभृति अनेक विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये गये हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद में बिखरे हुए **वेङ्कटमाधव** के विचारों का एक संग्रह डा० कुन्हनराज ने मद्रास विश्वविद्यालय से ऋक्सर्वानुक्रमणी के नाम से प्रकाशित किया था। उसके अन्तर्गत ऋग्वेद के षष्ठ अष्टक के आठों अध्यायों के आरम्भ में व्यक्त किये गये छन्दोविषयक विचारों के संग्रह को **छन्दोऽनुक्रमणी** का नाम दे दिया गया है। वास्तव में इसे अनुक्रमणी कहना समीचीन नहीं है।

वेङ्कटमाधव का स्थितिकाल दशमी शताब्दी ई० में हो सकता है। अपने इस छन्दःप्रकरण की रचना में वेङ्कटमाधव ने ऋक्प्रातिशाख्य, **बृहद्देवता** तथा निदानसूत्र का आश्रय लिया है[१]। इन्होंने ऋक्सर्वानुक्रमणी को भी आधार बनाया होगा, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वेङ्कट ने ऋचाओं के पादविभाग को प्रायः अर्थानुरूप करने का सिद्धान्त स्वीकार किया है[२]। दक्षिण-भारतीय कौशिकगोत्रोत्पन्न वेङ्कटमाधव के पिता वेङ्कटाचार्य एवं पितामह **माधव** थे। इनकी माता का नाम सुन्दरी था तथा मातामह (नाना) भवगोत्र थे।

ऋगर्थदीपिका में वैदिक छन्दों के विवरण के अन्तर्गत प्रथम सप्तक के गायत्री से जगती-पर्यन्त ५८ छन्दोभेद लक्षित हैं। द्वितीय सप्तम के भी छन्दोविवरण उपलब्ध हैं, किन्तु तृतीय सप्तक के छन्दों के नाम नहीं हैं। इसमें प्रगाथ-वर्णन भी है। इस ग्रन्थ में वर्णित सभी छन्द पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में प्राप्त हैं, अतः वेङ्कटमाधव के स्वतन्त्र लक्षित छन्द नहीं हैं।

पाँच प्राग्गायत्री छन्दों का वेङ्कट ने केवल उल्लेखमात्र किया है, उनका वर्णन नहीं किया है। वेङ्कट ने मुख्य छन्द सात ही माने हैं[३]। द्वितीय सप्तक के अतिच्छन्दों के लक्षण और उदाहरण देकर इन्होंने चौदह छन्दों की स्थिति संहिता में स्वीकार की है। अन्य दूसरे वेदों में माने हैं[४]। इस संख्या के विषय में तीन अथवा चार छन्दों को

---

१. "प्रातिशाख्ये निदाने च मा-प्रमा-प्रतिमादयः। नानाविधानि छन्दांसि" .... (ऋग्वेद ६ अष्टक, ५ अध्याय, पर १३ कारिका) तथा 'पातञ्जले निदाने तु द्वौ प्रगाथौ प्रदर्शितौ' (अष्टक ६, अध्याय ६, पर का० ९)। द्र० वि०वै० शोध संस्थान, होशियारपुर, सं० ऋग्वेद।

२. 'तत्रर्चामवसानानि प्रायेणार्थानुरूपतः' (ऋग्० अ० ६, अ० ८ पर का० २); 'पादे पादे समाप्यन्ते प्रायेणार्था अवान्तराः' (ऋक्० अ० ६; अ० ८ पर, का० १५)।

३. वेमाछ० ६/१/२; ६।

४. वेमाछ० ६/५/९।

माननेवालों के मतों का भी उल्लेख यहाँ कर दिया गया है[१]। यद्यपि मुख्य रूप से वेङ्कट की कृति का आधार ऋक्प्रातिशाख्य आदि प्राचीन रचनाएँ रही हैं और इन्होंने अधिकांश स्थलों पर उनके शब्दों को यथावत् रख दिया है। यथा—व्यूह के विषय में इन्होंने[२] ऋ०प्रा० को अक्षरशः उद्धृत किया है[३] तथा क्षैप्रवर्णों के व्यूह के सम्बन्ध में भी ऋक्सर्वानुक्रमणी के विरुद्ध ऋक्प्रातिशाख्य का पक्ष स्वीकार किया है, तथापि उनका अन्धानुकरण नहीं किया। इनके द्वितीय सप्तक के अतिच्छन्दों के पादों तथा अक्षरों की संख्या का आधार शौनक के नाम से प्रसिद्ध **पादविधान** है। यह तथ्य वेमाछ० तथा पादविधान की तुलना से स्पष्ट हो जाता है।

ऋक्प्रातिशाख्य के समान इसमें भी जगती के तीन भेद माने गये हैं—जगती, महासतोबृहती, महापंक्ति[४]।

ऋक्प्रातिशाख्य (१७/२५-२६) के समान वेङ्कट ने भी छन्दों के पादनिर्णय के **प्रायः**, **अर्थ** और **वृत्त**—ये तीन हेतु दिये हैं। इनमें विरोध होने पर पूर्व-पूर्व हेतु बलवान् होता है[५]।

इन्होंने ऋक्सर्वानुक्रमणी के समान केवल पाँच **प्रगाथ** माने हैं। किन्तु नामों में भेद कर दिया है। इनके अनुसार बार्हत, काकुभ, महाबृहतीमुख, यवमध्यान्त और आनुष्टुभ—ये पाँच प्रगाथ हैं[६]।

वैदिक छन्दों के तुलनात्मक अनुशीलन की दृष्टि से वेङ्कटमाधव का कार्य उपादेय है।

पुराणों में वैदिक-छन्दोविमर्श

वैदिक छन्दों की चर्चा अग्निपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण में उपलब्ध है। किन्तु पुराणों का विषय छन्दोनिरूपण न होने के कारण इन उल्लेखों से सङ्केत मात्र प्राप्त किये जा सकते हैं।

---

१. वेमाछ० ६/१/५-८।
२. वे०मा०छ० ६/७/२।
३. ऋ०प्रा० १७/२२-२३।
४. वेमाछ० ६/४/१७-२०।
यह भी द्रष्टव्य है कि वैछमी०, पृ० १६२ पर उपजगती का एक उदाहरण (ऋग्० १/९४/२) वेङ्कट के नाम से लिखा गया है। वेङ्कट ने तो 'उपजगती' का नाम नहीं लिखा। वहाँ इस मन्त्र के विषय में केवल इतना है कि—क्योंकि यह जागत सूक्तों में है, अतः यहाँ जगती कही जाती है (वेमाछ० ६/४/२-३)। वस्तुतः उसे ऋक्प्रा० में त्रिष्टुप् का भेद माना गया है (ऋक्प्रा० १६/६५)। वहाँ भी सूक्तानुरोध से ही व्यवस्था की गयी है।
५. वेमाछ० ६/७/१३। द्र०-ऋ.प्रा.- प्रायोऽर्थो वृत्तमित्येते पादज्ञानस्य हेतवः।
विशेषसन्निपाते तु पूर्वं पूर्वं परं परम्॥
प्रायोऽधिकारः, अर्थोऽन्वयः, गुरुत्वप्रभावो वृत्तम्।
६. वेमाछ० ३/६/६।

वैदिकछन्दों के प्रतिपादक अन्य ग्रन्थ

वैदिक छन्दों के सन्दर्भ में पूर्ववर्णित मुख्य छन्दोग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ अन्य छन्दोविषयक रचनाओं में भी वैदिक छन्दों का प्रसङ्गतः निर्देश मिलता है। यथा प्राकृतभाषा में रचित स्वयम्भूकृत **स्वयम्भूछन्दः** ग्रन्थ यद्यपि पूर्णतः प्राकृत छन्दों का प्रतिपादक है, तथापि इस जैन विद्वान् ने शक्वरी से आरम्भ कर उत्कृति तक १३ वर्गों में ६३ वर्णवृत्तों का उल्लेख किया है। यह वैदिकछन्दों के अध्ययन में उपयोगी न होते हुए भी वैदिक प्रभाव का द्योतक है। इसमें वार्णिक एवं मात्रिक छन्दों का विशद विवेचन है। किन्तु संकलन की दृष्टि से यह कुछ अव्यवस्थित प्रतीत होता है। इसकी पाण्डुलिपि के प्रारम्भिक २२ पृष्ठ उपलब्ध नहीं है। यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रारम्भिक पृष्ठों में वैदिक छन्दों का विवेचन रहा होगा। इसका समय ८४७ वि० (सांकृत्यायन) अथवा ईसा की दशम शताब्दी (वेलणकर) माना जाता है। अथर्ववेदीय **बृहत्-सर्वानुक्रमणी** में भी वैदिक मन्त्रों के छन्दों के निर्देश हैं। दण्डक के प्रसङ्ग में भास्करराय ने (पि० २/१६) इसका संकेत किया है।

परवर्ती साहित्य में कविकलानिधि पं० श्रीकृष्ण भट्ट द्वारा प्रणीत **वृत्तमुक्तावली** आदि अन्य ग्रन्थों में भी प्रारम्भ में वैदिक छन्दों का निरूपण है।

वैदिक छन्दों की विशिष्टता

वैदिक छन्दों की विशेषता है कि ये अक्षर-गणना पर नियत रहते हैं, अर्थात् उनमें अक्षरों के गुरु-लघु के क्रम का कोई विशेष नियम नहीं है। इसीकारण कात्यायन ने 'सर्वानुक्रमणी' में इसका लक्षण **'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः'** किया है। परन्तु लौकिक संस्कृत के छन्दों में वृत्तस्थ अक्षरों की गुरुता और लघुता नियत कर दी गयी है। वैदिक छन्द इस निबद्धता से मुक्त हैं। यह भी विशिष्ट तथ्य है कि अनेक शताब्दियों के अनन्तर वैदिक छन्दों से ही लौकिक छन्दों का विस्तार हुआ है। लौकिक छन्दों में चार चरण होते हैं, परन्तु वैदिक छन्दों में यह नियम नहीं है।

वैदिक छन्दों में वर्ण-गुरु-लघु-विचार

भारतीय आचार्यों के मतानुसार वैदिक छन्दों के लक्षण-निर्धारण में इसका विशेष महत्त्व नहीं है कि उसमें कौन-सा अक्षर लघु है और कौन-सा अक्षर गुरु है। परन्तु आचार्य **शौनक** ने ऋक्प्रातिशाख्य (१७/३९) में इस विषय का भी विचार किया है। उनका महत्त्वपूर्ण कथन है कि आठ अक्षर के पाद (गायत्र) में और बारह अक्षर के पाद (जागत) में उपोत्तम (अंतिम से पहिला) अक्षर लघु होता है। दस अक्षर के पाद (वैराज) में तथा ग्यारह अक्षर के पाद (त्रैष्टुभ) में उपोत्तम अक्षर गुरु होता है। इसे **वृत्त** की संज्ञा दी गयी है। शौनक का यह कथन ऋग्वेदीय छन्दों में सुसङ्गत होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसीप्रकार के तथ्यों का आविष्कार अपने अनुशीलन के बल पर किया है।

प्रत्येक संहिता के छन्दों का वर्णन अनुक्रमणियों में बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया गया है। कात्यायन ने ऋग्वेद के प्रत्येक मन्त्र के छन्दों का निर्देश 'सर्वानुक्रमणी' में प्रामाणिकता से किया है। प्रातिशाख्यों में विशेषत: ऋक्प्रातिशाख्य (पटल १६-पटल १८) में छन्दों का विस्तृत विवेचन है। पिङ्गल के ग्रन्थ में वैदिक तथा लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों का विशेष वर्णन है। ये ग्रन्थ वैदिक छन्दों के अधार-ज्ञान के लिए विशेष मननीय हैं।

पहले बताया गया है कि वैदिक छन्दों में अक्षरों के गौरव-लाघव पर ध्यान न देकर उनकी संख्या का ही विचार किया जाता है। कभी-कभी अन्य पादों के अक्षरों के समसंख्यक होने पर भी एक पाद में कभी संख्या कम हो जाती है और कभी अधिक। परन्तु यह अनियमित नहीं है; अपितु नियम से ही किया जाता है। एक अथवा दो अक्षरों की अधिकता अथवा न्यूनता से छन्द परिवर्तित नहीं होता। इससे उसके स्वरूप की हानि भी नहीं होती। यदि किसी छन्द का अक्षर एक कम हो तो उसे **'निचृत्'** विशेषण से और एक अधिक हो, तो उसे **'भुरिक्'** विशेषण से युक्त माना गया है। नियमत: त्रिपदा अष्टाक्षरा गायत्री के अक्षरों की संख्या (८×३) = २४ ही है। परन्तु २३ अक्षरों की गायत्री 'निचृद्-गायत्री' और २५ अक्षरों की 'भुरिग्गायत्री' कही जाती है। इसी प्रकार दो अक्षरों की हीनता वाले छन्दों को **'विराट्'** तथा दो अक्षरों की अधिकता होने पर **'स्वराट्'** विशेषण से युक्त करते हैं।

अत: 'विराट्-गायत्री' (२४—२) = २२ अक्षरों की और 'स्वराट्-गायत्री' (२४+२) = २६ अक्षरों की होती है।[१]

वैदिक छन्दोव्यवस्था के मुख्य नियम

कभी-कभी अनुभूति होती है कि छन्द एक अक्षर के अभाव में पंगु जान पड़ता है। ऐसी दशाओं में छन्द को नियमबद्ध बनाने के अभिप्राय से एक अक्षर को दो अक्षर बना देने की व्यवस्था 'सर्वानुक्रमणी' में स्पष्टत: दी गयी है। इसका पारिभाषिक शब्द **'व्यूहन'** है। इसका सूत्र है—**पादपूरणार्थं क्षैप्रसंयोगैकाक्षरीभावान् व्यूहेत्** (सर्वा० ३/६), अर्थात् पादपूरण के लिए क्षैप्रसंयोग (यकार तथा वकार के संयोग) तथा सन्धिजन्य एकाक्षरों को पृथक् कर देना चाहिए। कुछ उदाहरणों के द्वारा इस नियम को स्पष्ट करना उचित होगा—

(१) जहाँ यण् सन्धि के द्वारा यकार तथा वकार हो, उसे पृथक् कर मूल दोनों अक्षरों का उच्चारण करना चाहिये। यथा—त्रिपदा उष्णिक् के उदाहरण में दिये गये मन्त्र के दूसरे चरण—**पिबाति सौम्यं मधु**—में आठ अक्षरों में एक अक्षर की कमी है। अत: पाद-पूरण के लिए सौम्यं = सौमियं, जगती के अन्तिम चरण में

---

१. ''ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ। द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ'' (सर्वानुक्रमणी, पृ० २)
''एकद्व्यूनाधिका सैव निचृद् ऊनाधिका भुरिक्'' (ऋ०प्रा० १७/२)।

द्युमद् = दियुमद्, 'तत् सवितुर्वरेण्यं' में वरेण्यं = वरेणियं, आदि भी उदाहरण हैं।

(२) वकार का पृथक्करण—अधिकांश मन्त्रों में 'त्वं' का पृथक्करण 'तुवम्' होता है। अन्य उदाहरण—'दिवं गच्छ स्वः पते' में स्वः = सुवः।

(३) रेफ का पृथक्करण—अनेक मन्त्रों में 'इन्द्र' का पृथक्करण 'इन्दर' होता है, यथा—ऋ० ७/१९/२ त्वं ह त्यदिन्द्रः का रूप होगा—तुवं ह त्यदिन्दरः।

(४) ए या ओ (गुण) अथवा ऐ तथा औ (वृद्धि) का दो स्वरों में पृथक्करण होता है—ज्येष्ठ=ज्ययिष्ठ (ऋ० ७/६५/१), धेष्ठ=धयिष्ठ (ऋ० ७/९३/१) आदि तथा प्र ब्रह्मैत्विति (ऋ० ७/३६/१) में होता है—ब्रह्म एतु इति।

(५) एकार तथा ओकार के अनन्तर लुप्त अकार को (एङः पदान्तादति-पाणिनि ६/१/१०९) पुनः स्थापन कर उच्चारण करना चाहिये, यथा—इन्द्रं वाजेषु नोऽव (ऋ० १/७/४) में नो अव। इन्द्रं सखायोऽनु संरभध्वम् (ऋ० १०/१०/३६) में 'अनु' का उच्चारण पूरा होना चाहिए।

(६) दीर्घ सन्धि से उत्पन्न आकार को दो अक्षरों के रूप में परिवर्तन करना चाहिये।[१] यथा—वदन् ब्रह्मावदती वनीयान् (ऋ० १०/११७/७) में होता है—ब्रह्म अवदती। अद्याद्या श्वः श्वः (ऋ० ८/६१/१७) में अद्य अद्या, ऋ० ७/४०/६ में वात=व अत आदि।

ऋग्वेद के छन्दों की गणना

कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद के समस्त मन्त्रों के छन्दों का निर्देश किया है। उनके अनुसार ऋग्वेद में छन्दों की संख्या इस प्रकार है—गायत्री=२४६७; उष्णिक्=३४१; अनुष्टुप्=८५५; बृहती=१८१; पङ्क्ति=३१२; त्रिष्टुप्=४२५३; जगती=१३५८। इनका पूर्ण योग ९७६७ है। लगभग ३०० मन्त्र अति-जगती, शक्वरी; अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि आदि विविध छन्दों में निबद्ध हैं। एकपदा ऋचाएँ केवल ६ तथा नित्य द्विपदा १७ हैं। इस सूची पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि ऋग्वेद में सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द 'त्रिष्टुप्' है, जिसमें ऋचाओं का द्वि-पञ्चमांश निबद्ध है। इसके अनन्तर गायत्री है। गायत्री में ऋग्वेद का लगभग एक-चतुर्थ अंश है। जगती इसके भी अनन्तर आती है। अतः त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती—ये ही तीन वैदिक संहिताओं के महत्त्वपूर्ण देवादिप्रिय छन्द है।

वैदिक छन्दों का विभाजन

वेद में प्रयुक्त छन्दों में प्रायः लघु-गुरु-मात्राओं का अनुसरण नहीं किया जाता है। केवल अक्षरों की ही गणना की जाती है। फलतः समस्त वैदिक छन्द अक्षर-छन्द ही है। इनके दो मुख्य भेद हैं—

---

१. द्रष्टव्य—षड्गुरुशिष्य की पूर्वोक्त सूत्र की वृत्ति, पृ० ६३।

(१) केवल अक्षर-गणनानुसारी, तथा
(२) पादाक्षर-गणनानुसारी।

प्रथम प्रकार के छन्दों में केवल अक्षरगणना की जाती है। जिन छन्दों में पाद के विभाग की आवश्यकता नहीं रहती, वे केवल अक्षर-गणनानुसारी माने जाते हैं। द्वितीय प्रकार के छन्दों में अक्षरों के पादों में नियमत: विभक्त होने की व्यवस्था है, अर्थात् वहाँ पाद में स्थित अक्षरों की गणना पर आग्रह है। इसीलिए वे पादाक्षर-गणनानुसारी कहे जाते हैं। **'अक्षर'** का तात्पर्य यहाँ स्वर से है।

वैदिक छन्दों के मुख्य भेदों के विषय में एक मत नहीं है; परन्तु समस्त वैदिक छन्दों की संख्या २६ मानी गई हैं। इनमें आरम्भिक पाँच छन्द वेद में प्रयुक्त नहीं किये जाते। उन्हें छोड़ देने पर अवशिष्ट छन्दों को हम **तीन सप्तकों** में विभक्त कर सकते हैं। प्रयुक्त होने वाले छन्दों में गायत्री प्रथम छन्द है, जिसके प्रत्येक पाद में ६ अक्षर होते हैं। प्रथम सप्तक इसीलिए गायत्री से प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व के पाँच छन्द **'गायत्री-पूर्व-पञ्चक'** के नाम से विख्यात हैं। इसके नाम इस प्रकार है—

गायत्री-पूर्व पञ्चक छन्दों के नाम—मा (अक्षरसंख्या-४), प्रमा (अक्षरसंख्या-८), प्रतिमा (अक्षरसंख्या-१२), उपमा (अक्षरसंख्या-१६), समा (अक्षरसंख्या-३०)। ये नाम ऋक्प्रातिशाख्य (१७/१७) के अनुसार हैं। अन्य ग्रन्थों में इनसे भिन्न नाम हैं; यथा **भरतनाट्यशास्त्र** (१४/४६) इन्हें क्रमश: उक्त, अत्युक्त, मध्यम, प्रतिष्ठा, तथा सुप्रतिष्ठा नाम से पुकारता है।

(क) **प्रथम सप्तक** के सातों छन्दों के नाम सर्वत्र समान हैं। इसके नाम हैं—गायत्री (२४ अक्षर), उष्णिक् (२८ अ०), अनुष्टुप् (३२ अ०), बृहती (३६ अ०), पङ्क्ति (४० अ०), त्रिष्टुप् (४४ अ०) तथा जगती (४८ अ०)।

(ख) **द्वितीय सप्तक** के सातों छन्द **'अतिच्छन्द'** के नाम से प्रख्यात हैं। इनकी अक्षर-संख्या पूर्व की अपेक्षा चार अधिक होती है। यथा—

१—अतिजगती=५२ अक्षर, २—शक्वरी=५६ अ०, ३—अतिशक्वरी=६० अ०, ४—अष्टि=६४ अ०, ५—अत्यष्टि=६८ अ०, ६—धृति=७२ अ०, ७—अतिधृति=७६ अ०।

(ग) **तृतीय सप्तक** के ७ छन्दों के नाम इस प्रकार हैं—

१—कृति=८० अक्षर; २—प्रकृति=८४ अ०; ३—आकृति=८८ अ०; ४—विकृति=९२ अ०; ५—संकृति=९६ अ०; ६—अभिकृति=१०० अ०; ७—उत्कृति=१०४ अ०।

छन्दों की स्तुतिविषयता

उपर्युक्त सप्तकों के विभिन्न नाम भी मिलते हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र (१४/११३) में इनके नाम क्रमश: **दिव्य, दिव्येतर** तथा **दिव्यमानुष** दिये हैं। **अभिनवगुप्त**

ने इस नामकरण के कारण का संकेत अपनी 'अभिनव-भारती' में किया है। प्रथम सप्तक के छन्दों का प्रभूत प्रयोग देवों की स्तुति के अवसर पर किया जाता है। इसलिये इन्हें दिव्यनाम्ना पुकारते हैं। मनुष्यसम्बन्धी स्तुतियों में बहुशः प्रयुक्त होने के कारण द्वितीय सप्तक दिव्येतर अर्थात् मानव नाम से प्रसिद्ध है। दिव्य तथा मनुष्य उभय प्रकार के व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होने के कारण तृतीय सप्तक दिव्य-मानुष के नाम से प्रख्यात है।

लौकिक संस्कृत के छन्दों का विस्तार इन्हीं वैदिक छन्दों से हुआ है। संस्कृत के कवियों ने श्रुति-माधुर्य तथा संगीतमय आरोह-अवरोह को ध्यान में रखकर वैदिक छन्दों में अक्षरों के गौरव एवं लाघव को नियमबद्ध कर दिया है। अन्य लौकिक छन्दों के आविष्कर्ताओं का नाम लुप्त हो गया है, परन्तु अनुष्टुप् के आविष्कारक महर्षि **वाल्मीकि** की कथा प्रसिद्ध है। व्याध के बाणों से विद्ध क्रौञ्च को देखकर महर्षि का हृदयगत शोक श्लोक-रूप में परिणत हो गया तथा संस्कृत में मानुषकाव्य का प्रथम उद्भव इन पंक्तियों से हुआ—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

वैदिक त्रिष्टुप् से ही एकदशाक्षर छन्दों का, विशेषतः इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा का उदय हुआ है। जगती से द्वादशाक्षर छन्द वंशस्थ आदि की तथा सामगों की अत्यन्त प्रिय शक्वरी से वसन्ततिलका की उत्पत्ति हुई है। इसीप्रकार अन्य लौकिक छन्दों का भी उदय समझना चाहिये।

ऋग्वेद के छन्द

आचार्य शौनक तथा कात्यायन के मतानुसार ऋग्वेद में गायत्री से अतिधृति पर्यन्त १४ छन्दों का प्रयोग मिलता है[१]। यही मत ऋग्वेद के भाष्यकार वेंकटमाधव का है[२]। वह उक्त १४ छन्दों का प्रयोग ऋग्वेद में और उनसे इतर छन्दों का प्रयोग अन्य वेदों में मानते हैं। किन्तु ऋग्वेद में छन्दों के अन्वेषण से ज्ञात होता है कि उसमें गायत्री से धृति पर्यन्त १३ छन्द ही प्रयुक्त हुए हैं। अतिधृति छन्द की अक्षर-गणना ऋग्वेद के किसी भी मन्त्र से स्पष्ट प्राप्त नहीं होती। समस्त ऋग्वेद में केवल एक मन्त्र—स हि शर्धो-में ही अतिधृति छन्द माना जाता है। (ऋग्वेद १/१२७/६) इस मन्त्र में शौनक, कात्यायन, तथा वेंकटमाधव ने भी अतिधृति छन्द माना है।

---

१. सर्वा दाशतयीष्वेताः, उत्तरास्तु सुभेषजे।

(शौनक, ऋग्वेद-प्रातिशाख्य १६/८७, ८८)

२. चतुर्दशेत्थं कविभिः पुराणैः छन्दांसि दृष्टानि समीरितानि।
इयन्ति दृष्टानि तु संहितायामन्यानि वेदेष्वपरेषु सन्ति॥

(ऋग्भाष्यकार वेंकटमाधव)

किन्तु इसमें अतिधृति छन्द की वर्ण संख्या ७६ नहीं हैं, अपितु ६८ वर्ण है। तथापि इसमें व्यूहादि के द्वारा छन्दस्सम्पद् का अवकाश है।

ऋग्वेद में निम्नांकित १३ छन्द प्राप्त होते हैं। यद्यपि ये छन्द अनेक ऋचाओं में उपलब्ध है, तथापि उदाहरणार्थ यहाँ एक ही ऋचा का सन्दर्भ-सङ्केत निर्दिष्ट है—

१. गायत्री	(२४ वर्ण)	ऋग्वेद १/१/१।
२. उष्णिक्	(२८ वर्ण)	ऋग्वेद १/९२/१६।
३. अनुष्टुप्	(३२ वर्ण)	ऋग्वेद १/१०/७।
४. बृहती	(३६ वर्ण)	ऋग्वेद १/३६/७।
५. पङ्क्ति	(४० वर्ण)	ऋग्वेद १/११३/४।
६. त्रिष्टुप्	(४४ वर्ण)	ऋग्वेद १/२४/१।
७. जगती	(४८ वर्ण)	ऋग्वेद ९/८४/४।
८. अतिजगती	(५२ वर्ण)	ऋग्वेद ४/१/२।
९. शक्वरी	(५६ वर्ण)	ऋग्वेद ८/३६/१।
१०. अतिशक्वरी	(६० वर्ण)	ऋग्वेद १/१३७/१।
११. अष्टि	(६४ वर्ण)	ऋग्वेद १/१२७/१।
१२. अत्यष्टि	(६८ वर्ण)	ऋग्वेद १/१२७/६।
१३. धृति	(७२ वर्ण)	ऋग्वेद १/१३३/६।

किन्तु धृति में ७० वर्ण हैं, व्यूह द्वारा दो वर्णों की पूर्ति की जाती है। इनमें सर्वाधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय छन्द त्रिष्टुप् हैं, जिसके छन्दस्कार प्रजापति हैं। इसमें ऋचाओं का द्वि-पंचमांश निबद्ध है। यह ऋग्वेद का सर्वमुख्य छन्द है और छन्दों के उद्गारकों में सर्वप्रथम उद्गारक प्रजापति हैं। इसके बाद गायत्री का स्थान है, जिसमें ऋचाओं का प्रायः चतुर्थांश निबद्ध है, जिसके छन्दस्कार ब्रह्मा हैं। तदनन्तर जगती का स्थान है, जिसके छन्दस्कार प्रजापति हैं। इस प्रकार त्रिष्टुप्, गायत्री एवं जगती—ये तीन छन्द वैदिक संहिताओं के महत्त्वपूर्ण और यागप्रिय छन्द रहे हैं। इन तीन में से भी सर्वाधिक यागप्रिय छन्द त्रिष्टुप् है।

छन्दों की दैविकता

ऋग्वेद (१०/१३० सूक्त के चतुर्थ और पंचम मन्त्र) में जिन छन्दों का वर्णन है, वे प्रधानतः आधिदैविक तत्त्व हैं। आधिदैविक जगत् में गायत्र्यादि सप्तच्छन्द सूर्य की सप्तविध रश्मियाँ हैं और अग्नि, सविता आदि देव सूर्य के विभिन्न अवस्थाओं के नाम हैं, जिनसे तत्तद् रश्मियाँ प्रकट होती हैं। वाचिक छन्द इन्हीं आधिदैविक छन्दों के अनुकरण हैं। आधिदैविक जगत् में छन्द से छन्द की उत्पत्ति होती है। अध्यात्म में भी वाचिक छन्दों की उत्पत्ति का मूल इन्द्र अर्थात् जीवात्मा है[1]। यह

---

१. द्र० पं० युधिष्ठिर मीमांसक, वैदिक छन्दोमीमांसा पृ० ४४।

जीवात्मा बुद्धि के द्वारा सम्पूर्ण अर्थों को एकत्रित कर कहने की इच्छा से मन को नियुक्त करता है।[१] इसप्रकार चिन्मनोनिस्सृत वाणी को **छन्द** कहते हैं। ऋषियों ने गायत्री छन्द की उत्पत्ति अग्नि से, उष्णिक् की सूर्य से, अनुष्टुप् की सोम से, बृहती की बृहस्पति से, विराट् (पङ्क्ति) की मित्रावरुण से, त्रिष्टुप् की इन्द्र से और जगती की विश्वेदेव से मानी है। ये सातों छन्द वेद की चारों संहिताओं में मिलते हैं, जिनका दिग्दर्शन सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ है। अतः छन्दों का प्रथम दर्शन ऋग्वेद में सन्निहित है।

यजुर्वेद के छन्द

यजुर्वेद में गद्य और पद्य दोनों प्राप्त होते हैं।[२] किन्तु इसमें गद्य की प्रधानता है। गद्यछन्दों में अक्षरों का अवसान नियत (निश्चित) नहीं होता[३]। इसलिए कुछ विद्वान् यजुर्वेद में छन्द नहीं मानते, किन्तु छन्द के बिना किसी शब्द का प्रयोग भी नहीं होता।[४] अतः वैदिक छन्द गद्य-पद्यमय है।

इनमें एकाक्षरपाद से प्रारम्भ कर १०४ अक्षरयुक्त छन्द हैं। याजुष संहिताओं में अनेक छन्दोनामों के साथ, माच्छन्दः, प्रमाच्छन्दः, प्रतिमाच्छन्दः इत्यादि पाठ उपलब्ध होते हैं।[५] गायत्र्यादि सप्तच्छन्दों के पूर्व दैवी, यजुः, प्राजापत्या, आसुरी, साम्नी, आर्ची, आर्षी, ब्राह्मी आदि पदों को संलग्न कर छन्दोभेद प्राप्त होते हैं। इन छन्दों में वे सभी नियम प्रवर्तित होते हैं, जो ऋग्वेद के छन्दों में प्रचलित हैं। इनमें न्यूनाधिकाक्षर होने से उनके निचृत्, भुरिक्, विराट्, स्वराट् आदि अवान्तर भेद बनते हैं। इनमें भी त्रिपात्, अल्पीयमध्या, पिपीलिकमध्या, यवमध्यादि भेद होते हैं।

कतिपय आचार्यों के मत में यजुर्मन्त्रों में छन्द नहीं होते।[६] क्योंकि इनमें अक्षरों का नियम नहीं है और छन्द नियताक्षर होते हैं, इसलिये उनमें गायत्र्यादि

---

१. आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया (पाणिनीयशिक्षा)

२. शेषे यजुश्शब्दः (जैमिनि सूत्र २/१/३७)

३. अनियताक्षरपादावसानं यजुः (वैदिकच्छन्दःपर्यालोचनम्, पृ० १०) द्र०का०श्रौ०१/३/१ सरला वृत्ति

४. (अ) छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितम्। (भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र १४/४५); (आ) नाच्छन्दसि वागुच्चरति (आचार्य दुर्गकृत निरुक्त ७/२ की वृत्ति) छन्दोभूतमिदं सर्वं वाङ्मयं स्याद् विजानतः। (इ) नाच्छन्दसि न चापृष्टे शब्दश्चरति कश्चन (कात्यायनमुनिकृत ऋग्यजुष परिशिष्ट-५, श्रीधरशास्त्री वारे द्वारा संपादित 'कातीयपरिशिष्टदशकम्', पृ० ९२); (ई) छन्दोभाग्वाङ्मयं सर्वं न किञ्चिच्छन्दसा विना (जयकीर्त्तिकृत छन्दोऽनुशासन १/२)।

५. माध्यन्दिनीय संहिता१४/१८।

६. यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषां छन्दो न विद्यते (कात्यायनीय यजुःसर्वानुक्रमसूत्र १/१, पृ० ३)।

नियताक्षर-संख्यास्वरूप छन्दों का अभाव है।[१] जो आचार्य यजुर्मन्त्रों में छन्दोविधान मानते हैं, उनका मत है कि जो गायत्र्यादि सप्त आर्ष छन्द हैं, उन ऋषिच्छन्दों का चतुर्थ भाग यजुर्मन्त्रों का छन्दोरूप है।[२] उक्त छन्दों का एक पाद याजुष छन्द माना जाता है और सामवेद के छन्दों में दो पादों की गणना की जाती है तथा ऋचाओं में तीन पादवाले छन्द होते हैं,[३] अत: यजुर्वर्ग को एकोत्तर[४], **सामवर्ग** को द्व्युत्तर और ऋग्वर्ग को त्र्युत्तर तथा ब्राह्मवर्ग को षडुत्तर कहा गया है।

ऋग्वेद में प्राप्त छन्दों के अतिरिक्त यजुर्वेद में प्राप्त मुख्य छन्द तथा उनका एक-एक उदाहरणस्थल इसप्रकार है—

१. अतिधृति	(७६) वर्ण	यजुर्वेद मा० सं०	२२/५।
२. कृति	(८०) वर्ण	यजुर्वेद ,,	९/३२।
३. प्रकृति	(८४) वर्ण	यजुर्वेद ,,	१५/१६।
४. आकृति	(८८) वर्ण	यजुर्वेद ,,	१५/६४।
५. विकृति	(९२) वर्ण	यजुर्वेद ,,	१५/१५।
६. संकृति	(९६) वर्ण	यजुर्वेद ,,	२४/१-२।
७. अभिकृति	(१००) वर्ण	यजुर्वेद ,,	२६/१।
८. उत्कृति	(१०४) वर्ण	यजुर्वेद ,,	११/५८।

उपर्युक्त सभी गद्यप्रधान छन्द हैं, तथा छन्दोविस्तार की दृष्टि से छन्दोनियमबद्ध हैं।

सामवेद तथा अथर्ववेद के छन्द

सामगायकों का प्रिय छन्द शक्वरी माना जाता है। अथर्ववेद की प्रचलित शौनकशाखीय संहिता में सब ऋग्वेद के छन्द हैं। अत: समस्त वैदिक संहिताओं तथा साहित्य में प्राय: उन्हीं छन्दों का प्रयोग मिलता है, जो ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में प्रयुक्त २१ छन्द हैं तथा जिनका उल्लेख विभिन्न छन्द:शास्त्रीय ग्रन्थों में मिलता है।[५]

ऋक्प्रातिशाख्य, नाट्यशास्त्र, छन्द:सूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उपनिदानसूत्र तथा जयदेवीय छन्द:शास्त्रादि में गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २१ छन्दों के नाम एकप्रकार के मिलते हैं। किन्तु निदानसूत्र में गायत्री से जगती पर्यन्त प्रथम सप्तक के नामों को छोड़कर अतिजगती से उत्कृति पर्यन्त द्वितीय तथा तृतीय सप्तक के नामों में

---

१. द्र०देवयाज्ञिक, यजु:सर्वानुक्रमसूत्र १/१ का भाष्य, पृ० ३।
२. तत्पादस्तेषामृषिच्छन्दसां चतुर्थभागो यजुषां छन्दो वेदितव्यम् (यजु: सर्वानुक्रमसूत्र, पृ० ४)।
३. तत्पादो यजुषां छन्द: साम्नां तु द्वावृचां त्रय: (पृ० ४)
४. एकोत्तरो यजुर्वर्ग: साम्नां वर्गस्तु द्व्युत्तर:।
ऋचां तु त्र्युत्तरो वर्गो ब्रह्मवर्ग: षडुत्तर:॥ (यजु:सर्वानुक्रमसूत्र, पृ० ४)।
५. पातञ्जल निदानसूत्र १/१, २, शौनकीय-ऋक्प्रातिशाख्य १६/१, ५३-५७, पिङ्गल छन्द:सूत्र।

भिन्नता है। **निदानसूत्र** में द्वितीय सप्तक के नाम क्रमशः—विधृति (५२ वर्ण), शक्वरी (५६ वर्ण), अष्टि (६० वर्ण), अत्यष्टि (६४ वर्ण), अंह (६८ वर्ण), सरित् (७२ वर्ण), सम्पा (७६ वर्ण) हैं और तृतीय सप्तक के नाम क्रमशः—सिन्धु (८० वर्ण), सलिल (८४ वर्ण), अम्भः (८८ वर्ण), गगन (९२ वर्ण), अर्णव (९६ वर्ण), आपः (१०० वर्ण), समुद्र (१०४ वर्ण) प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट है कि निदानसूत्र के गायत्री से जगती-पर्यन्त प्रथम सप्तक के नामों के अतिरिक्त द्वितीय और तृतीय सप्तक के विधृति से समुद्र पर्यन्त उक्त नामों को परवर्ती छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थों में मान्यता नहीं मिली और आचार्य **शौनक** के प्रसिद्ध ऋक्प्रातिशाख्य में द्वितीय तथा तृतीय सप्तक के निर्दिष्ट नामों को मान्यता मिली है एवं ये आज तक उसी स्थिति में प्रचलित हैं।

ऋग्वेद और यजुर्वेद में प्राप्त छन्दों के अतिरिक्त **अथर्ववेद** में प्राप्त कतिपय विशेष छन्द इसप्रकार हैं—

१. उक्ता	(४ वर्ण)	अथर्ववेद २०/१२९/८।
२. अत्युक्ता	(८ वर्ण)	अथर्ववेद २०/१२९/१।
३. मध्या	(१२ वर्ण)	अथर्ववेद २०/१२९/१३।
४. प्रतिष्ठा	(१६ वर्ण)	अथर्ववेद २०/१३१/५ (पूर्वार्ध)।
५. सुप्रतिष्ठा	(२० वर्ण)	अथर्ववेद २०/१३४/२।

उपर्युक्त प्राग्गायत्री पञ्चक के इन ५ छन्दों के नाम पातञ्जल निदानसूत्र में[१] क्रमशः कृति, प्रकृति, संकृति, अभिकृति, आकृति तथा शौनक के ऋक्प्रातिशाख्य में[२] क्रमशः मा, प्रमा, प्रतिमा, उपमा एवं समा मिलते हैं। इनका मूल यजुर्वेद में[३] **माच्छन्दः, प्रमाच्छन्दः, प्रतिमाच्छन्दः** के रूप में प्राप्त होता है। किन्तु भरत के **नाट्यशास्त्र** और पिङ्गल के छन्दःसूत्र में[४] उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा तथा सुप्रतिष्ठा नाम मिलते हैं। यही परवर्ती छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थों में सम्प्रति प्रचलित हैं। किन्तु इन नामों से वेदों में इनके उदाहरण नहीं मिलते, क्योंकि इनका अन्तर्भाव गायत्र्यादि प्रथमसप्तक के दैवासुर छन्दों में प्राप्त होता है।[५]

---

१. निदानसूत्र १/२/५ (पृष्ठ ८)

२. ऋक्प्रातिशाख्य १७/११।

३. मा० सं० १४/१८।

४. नाट्यशास्त्र, अध्याय-१५, छन्दःसूत्र के भास्करराय द्वारा स्वीकृत पाठ में ४/१०-१२ सूत्र।

५. उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा का अन्तर्भाव क्रमशः दैवीबृहती, प्राजापत्या गायत्री, साम्नीगायत्री, प्राजापत्यानुष्टुप्, साम्नी पङ्क्ति में क्रमशः अथर्ववेद—२०/१२९/८, २०/१२९/१, २०/१२९/१३, २०/१३१/५ का पूर्वार्द्ध और २०/१३४/२ में हो गया है।

अत: इसप्रकार कुल २६ छन्द होते हैं, जिनका क्रम छन्द:सूत्र से **वाग्वल्लभ** पर्यन्त छन्द:शास्त्रीय ग्रन्थों में उक्ता (उक्था) से उत्कृति तक प्राप्त होता है। इन २६ वैदिक छन्दों में से उक्ता से सुप्रतिष्ठा तक प्राग्गायत्री पञ्चक के ५ छन्दों के गायत्र्यादि प्रथम सप्तक के दैवासुर छन्दों में अन्तर्भाव होने के कारण गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २१ वैदिक छन्दों के उदाहरण चारों वेदों में प्राप्त होते हैं, जिनके विभिन्न २६१ प्रभेद मिलते हैं।

सप्तकत्रय के वैदिक छन्द और उनके भेद

वैदिक छन्दों में तीनों सप्तकों के प्रभेदों के अनेक उदाहरण संहिता-ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। परन्तु परिचय की दृष्टि से यहाँ एक-एक उदाहरणस्थल प्रस्तुत हैं।

(१) गायत्री के भेद-उदाहरणस्थल–

ऋग्वेद में— गायत्री १/१/१-९।
निचृद् गायत्री १/२/६।
पिपीलिकमध्या निचृद् गायत्री १/२/१, २।
विराड् गायत्री १/४/३।
पादनिचृद् गायत्री १/५/८।
प्रतिष्ठा गायत्री १/८/२।
वर्धमाना गायत्री १/८/१०।
यवमध्या विराड् गायत्री १/१७/२।
भुरिगार्ची गायत्री १/१७/५।
पिपीलकमध्या विराड् गायत्री १/९०/३।
आर्षी गायत्री १/१३३/५।
त्रिपाद् गायत्री २/७/४।
यवमध्या गायत्री ५/७९/१।
ब्राह्मी गायत्री ६/४६/६।
त्रिपदा विराड् गायत्री ७/१/१-१८।
आर्ची गायत्री ७/३४/३, ४, १७।
निचृत्त्रिपाद् गायत्री ६/३४/६-११।
आर्षी निचृद् गायत्री ७/९४/१३, ८, १०।
आर्ची विराड् गायत्री ८/२/७, ८, १०।
आर्ची स्वराड् गायत्री ८/५/२६।
भुरिग् गायत्री ८/३२/१८, ३०।
ककुम्मती गायत्री ८/४३/१४।
स्वराड् गायत्री ८/४३/१४।
आर्ची स्वराड् गायत्री ९/१०९/२-६, ९, ११-१२, १९, २२।

यजुर्वेद में— द्विपदा विराड् गायत्री २०/१९।

अथर्ववेद में— याजुषी गायत्री ८/१०/२, ३।
आसुरी गायत्री ९/६/१(५)
प्राजापत्या गायत्री ९/६/६(४)
साम्नी गायत्री १५/३/७।

(२) उष्णिक् के भेद-उदाहरणस्थल-

ऋग्वेद में— आर्च्युष्णिक्—१/५/२।
पुर उष्णिक्—१/२३/१९।
भुरिगुष्णिक्—१/४५/१।
निचृदार्ष्युष्णिक्—१/७९/५, ६।
परोष्णिक्—१/९१/१७।
निचृत्परोष्णिक्—१/९२/१३।
विराट्परोष्णिक्—१/९२/१४-१५।
उष्णिक्—१/९२/१६-१८।
स्वराट् ककुबुष्णिक्—१/१२०/३।
विराडार्ष्युष्णिक्—१/१२०/६।
ब्राह्म्युष्णिक्—१/१६९/४।
स्वराडुष्णिक्—१/१९१/३७।
विराडुष्णिक्—१/१९१/१३।
निचृदुष्णिक्—३/१०/४, ६, ७. ८।
निचृदार्च्युष्णिक्—७/५६/११।
आर्ची स्वराडुष्णिक्—८/१२/३३।
पादनिचृदुष्णिक्—८/१५/९, १०।
भुरिगार्ची विराडुष्णिक्—८/१९/५, १९, ३०।
ककुम्मत्युष्णिक्—८/९८/२, ६।
पिपीलकमध्योष्णिक्—१०/१०५/१।
आर्ष्युष्णिक्—१/७९/४।
ककुबुष्णिक्—८/९/५।

यजुर्वेद में— याजुष्युष्णिक्—मा०सं० ६/२१ तथा ८/२३।

अथर्ववेद में— साम्न्युष्णिक्—८/१०/४ (७, ११)
आसुर्युष्णिक्—९/६/६ (१४)
प्राजापत्योष्णिक्—१२/५/५४-५५।

(३) अनुष्टुप् के भेद-उदाहरणस्थल-

ऋग्वेद में— विराडनुष्टुप्—१/१०/१, ३, ५, ६।
निचृदनुष्टुप्—१/१०/८।
अनुष्टुप्—१/१०/७-९।
भुरिगनुष्टुप्—१/३६/१, १२।
आर्ष्यनुष्टुप्—१/१२०/४।
स्वराडार्ष्यनुष्टुप्—१/१२०/७।
स्वराडनुष्टुप्—१/१३३/४।
निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप्—१/१९१/१०, ११।
विराड्ब्राह्म्यनुष्टुप्—१/१९१/१२।
महापदपंक्त्यनुष्टुप्—४/१०/५।
पादनिचृदनुष्टुप्—७/१०४/२५।
आर्षी निचृदनुष्टुप्—८/५/३९।
आर्षी विराडनुष्टुप्—८/८/४७, ८, १०।
आर्च्यनुष्टुप्—८/९/१६।
आर्ची भुरिगनुष्टुप्—८/१०/३।
आर्ची स्वराडनुष्टुप्—९/९८/८।
ककुम्मत्यनुष्टुप्—१०/२६/३।

यजुर्वेद में— ब्राह्म्यनुष्टुप्—३/४८।
भुरिक्प्राजापत्यानुष्टुप्—६/१२।

अथर्ववेद में— साम्न्यनुष्टुप्—८/१०/३, ९।
प्राजापत्यानुष्टुप्—९/६/४ (१, ३)
आसुर्यनुष्टुप्—११/३/१ (१७)
याजुष्यनुष्टुप्—१२/५/४०।

(४) बृहती के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— निचृत्पथ्या बृहती—१/३६/३,११।
निचृद् बृहती—१/३६/५,१६।
भुरिग् बृहती—१/३६/६।
बृहती—१/३६/७।
स्वराड् बृहती—१/३६/८।
निचृदुपरिष्टाद् बृहती—१/३६/९।
उपरिष्टाद् बृहती—१/३६/१३।
विराट्पथ्या बृहती—१/३६/१५।

विराडुपरिष्टाद् बृहती—१/३६/१७।
पथ्या बृहती—१/३६/१९।
महाबृहती—१/१०५/१३।
साम्नीभुरिग्बृहती—५/२४/१, २।
सतो बृहती—५/६१/९।
प्राजापत्या बृहती—६/१०/७।
ब्राह्मी बृहती—६/१५/१५।
आर्चीस्वराड् बृहती—७/६६/१२।
आर्षीभुरिग्बृहती—७/९६/१।
आर्षीविराड बृहती—७/६६/१४।
आर्षी बृहती—७/९६/२।
आर्चीभुरिग्बृहती—७/९६/१।
आर्षीस्वराड् बृहती—८/१/१४।
शंकुमती बृहती—८/१/१३।
निचृदासुरी स्वराड् बृहती—८/१/२८।
ककुम्मती बृहती—८/३/१।
आसुरी बृहती—८/१७/४।
पादनिचृद् बृहती—८/६०/३, ५।
विराड् बृहती—८/६०/९, १३, १७।
उरोबृहती—१०/८५/३४।
न्यंकुसारिणी बृहती—१०/९३/११।
महासतोबृहती—१/१३२/७।
उपरिष्टाज्ज्योतिर्बृहती—१०/१५०/४, ५।

यजुर्वेद में— पिपीलिकमध्या बृहती—१७/६७।
स्वराड्ब्राह्मी बृहती—७/२६।

अथर्ववेद में— पुरस्ताद्बृहती—८/२/१२।
दैवी बृहती—२०/१२९/८, ९,
याजुषी बृहती—२०/१३०/७।

(५) पङ्क्ति के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— पङ्क्ति—१/२९/१-७।
भुरिक् पङ्क्ति—१/३३/१४।
निचृत्सतः पङ्क्ति—१/३६/२।
निचृद्विष्टारपङ्क्ति—१/३६/१०, १४।

विष्टारपङ्क्ति—१/३६/१८।
सत: पङ्क्ति—१/३६/२०।
विराट्सत: पङ्क्ति—१/३९/२, ८, १०।
विराड्विष्टारपङ्क्ति—१/४४/१०।
आर्षीभुरिक् पङ्क्ति—१/६२/३/७, ८।
विराट् पङ्क्ति—१/६३/३।
निचृत् पङ्क्ति—१/६५/१-३।
याजुषी पङ्क्ति—१/७०/६।
निचृदास्तारपङ्क्ति—१/८०/१, ११।
विराडास्तारपङ्क्ति—१/८२/२, ३, ५।
आस्तारपङ्क्ति—१/८४/११।
स्वराट् पङ्क्ति—१/९१/१, ३, ४।
आर्षी पङ्क्ति—२/४/२, ३, ५।
आसुरी पङ्क्ति—६/४४/६।
साम्नी पङ्क्ति—६/१७/५।
आर्षी निचृत् पङ्क्ति—८/९/१०।
आर्चीभुरिक् पङ्क्ति—८/१०/४।
आर्चीस्वराट् पङ्क्ति—८/१९/२३, २४।
पादनिचृत् पङ्क्ति—८/६४/१०/१६।
संस्तारपङ्क्ति—९/९/५/२।
आर्ची पङ्क्ति—१०/२१/६।
शंकुमती पङ्क्ति—१०/२४/३।
आर्षीविराट् पङ्क्ति—१०/२४/७, ९।
अक्षरपङ्क्ति—१०/९३/९।
महापङ्क्ति—१०/१३३/४-६।

यजुर्वेद में— स्वराड्ब्राह्मी पङ्क्ति—१०/२।
स्वराडार्षी पङ्क्ति—१२/१११।
विराड्ब्राह्मी पङ्क्ति—५/६/८।

अथर्ववेद में— प्रस्तारपङ्क्ति—८/१/४।
प्राजापत्या पङ्क्ति—८/१०/३/५, ७।
निचृत्प्रस्तारपङ्क्ति—८/३/१७।
साम्नीनिचृत् पङ्क्ति—९/६/१(१३)
भुरिक्प्रस्तारपङ्क्ति—१०/१/१७।

दैवी पङ्क्ति—११/३/४१।
विराट्प्रस्तारपङ्क्ति—१४/१/१४।
पदपङ्क्ति—१५/२/७, २७।
विराट्साम्नी पङ्क्ति—२०/१३४/४।

(६) त्रिष्टुप् के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— त्रिष्टुप्—२/२४/१, २, ६।
निचृत् त्रिष्टुप्—१/३३/१/२४।
विराट् त्रिष्टुप्—१/३३/५, ७, ११।
भुरिक् त्रिष्टुप्—१/३४/९।
आर्ची त्रिष्टुप्—१/४०/३, ७।
आर्चीविराट् त्रिष्टुप्—१/६२/१, ४६।
आर्चीनिचृत् त्रिष्टुप्—१/६२/२, ५, ९।
स्वराट् त्रिष्टुप्—१/९४/६।
ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्—३/१/२२।
साम्नी त्रिष्टुप्—६/१६/१२, १६।
आर्षी त्रिष्टुप्—७/३४/२३।
साम्नीनिचृत् त्रिष्टुप्—७/६८/२, ३।
साम्नीभुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप्—७/६८/४७।
आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप्—७/६९/३।
याजुषीविराट् त्रिष्टुप्—७/१०२/१।
आर्चीभुरिक् त्रिष्टुप्—८/११/१०।
पादनिचृत् त्रिष्टुप्—८/५७/४।
आसुरी त्रिष्टुप्—१०/२०/१।
आसुरी स्वराडार्ची निचृत् त्रिष्टुप्—१०/९९/४।
द्विपदा त्रिष्टुप्—१०/१५७/१-५।

यजुर्वेद में— विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्—११/६६।
ब्राह्मी त्रिष्टुप्—१५/७।
भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप्—१५/११।
आर्षी विराट् त्रिष्टुप्—१०/७।
आर्षी स्वराट् त्रिष्टुप्—८/७७।
ब्राह्मी स्वराट् त्रिष्टुप्—१/१६।
निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप्—१०/३२।

अथर्ववेद में— प्राजापत्या त्रिष्टुप्—८/१०/३(४)
याजुषी त्रिष्टुप्—९/६/१(८)

पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्—११/५/१५ ।
दैवी त्रिष्टुप्—१९/१२/१२-१३ ।
एकपात् त्रिष्टुप्—५/१६/१-९ ।
मध्येज्योति: त्रिष्टुप्—७/७५/२ ।

(७) जगती के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— जगती—१/१३/१-७ ।
विराड्जगती—१/३४/१६ ।
निचृज्जगती—१/३४/२, ३ ।
भुरिग्जगती—१/५३/२ ।
आर्षीभुरिग्जगती—१/६३/५ ।
स्वराड्ब्राह्मीजगती—१/१३३/६ ।
स्वराड्जगती—४/५३/४ ।
आर्ची जगती—६/४७/२ ।
आर्चीभुरिगजगती—७/८२/३ ।
आर्षीविराड्जगती—७/८२/४-५ ।
आर्षीजगती—७/८३/७, ८ ।
पादनिचृज्जगती—७/८९/५ ।
पुरस्ताज्ज्योतिर्जगती—८/३५/२३ ।
ककुम्मतीजगती—८/९७/१५ ।
आर्चीस्वराड्जगती—९/८५/८ ।
आसुरीस्वराडार्चीनिचृज्जगती—१०/७६/५ ।
उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती—१०/१५०/४ ।
उपरिष्टाज्ज्योतिर्निचृज्जगती—१०/१५०/५ ।

यजुर्वेद में— निचृद्ब्राह्मीजगती—१५/१२ ।

अथर्ववेद में— याजुषी जगती—८/१०/२, ४ ।
साम्नी जगती—८/१०/४ (१, ४)
आसुरी जगती—९/७/१८, २२ ।
दैवीजगती—११/३/४७ ।
प्राजापत्या जगती—१५/४/३, १२ ।
एकपदा जगती—१५/१६/१० ।
मध्येज्योतिर्जगती—११/४/२१ ।

(८) अतिजगती के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— अतिजगती—४/१/२ ।

निचृदतिजगती—५/२/१२।
भुरिगतिजगती—६/२/११।
विराडतिजगती—८/३७/१।
यजुर्वेद में— आर्षीनिचृदतिजगती—१३/१३।
नि० भुरिगतिजगती—१८/७।
स्वराडतिजगती—२८/१०।

(९) शक्वरी के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— शक्वरी—८/३६/१, ५, ६।
निचृच्छक्वरी—१/१३७/१।
स्वराट्शक्वरी—१/१२९/८, ९।
विराट्शक्वरी—१/१३७/२।
पादनिचृच्छक्वरी—१०/११५/९।
यजुर्वेद में— भुरिक्शक्वरी—३४/५१।

(१०) अतिशक्वरी के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— निचृदतिशक्वरी—१/१३७/१।
भुरिगतिशक्वरी—१/१२७/१०।
स्वराडतिशक्वरी—१/१२९/७।
यजुर्वेद में— अतिशक्वरी—२८/३४।

(११) अष्टि के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— अष्टि—१/१२७/१, २, ३।
भुरिगष्टि—१/१२७/४, ७, ११।
निचृदष्टि—१/१२८/१, ५, ७।
स्वराडष्टि—१/१३०/२-३, ६, ९।
विराडष्टि—१/१३३/७।

(१२) अत्यष्टि के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— अत्यष्टि—१/१२७/५, ६।
निचृदत्यष्टि—१/१२८/१।
विराडत्यष्टि—१/१२८/३, ४, ६, ८।
स्वराडत्यष्टि—१/१३६/१, ३, ५, ६।
भुरिगत्यष्टि—१/१३९/४, ९।

(१३) धृति के भेद-उदाहरणस्थल—

ऋग्वेद में— धृति—१/१३३/६।

यजुर्वेद में— धृति ९/९।
निचृद्धृति—९/१९।
भुरिग्धृति—१०/५।
स्वराड्धृति—२५/४।
विराड्धृति—३०/१७।

(१४) अतिधृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— अतिधृति—२२/५।
स्वराडतिधृति—९/१२।
नि० भुरिगतिधृति—१३/५५।
भुरिगतिधृति—१५/१८।
निचृदतिधृति—१६/१७।

(१५) कृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— कृति ९/३२।
भुरिक्कृति—९/४।
स्वराट्कृति—१०/८।
विराट्कृति—१५/१७।
निचृत्कृति—१५/१९।

(१६) प्रकृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— प्रकृति—१५/१६।
भुरिक्प्रकृति—११/२८।
स्वराट्प्रकृति—१६/४६।
विराट्प्रकृति—२९/६०।
निचृत्प्रकृति—३०/१८।

(१७) आकृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— आकृति—१५/६४।
भुरिगाकृति—१०/४।
विराडाकृति—१३/५८।
निचृदाकृति—१४/७।

(१८) विकृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— विकृति—९/३६।
स्वराड्विकृति—१०/४।
भुरिग्विकृति—१४/२४।
निचृद्विकृति—१४/२८।

(१९) संकृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— स्वराट्संकृति—१०/४।
भुरिक्संकृति—२४/१।
निचृत्संकृति—२४/२।

(२०) अभिकृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— अभिकृति—१०/३।
भुरिगभिकृति—१५/५।
विराडभिकृति—१५/६।
निचृदभिकृति—२५/८।

(२१) उत्कृति के भेद-उदाहरणस्थल—

यजुर्वेद में— उत्कृति—११/५८।
विराडुत्कृति—९/१०।
निचृदुत्कृति—९/३५।
स्वराडुत्कृति—१४/१५।
भुरिगुत्कृति—१४/१६।

उपर्युक्त २१ वैदिक छन्दों और उनके विभिन्न (प्राय: २६१) भेद-प्रभेदों के पर्यवेक्षण से सुस्पष्ट है कि वेद छन्दों-विस्तार के मूलाधार हैं। उक्त २१ वैदिक छन्द लौकिक छन्दों के भी मूल हैं, जो प्राग्गायत्री-पञ्चक को मिलाकर उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ माने जाते हैं।

वैदिक-साहित्य के अतिरिक्त जो छन्द संस्कृतभाषा के लौकिक व्यवहार में आये, उन्हें **लौकिक छन्द** कहा गया। वैदिक छन्दों की गति आर्ष है और लौकिक छन्दों की नियमित गति है। अत: वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिक छन्द विशेष नियमों में निबद्ध है। वाल्मीकीय रामायण से पूर्व वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रन्थों में वैदिक छन्दों का प्रयोग है, किन्तु वैदिक ग्रन्थों के बाद वाल्मीकीय रामायण से प्रारम्भ कर **महाभारत, जाम्बवतीजयादि** ग्रन्थों में लौकिक छन्दों का प्रयोग मिलता है, जिनका आविष्कार ऋग्वेदीय छन्दों से हुआ है। ये मात्रिक छन्द विभिन्न अक्षरों में विकसित होकर भास और कालिदास की रचनाओं से लेकर अद्यावधि संस्कृत-काव्यों में प्रयुक्त हो रहे हैं।

वैदिक छन्दोविधान का आदिकाव्य में विस्तार

महर्षि वाल्मीकि लौकिक संस्कृत-भाषा के आदिकवि माने जाते हैं। जब वैदिक छन्दों की गति लौकिक लय में व्याप्त होने लगी, तब वैदिक संस्कृतभाषा के प्रमुख छन्द गायत्री का अग्रिम रूप अनुष्टुप् लोकभाषा (संस्कृत) में अपनी गति

पकड़ने लगा जो ऋग्वेद के दशम मण्डल में प्रयुक्त अनुष्टुप् से[1] उत्तरोत्तर अथर्ववेद में प्रकाशित[2] होकर वाल्मीकीय रामायण में दृष्टिगत होता है।[3] अनुष्टुप् का प्रयोग लौकिक संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में पूर्ण रूप से प्राप्त है। अतः ऋग्वेद के बाद लौकिक संस्कृत में सर्वप्रथम छन्दस्कार के रूप में रामायण के रचयिता महर्षि **वाल्मीकि** का स्मरण किया जाता है तथा लौकिक संस्कृत छन्दों में अनुष्टुप् को सर्वप्रथम छन्द माना जाता है।[4] वैदिक ऋचाओं में जो स्थान त्रिष्टुप् को प्राप्त है, लौकिक संस्कृत में वही स्थान अनुष्टुप् छन्द को उपलब्ध है। यह वैदिक गायत्री का चतुष्पाद अग्रिम रूप है।

जिसप्रकार महर्षिवाल्मीकिकृत लौकिक संस्कृत का आदिकाव्य रामायण और महर्षि कृष्णद्वैपायन-व्यासकृत **महाभारत** संस्कृत काव्यों तथा नाटकों के उपजीव्य हैं, उसी प्रकार लौकिक संस्कृत छन्दःशास्त्र-विषयक रचनाओं के लिए भी ये आर्षकाव्य विभिन्न छन्दो-धाराओं के प्रवाहित करने के कारण उपजीव्य हैं। रामायण और महाभारत में अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं, जिनमें प्रयुक्त यत्र-तत्र अनेक पद्य छन्दों के नियमों से अनियन्त्रित हैं तथा अभी तक भरत-पिङ्गल आदि दुःखभंजन पर्यन्त छन्दो-लक्षणकारों के लक्षणग्रन्थों में भी लक्षित नहीं हो सके हैं।[5] इन्हें लक्षित करने के लिये वैदिक लक्षणग्रन्थों से साहाय्य मिलता है। इसके अतिरिक्त छन्दःसूत्रादि

---

१. यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति, देवेभ्यश्च पितृभ्य आ॥ (ऋग्वेद १०/१६/११)।

२. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ (अथर्ववेद १/१/१)।

३. समुद्रं लंघयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम्।
गतिं हनुमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा॥ (वाल्मीकीय-रामायण-युद्धकाण्ड—९/११)।

४. द्र० शोकः श्लोकत्वमागतः,
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

५. **वाल्मीकीय रामायण**—बालकाण्ड—१९/२२, २१/२२
अयोध्याकाण्ड—४६/३४, ११६/२५, २६
अरण्यकाण्ड—३३/२३, ४०/२७, ४७/५०
किष्किन्धाकाण्ड—६/२६, २७, ५६/१७
सुंदरकाण्ड—१२/३
युद्धकाण्ड—११/३०, ८५/३६, १०९/६८, २९/३८, ९५/१७, ५७/२१

महाभारत द्रोणपर्व—२/२५, १८२/१०
कर्णपर्व—७/७, ७०/२०
शान्तिपर्व—१०९/५०, २४०/३५
अनुशासनपर्व—२६/८२-१००, ७१/५५, ७३/११-४५।

छन्दोग्रन्थों में जिन छन्दों के लक्षण मिलते हैं, उनमें **रामायण** और **महाभारत** में प्रयुक्त कुछ निम्नांकित छन्द इस कोटि के हैं, जो भास, कालिदास आदि महाकवियों की रचनाओं और अनेक छन्दोग्रन्थों से पूर्व ही प्रयुक्त हो चुके हैं।

लौकिक-काव्यों में सर्वप्रथम वाल्मीकीय रामायण में इन वक्ष्यमाण छन्दों का प्रयोग मिलता है—अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मृगेन्द्रमुख, इन्द्रवंशा, रुचिरा, प्रहर्षिणी, वैश्वदेवी, मालिनी, भुजङ्गप्रयात, वसन्ततिलका, उपजाति, पुष्पिताग्रा और अपरवक्त्र।[१] महाभारत में भी उक्त छन्दों के अतिरिक्त निम्नांकित छन्दों का और प्रयोग मिलता है—प्रभावती, शालिनी, द्रुतविलम्बित, शार्दूल-विक्रीडित, रथोद्धता, प्रहरणकलिता, आर्या और उपगीति।[२]

इसके अतिरिक्त रामायण में कतिपय ऐसे वृत्तों की एक या दो पंक्तियाँ ही पद्यों में प्राप्त होती है, जो छन्दोग्रन्थों में निम्नांकित नामों से लक्षित हैं—परिमितविजया, मालती, समुद्रिका, असम्बाधा, विधारिता, कुसुम्भिनी, वातोर्मी, अशोकपुष्पक, विमला, विश्वराट्, सहजा, वधिरा, सीधु विराट् और वियोगिनी।[३]

---

१. **वाल्मीकिकृत रामायण**— बालकाण्ड—१/१
अयोध्याकाण्ड—२१/५८, ५/२६
युद्धकाण्ड—१०२/५५
सुंदरकाण्ड—५४/४३/७/१७
अयोध्याकाण्ड—७९/१७
सुंदरकाण्ड—६५/२८
युद्धकाण्ड—४०/२९-३०, ७७/२४
उत्तरकाण्ड—८/२८, ९६, ९८
अरण्यकाण्ड—६२/२०, २/२६

२. **महाभारत**, आदिपर्व—१९/२२, ३१, ५८/२१
द्रोणपर्व—१८४/४७-४८
कर्णपर्व—९०/४२
शान्तिपर्व—१९४/६०, ३४६/१८
अनुशासनपर्व—१४/१८२-१८४, १८७, १९१।

३. **वाल्मीकीय रामायण**— बालकाण्ड—२/४३/१, २१/२२/२
अयोध्याकाण्ड—२०/५५/१, ३, ११६/२५, ३-४
अरण्यकाण्ड—३३/२३/१
सुंदरकाण्ड—७/१५/१
युद्धकाण्ड—११/३०/४, १०९/६८/१
उत्तरकाण्ड—५५/२१/१, २, ३, ४, ५७/२१/१, २, ४, ६/२४/२, ४, ९५/१७/२, ६१/२४/३-४।

लौकिक-छन्दों के विकास की परम्परा

कतिपय विद्वानों का यह कथन युक्तिसंगत नहीं है कि लौकिक-छन्दों के उद्भव और विकास की परम्परा अज्ञात है अथवा अस्पष्ट है,[१] तथा लौकिक एवं वैदिक छन्दों में मौलिक भिन्नता है। वस्तुतः वैदिक ऋचायें ही इन मात्रिकछन्दों का उद्भवस्रोत है।[२]

वैदिकऋचाओं के स्वाध्याय में श्रुतिमाधुर्य तथा अक्षर-मात्राविन्यास से ज्ञान एवं प्रेरणा प्राप्त करते हुए परवर्ती आचार्यों ने विविध मात्रावृत्तों एवम् अन्य लौकिक छन्दों का लक्षणोपदेश किया है तथा छन्दःशास्त्र का निरन्तर विस्तार किया है। अनेक लौकिक छन्दों के स्रोतोभूत मन्त्रभाग भी वैदिक संहिताओं में दृष्टिगोचर होते हैं। कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

लौकिक छन्द	**वैदिक उदाहरण**
प्रमाणी	— हृदिस्पृगस्तु शन्तमः (ऋ० १/१६/७)
इन्द्रवज्रा	— पूषणवते ते चकृमा करम्भम् (ऋ० ३/५२/७)
उपजाति	— अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः (ऋ० १/२४/१०)
शालिनी	— इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूत् (ऋ० ७/१०४/७)
वातोर्मी	— आ देवानामभवः केतुरग्ने (ऋ० ३/१/१७)
वंशस्थ	— रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवः (ऋ० १/१०६/१)
इन्द्रवंशा	— यूना ह सन्ता प्रथमं विजज्ञतुः (ऋ० ९/६८/५)
नराच (पञ्चचामर, मत्तचेष्टित, प्रमाणिका)	— अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर (ऋ० १/१०/३)

इसीप्रकार अन्य भी अनेक छन्दों के उदाहरण वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध होते हैं। अनेक वर्णच्छन्दों के मूलस्वरूप ऋग्वेदीय ऋचाओं के पादों में भी दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणार्थ कतिपय मन्त्रांश प्रस्तुत हैं—

गायत्रीजाति (षडक्षरपाद)

मालिनी	(भ र-ना०शा० ३२/७८)	ब्रह्म च नो वसो (ऋ० १/१०/४)
जला	(त र-ना०शा० ३२/८८)	(अ)र्चन्त्यर्कमर्किणः (ऋ० १/१०/१)
रम्या	(म य-ना०शा० ३२/९०)	युञ्जन्त्यस्य काम्या (ऋ० १/६/२)
नीलतोया	(र म-ना०शा० ३२/९८)	हव्यवाड् जुह्वास्यः (ऋ० १/१२/६)

---

१. द्र० वेदाङ्ग, पृ० ४९१ (डा० कुन्दनलाल शर्मा) तथा संस्कृतशास्त्रों का इतिहास, पृ० २८५।

२. द्र०तै०सं० ६/२/७ एकस्मादक्षरादनाप्तं प्रथमं पदम्, तथा ऋ० १०/१४/१६–सर्वा ता यम आहिता–में छन्दों की मात्रा हेतु स्त्रीलिङ्ग का निर्देश।

उष्णिग्जाति (सप्ताक्षरपाद)

कुमारललिता		स चैषु सवनेष्वा (ऋ० १/९/३)

पङ्क्तिजाति (दशाक्षरपाद)

ललिता	(त भ ज र)	यस्तातृषाण उभयाय जन्मने (ऋ० १/३१/७)
विधारिता	(ज ज ज र)	पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः (ऋ० १/३१/४)
गोपाल	(पद्मावर्त वृ०मौ० २/१२५)	अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तम् (ऋ० १/१२७/१)

त्रिष्टुब्जाति (एकादशाक्षरपाद)

लयग्राही	(त त त ग ग)	मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः (ऋ० १/२७/१३)
सेनिका	(ज र ज ग ल)	अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय (ऋ० १/२४/१५)
ईहामृगी	(त भ त ग ग)	अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम् (ऋ० १/२४/२)
सौभगकला	(भ ज स ल ग)	भेषजमपामुत प्रशस्तये (ऋ० १/२३/१९)
उद्यत	(त न र ल ग)	अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् (ऋ० १/२३/१९)
उपेन्द्रवज्रा		वयश्चनामी पतयन्त आपुः (ऋ० १/२४/६) स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानम् (ऋ० २/३३/११) आदि।

उपर्युक्त उदाहृत मन्त्रांशों के अतिरिक्त भी अनेक ऋग्भाग वर्णच्छन्दों के लक्षणानुसार प्राप्त हो सकते हैं। पिङ्गलच्छन्दःसूत्र के भाष्य में **भास्करराय** ने अनेक वर्णच्छन्दों के वैदिक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, वे भी इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है। अतः लौकिकछन्दों के विकास के मूल उत्स वैदिक मन्त्र ही हैं, यह तथ्य उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट प्रमाणित होता है।

महाभाष्यकार के छन्दःप्रयोग

काव्यगत छन्दःप्रयोगों के अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि वैयाकरण महर्षि पतञ्जलि को अनेक पद्य-काव्यों के सहित विभिन्न प्रकार के काव्य-साहित्य का ज्ञान था, जिनमें यवक्रीत, प्रियंगु तथा ययाति की कथायें, वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी की आख्यायिकायें, कंसवध, बलिबन्ध प्रभृति नाटक गिनाये जा सकते हैं। महाभाष्य में प्रायः ४० ऐसे पद्यांश उद्धृत हैं, जो मालती, प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, प्रमिताक्षरा, इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा जैसे श्रुति-मधुर छन्दों में उपनिबद्ध हैं। इनका संबन्ध स्तुति, नीति तथा शृङ्गार जैसे विषयों से है। **महाभाष्य** में २६० इसप्रकार के पद्य उद्धृत हैं, जो व्याकरण के विषय का प्रतिपादन करते हैं और जिनमें श्लोक, आर्या, वक्त्रा, जगती तथा विद्युन्माला, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थबिल, दोधक

तथा तोटक जैसे आलङ्कारिक छन्दों का प्रयोग किया गया है।[१]

पाणिनि ने भी बृहती, विष्टारबृहती और विष्टारपंक्ति छन्दों की ओर संकेत किया है।[२]

कात्यायन के भ्राज- श्लोकों तथा जालूकश्लोक की चर्चा महाभाष्यकार ने की है। इससे यही सिद्ध होता है कि **पतञ्जलि** के समय तक लौकिक काव्यरचना तथा छन्दःशास्त्र का अनुशीलन दोनों इतने विशाल तथा प्रौढ़ हो चुके थे कि काव्यों में वैदिकछन्दों का बहुत विस्तार होकर अनेक प्रकार के ऐसे हृदयहारी छन्दों का प्रयोग होने लगा, जो बाद के कवियों की रचनाओं में प्रायः पाये जाते हैं।

पिङ्गल से पूर्ववर्ती परम्परा

लौकिक छन्दों का सर्वप्रथम विवरण आचार्य पिङ्गल ने प्रस्तुत किया—यह कथन पूर्णांश में यथार्थ नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थ में लौकिकछन्दों के विवरण देने के प्रसंग में प्राचीन आचार्यों का मत दिया है। आचार्य **'सैतव'** का मत अनुष्टुप् के प्रसंग में (५/१८), उल्लिखित है। उनके अनुसार अनुष्टुप् के प्रतिचरण में सप्तम वर्ण लघु नियमतः रखना चाहिए। 'वसन्ततिलका' वृत्त को आचार्य **काश्यप** 'सिंहोन्नता' (७/९) तथा आचार्य सैतव[३] 'उद्धर्षिणी' की संज्ञा देते हैं (७/१०)। दण्डक के विवरण-प्रसंग में आचार्य **रात** तथा आचार्य **माण्डव्य** के मत का उल्लेख पिङ्गल में है (७/३५)। प्राचीन आचार्यों के इस समुल्लेख से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि लौकिक छन्दों का आविर्भाव पिङ्गल से अतिप्राचीन युग में व्यवस्थित है। आचार्य **यादवप्रकाश** की प्रथम छन्दःपरम्परा का विश्लेषण बतलाता है कि माण्डव्य पिङ्गल के चार पीढ़ी पूर्व होने वाले आचार्य हैं। इससे लौकिकछन्दों के विवरण का युग पर्याप्तरूपेण प्राचीन सिद्ध हो जाता है।

इस प्रसङ्ग में पाणिनि की व्याकरण-अष्टाध्यायी तथा **पिङ्गल** की छान्दस-अष्टाध्यायी के सामान्य स्वरूप का विश्लेषण रोचक सिद्ध होगा। पाणिनीय अष्टाध्यायी की रचना से पूर्व लौकिक-संस्कृत के व्याकरण-ग्रन्थ थे जो इसकी प्रौढ़ता तथा प्रतिपादनविशदता के कारण अस्तंगत हो गये। उसीप्रकार पिङ्गलोक्त अष्टाध्यायी के निर्माण से पूर्व लौकिक-छन्दों के व्याख्यानकर्त्ता ग्रन्थ थे जो इसकी सुव्यवस्था तथा प्रतिपादन-कौशल के कारण अस्तंगत हो गये, यह मत युक्तिसंगत है। **षड्गुरुशिष्य** के अनुसार **पाणिनि** अग्रज थे तथा पिङ्गल उनके अनुज थे।[४] यदि यह परम्परा मान्य

१. द्र० सुशील कुमार डे, हि०सं०लि० भाग १, पृ० ११-१२।

२. पा० ५/४/६, ८/३/९४।

३. जानाश्रयी छन्दोविचिति (४/७०) के अनुसार आचार्य सैतव इसे 'इन्दुमुखी' नाम से पुकारते हैं।

४. सर्वानुक्रमटीका (३/३३) षड्गुरुशिष्यः—सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन।

हो, तो इस भ्रातृद्रयी का यह कार्य अनेक रूप में समानान्तर था और अपने-अपने शास्त्र के व्याख्यान में पूर्णतया सफल था।

इस प्रसङ्ग में एक अन्य तथ्य ध्यातव्य है कि महर्षि पाणिनि ने **'जाम्बवतीविजय'** अथवा **'पातालविजय'** नामक १८ सर्गों तक के विस्तृत महाकाव्य का प्रणयन किया था[1] जिसके कतिपय पद्य ही सूक्ति-संग्रहों तथा अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। इसमें स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित जैसे बड़े वृत्तों में पद्यों का निर्माण है। **पाणिनि** उपजाति-वृत्त के सिद्धहस्त कवि थे—इस तथ्य का सङ्केत **क्षेमेन्द्र** अपने **'सुवृत्ततिलक'** में देते हैं।[2] पाणिनि के उपलब्ध पद्यों में उपजाति वृत्त के पद्य सचमुच परम रमणीय तथा मनोहर हैं। ऐसे छन्दों का निर्माण एक-दो दिनों की घटना नहीं है। प्रत्युत वर्षों के प्रयास से उनमें स्निग्धता तथा रमणीयता आयी है। लौकिक छन्दों की इस प्रयोगमयी दिशा से भी विचार करने पर इनका आविर्भाव पाणिनि से प्राचीन काल की घटना सिद्ध होता है। अतः आचार्य पिङ्गल का ग्रन्थ समुपलब्ध लौकिक छन्दो-ग्रन्थों में सर्वप्राचीन है—यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

पौराणिक साहित्य में छन्दःप्रकरण

अग्निपुराण

अग्निपुराण में भी छन्दों का विवेचन **'आग्नेय छन्दःसार'** शीर्षक से हुआ है।[3] अग्निपुराण के ३२८ से ३३५ तक के आठ अध्यायों में क्रमशः परिभाषा, दैवी आदि संज्ञायें, पादादि अधिकार, उत्कृति आदि छन्द और आर्या आदि मात्रा-वृत्त, विषमवृत्त, अर्द्धसमवृत्त, समवृत्त, प्रस्तार आदि निरूपित है। इनमें प्रथम तीन अध्यायों में वैदिक छन्दों का तथा शेष पाँच अध्यायों में लौकिक छन्दों का विवरण प्रायः १०० अनुष्टुप्छन्दस्क पद्यों में हैं। अग्निपुराण के स्वतन्त्र लक्षित चार वैदिक छन्द इस प्रकार हैं—

१—वर्धमाना गायत्री (६+८+८)=२२ वर्ण।

२—वर्धमाना गायत्री (६+८+७)=२१ वर्ण।

३—परोष्णिक् (८+८+१२)=२८ वर्ण।

४—पदपङ्क्ति (५+४+६+६+६)=२७ वर्ण।

---

१. द्रष्टव्य 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' (अष्टम सं०, १९६८), पृष्ठ १६१-१६५; तथा 'संस्कृत सुकवि समीक्षा' (चौखम्बा, वाराणसी, १९६३), पृष्ठ ३४-४२ (आचार्य बलदेव उपाध्याय)।

२. स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव जातिभिः॥ (क्षेमेन्द्र)

३. चन्द्रमोहन घोष—छन्दःसार संग्रह, भूमिका, पृ० ७।

यह विवेचन पिङ्गल के आधार पर माना जा सकता है, क्योंकि अग्निपुराण की इसी पंक्ति से यह सङ्केत मिलता है :—

छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तैः (पा० मूलशब्दैः) पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम्। (३२८/१)

अग्निपुराण में वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों की चर्चा है। श्लोक में लक्षण दे दिये गये हैं, परन्तु उदाहरण नहीं दिये गये। **अग्निपुराण** में प्रत्ययों पर भी विचार किया गया है, यद्यपि उनका विवेचन साङ्गोपाङ्ग नहीं हो पाया है। अग्निपुराण के काल के संबंध में आपाततः इतिहासकारों द्वारा इतना तो कहा जा सकता है कि इसकी रचना पिङ्गल के बहुत बाद में हुई होगी।[१] परन्तु शेषनाग के भगवत्स्वरूप होने के कारण यहां शेषोक्त छन्दोविधान का कथन है—यह अर्थ पारम्परिक दृष्टि से पुराण के सन्दर्भ में सङ्गत है। छन्दःशास्त्र के पाठशोधन तथा प्रक्षिप्त आदि के निर्णय के लिए यह उपयोगी अंश है।

अग्निपुराणोक्त लौकिकछन्द

अग्निपुराण में नवीनरूप से लक्षित निम्नाङ्कित ३२ लौकिक छन्द हैं।

		अग्निपुराण-सन्दर्भ
अनुष्टुब्वृत्ति अष्टाक्षरपाद		
१. चित्रपदा	(तौ गौ)	१७३/१; ३३४/१
२. विद्युन्माला	(रतलगाः)	१७३/४
बृहतीवृत्ति दक्षाक्षरपाद		
३. कुमारललिता	(यौ सः)	१७३/१, ३३४/१
४. विद्युन्माला	(मत्रयम्)	३३४/२
पङ्क्तिवृत्ति दशाक्षरपाद		
५. शुद्धविराट्	(समजगाः)	१७३/३
६. उपरिस्थिता	(भजतगाः)	१७३/४; ३३४/४
७. विलसिता	(नभनलाः)	२७३/७; ३३४/७
त्रिष्टुब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद		
८. शालिनी	(मतभा गौ)	१७३/६; ३३४/६
जगतीवृत्ति द्वादशाक्षरपाद		
९. प्रणवः	(नतयमाः)	१७३/४; ३३४/४
१०. वृत्तम्	(नौ समौ)	१७३/८; ३३४/८
११. श्रीपुटम्	(नरसयाः)	१७३/१०; ३३४/१०
१२. कान्तोत्पीडा	(मतसगाः)	१७३/१२; ३३४/१२

१. ए०बी० कीथ : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४१६।

१३. असम्बाधा	(ततनमा:)	१७३/१५, १६; ३३४/१५, १६

अतिजगतीवृत्ति त्रयोदशाक्षरपाद

१४. गौरी	(नरनसगा:)	१७३/१५; ३३४/१५

धृतिवृत्ति अष्टादशाक्षरपाद

१५. पृथ्वी	(जसजसजना:)	१७३/२०; ३३४/२०

अतिधृतिवृत्ति एकोनविंशत्यक्षरपाद

१६. हरिणी	(नसमरसनगा:)	१७३/२१; ३३४/२१

संकृतिवृत्ति चतुर्विंशत्यक्षरपाद

१७. क्रौञ्चपदा	(भमतास्तनौ नत्रयम्)	१७३/२७; ३३४/२७

उत्कृतिवृत्ति षडविंशत्यक्षरपाद

१८. उपहार:	(मनौ नत्रयी तमसा गौ)	१७३/२९; ३३४/२९

अर्धसमवृत्त

१९. वेगवती	(सौ मगौ, भौ भगौ ग:)	१७२/१२; ३३३/२
२०. रुद्रविस्तार:	(तसभगा:, सौ जगौ ग:)	१७२/१२; ३३३/२
२१. केतुमती	(रजसा गौ, तरना गौ)	१७२/१३; ३३३/३
२२. हरिणवल्लभा	(सौ मलौ ग:, सभौ भरौ)	१७२/१४; ३३३/४
२३. अपराक्रम:	(सौ रनगा:, नजौ जमौ)	१७२/१५; ३३३/५
२४. उपचित्रकम्	(सौ मनौ, भजभगा:)	१७२/११; ३३३/१
२५. उपचित्रकम्	(सौ मनगा:, तभयगा:)	३३३/१
२६. द्रुतमध्या	(तौ भमगा:, नतजगा:)	१७२/११, ३३३/१

विषमवृत्त

२७. उद्धता	(सौ जसना:, नसजगा:, भौ नजनगा:, सजसा गौ)	३३२/७-८
२८. सौरभम्	(सौ जसना:, नसजगा:, नभगा:, सजसा गौ)	३३२/७-८
२९. उद्धता	(सौ जसना:, नसजगा:, भौ नजयगा:, सजसा गौ)	१७२/७-८
३०. सौरभम्	(सौ जसना:, मसजगा:, नभगा:, सजसा गौ)	१७२/७-८
३१. ललितम्	(सौ जसना:, मसजगा:, नमजसा:, सजसा गौ)	१७२/८; ३३२/८
३२. उपस्थित-प्रचुपितम्	(समजसा गौ, मलजा:, रगसना:, रजया:)	१७२/९; ३३२/९

अग्निपुराण एवं गरुडपुराण के छन्दोविवेचन का शास्त्रीय वैशिष्ट्य तथा परवर्ती छन्दोविधान पर प्रभाव भास्करराय द्वारा अपने भाष्यराज में विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया गया है। भास्करराय के छन्दोग्रन्थों में अग्निपुराण, गरुडपुराण आदि के श्लोकों के पदकृत्यात्मक प्रौढ विश्लेषण से तथा भारतीय पारम्परिक दृष्टि से आर्षग्रन्थों के रूप में पुराणों के प्रामाण्य के आधार पर यह सिद्धान्त उचित है कि अग्निपुराणोक्त पिङ्गल अभिधान शेषाख्य देव का है तथा छन्दस्सूत्रकार पिङ्गल भी **शेषावतार** हैं[1]। इस दृष्टि से दोनों में पौर्वापर्यक्रम की कल्पना सार्थक नहीं है।

गरुडपुराण

गरुडपुराण के पूर्वखण्ड में २०७ से २१२ तक के छः अध्यायों में छन्दों का विषय वर्णित है इसमें क्रम से परिभाषा, मात्रावृत्त, समवृत्त, अर्द्धसमवृत्त, विषम-वृत्त तथा प्रस्तार आदि का वर्णन है। छन्दःशास्त्र में नहीं कहे गये कुछ वृत्तों के लक्षण भी गरुडपुराण में उपलब्ध होते हैं। परन्तु वैदिकछन्दों के लक्षण गरुडपुराण में नहीं प्रदर्शित हैं।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण

विष्णुधर्मोत्तर के तृतीय खण्ड के अन्तर्गत तीसरे अध्याय में गायत्री से प्रारम्भ कर कृति तक के छन्दों का सामान्य लक्षण बताया गया है तथा लघु, गुरु एवं प्रस्तार की भी चर्चा इसमें है—

दिङ्मात्रमेतत्कथितं नरेन्द्र, विस्तारजिज्ञासुरतो मनुष्यः।
संसाधयेत्तत्स्वधिया यथावत्सुदुस्तरं विस्तरशो हि वक्तुम्।।२०।।

इस श्लोक द्वारा छन्दःप्रकरण पूर्ण किया गया है।

नारदीयपुराण

नारदीयपुराण में भी छन्दों की चर्चा ५७वें अध्याय में हुई है। प्रथमतः दो प्रकार के छन्द बताये गये हैं—वैदिक और लौकिक। पुनः वर्ण और मात्रा के भेद से दो और भेद किये गये, फिर म य र स त ज भ न ग ल—इन छन्दःशास्त्र के दशाक्षरों की चर्चा है, तथा मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, नगण, गुरु तथा लघु के लक्षण बताये गये हैं। पाद और यति तथा सम, विषम और अर्द्धसम-वृत्तों के लक्षण भी कथित हैं। तदनन्तर एक अक्षर में आरंभ कर २६ अक्षरों तक के छन्दों का तथा इससे अधिक के दण्डकों का उल्लेख है।

उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती,

---

१. द्र० महाभारत के सर्पसत्र में नागों की गणना में पिङ्गलनाग (आदिपर्व ३५/९)।

पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अभिकृति तथा उत्कृति छन्दों के नाम आये हैं। तदनन्तर प्रस्तार, उद्दिष्ट, नष्ट, संख्या आदि प्रत्ययों की चर्चा है।[१]

इस विषय का उपसंहार इस श्लोक से किया गया है—

इत्येतत् किंचिदाख्यातं छन्दसां लक्षणं मुने ।
प्रस्तारोक्तप्रभेदानां नामानन्त्यं प्रजायते ।।२१।।

१. नारदीयमहापुराण, अध्याय ५७/१-२१।

द्वितीय अध्याय
साहित्यिक विस्तार

संस्कृत के लौकिक छन्दश्शास्त्रीय ग्रन्थ

आर्ष वाङ्मय के अनन्तर संस्कृतभाषा की लौकिक काव्यादि-रचनाओं में अनेकविध छन्दों के प्रयोग के लिये आचार्यों ने छन्दोभेदों का विस्तार तथा उपदेश परवर्ती छन्दश्शास्त्रीय ग्रन्थों में किया है। इन लौकिक छन्दों का निरूपण पुराणादि से प्रारम्भ होकर अद्यावधि प्रवर्तित है। इस अविच्छिन्न छन्दश्शास्त्रीय आगम[1] के सम्प्रदायप्रवर्तक शेषावतार भगवान् पिङ्गलनाग हैं, यह भारतीय परम्परा का सुदृढ मत है। अत: पिङ्गलाचार्य द्वारा प्रणीत छन्दस्सूत्र से ही लौकिक छन्दोग्रन्थों का प्रारम्भ गया है।

पिङ्गलच्छन्द:सूत्र (आचार्य पिङ्गलनाग)

प्रख्यात शास्त्र 'पिङ्गलछन्द:सूत्र' अथवा 'पिङ्गलछन्द:शास्त्र' के रचनाकार आचार्य पिङ्गल हैं। सामान्यत: आचार्य पिङ्गल के देशकाल का यथार्थ परिचय अप्राप्त है। इनके प्रख्यात वृत्तिकार **हलायुध** ने इस रचना के लिये द्वितीय अभिधान अपनी वृत्ति के अन्त[2] में दिया है। यह ग्रन्थ सूत्रबद्ध है। इसमें आठ अध्याय हैं जिनमें सूत्रों की संख्या क्रमश: इसप्रकार है—१५, १६, ६६, ५३, ४४, ४६, ३६, ३४। यह अष्टाध्यायी केवल तीन सौ आठ (३०८) सूत्रों का स्वल्पकाय ग्रन्थ है[3], परन्तु महत्त्व की दृष्टि से नितान्त प्रामाणिक तथा अनुपम गौरवमय है। इन अध्यायों में आरम्भ के तीन अध्याय तथा चतुर्थ के सात सूत्र वैदिक छन्दों का विवरण प्रस्तुत करते हैं तथा तदवशिष्ट अध्याय लौकिक छन्दों का वर्णन करते हैं। वैदिक छन्दों का वर्णन केवल ९७ सूत्रों में तथा लौकिक छन्दों का २११ सूत्रों में है।

लौकिक वृत्त दो प्रकार के हैं—मात्रावृत्त तथा वर्णवृत्त। इनमें वर्णवृत्त सम, अर्धसम तथा विषम भेद से तीन प्रकार का होता है। पिङ्गल के चतुर्थ अध्याय में मात्रावृत्तों का एवं पंचम, षष्ठ तथा सप्तम में त्रिप्रकारक वर्णवृत्तों का क्रमश: विवरण

---

१. पैङ्गलतन्त्र (सौ०भास्कर व्याख्या ल०स० २०९)।

२. पिङ्गलाचार्यरचिते छन्द:शास्त्रे हलायुध:।
मृतसञ्जीविनीं नाम वृत्तिं निर्मितवानिमाम् ॥

३. यह संख्या पं० सीताराम भट्टाचार्य-सम्पादित हलायुधवृत्ति सहित पिङ्गलछन्द:सूत्र के अनुसार है (कलकत्ता १८३१, शाके) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई के संस्करण में छठे अध्याय में ४३ सूत्र होने के कारण कुल ३०७ सूत्र होते हैं। यादवप्रकाश के अनुसार यह संख्या २८८ है तथा भास्कराचार्य के अनुसार सूत्रसंख्या ३०० है—
वाक्यसिन्धुरपारोऽपि छन्द:सूत्रशतैस्त्रिभि:।
येन बद्धो नमस्तस्मै पिङ्गलाद्भुतशिल्पिने ॥ (भाष्यराज के उपसंहारपद्यों से)

है। इसप्रकार पिङ्गलसूत्र परिमाण में अल्प ही है। परन्तु इतने स्वल्प अवकाश में वह सम्पूर्ण ज्ञातव्य छन्दों का विवरण प्रस्तुत कर देता है। शास्त्रीय विवेचन उनका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है। इसकारण से भारतीय छन्दश्शास्त्र की संस्कृत-काव्यपरम्परा में पिङ्गल प्रथम आचार्य माने जाते हैं।

पिङ्गलाचार्य की प्राचीनता

आचार्य पिङ्गल के देशकाल का निर्णय इतिहासात्मक प्रमाणों के अभाव में यथार्थतः नहीं किया जा सकता। पिङ्गल को पाणिनि का अनुज माननेवाली परम्परा (षड्गुरुशिष्य[1] द्वारा उल्लिखित) यदि अन्य प्रमाणों से परिपुष्ट हो, तो ये भी शालातुर के निवासी तथा विक्रमपूर्व लगभग अष्टमशती के ग्रन्थकार माने जा सकते हैं।[2]

यूरोपीय विद्वान् इन्हें ईस्वीपूर्व द्वितीय शती में मानते हैं। परन्तु उससे भी प्राचीन मानने में कोई व्याघात नहीं है। छन्दःशास्त्र से भिन्न शास्त्रों के साहित्य में इनका उल्लेख गवेषणीय है। **शबरस्वामी** ने पिङ्गल का नाम तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट सर्वगुरु मगण को अपने भाष्य में निर्दिष्ट किया है।[3] पतञ्जलि के **महाभाष्य** के नवाह्निक में एक स्थल पर **'पैङ्गल काण्व'** (आह्निक-९, सू० ६३) शब्द का उल्लेख प्राप्त है। जिससे इनका पतञ्जलि से पूर्व कालक्रम निश्चितरूपेण सिद्ध होती है।

पुराणों में पिङ्गल नामक नाग का उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है। **वामनपुराण** में ये प्रातःस्मरणीय आचार्यों में आसुरि के साथ निर्दिष्ट किये गए हैं।[4]

अग्निपुराण में ३२८ से ३३५ अध्याय तक आठ अध्यायों में वर्णित छन्दोनिरूपण पिङ्गल के आधार पर स्वयं पुराणकार ने निर्दिष्ट किया है।[5]

नारदपुराण के छन्दोविवरण भी पिङ्गलानुसारी हैं। इन पौराणिक उल्लेखों से पिङ्गल की प्राचीनता निश्चित ही सिद्ध होती है। परन्तु इनके आधार पर इदमित्थंरूप से कथन दुःसाध्य है। इनके देश का पता लगाना और भी दुष्कर कार्य है। पिङ्गलोक्त छन्दों के दो नामों में भौगोलिक सङ्केत का आभास मिलता है। अपरान्तिका (४/४१) तथा वानवासिका (४/४३)—ये पिङ्गल ने अपने वृत्तों के नाम दिये हैं। तथ्यतः ये दोनों शब्द **अपरान्त** तथा **वनवास** देश के स्त्रीजनों के लिए प्रयुक्त होते

---

१. सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन (सर्वानुक्रमणी ३/३३ पर टीका)
२. पिङ्गलाचार्य के काल-विवेचन हेतु द्र० पिङ्गलच्छन्दसूत्रम्—शास्त्री प्रो० अशोक चटर्जी द्वारा सम्पादित तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९८७ में प्रकाशित।
३. यथा मकारेण पिङ्गलस्य सर्वगुरुस्त्रिकः प्रतीयेत (शाबरभाष्य १/१५)
४. सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः।
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च॥ (वामनपु० १४/२५)
५. छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तैः पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम् (अग्निपुराण ३२८/१)

हैं। अपरान्त तथा वनवास—ये एक दूसरे से संलग्न प्रान्त मुम्बई के पश्चिम समुद्रस्थ प्रदेश के **कोंकण** को सूचित करते हैं। फलत: पिङ्गल का इस समुद्रस्थ प्रान्त के लिए कुछ पक्षपात प्रतीत होता है। परन्तु यह विद्वानों का अनुमान मात्र है। अत: ऐतिह्य पर ऊहापोह की अपेक्षा यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि एकमात्र छन्दों पर ही विचार करनेवाला प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ पिङ्गलाचार्य का 'छन्द:शास्त्रम्' अथवा 'पिङ्गलछन्द:सूत्रम्' है। इसमें वैदिक के साथ लौकिक छन्दों का विवेचन इदम्प्रथमतया विशद रूप से हुआ है, इस कारण यह परवर्ती ग्रन्थों का उपजीव्य है।

पिङ्गलाचार्य के छन्द:सूत्र में छन्द:शास्त्र का अधिकारपूर्ण और वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। पाश्चात्त्य विद्वान् मैकडानल ने लिखा है कि—वैदिक काल के बाद के छन्दों का अत्यन्त प्रामाणिक विवेचन इसी छन्द:शास्त्र में उपलब्ध है। वैदिक छन्दों का अध्ययन भी किया गया है। यद्यपि इसे वेदाङ्ग कहा गया है, फिर भी यह बहुत बाद की वस्तु है, जिसका उद्देश्य प्रधानतया बाद के ही छन्दों का विवेचन है।[१]

पिङ्गलाचार्य का देश-काल

पिङ्गलाचार्य का समय कीथ के अनुसार २०० ई० पूर्व के लगभग माना जा सकता है।[२] परन्तु यह मत मान्य नहीं है क्योंकि भारतीय परम्परा में पिङ्गलाचार्य पौराणिक व्यक्ति तथा **शेषनाग** से अभिन्न माने जाते हैं। हलायुधवृत्ति के आरंभ में ही यह उल्लेख है, जिसमें पिङ्गल को नाग कहा गया है—

श्रीमत्पिङ्गलनागोक्तच्छन्द:शास्त्रमहोदधौ।
वृत्तानि मौक्तिकानीव कानिचिद्विचिनोम्यहम्॥[३]

'प्राकृतपैङ्गलम्' में मुरलीधर कविभूषणकृत **'छन्दोहृदयप्रकाश'** तथा भिखारीदासकृत **'छन्दोर्णवपिङ्गल'** में पिङ्गल को शेषनाग से अभिन्न मानते हुए एक मनोरंजक कथा की ओर निर्देश किया गया है। इस संबंध में जो कथा कही जाती है, वह इस प्रकार है—

एक बार शेषनाग जलराशि से बाहर निकलकर धरती पर वसन्त के प्रभात की धूप और वायु का आनन्द ले रहे थे। इसीसमय भगवान् विष्णु के वाहन और शेषनाग के शत्रु गरुड वहाँ आ पहुँचे। अच्छा अवसर जानकर उन्होंने शेषनाग को पकड़ लिया। पहले तो शेषनाग घबराये, किंतु फिर उनकी बुद्धि ने काम किया। उन्होंने गरुड से कहा कि इस संसार में छन्द:शास्त्र का जानकार केवल मैं ही हूँ। यदि गरुड उन्हें खा

---

१. Arthur A. Macdonell—A History of Sanskrit Literature, p. 264. परन्तु यह मत भास्करराय आदि द्वारा अमान्य है। सर्वशाखासु पैङ्गलस्य सर्वपार्षदत्वात् (पि. २/१ भा०) आदि के अनुसार पिङ्गलसूत्र छन्दोवेदाङ्ग-ग्रन्थ है।

२. A.B. Keith—A History of Sanskrit Literature, p. 410.

३. पिङ्गलच्छन्द:सूत्रम् (हलायुधवृत्तिसहितम्) प्रथमोऽध्याय:, श्लोक ४।

जाते हैं, तो संसार से छन्द:शास्त्र का लोप हो जायेगा और फिर कोई भी व्यक्ति उसकी जानकारी नहीं प्राप्त कर सकेगा। गरुड से उन्होंने प्रार्थना की कि यदि उन्हें खाना ही है तो खा लें, किन्तु इसके पहले उन्हें छन्द:शास्त्र के वर्णन का पूरा अवसर दें, जिसमें कम-से-कम गरुडदेव छन्द:शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लें।

गरुड इस शर्त्त पर तैयार हो गये कि छन्द:शास्त्र का वर्णन समाप्त होने पर शेषनाग भाग न जायें। शेषनाग ने कहा कि वे बिना पूर्वसूचना दिये नहीं जायेंगे। गरुड ने उन्हें छोड़ दिया। छन्द:शास्त्र का वर्णन शेषनाग ने इतनी सुन्दर रीति से किया कि गरुड मन्त्रमुग्ध हो गये। भागने का अच्छा अवसर देखकर शेषनाग ने चार बार 'भुजङ्ग-प्रयातम्' का उच्चारण किया और जल में कूद पड़े। गरुड ने जब यह धोखा देने का आरोप लगाया, तो शेषनाग ने कहा कि वे 'भुजङ्गप्रयात' पद द्वारा इस नाम के छन्दोविशेष के वर्णन के साथ इसकी सूचना भी दे रहे थे कि वे अब जा रहे हैं।[१]

शुक्लयजुर्वेद के शतपथब्राह्मण में **पैंग** ऋषि का उल्लेख है। इसी वंश में यास्क पैंगी का जन्म हुआ था। संभवत: पिङ्गलाचार्य का जन्म भी इसी वंश में हुआ हो, ऐसा वेबर ने अनुमान किया है।[२] परन्तु वेबर ने पिङ्गलाचार्य को **भरत** से परवर्ती बतलाया है। तथापि इतना तो कहा जा सकता है कि पिङ्गल का समय बहुत प्राचीन है, क्योंकि उन्होंने वे ही छन्द अपने ग्रन्थ में लिये हैं, जो पर्याप्त प्राचीन है।

प्रथम शतक ई०पू० के लगभग लौकिक छन्दों का जितना विस्तार हो चुका था, उसका परिचय पिङ्गल के ग्रन्थ से नहीं मिलता। सूत्रशैली में रचना भी ग्रन्थ की प्राचीनता का द्योतक है। भरतकृत नाट्यशास्त्र से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि पिङ्गल का विवेचन अधिक प्राचीन है तथा यही अनेक पारम्परिक विद्वानों का मत है। अतएव पिङ्गल का काल द्वितीय शताब्दी ई०पू० के बहुत पूर्व मानना अनुचित न होगा। कोलब्रुक ने पिङ्गल और **पतञ्जलि** को एक ही व्यक्ति माना है और कल्पना की है कि पिङ्गल ने ही पतञ्जलि के नाम से पाणिनि के व्याकरण पर भाष्य और योगानुशासन की रचना की। किन्तु ऐसा मानने के पक्ष में पर्याप्त कारण नहीं हैं। इतना तो असन्दिग्ध है कि पिङ्गल के ग्रन्थ का समय अत्यन्त प्राचीन है।

पिङ्गलच्छन्द:सूत्र का विषयक्रम

पिङ्गल के 'छन्द:शास्त्र' का विवेच्य विषय आठ अध्यायों में विभक्त हैं। प्रथम अध्याय में—म य र स त ज भ न ग और ल—इन छन्द:शास्त्र के दशाक्षरों का वर्णन, गणविचार तथा गुरुलघुलक्षण दिये गये हैं। द्वितीय अध्याय में गायत्री तथा अन्य छन्दों का विवेचन तथा उनके विविध भेदों के उल्लेख हैं। तृतीय अध्याय में छन्द:पाद का विचार है। एक पाद में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों की अक्षर-संख्याओं का निर्देश है। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, जगती आदि छन्दों के पाद-लक्षण दिये गये हैं।

---

१. प्राकृतपैङ्गलम् (मंगलाचरण)।

२. द्र० वेबर का भारतीय वाङ्मय का इतिहास, पृ० ४६ (A History of Indian Literature)

चतुर्थ अध्याय में सात सूत्रों में उत्कृति आदि वैदिक छन्दों की चर्चा के पश्चात् आठवें सूत्र से **लौकिक छन्द** अर्थात् लोक के मध्य प्रयुक्त आर्या, वैतालीय तथा मात्रासमक का सभेद विवेचन है। अन्त में चूलिका छन्द की चर्चा है। ये छन्द मात्रिक हैं और इनके लक्षण-निर्देश के लिए या तो चतुर्मात्रिक गण (लः समुद्रा गणः ४/१२) का प्रयोग हुआ है अथवा मात्रासंख्या, लघुगुरु-निर्देश आदि का आश्रय लिया गया है। किन्तु द्रष्टव्य है कि इस प्रसंग में **'मात्रा'** शब्द का प्रयोग न कर पिङ्गल एक मात्रा के लिये 'ल' का प्रयोग करते हैं। यहाँ 'ल' का अर्थ 'एक मात्रा' है, लघुवर्ण नहीं। पूरे ग्रंथ में मात्रिक छन्दों की चर्चा चतुर्थ अध्याय के इन्हीं ४५ सूत्रों में है।[१]

पञ्चम अध्याय में सम, अर्द्धसम और विषम वृत्तों के लक्षण और समानी प्रमाणी या नाराच, वितान, पथ्या, चपला, विपुला, आपीड, प्रत्यापीड, मंजरी, लवली, अमृतधारा, उद्गता, सौरभक, ललित, उपस्थितप्रचुपित, वर्द्धमान, शुद्धविराड्ऋषभ, उपचित्रक, द्रुतमध्या, वेगवती, भद्रविराट्, केतुमती, आख्यानकी, विपरीताख्यानकी, हरिणप्लुता, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा, यवमती, शिखा, खञ्जा, आदि वृत्तों के लक्षण वर्णित हैं।

षष्ठ अध्याय में तनुमध्या, कुमारललिता, माणवकाक्रीडितक, चित्रपदा, विद्युन्माला, हंसरुत, भुजगशिशुसृता, हलमुखी, शुद्धविराट्, पणव, रुक्मवती, मयूरसारिणी, मत्ता, उपस्थिता, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, वातोर्मी, भ्रमरविलसित, रथोद्धता, स्वागता, वृंता, श्येनी विलासिनी, वंशस्था, इन्द्रवंशा, द्रुतविलम्बित, तोटक, पुट, जलोद्धतगति, तत, कुसुमविचित्रा, चञ्चलाक्षिका, भुजङ्गप्रयात, स्रग्विणी, प्रमिताक्षरा, कान्तोत्पीडा, वैश्वदेवी, वाहिनी और नवमालिनी, नामक छन्दों के लक्षण आये हैं।

सप्तम अध्याय में प्रहर्षिणी, रुचिरा, मत्तमयूर, गौरी, असम्बाधा, अपराजिता, प्रहरणकलिता, वसन्ततिलका, सिंहोन्नता, उद्धर्षिणी, चन्द्रावर्त्ता, माला, मणिगुणनिकर, मालिनी, ऋषभगजविलसित, हरिणी, पृथ्वी, वंशपत्रपतित, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, कुसुमितलतावेल्लिता, शार्दूलविक्रीडित, सुवदना, वृत्त, स्रग्धरा, मद्रक, अश्वललित, मत्ताक्रीड़ा, तन्वी, क्रौञ्चपदा, भुजङ्गविजृम्भित, अपवाहक आदि छन्दों के तथा चण्डवृष्टिप्रयातादि दण्डकों के लक्षण दिये गये हैं।

अष्टम अध्याय में कुड्मलदन्ती, वरतनु, जलधरमाला, गौरी, ललना, कनकप्रभा, कुटिलगति, वरसुन्दरी, कुटिला, शैलशिखा, वरयुवती, अतिशायिनी, अवितथ, कोकिलक, विबुधप्रिया, नाराचक, विस्मिता, शशिवदना आदि छन्दों के लक्षण दिये हैं। पुनः प्रस्तार-निरूपण, संख्या-ज्ञान की विधि आदि नियम उपदिष्ट हैं।

---

१. पिं० छ० ४/८-५३।

अष्टम अध्याय में गाथा आदि उन छन्दों को कहा गया है, जो छन्दःशास्त्र में वर्णित नहीं, पर काव्य में प्रयुक्त देखे गये हैं[१]।

'पिङ्गलच्छन्दःसूत्र' संस्कृत-छन्दःशास्त्र का प्रथम उपलब्ध सुशृङ्खल ग्रन्थ है। अतएव उसके विभिन्न अध्यायों के वक्तव्य विषय को ध्यान में रखना छन्दःशास्त्र के विकास के अध्ययन की दृष्टि से उपादेय सिद्ध होगा।

संस्कृतभाषा में निबद्ध पिङ्गल के 'छन्दःशास्त्र' में छन्दों के लक्षण-निरूपण के लिए सूत्र-शैली का उपयोग हुआ है। छन्दों के सूत्रगत लक्षणमात्र दिये गये हैं, उदाहरण नहीं दिये गये हैं। वर्णवृत्त के लक्षणों में वार्णिक गण का उपयोग हुआ है, जिनके निर्देश के लिए छन्दःशास्त्रीय दशाक्षर (य म त र ज भ न स ल ग) प्रयुक्त हुए हैं। मात्रिक छन्दों में आर्या-लक्षण-सिद्धि के लिये केवल चातुर्मात्रिक गण प्रयोग में आये हैं, अन्य मात्रिक गणों को पिङ्गल ने स्पष्ट स्वीकृति नहीं दी। वर्णवृत्तों का वर्गीकरण सम, अर्द्धसम और विषम रूप में तथा मात्रिक छन्दों का आर्या, वैतालीय और मात्रासमक प्रकरणों के अन्तर्गत द्रष्टव्य है।

मात्रिक छन्दों के विकास की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का महत्त्व कम नहीं है। क्योंकि आर्या, वैतालीय तथा मात्रासमक वर्ग के छन्दों का सभेद लक्षणनिर्देश इस ग्रंथ में पहली बार स्पष्टतः हुआ प्रतीत होता है। इसप्रकार मात्रिक छन्दों की चर्चा करनेवाला प्राचीनतम ग्रंथ पिङ्गल का 'छन्दःशास्त्र' ही है।

छन्दःशास्त्रीय विवेचन के प्रसंग में **पिङ्गल** अभिधान एक व्यक्ति का निर्देशक न होकर 'छन्दश्शास्त्र' का पर्यायवाची बन गया है। आगे चलकर प्राकृत में जब लोकप्रचलित छन्दों के विवेचन के लिए एक बृहत् लक्षणग्रन्थ की रचना हुई, तब उसका नाम भी **'प्राकृतपैङ्गलम्'** या 'प्राकृतपिङ्गलसूत्राणि' रखा गया। इस रीति से भी छन्दःशास्त्र-परंपरा के बीच उसके आदि-आचार्य माने जानेवाले पिङ्गल का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। सम्प्रति लौकिक संस्कृत के छन्दों का तो विशेषरूप से यह आधारग्रन्थ माना जाता है।

पिङ्गलाचार्य के सम्बन्ध में अन्य ऐतिहासिक मत तथा जनश्रुतियाँ

पञ्चतन्त्र में उद्धृत कथन से ज्ञात होता है कि समुद्रतट पर छन्दोज्ञान के निधि पिङ्गल को मकर ने मार डाला था।[२] इससे पिङ्गल पश्चिम-समुद्र के तीर पर निवास करने वाले आचार्य थे, यह संभावना की जा सकती है।

आचार्य पिङ्गल ने किस स्थान पर जन्म लिया, इसका विवरण प्रामाणिकरूप से ज्ञात नहीं है। इनके स्थिति-काल के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों में विभिन्न मत

१. अत्रानुक्तं गाथा (पि० ८/१)।
२. छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम् (पञ्चतन्त्र २/२६)

हैं। व्याकरणशास्त्र के इतिहासलेखक पं० **युधिष्ठिर मीमांसक** मानते हैं कि **यास्क,** शौनक, पाणिनि, पिङ्गल, **कौत्स**—ये सभी प्रायः समकालिक ही हैं।[१] उनके मत से इनके स्थिति-काल में अल्प ही अन्तराल प्रतीत होता है। युधिष्ठिर मीमांसक विक्रम से २८०० वर्षपूर्व ही इनकी स्थिति मानते हैं।

कुछ विद्वान् यह भी कहते हैं कि पिङ्गलाचार्य **पाणिनि** के मामा थे। किन्तु युधिष्ठिर मीमांसक इन्हें पाणिनि का अनुज मानते हैं। कुछ विद्वानों के मत से ये सम्राट् **अशोक** के गुरु थे। यह मत वाचस्पति गैरोला[२] का है। किन्तु पाणिनीय शिक्षा की **शिक्षाप्रकाश** टीका के अनुसार पिङ्गलाचार्य **पाणिनि** के अनुज थे। ये ही विचार कात्यायनरचित ऋक्सर्वानुक्रमणी के वृत्तिकार षड्गुरुशिष्य के भी हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि पाणिनि का स्थितिकाल ही पिङ्गलाचार्य का भी स्थितिकाल जानना चाहिए।

पाणिनि के स्थितिकाल के सन्दर्भ विभिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार हैं—

पं० सत्यव्रत सामश्रमी २४०० ई०पू०।

राजवाड़े और वैद्य ९००-८०० ई०पू०।

बेलवलकर ७००-६०० ई०पू०।

भण्डारकर ७०० ई०पू०।

मैक्डोनल ५०० ई०पू०।

मैक्समूलर ३५० ई०पू०।

कीथ ३०० ई०पू०।

वासुदेश शरण अग्रवाल ४८० ई०पू० इत्यादि।

इस प्रकार पिङ्गल के विषय में शेष सब ऐतिह्यनिर्णय पाणिनि के अनुसार ही समझना चाहिये, यह अनेक विद्वानों का मत है।

पिङ्गलच्छन्दःसूत्र की टीकासम्पत्ति

आचार्य पिङ्गल के छन्दःसूत्र पर अनेक विद्वानों ने वृत्ति, टीका, भाष्य तथा व्याख्या आदि की रचना की है। अपनी विशिष्ट व्याख्या-सम्पत्ति के कारण भी पिङ्गलछन्दःसूत्र का विद्वत्समाज में व्यापक आदर प्रमाणित होता है। इसकी प्रकाशित, अप्रकाशित व्याख्याओं में से कतिपय का संस्करण—आदि परिचय उल्लिखित है—

१. भट्टहलायुधकृत वृत्ति अत्यन्त प्रख्यात है। इस वृत्ति का नाम **मृतसञ्जीविनी** है। इसका बङ्गानुवाद-सहित सम्पादन श्री सीतानाथ सामाध्यायी भट्टाचार्य ने किया है तथा टिप्पणियाँ भी दी हैं। यह प्रथम संस्करण छात्रपुस्तकालय, कलकत्ता से १८३५ शकाब्द में प्रकाशित हुआ है।

---

१. संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ० १३९, १४० तथा १३२।

२. द्र० संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६२८ तथा India as known to Panini, p. 456, 475.

२. पिङ्गलनाग-**छन्दोविचिति भाष्य** के प्रणेता प्रसिद्ध रामानुज सम्प्रदाय के विद्वान् यादवप्रकाश हैं। यादवप्रकाश के सम्बन्ध में परिचय पृथक् प्रस्तुत किया गया है।
३. भास्करराय ने पिङ्गलछन्दःसूत्रों पर **भाष्यराज** की रचना की है। भास्करराय का परिचय पृथक् प्रस्तुत किया गया है। छन्दस्सूत्रभाष्यराज का विवेचन **छन्दःकौस्तुभ** (पृ. १७१) के प्रसङ्ग में किया गया है।
४. श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने पिङ्गलछन्दःसूत्र पर **सुखबोधिनी** नामक विस्तृत संस्कृत टीका की रचना की है। कलकत्ता से १९२४ में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ है।
५. अनन्त शर्मा धूपकर ने **'विशल्यकरणी'** नामक संस्कृत में विशिष्ट टिप्पणी पिङ्गलछन्दःसूत्र पर लिखी है। इसमें अन्य छन्दोग्रन्थों की तुलना भी प्रस्तुत की गयी है। यह निर्णयसागर प्रेस से काव्यमाला ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ९१ संख्या से १९३८ में हलायुधवृत्तिसहित प्रकाशित है।
६. **लक्ष्मीधर** निर्मित पिङ्गलटीका का उल्लेख **'वृत्तरत्नाकरादर्श'** में है। एतदर्थ गोडे स्टडीज इन इंडियन लिटरेरी हिस्ट्री (भाग १, पृ० ४६४) द्रष्टव्य है।
७. **वार्तिकराज** नाम से भी पिङ्गलसूत्र की संस्कृत व्याख्या का उल्लेख मिलता है। इसके रचयिता **गम्भीरराज दीक्षित** माने जाते हैं जो भास्करराय के पिता थे। भास्करराय के अग्रज सखाराम भट्ट (मखी) ने छोटीवृत्ति की रचना की थी, यह भी उल्लेख मिलता है।[1]
८. सखाराम भट्ट ने **'छोटीवृत्ति'** नाम से पिङ्गलसूत्रों की टीका की थी। परन्तु यह प्रकाशित नहीं हुई। इसका उल्लेख 'विशल्यकरणी' की भूमिका में किया गया है। अड्यार पुस्तकालय (मद्रास) में इसकी पाण्डुलिपि होने की सूचना पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने दी है। (वैछमी पृ० ५८)
९. कतिपय विद्वानों ने इस छन्दोग्रन्थ की चौदह टीकाओं की सूचना दी है।[2] किन्तु इनका विवरण अप्राप्त है।
१०. **वंशीधर** कृत पिङ्गलसूत्रटीका का भी उल्लेख प्राप्त होता है।
११. **राजेन्द्र दशावधान भट्टाचार्य** ने पिङ्गलछन्दस्सूत्र की व्याख्या की है। इसका नाम **'पिङ्गलतत्त्वप्रकाशिका'** है।

---

१. द्र० छोटीवृत्ति की आरम्भपुष्पिका—
गम्भीरयज्वनः पुत्रो भास्कराग्निचितोऽग्रजः।
सखाराममखी छन्दोवेदाङ्गं व्याचिकीर्षति॥
पित्रा वार्तिकराजे यत् भाष्यराजेऽनुजेन च।
उक्तं तदेव सङ्गृह्य छोटीं वृत्तिं करोम्यहम्॥
(तु. अड्यार पुस्तकालय सूची भाग १ सं० ७०७ पृ० २५२)

२. द्रष्टव्य—मात्रिक छन्दों का विकास, पृ० ३८ तथा विनयसागर द्वारा सम्पादित वृत्तमौक्तिक का अष्टम परिशिष्ट।

१२. अखिलानन्द शर्मा का **वैदिकभाष्य** भी उपलब्ध होता है (बदायूँ, मेरठ १९६५ वि०सं० १९०९ ई०)।

१३. जगन्नाथ मिश्र की **मिताक्षरा** टीका की पाण्डुलिपि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत है।

१४. कैटेलोगस कैटेलागोरम् में निम्नलिखित नामों से पिङ्गलछन्दःसूत्र की टीकाओं की सूचना दी गयी है—**पद्मप्रभसूरि, पशुकवि, भास्कराचार्य, मथुरानाथ शुक्ल, मनोहरकृष्ण, वामनाचार्य, वेदाङ्गराज**।

१५. ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर में एस. कृष्णमाचारी ने **दामोदर** तथा **श्रीहर्ष शर्मा** (मकरध्वजतनय) के नामों से पिङ्गलटीकाओं का उल्लेख किया है।

१६. पिङ्गलसूत्र के मूल तथा टीकाग्रन्थों की सरस्वतीभवन ग्रन्थालय (वाराणसी) में निम्नलिखित पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं—

छन्दःशास्त्रम् (ले० बुद्धिसागर, एकादशशती), पिङ्गलसूत्रव्याख्या (हलायुध), छन्दःशास्त्रम् (सं० ४४०८४), छन्दःसूत्रम् (सं० ४४२१०), छन्दोभाष्यम् (सं० ४४०९०), छन्दोवृत्तिः (सं० ४४१३१), पिङ्गलछन्दोवृत्तिः (सं० ४४०२५), पिङ्गलसूत्रम् सवृत्तिकम् (सं० ४४१०२) आदि।

पिङ्गलाचार्य के नवीनलक्षित वैदिक छन्द

पिङ्गलच्छन्दःसूत्र में लक्षित ११९ वैदिक छन्दों में पिङ्गल के द्वारा नवीन रूप से लक्षित ११ छन्द इसप्रकार हैं—

१. अतिपाद-निचृद् गायत्री (६+८+७) = २१ वर्ण।
२. नागी गायत्री (९+९+६) = २४ वर्ण।
३. वाराही गायत्री (६+९+९) = २४ वर्ण।
४. पिपीलिकमध्या गायत्री (९+६+९) = २४ वर्ण।
५. बृहती (१०+१०+८+८) = ३६ वर्ण।
६. स्कन्धोग्रीवी[1] बृहती (८+१२+८+८) = ३६ वर्ण।
७. सतो बृहती[2] (१२+१२+१२) = ३६ वर्ण।
८. अल्पशोऽक्षरपङ्क्तिः (५+५) = १० वर्ण।
९. पदपङ्क्तिः (४+६+५+५+५) = २५ वर्ण।

---

१. यह छन्द आचार्य क्रौष्टुकिकृत माना जाता है, जिसका लक्षण पिङ्गल ने छन्दःसूत्र में प्रकाशित किया है (छ०सू० ३/२९)।

२. यह छन्द आचार्य ताण्डिकृत माना जाता है, जिसका लक्षण पिङ्गल ने छन्द;सूत्र में प्रकाशित किया है (छन्दःसूत्र ३/३६)।

१०. पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् (११+८+८+८+८) = ४३ वर्ण।

११. मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप् (८+८+११+८+८) = ४३ वर्ण।

१२. उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् (८+८+८+८+११) = ४३ वर्ण।

१३. पुरस्ताज्ज्योतिर्जगती (१२+८+८+८+८) = ४४ वर्ण।

छन्दःसूत्र के लौकिक छन्द

इस ग्रन्थ में चतुर्थ अध्याय के आठवें सूत्र से ग्रन्थसमाप्ति तक लौकिक छन्दों का विवरण है; जिसमें मात्रिक, वार्णिक, गाथारूप-छन्दोविभागों में १६२ लौकिक छन्दों के लक्षण हैं; किन्तु इनके उदाहरण नहीं हैं। इन छन्दों में पिङ्गल के द्वारा नवीनरूप से लक्षित प्रायः १०० छन्द हैं। अन्य पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों में प्राप्त हैं, इनमें उद्धर्षिणी छन्द **सैतव** का एवं चण्डवृष्टिप्रयात नामक दण्डक **माण्डव्य** के कहे जाते हैं। इन दोनों के लक्षण छन्दःसूत्र में दिये गये हैं।

महर्षि सैतव के छन्द

उद्धर्षिणी (तभजा जगौ गः) (उद्धर्षिणी सैतवस्य-छन्दःसूत्र ७/१०)

सैतव के उद्धर्षिणी छन्द को **भरत** ने वसन्ततिलका कहा है।[1] पिङ्गल ने छन्दों के नामान्तरों का भी उल्लेख किया है। वसन्ततिलका को **काश्यप** के द्वारा सिंहोन्नता[2] एवं **शाकल्य** के द्वारा मधुमाधवी कहा गया है, किन्तु पिङ्गल ने वसन्ततिलका[3] ही कहा है। **कविसुन्दर** ने 'करुणोत्पल' एवं भुजगाधिपति ने 'शोभावती' कहा है।[4] परन्तु यह उद्धर्षिणी वसन्ततिलका नाम से ही प्रसिद्ध है।

ऋषि माण्डव्य का दण्डक

चण्डवृष्टिप्रयातः (ननररररररराः) नामक छन्द को (छन्दःसूत्र ७/३६) भरत ने **मालावृत्त** संज्ञा दी है;[5] किन्तु पिङ्गल ने इसको दण्डक कहा है।[6]

पिङ्गल के कतिपय विशेष-लक्षित लौकिक छन्द

उष्णिग्वृत्ति सप्ताक्षरपाद

१—कुमारललिता (जसगाः) पि०छ० ६/३

अनुष्टुब्वृत्ति अष्टाक्षरपाद

२—माणवकाक्रीडितक (भ्तौ ल्गौ) पि०छ० ६/४

---

१. ना०शा० १६/६४।

२. छन्दःसूत्र ७/९, ११।

३. छ०सूत्र ७/८।

४. जयदामन प्रकाशित वृत्तरत्नाकर ३/७५/३, ४।

५. ना० शा० १६/११२।

६. छन्दःसूत्र ७/३५।

३—चित्रपदा	(भौ गौ)	पि०छ	६/५
४—हंसरुतम्	(म्नौ गौ)	,,	६/७
५—समानी	(रजगला:)	,,	५/६

बृहतीवृत्ति नवाक्षरपाद

६—हलमुखी (रनसा:) पि०छ० ६/८

पङ्क्तिवृत्ति दशाक्षरपाद

७—शुद्धविराट्	(मसजगा:)	पि०छ०	६/९
८—मत्ता	(मभौ सगौ)	,,	६/१३
९—उपस्थिता	(तजजगा:)	,,	६/१४

त्रिष्टुब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद

१०—वातोर्मी	(मभता गौ)	पि०छ०	६/२०
११—भ्रमरविलसितम्	(मभनलगा:)	,,	६/२१
१२—वृन्ता	(नौ सो गौ)	,,	६/२४
१३—श्येनी	(रजरलगा:)	,,	६/२५
१४—विलासिनी	(जरजा गौ)	,,	६/२६

जगतीवृत्ति द्वादशाक्षरपाद

१५—इन्द्रवंशा	(तौ जरौ)	पि०छ०	६/२९
१६—जलोद्धतगति:	(जसौ जसौ)	,,	६/३३
१७—ततम्	(नौ मरौ)	,,	६/३४
१८—कुसुमविचित्रा	(नयौ नयौ)	,,	६/३५
१९—चञ्चलाक्षिका	(नौ रौ)	,,	६/३६
गौरी	(नौ रौ)	,,	८/५
२०—कान्तोत्पीडा	(भमौ समौ)	,,	६/४०
२१—वाहिनी	(तयौ मयौ)	,,	६/४२
२२—नवमालिनी	(नजौ भयौ)	,,	६/४३
२३—वरतनु:	(नजौ जरौ)	,,	८/३
२४—जलधरमाला	(मभौ समौ)	,,	/४

अतिजगतीवृत्ति त्रयोदशाक्षरपाद

२५—गौरी	(नौ नसौ ग:)	पि०छ०	७/४
२६—कुटिलगति:	(नौ तौ ग:)	,,	८/८

शक्वरीवृत्ति चतुर्दशाक्षरपाद

२७—अपराजिता	(नौ रसौ लगौ)	पि०छ०	७/६
२८—प्रहरणकलिता	(नौ भनौ लगौ)	,,	७/७
२९—वरसुन्दरी	(भजौ सनौ गौ)	,,	८/९
३०—कुटिला	(मभौ नयौ गौ)	,,	८/१०

अतिशक्वरीवृत्ति पञ्चदशाक्षरपाद

३१—चन्द्रावर्ता	(नौ नौ स:)	पि०छ०	७/११

अष्टिवृत्ति षोडशाक्षरपाद

३२—गीत्यार्या	(नौ नौ नलौ)	पि०छ०	४/४८
३३—शैलशिखा	(भरौ नभौ भगौ)	,,	८/११
३४—वरयुवती	(भरौ यनौ नगौ)	,,	८/१२

अत्यष्टिवृत्ति सप्तदशाक्षरपाद

३५—अतिशायिनी	(सौ जभजा गौ)	पि०छ०	८/१३
३६—अवितथम्	(नजभा जौ लगौ)	,,	८/१४

धृतिवृत्ति अष्टादशाक्षरपाद

३७—विबुधप्रिया	(रसौ जौ भरौ)	पि०छ०	८/१६
३८—नाराचकम्	(नौ रौ रौ)	,,	८/१७

अतिधृतिवृत्ति एकोनविंशत्यक्षरपाद

३९—विस्मिता	(यमौ नसौ रौ ग:)	पि०छ०	८/१८

कृतिवृत्ति विंशत्यक्षरपाद

४०—वृत्तम्	(रजौ रजौ रजौ गलौ)	पि०छ०	७/२४

प्रकृतिवृत्ति एकविंशत्यक्षरपाद

४१—शशिवदना	(नजौ भजौ जौ र:)	पि०छ०	८/१९

विकृतिवृत्ति त्रयोविंशत्यक्षरपाद

४२—अश्वललितम्	(नजौ भजौ भजौ भलगा:)	पि०छ०	७/२७

संकृतिवृति चतुर्विंशत्यक्षरपाद

४३—तन्वी	(भतनसभभनया:)	पि०छ०	७/२९

उत्कृतिवृत्ति षडविंशत्यक्षरपाद

४४—अपवाहक:	(मनौ नौ नौ नसौ गौ)	पि०छ०	७/३२

दण्डक

४५—प्रचित:	(ननररररररररा:)	पि०छ०	७/३६

अर्धसमवृत्त

४६—(११, ११)	उपचित्रकम्	(सससलगाः, भभभगगाः)	५/३२
४७—(११, १२)	द्रुतमध्या	(भभभगगाः, नजजयाः)	५/३३
४८—(१०, ११)	वेगवती	(सससगाः, भभभगगाः)	५/३४
४९—(१०, ११)	भद्रविराट्	(तजरगाः, भसजगगाः)	५/३५
५०—(११, ११)	आख्यानकी	(ततजगगाः, जतजगगाः)[1]	५/३७
५१—(११, ११)	विपरीताख्यानकी	(जतजगगाः, ततजगगाः)[2]	५/३८
५२—(११, १२)	हरिणप्लुता	(सससलगाः, नभभराः)	५/३९
५३—(१२, १३)	यवमती	(रजरजाः, जरजरगाः)	५/४२

विषमवृत्त

५४—(८, ८, ८, ८) वक्त्रानुष्टुप् (केऽपि ४ वर्णाः, यः, कोऽपि १ वर्णः, पि०छ० ५/१३)

५५—(८, ८, ८, ८) पथ्यावक्त्रम् (द्वितीय चतुर्थे च पादे केऽपि ४ वर्णाः, जः, कोऽपि १ वर्णः, पि०छ० ५/१४)

५६—(८, ८, ८, ८) विपरीतपथ्या (प्रथमे तृतीये च पादे केऽपि ४ वर्णाः, जः, कोऽपि १ वर्ण, पि०छ० ५/१५)

५७—(८, ८, ८, ८) चपलावक्त्रम् (प्रथमद्वितीयपादयोः केऽपि ४ वर्णाः, नः, कोऽप्येको वर्णः, द्वितीयचतुर्थ-पादयोः केऽपि ४ वर्णाः, जः, कोऽपि१ वर्णः, पि० ५/१६)

५८—(८, ८, ८, ८) भ-विपुला (१, ३ पादयोः केऽपि ४ वर्णाः, भः, कोऽपि १ वर्णः, २, ४ पादयोः सप्तमवर्णो लघुः, पि०छं०सू०-५/१९)

५९—(८, ८, ८, ८) र-विपुला (१, ३ पादयोः केऽपि ४ वर्णाः, रः, कोऽपि १ वर्णः, २, ४ पादयोः सप्तमवर्णो लघुः, पि०छं०सू०-५/१९)

६०—(८, ८, ८, ८) न-विपुला (१, ३ पादयोः केऽपि ४ वर्णाः+नः+कोऽपि १ वर्णः, २, ४ पादयोः सप्तमवर्णो लघुः, पि०छं०सू०-५/१९)

६१—(८, ८, ८, ८) त-विपुला (१, ३ पादयोः केऽपि ४ वर्णाः+तः+कोऽपि १ वर्णः, २, ४, पादयोः सप्तमवर्णो लघुः, पि०छं०सू०-५/१९)

६२—(८, १२, १६, २०) पदचतुरूर्ध्वम् (अनुष्टुभः पादात्प्रतिपादं चतुरक्षरवृद्धिः, पि०छं०सू०-५/२०)

६३—(८, १२, १६, २०) आपीडम् (६ लाः २ गौ, १० लाः २ गौ, १४ लाः २ गौ, १८ लाः २ गौ, पि०छं०सू०-५/२१)

१, २—इन दोनों वृत्तों का नामान्तर उपजाति भी है (द्र० पि०छ० ५/३८ वि०क०)

६४— (८, १२, १६, २०) प्रत्यापीडम् (२ गौ, ६ लाः, २ गौ, १० लाः, २ गौ, १४ लाः, २ गौ, १८ लाः, पि०छं०सू०-५/२२)

६५— (८, १२, १६, २०) प्रत्यापीडम् (२ गौ, ४ लाः, २ गौ, २ गौ, ८ लाः, २ गौ, २ गौ, १२ लाः, २ गौ, २ गौ, १६ लाः, २ गौ, पि०छं०सू०-५/२३)

६६— (१२, ८, १६, २०) मञ्जरी (द्वितीय आनुष्टुभपादः, पि०छं०सू०-५/२४)

६७— (१२, १६, ८, २०) लवली (तृतीय आनुष्टुभपादः, पि०छं०सू०-५/२४)

६८— (१२, १६, २०, ८) अमृतधारा (चतुर्थ आनुष्टुभपादः, पि०छं०सू०-५/२४)

६९— (१०, १०, ११, १३) उद्‌गता (सजसलाः, नसजगाः, भनजलगाः, सजसजगाः) पि०छं०सू०-५/२५

७०— (१०, १०, १२, १३) सौरभकम् (सजसलाः, नसजगा, रनभगाः, सजसजगाः), पि०छं०सू०-५/२६

७१— (१०, १०, १२, १३) ललितम् (सजसलाः, नसजगाः, ननससाः सजसजगाः), पि०छं०सू०-५/२७

७२— (१४, १३, ९, १५) उपस्थितप्रचुपितम् (मसजभा गौ, सनजरगाः नौ सः, नौ नजयाः), पि०छं०सू०-५/२८

७३— (१४, १३, १८, १५) वर्धमानम् (मसजभा गौ, सनजरगाः, ननसननसाः, नननजयाः), पि०छं०सू०-५/२९

७४— (१४, १३, ९, १५) शुद्धविराड्‌षभः (मसजभा गौ, सनजरगाः, तजराः, नननजयाः), पि०छं०सू०-५/३०

७५— गाथा (पूर्वानुक्तपादवर्णा), पि०छं०सू०-८/१

द्विपदमात्रावृत्त

७६— गीतिः (आर्यापूर्वार्द्धवदुत्तरार्द्धमपि, ३०, ३० मात्राः)

७७— उपगीतिः (आर्यापूर्वार्द्धमुत्तरार्द्धवत्, २७, २७ मात्राः)

७८— उद्‌गीतिः (पूर्वार्द्धे २७ उत्तरार्द्धे च ३० मात्राः)

७९— ज्योतिःशिखा (३२ लाः, १६ गाः), पि०छं०सू०-४/५०

८०— सौम्यशिखा (१६ गाः, ३२ लाः) पि०छं०सू०-४/५१

८१— चूलिका (पूर्वार्द्धे २७ लाः, १ गः, उत्तरार्द्धे २९ लाः, १ गः) पि०छं०सू०-४/५२

चतुष्पदमात्रावृत्त

८२— वैतालीयम् (६, रलगाः, ८, रलगाः, १४, १६ मात्राः)

८३— औपच्छन्दसकम् (६, रयौ, ८, रयौ, १६, १८ मात्राः)

८४— आपातलिका (६, भो गौ, ८, भो गौ, १४, १६ मात्राः)

छन्दःसूत्र—७६—४/२८, २९; ७७—४/२९-३०; ७८—४/३०-३१; ८२—४/३२-८३—४/३३; ८४—४/३४

८५— प्राच्यवृत्तिः (६, रलगाः, ८, ३, गः ३, १४, १६ मात्राः), पि०छं०सू०-४/३७

८६— उदीच्यवृत्तिः (लगौ, ३, रलगाः ८, रलगाः १४, १६ मात्राः), पि०छं०सू०-४/३८

८७— प्रवृत्तकम् (लगौ, ३, रलगाः, ३, गः ३, रलगाः १४, १६ मात्राः), पि०छं०सू०-४/३९

८८— चारुहासिनी (६+रलगाः, ६+रयौ, ६+रयौ, ६+रलगाः १४, १६, १६, १४ मात्राः), पि०छं०सू०-४/४०

८९— अपरान्तिका (६+रलगाः, ६+रयौ, ६+भौ गः, ६+रलगाः १४, १६, १६, १४ मात्राः), पि०छं०सू०-४/४१

९०— मात्रासमकम् (प्रतिपादं १६ मात्राः, यत्र नवमो लघुरन्तिमश्च वर्णो गुरुः), पि०छं०सू०-४/४२

९१— विश्लोकः (प्रतिपादं १६ मात्राः, यत्र पञ्चमाष्टमौ लघू गुरुश्चान्तिमः), पि०छं०सू०-४/४४

९२— चित्रा (प्रतिपादं १६ मात्राः, यत्र ५, ८, ९ वर्णा लघवोऽन्तिमश्च गुरुः), पि०छं०सू०-४/४५

९३— उपचित्रा (प्रतिपादं १६ मात्राः, यत्र नवमदशममात्रान्ते गुरुवर्णौ), पि०छं०सू०-४/४६

९४— पादाकुलकम् (मात्रासमकादुपचित्रापर्यन्तं छन्दश्चरणैः पादरचना), पि०छं०सू०- ४/४७

९५— शिखा (२८ लाः+१ गः, ३० लाः+१ गः; २८ लाः+१ गः, ३० लाः+१ गः, ३०, ३२, ३०, ३२ मात्राः), पि०छं०सू०-५/४३

९६— खञ्जा (३० लाः+१ गः, २८ लाः+१ गः, ३० लाः+१ गः, २८ लाः+१ गः, ३२, ३०, ३२, ३० मात्राः), पि०छं०सू०-५/४४

समानी एवं प्रमाणी छन्दों के लक्षण पिङ्गल के द्वारा छन्दःसूत्र के पाँचवें अध्याय में छठें एवं सातवें सूत्र में किये गये हैं। कतिपय विचारकों का मत है कि भरत के लघुगुरु-वर्णसूचक पद्धति पर यह आधारित है। आचार्य पिङ्गल की अपनी अष्टगणात्मक पद्धति है। इन दोनों छन्दों के लक्षण पिङ्गल ने लौकिक छन्दों के लक्षण से पूर्व भरतपद्धति के आधार पर किया है। यथा—समानी (ऽ। ऽ। ऽ। ऽ।) और प्रमाणी (।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ)। अतः कल्पना होती है कि पिङ्गल के द्वारा पाँचवें अध्याय में भरत की पद्धति पहले समादृत हुयी है तथा इसके अनन्तर अष्टगणात्मक पद्धति विकसित कर छठे अध्याय से लौकिक छन्द लक्षित हुए हैं; परन्तु यह मत उचित नहीं है। वस्तुतः छन्दश्शास्त्रीय सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार इस आगम के

आद्य आचार्य शेषावतार पिङ्गल हैं। अत: उन्होंने अपने ग्रन्थ में भरत द्वारा बाद में समादृत पद्धति का भी पूर्वसङ्केत तथा सूत्रोपदेश किया है। परवर्ती आचार्य भरत ने इस गुरुलघुपद्धति का सविशेष ग्रहण किया।

नाट्यशास्त्र-छन्दोविचिति (आचार्य भरतमुनि)

नाट्यशास्त्र के आद्य आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र के दो अध्यायों में छन्दों का निरूपण किया है। काशी से प्रकाशित संस्करण में नाट्यशास्त्र के १५ तथा १६ अध्यायों में छन्द:शास्त्र का पर्याप्त सुन्दर वर्णन है। नाट्य के प्रसंग में छन्दों का निरूपण अनिवार्य ही है, क्योंकि संस्कृत-नाटकों में वृत्तात्मक पद्यों का विशिष्ट अस्तित्व है। **भरत मुनि** की दृष्टि व्यावहारिक है। फलत: नाट्य-व्यवहार को लक्ष्य में रखकर ही उनके इस छन्दोविवरण का सामञ्जस्य होता है। नाट्यशास्त्र के १५वें अध्याय में वृत्तों का सामान्य विवेचन है तथा १६वें अध्याय में वृत्तों का लक्षण तथा उदाहरण दिया गया है। भरत अष्टगणों से परिचित हैं (१५/८४-८८) तथा उनके नाम भी पिङ्गलसम्मत मगण, भगण, आदि हैं। परन्तु छन्दों के लक्षण प्रतिपादित करते समय भरत लघु-गुरु-पद्धति का ही आश्रयण करते हैं। प्रतीत होता है कि आचार्य भरत इस पद्धति के प्रतिष्ठापक अथवा परिवर्धक हैं। उदाहरण आचार्य द्वारा स्वविरचित हैं और उनमें तत्तत् छन्दों के भी नाम मुद्रालंकार द्वारा निर्दिष्ट है जिनके वे उदाहरण दिये गये हैं। यह प्रकार भरत की ही मौलिक पद्धति प्रतीत होता है।

भरतमुनि की प्रतिपादन-शैली

यत: भरतमुनि का छन्दोविवेचन मात्र नाट्य-व्यवहार के उपयोग के लिये हैं, अत: यहाँ वैदिक छन्दों का विवेचन नहीं किया गया है। श्लोकों में छन्दोलक्षण हैं तथा शृंगाररस और नायिकाओं से सम्बन्ध रखनेवाली पंक्तियों के रूप में इन छन्दों के क्रमश: उदाहरण दिये गये हैं। भरतमुनि ने प्रत्ययों पर विचार नहीं किया है।

सभी छन्दों के लक्षण संस्कृत में कारिकाबद्ध हैं। **ध्रुवा** के निरूपण के प्रसङ्ग में विवेचित छन्दों के उदाहरण प्राकृतभाषा में हैं। रसों की दृष्टि से छन्दों के नित्य-सम्बन्ध को भी प्रदर्शित किया गया है। सोलहवें अध्याय के अन्त में यह शास्त्र **'छन्दोविचिति'** नाम से निर्दिष्ट है।

नाट्यशास्त्र के १५वें अध्याय में छन्दों के प्रथमादि तीन सप्तकों को क्रमश: **दिव्य, दिव्येतर** और **दिव्यमानुष संज्ञा** से व्यवहृत किया गया है। इसमें एक से २६ अक्षरों तक के छन्दों का भेदोपभेद देते हुए निरूपण किया गया है और अन्त

में गुरु, लघु तथा यति, मात्रा आदि छन्द:शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या दी गयी है। इसी क्रम में १६वें अध्याय में भी आगे विशेषकर **वाचिकाभिनय** में उपयोगी वृत्तों का सोदाहरण निरूपण है और अन्त में सम तथा विषम वृत्त बतलाकर आर्या के प्रभेदों का विवरण दिया गया है। इस अध्याय का नाम छन्दोविचिति है। इसके अतिरिक्त ३२वें अध्याय में भी छन्दों के सोदाहरण लक्षण प्राप्त होते हैं।

आचार्य पिङ्गल का नाम यहाँ निर्दिष्ट नहीं है। अत: कुछ मनीषियों ने कहा है कि यह मत प्रतिष्ठित नहीं माना जा सकता कि भरत का वर्णन पिङ्गल से परवर्ती है।[१] पाश्चात्त्य विद्वान् वेबर ने तो पिङ्गल को भरत से परवर्ती माना है। परन्तु **कुन्दनलाल शर्मा** प्रभृति (वेदाङ्ग पृ० ४९४) इतिहास-लेखकों ने नाट्यशास्त्र (१५/८४-८८) में मगणादि के प्रयोग के कारण इसे स्पष्टत: पिंङ्गल से परवर्ती माना है। निर्णयसागर से प्रकाशित नाट्यशास्त्र में वृत्तों के लक्षण में गणीय पद्धति व्यवहृत है। ऐसी परिस्थिति में यह कहना नितान्त दुर्गम है कि भरत ने मूलत: छन्दोलक्षणविन्यास में किस पद्धति को अपनाया था।[२]

यहाँ प्रयुक्त छन्दों में वैदिकपद्धति का साम्य है; जिसके आधार पर यह ग्रन्थ ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी का माना जाता है।[३] **शेखर** के मतानुसार ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व नाट्यशास्त्र का अस्तित्व था।[४] महाकवि **कालिदास** ने 'विक्रमोर्वशीयम्' में भरतमुनि के आठ रसों की चर्चा की है।[५] इस कारण वाचस्पति गैरोला नाट्यशास्त्र को कालिदास के पूर्व का मानते हैं।[६] कन्हैयालाल पोद्दार ने नाट्यशास्त्र का स्थितिकाल वैदिकयुग के पश्चात् एवं पुराणकाल के पूर्व का माना है।[७] युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार भरतमुनि छन्द:शास्त्रप्रवक्ताओं में त्रेतायुगीन माण्डव्य एवं सैतव के परवर्ती एवं द्वापरयुगीन **यास्क** से पूर्ववर्ती हैं।[८] नाट्यशास्त्र के सम्पादक डॉ० **मनमोहन घोष** एवं महामहोपाध्याय **रामकृष्ण कवि** ने नाट्यशास्त्र को ईसापूर्व पञ्चम शताब्दी का माना है। इसप्रकार अनेक विद्वानों के मत के निष्कर्ष-स्वरूप यह

---

१. द्र० मात्रिक छन्दों का विकास, पृ० ३५।

२. द्रष्टव्य—नाट्यशास्त्र काशी चौखम्बा संस्करण (१९२९ ई०) १६ अ० जिसकी पाद टिप्पणी में निर्णयसागर का पाठ भी दिया गया है।

३. एम० घोष, The Natya Shastram, Introduction, P. 61, 62.

४. 1. Shekhar, Sanskrit Drama, Foot note-1, P. 43.

५. मुनिना भरतेन य: प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रय: प्रयुक्त: (विक्रमोर्वशीयम् २/१८)

६. भारतीय नाट्यपरम्परा और अभिनय दर्पण, (वा० गैरोला—पृष्ठ-२९-३०)।

७. बाबूलाल शुक्ल, नाट्यशास्त्र, प्रस्तावना, पृष्ठ-४३।

८. युधिष्ठिरमीमांसक, वैदिक छन्दोमीमांसा, पृष्ठ-५९।

सिद्ध होता है कि यह छन्दोविचिति ग्रन्थ ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी अथवा इसके पूर्व की रचना है। भरतमुनि ने ग्रन्थ में शतपुत्रों में पिङ्गल का नामोल्लेख भी किया है,[१] अत: यह ग्रन्थ छन्द:सूत्र के बाद का है, यही निर्णय स्पष्ट होता है।[२] आचार्य भरत की अर्वाचीनतम कालसीमा तृतीय शताब्दी ईसापूर्व मानी गयी है।

भरत के नवीनलक्षित छन्द

१– उक्ता वृत्ति एकाक्षरपाद

१. ह्री (ग:) (ना०शा०—३२/४६-४७)

२– अत्युक्ता वृत्ति द्व्यक्षरपाद

२. आदि: (गौ) (ना०शा० ३२/४८-४९)

३– मध्या वृत्ति त्र्यक्षरपाद

३. तटि (र:) (ना०शा० ३२/५०-५१)

४. धृति: (य:) (ना०शा० ३२/५२-५३)

५. रजनी (स:) (ना०शा० ३२/५४-५५)

४– प्रतिष्ठा वृत्ति चतुरक्षरपाद

६. जया (जगौ) (ना०शा० ३२/६१-६२)

७. पुष्पम् (रगौ) (ना०शा० ३२/५७-५८)

८. भ्रमरी (सगौ) (ना०शा० ३२/५९-६०)

५– सुप्रतिष्ठा वृत्ति पञ्चाक्षरपाद

९. विद्युद्भ्रान्ता (मो गौ) (ना०शा० ३२/६३-६४)

१०. भूतलतन्वी (भो गौ) (ना०शा० ३२/६५-६६)

११. कमलमुखी (नलगा;) (ना०शा० ३२/६७-६८)

१२. वागुरु (रलगा:) (ना०शा० ३२/६९-७०)

१३. शिखा (जो गौ) (ना०शा० ३२/७१-७२)

१४. घनपङ्क्ति: (सो गौ) (ना०शा० ३२/७३-७४)

६– गायत्री वृत्ति षडक्षरपाद

१५. तनुमध्या (तयौ) (ना०शा० १६/२-३, ३२/७५-७६)

१६. मकरकशीर्षा (नयौ) (ना०शा० १६/४-५, ३२/८०)

१७. मालिनी (रमौ) (ना०शा० १६/६)

नीलतोया (रमौ) (ना०शा० ३२/९८)

१८. मालिनी (भरौ) (ना०शा० ३२/७८)

---

१. नाट्यशास्त्र १/२९ (गायकवाड संस्करण, बड़ौदा १९३४ ई०)

२. पिङ्गल का नामोल्लेख रहने पर भी पिङ्गलछन्दस्सूत्र को भरत से बाद की रचना मानना सङ्गत नहीं है (द्र० संस्कृत छन्दों का उद्भव तथा विकास में रामकिशोर मिश्र का मत चिन्त्य है पृ० ३१)

१९. विमला (सयौ) (ना०शा० ३२/८२)
२०. वीथी (मसौ), पङ्क्तिः (मसौ) (ना०शा० ३२/८४, ९४)
२१. गिरा (नरौ) (ना०शा० ३२/८६)
२२. जला (तरौ) (ना०शा० ३२/८८)
२३. रम्या (मयौ) (ना०शा० ३२/९०)
२४. विक्रान्ता (भयौ) (ना०शा० ३२/९२)
२५. नलिनी (सौ) (ना०शा० ३२/९६)

७– उष्णिग् वृत्ति सप्ताक्षरपाद

२६. उद्धता (रसगाः) (ना०शा० १६/८)
२७. भ्रमरमाला (तसगाः) (ना०शा० १६/१०, ३२/१०७)
२८. द्रुतगतिः (चपला) (नौ गः) (ना०शा० ३२/१०१)
२९. विमला (सजगाः) (ना०शा० ३२/१०३)
३०. कामिनी (रजगाः) (ना०शा० ३२/१०५)
३१. भोगवती (भौ गः) (ना०शा० ३२/१०९)
३२. मधुकरी (तनगाः) (ना०शा० ३२/१११)
३३. सुभद्रा (विलम्बिता) (जरगाः) (ना०शा० ३२/११३, १२३)
३४. कुसुमवती (नयगाः) (ना०शा० ३२/११५)
३५. मुदिता (यसगाः) (ना०शा० ३२/११७)
३६. प्रकाशिता (नरगाः) (ना०शा० ३२/११९)
३७. दीप्ता (सरगाः) (ना०शा० ३२/१२१)
३८. पञ्चमगतिः (भजगाः) (ना०शा० ३२/१२५)

८– अनुष्टुब् वृत्ति अष्टाक्षरपाद

३९. चित्तविलसितम् (नजौ गौ) (ना०शा० १५/१६)
४०. विद्युल्लेखा (मौ गौ) (ना०शा० १६/१६)
माला (मौ गौ) (ना०शा० ३२/१८१)
४१. सिंहलीला (रजौ गौ) (ना०शा० १६/१२)
४२. मत्तचेष्टितम् (जरलगाः) (ना०शा० १६/१४)
४३. विमलजला (सनलगाः) (ना०शा० ३२/१२८)
४४. ललितगतिः (नजलगाः) (ना०शा० ३२/१३०-१३१)
४५. मही (नसलगाः) (ना०शा० ३२/१३३)
४६. मधुकरसदृशा (नौ गौ) (ना०शा० ३२/१३५)
४७. नदी (भनलगाः) (ना०शा० ३२/१३९)

९– बृहती वृत्ति नवाक्षरपाद

४८. मधुकरिका (नौ मः) (ना०शा० १६/१८)
४९. रुचिरा (तभयाः) (ना०शा० ३२/१४२)
५०. कनकलता (तनमाः) (ना०शा० ३२/२००)
५१. शशिरेखा (नजयाः) (ना०शा० ३२/२०४)
५२. शलभविचलिता (नसयाः) (ना०शा० ३२/२०६)
५३. मणिगणनिकरः (ननसाः) (ना०शा० ३२/२०८)
५४. सिंहाक्रान्ता (भमसाः) (ना०शा० ३२/२१०)
५५. बुद्बुदः (नजराः) (ना०शा० ३२/१८४)
५६. भाविनी (रजराः) (ना०शा० ३२/३०४)

१०– पङ्क्ति वृत्ति दशाक्षरपाद

५७. कुवलयमाला (मनयगाः) (ना०शा० १६/२०)
५८. शिखिसारिणी (रजरगाः) (ना०शा० १६/२२)
५९. प्रमिता (सजसगाः) (ना०शा० ३२/१४४)
६०. वृत्तसमृद्धा (भमनगाः) (ना०शा० ३२/२०४)
६१. सुरदयिता (भतनगाः) (ना०शा० ३२/२१३)
६२. कुसुमसमुदिता (मननगाः) (ना०शा० ३२/२१५)
६३. वृत्त-प्रथिता (भभभगाः) (ना०शा० ३२/२१७)
६४. उद्धता (मससगाः) (ना०शा० ३२/२१९)
६५. विपुलभुजा (नजयगाः) (ना०शा० ३२/२२१)
६६. पुष्पसमृद्धा (भमसगाः) (ना०शा० ३२/२२७)

११– त्रिष्टुब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद

६७. दोधकम् (भभभा गौ) (ना०शा० १६/२४)
६८. मोदकः (तजजलगाः) (ना०शा० १६/२६)
६९. इन्द्रवज्रा (ततजा गौ) (ना०शा० १६/२८)
७०. उपेन्द्रवज्रा (जतजा गौ) (ना०शा० १६/३०)
७१. स्वागता (रनभा गौ) (ना०शा० १६/३४)
७२. शालिनी (मतता गौ) (ना०शा० १६/३६)
७३. गतविशोका (नसनगगाः) (ना०शा० ३२/१४६)
७४. विश्लोकः (तभजलगाः) (ना०शा० ३२/१४९)[१]
७५. रथोद्धता (रनरलगाः) (ना०शा० १६/३२, ३२/३०७)
७६. पीनश्रोणिः (मभसा गौ) (ना०शा० ३२/२०२)

---

१. नाट्यशास्त्र, निर्णयसागर संस्करण, बम्बई।

७७. अभिहिता (तननलगा:) (ना०शा० ३२/२२३)

७८. कमललताक्षी (नयनलगा:) (ना०शा० ३२/२२५, २३१)[१]

७९. द्रुतपादगति: (नजजलगा:) (ना०शा० ३२/२२९)

८०. विमला (समनलगा:) (ना०शा० ३२/२३३)

८१. अपरवक्त्रम् (ननरलगा:) (ना०शा० ३२/२४३)

८२. रुचिरा (भतना गौ) (ना०शा० ३२/२३५)

८३. उद्यतम् (तनरलगा:) (ना०शा० ३२/३०८)

१२– जगती वृत्ति द्वादशाक्षरपाद

८४. तोटकम् (ससससा:) (ना०शा० १६/३८)

८५. कुसुमदनिभा (नयरया:) (ना०शा० १६/४०)

८६. चन्द्रलेखा (ममयया:) (ना०शा० १६/४२)

८७. प्रतिमाक्षरा (सजससा:) (ना०शा० १६/४४, ३२/३१७)

८८. वंशस्थम् (जतजरा:) (ना०शा० १६/४६)

८९. हरिणप्लुतम्[२] (नभभरा:) (ना०शा० १६/४८)

९०. काममत्ता (ननरया:) (ना०शा० १६/५०)

९१. अप्रमेया[३] (यययया:) (ना०शा० १६/५२)

९२. पद्मिनी (रररराः) (ना०शा० १६/५४)

९३. पुटम् (ननमया:) (ना०शा० १६/५६)

९४. गतविशोका (नसनया:) (ना०शा० ३२/१४६)

९५. ललिता (तभजरा:) (ना०शा० ३२/१४८)

९६. विक्रान्ता (मममसा:) (ना०शा० ३२/१६२)

९७. कमललोचना (ननजसा:) (ना०शा० ३२/२२५)

९८. हंसास्यम् (नरभरा:) (ना०शा० ३२/३३१)

१३– अतिजगती वृत्ति त्रयोदशाक्षरपाद

९९. प्रभावती (जभसजगा:) (ना०शा० १६/५८)

१००. प्रहर्षिणी (मनजरगा:) (ना०शा० १६/६०)

१०१. मत्तमयूर: (मतयसगा:) (ना०शा० १६/६२)

१०२. विलम्बिता (सजसजगा:) (ना०शा० ३२/२५१)

१०३. विद्युन्माला (ममननगा:) (ना०शा० ३२/१६४)

१०४. त्वरितगति: (नननगा:) (ना०शा० ३२/२३७)

---

१. कमललताक्षी का नामान्तर अतिचपला भी मिलता है (ना०शा० ३२/२३१)।

२. हरिणप्लुत का नामान्तर पिङ्गल के द्वारा छन्द:सूत्र में द्रुतविलम्बित किया गया है।

३. अप्रमेया का नामान्तर पिङ्गल के द्वारा भुजङ्गप्रयात किया गया है।

१०५. मदकलिता (नजनसगाः) (ना०शा० ३२/२३९)
१०६. कमललोचना (नौ सौ गः) (ना०शा० ३२/२४१)
१०७. बुद्बुदकम् (सनसतगाः) (ना०शा० ३२/३१०)

१४– शक्वरी वृत्ति चतुर्दशाक्षरपाद

१०८. असम्बाधा (मतनसा गौ) (ना०शा० १६/६६)
१०९. शरभललितम् (मभनता गौ) (ना०शा० १६/६८)
११०. भूतलतन्वी (मतयना लगौ) (ना०शा० ३२/१६६)
१११. विभ्रमा (नौ सौ गौ) (ना०शा० ३२/१६८)

१५– अतिशक्वरी वृत्ति पञ्चदशाक्षरपाद

११२. नान्दीमुखी (नौ मो यौ) (ना०शा० १६/७०)
११३. भूतलतन्वी (भमसभसाः) (ना०शा० ३२/१७०)

१६– अष्टि वृत्ति षोडशाक्षरपाद

११४. स्खलितविक्रमा (सभमसभगाः) (ना०शा० १६/३२, ३२/१७२)
११५. वृषभगजविलसितम् (भरौ नौ नगौ) (ना०शा० १६/७२)
११६. प्रवरललितम् (यमनसरगाः) (ना०शा० १६/७४)
११७. उद्गता (सजौ सौ जगौ) (ना०शा० ३२/३१२)

१७– अत्यष्टि वृत्ति सप्तदशाक्षरपाद

११८. शिखरिणी (यमनसभा लगौ) (ना०शा० १६/७६)
११९. वृषभललितम् (नसमरसा लगौ) (ना०शा० १६/७८)
१२०. श्रीधरा[१] (मभनास्तौ गौ) (ना०शा० १६/८०)
१२१. वंशदलम्[२] (भरनभना लगौ) (ना०शा० १६/८२)
१२२. विलम्बितगतिः (जसजसया लगौ) (ना०शा० १६/८४)
१२३. रुचिरमुखी (नजजयना लगौ) (ना०शा० ३२/१७५)

१८– धृति वृत्ति अष्टादशाक्षरपाद

१२४. चित्रलेखा (मतनययया:) (ना०शा० १६/८६)

१९– अतिधृति वृत्ति एकोनविंशत्यक्षरपाद

१२५. शार्दूलविक्रीडितम् (मसजसतता गः) (ना०शा० १६/८८)
१२६. करकलता (नौ नौ तनौ गः) (ना०शा० ३२/१७७)

२०– कृति वृत्ति विंशत्यक्षरपाद

१२७. सुवदना (मरभनयभा लगौ) (ना०शा० १६/९१)

---

१. श्रीधरा का नामान्तर छन्दःसूत्र में मन्दाक्रान्ता है।
२. वंशदलम् का नामान्तर वंशपत्रपतितम् है (ना०शा० ३२/३१५)।

२१– प्रकृति वृत्ति एकविंशत्यक्षरपाद

१२८. स्रग्धरा (मरभनययया:) (ना०शा० १६/९४)

१२९. श्रेणि: (रजततननसा:) (ना०शा० ३२/२९२)

१३०. चपला (नजजयननसा:) (ना०शा० ३२/२९८)

२२– आकृति वृत्ति द्वाविंशत्यक्षरपाद

१३१. मद्रकम् (भरनरनरनगा:) (ना०शा० १६/९७)

१३२. अश्वललितम् (नजभजभजभगा:) (ना०शा० १६/१००)

१३३. क्रौञ्चा (मतयनननननगा:) (ना०शा० ३२/३००)

२३– विकृति वृत्ति त्रयोविंशत्यक्षरपाद

१३४. पुष्पसमृद्धा (भननभननना गौ) (ना०शा० ३२/२९०)

१३५. महाक्रीडा (ममतननना लगौ) (ना०शा० ३२/३०२)

२४– संकृति वृत्ति चतुर्विंशत्यक्षरपाद

१३६. मेघमाला (मनररररररा:) (ना०शा० १६/१०३)

१३७. स्खलितम् (भभभतनननसा:) (ना०शा० ३२/२८७)

१३८. सम्भ्रान्ता (नयभतनननसा:) (ना०शा० ३२/२९४)

२५– अभिकृति वृत्ति पञ्चविंशत्यक्षरपाद

१३९. क्रौञ्चपदा (भमसभनननननगा:) (ना०शा० १६/१०६)

२६– उत्कृति वृत्ति षड्विंशत्यक्षरपाद

१४०. भुजङ्गविजृम्भितम् (नमतनननरसलगा:) (ना०शा० १६/१०९)

१४१. वेगवती (नजनसभनननलगा:) (ना०शा० ३२/२९६)

अर्धसमवृत्त

पादवर्ण	छन्दोनाम	लक्षण	ग्रन्थ-सन्दर्भ
१४२. (८, ८)	पथ्यावृत्तम्	(सौ, गौ, सौ लगौ)	(ना०शा० १६/१२०)
१४३. (८, ८)	विपरीतपथ्या	(सौ लगौ सौ गौ)	(ना०शा० १६/१२२)
१४४. (१०, ११)	केतुमती	(सजसगा: भरना गौ)	(ना०शा० १६/१४०)
१४५. (११, १२)	अपरवक्त्रम्	(नौ रलगा: नजजरा:)	(ना०शा० १६/१४२)
१४६. (१२, १३)	पुष्पिताग्रा	(ननरया:, नजजरगा:)	(ना०शा० १६/१४४)

विषमवृत्त

१४७. (८,८,८,८)	विपुलानुष्टुप्	(प्रथमे तृतीये च पादे पञ्चमषष्ठसप्तमा वर्णा लघव:)	(ना०शा० १६/१२४-२५)
१४८. (८,८,८,८)	विपुलावक्त्रम्	(द्वितीये चतुर्थे च पादे सप्तमवर्णो लघु:)	(ना०शा० १६/१२६)

१४९. (८,८,८,८) वक्त्रानुष्टुप् (चतुर्षु पादेषु केऽपि चत्वारो वर्णा लघवः) (ना०शा० १६/१३१)

द्विपद मात्रावृत्त

१५०. आर्या (पूर्वार्द्धे ३० मात्रा उत्तरार्द्धे च २७) (ना०शा० १६/१५२-१५८, १६३)

१५१. पथ्याऽऽर्या (प्रत्यर्द्धभागं १२ मात्रासु यतिः) (ना०शा० १६/१५९)

१५२. विपुलाऽऽर्या (प्रत्यर्द्धभागं १२ मात्रानन्तरं क्वापि यतिः) (ना०शा० १६/१५९)

१५३. चपलाऽऽर्या (प्रत्यर्द्धभागं द्वितीयचतुर्थौ चतुर्मात्रगणौ जगणौ) (ना०शा० १६/१६१),

१५४. मुखचपलाऽऽर्या (आर्या—पूर्वार्द्धे द्वितीयचतुर्थौ चतुर्मात्रगणौ जगणौ)

१५५. जघनचपलाऽऽर्या (उत्तरार्द्धे द्वितीयचतुर्थौ चतुर्मात्रगणौ जगणौ) (ना०शा० १६/१६२)

१५६. आर्यागीतिः (आर्यायाः प्रत्यर्धभागमष्टौ चतुर्मात्रगणाः ३२ मात्राः) (ना०शा० १६/१६७)

चतुष्पद मात्रावृत्त

१५७. वानवासिका (१६, १६, १६, १६ मात्राः, तत्र ९, १२ लघुमात्रे) (ना०शा० १६/१४६)

१५८. केतुमती (१४, १६, १४, १६ मात्राः) (ना०शा० ३२/३१९)

बृहत्संहिता-छन्दोविवेचन (वराहमिहिर)

वराहमिहिर कृत '**बृहत्संहिता**'[१] नानाविध विद्याओं के लिए तथ्यतः विश्वकोश ही है। इसमें ज्योतिषशास्त्र का विषय है, परन्तु अनेक उपयोगी अन्य विषयों का भी संकलन उसकी उपादेयता का प्रधान चिह्न है। इसी ग्रन्थ के एक सौ तृतीय (१०३) अध्याय में वराहमिहिर ने ग्रह-गोचराध्याय में गोचरों का वर्णन नानाविध छन्दों में किया है और मुद्रालङ्कार के द्वारा वृत्त का भी निर्देश कर दिया है। **वराहमिहिर** (षष्ठशती) ने किस ग्रन्थ के आधार पर यह छन्दोनिर्देश किया है, यह कहना कठिन है। **भट्टोत्पल** ने इसकी वृत्ति की है।

आचार्य भट्टोत्पल ने इस अध्याय की वृत्ति में मूलकारिका में संकेतित वृत्त का लक्षण विस्तार से प्राचीन लक्षणों को उद्धृत करते हुए किया है। उद्धरणों के स्रोत का पता नहीं चलता, परन्तु यह सुव्यवस्थित छन्दोग्रन्थ प्रतीत होता है। वराहमिहिर के अनुसार प्रस्तारजनित छन्दों के विस्तार को जानकर भी इतना ही काम होता है।

---

१. इसका नवीन संस्करण सरस्वतीभवन ग्रन्थमाला में संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है (वाराणसी १९६८ ई०)

अतएव उन्होंने इस अध्याय में 'श्रुतिसुखदवृत्त-संग्रह' कर दिया।[१] श्रुति-कटुवृत्तों के ज्ञान से लाभ ही क्या होता है, यह वराहमिहिर का सङ्केत है।

विभिन्न काव्य-नाटकों आदि में प्रयुक्त प्राय: ६० छन्दों का इन्होंने ग्रहण किया है। इस ग्रन्थ से चतुर्थ-पंचम शताब्दी में छन्दोविचिति के विस्तार का संकेत मिलता है। मात्रावृत्त तथा वर्णवृत्त मिलाकर लगभग ६० छन्दों के लक्षण भट्ट उत्पल की व्याख्या में संगृहीत है।

भट्टोत्पल का काल इतिहासकारों ने नौवीं शताब्दी माना है। वराहमिहिर का काल छठी शताब्दी (प्राय: ६५० ई० से पूर्व) माना जाता है। वराहमिहिर का यह छन्दोविवेचन नाट्यशास्त्र के बाद तथा जयदेवच्छन्दोविवेचन के पूर्व के मध्यवर्ती काल में छन्दश्शास्त्र की अक्षुण्ण परम्परा का प्रमाण है।

छन्दोविचिति (जनाश्रय)

आचार्य पिङ्गल की परम्परा में जानाश्रयी छन्दोविचिति नामक छन्दोग्रन्थ का प्रणयन हुआ। यह ग्रन्थ सूत्रात्मक है और छ: अध्यायों में विभक्त है।[२]

प्रथम अध्याय में छन्द:शास्त्र की दृष्टि से जनाश्रय द्वारा गृहीत पारिभाषिक शब्दावलि विवेचित है। ये समस्त स्वतन्त्र पारिभाषिकी संज्ञायें हैं। द्वितीय में विषम वृत्तों का, तृतीय में अर्ध-समवृत्तों का, चतुर्थ में समवृत्तों का तथा पञ्चम में वैतालीय, मात्रासमक, आर्या-नामक त्रिविध मात्रा-जातिच्छन्दों का विवरण दिया गया है। षष्ठ अध्याय प्रस्तार-विषयक है। वृत्तिकार का कथन है कि ग्रन्थकार ने पिङ्गल आदि की छन्दोविचितियों में यथासम्भव न्यूनातिरेक का परीक्षण तथा परिहार कर इस नवीन ग्रन्थ का प्रणयन किया है। फलत: पिङ्गल की परम्परा तो निश्चित है, परन्तु उसमें कुछ विस्तार भी है। प्रधान भेद यह है कि पिङ्गल ने तीन वर्णों के आठ गण (मगणादि) ही माने हैं। परन्तु जनाश्रय ने १८ गण स्वीकार किये हैं। वैदिक छन्दों का यहाँ निर्देश नहीं है।

जनाश्रय द्वारा प्रणीत छन्दोविचिति के सूत्रों की एक सुबोधवृत्ति भी है, जिसमें प्राचीन काव्य-ग्रन्थों से श्लोक उदाहरण के लिए उद्धृत किये गये हैं। सूत्रकार तथा वृत्तिकार के परिचय के विषय में सन्देह है। दोनों को भिन्न मानना ही प्रामाणिक प्रतीत होता है।[३]

---

१. विपुलामपि बुद्ध्वा छन्दोविचितिं भवति कार्यमेतावत्।
श्रुतिसुखदं वृत्तसंग्रहमिममाह वराहमिहिरोऽत:॥

२. वृत्ति-सहित इसका प्रकाशन दो स्थानों से हुआ है—(क) अनन्तशयन से १९४८-४९ में अनन्तशयन ग्रन्थमाला सं० १६३ द्वारा (त्रिवेन्द्रम्), (ख) रामकृष्ण कवि द्वारा सम्पादित तिरुपति से प्रकाशित १९५०, श्री वेंकटेश्वर प्राच्यग्रन्थमाला सं० २० के अन्तर्गत।

३. 'भाहेति समानम्' सूत्र २/३ की दो व्याख्यायें दी गयी है। ४/३ तथा ५/४३ सूत्र की वृत्ति में भी द्वैविध्य हैं। यह दोनों की भिन्नता होने पर ही सम्भव है।

परवर्ती युग के लेखकों ने कभी सूत्रों को और कभी उसकी वृत्ति को भी 'जानश्रयी छन्दोविचिति' के नाम से उद्धृत किया है। सम्भवत: यह दोनों का सम्मिलित अभिधान था। सूत्रों का प्रणेता कोई **जनाश्रय** उपाधिधारी राजा था, जिसका व्यक्तिगत नाम **माधव वर्मा (प्रथम)** बतलाया जाता है। यह विष्णुकुण्डि वंश का राजा था जिसने कृष्णा और गोदावरी जनपदों पर षष्ठशती के अन्तिम चरण में शासन किया। इसका शासनकाल ५८०-६२० ई० माना जाता है। प्रथम वृत्तिकार इनके आश्रय में रहनेवाले **गणस्वामी** नाम के पण्डित थे। उपलब्ध वृत्ति इसी वृत्ति की व्याख्या अपने को बतलाती है।[१] ग्रन्थ के आरम्भ में जनाश्रय की यह स्तुति उनकी धार्मिकता तथा प्रभुता की विशद प्रशस्ति है—

स भूपतिरुदारधीर्जयति सम्पदेकाश्रयो
जनाश्रय इति श्रिया वहति नाम सार्थं विभुः।
मखैरुरुभिरद्भुतैर्मघवतो जयश्रीरपि
जिता विजितशत्रुणा जगति येन रुद्धा चरत्।।

जनाश्रय की छन्द:शास्त्रीय आचार्यों में गणना होने के कारण उन्हें इसका कर्त्ता मानना उचित है।[२] वृत्ति में उद्धृत श्लोकों से भी ग्रन्थ के पूर्वोक्त निर्माणकाल की पुष्टि होती है। वृत्तिकार ने कालिदास, भारवि, कुमारदास, अश्वघोष के पद्यों को उद्धृत किया है। **जानकीहरण** के दो पद्य (१/३० तथा १/३७) यहाँ उद्धृत है। इन उद्धरणों से इस ग्रन्थ का समय ६०० ईस्वी के समीप मानना उचित प्रतीत होता है।

छन्दोविचिति के व्याख्याकार **गणस्वामी** ने इसके लेखक के रूप में जनाश्रय को स्वीकार किया है।[३] ग्रन्थ में पिङ्गल का नामत: उल्लेख है[४] तथा जयकीर्ति ने छन्दोऽनुशासन में जनाश्रय का उल्लेख किया है; अत: यह रचना स्पष्टत: पिङ्गल से परवर्ती एवं जयकीर्ति से पूर्ववर्ती है। रामकृष्ण कवि के अनुसार राजा माधववर्मन्[५] का समय ५३५-५८५ ई० माना जाता है।

१. द्रष्टव्य वृत्ति का आरम्भ, पृ० १।
२. जयकीर्त्ति (११९५ ई०) ने अपने छन्दोऽनुशासन में इनका उल्लेख किया है—
माण्डव्यपिङ्गल-जनाश्रय-सैतवाख्यश्रीपादपूज्य-जयदेव-बुधादिकानाम्।
छन्दांसि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान्, छन्दोऽनुशासनमिदं जयकीर्त्तिनोक्तम्॥
(अष्टम अधिकार, अन्तिम श्लोक)
३. जानाश्रयीच्छन्दोविचिति टीकाक्रमाङ्क SS. 163 प्रथम अध्याय में प्रथमवृत्तिभाग द्रष्टव्य है। (त्रिवेन्द्रम् १९४९)
४. अस्यैव मे पिङ्गलस्य (छन्दोविचिति ४/१०२)
५. ''सर्वभूतपरिरक्षणचञ्चुर्विद्वद्-द्विजगुरुवृद्धतपस्विजनाश्रयो महाराजो माधववर्मा।''
(द्रष्टव्य—Polamaru Plaits, Edited by Subba Raw in the Gernal of the Andhra Historical Research Society, Vol.-6, Pages-17 F.F.)

यह ग्रन्थ सूत्रशैली में है। इसमें ३१८ सूत्र एवं १९७ श्लोक हैं। श्लोक वृत्तिकार के द्वारा उद्धृत किये गये हैं। इसमें १८३ छन्दों के लक्षण किये गये हैं; जिनमें जनाश्रय के नवीन ३२ छन्दोलक्षण है।

जनाश्रय के नवीनलक्षित छन्द

अनुष्टुब्वृत्ति अष्टाक्षरपाद

१— पद्मिनी	(रौ गौ)	(छन्दोविचिति—४/२१)

त्रिष्टुब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद

२— सङ्गता	(जसयलगा:)	(,, ४/४६)
३— इन्द्रमाला	(इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयो: पादमिश्रिता: विषमवृत्तरूपा: १४ भेदा:)	(,, ४/३७)

अतिजगतीवृत्ति त्रयोदशाक्षरपाद

४— भद्रा	(मभनयगा:)	(,, ४/६६)

अष्टिवृत्ति षोडशाक्षरपाद

५— ललना	(रनौ नौ नगौ)	(,, ४/८२)
६— चन्द्रलेखा	(नजभजतगा:)	(,, ४/८३)

अतिधृतिवृत्ति एकोनविंशत्यक्षरपाद

७— वायुवेगा	(मसजसना नगौ)	(,, ४/९४)

दण्डक	लक्षण	वर्ण	छन्दोविचिति-सन्दर्भ
८— जलद:	(मौ तनौ नौ नजभरा:)	३०	४/११५
९— मेघ:	(मौ तनौ नतना नसजा जगौ)	३४	४/११६
१०— प्लव:	(नौ+रगणदशकम्)	३६	४/११९
११— पिपीलिका	(मौ तो नसप्तक रसलगा:)	३८	४/११६
१२— व्याल:	(नौ+११ रगणा:)	३९	४/११६
१३— पणव:	(ममता:+८ नगणा:+जभरा:)	४२	४/११६
१४— जीमूत:	(नौ+१२ रगणा:)	४२	४/११६
१५— लीलाकर:	(नौ+१३ रगणा:)	४५	४/११९
१६— करभ:	(ममता:+९ नगणा:+सौ जगौ)	४६	४/११९
१७— उद्दाम	(नौ+१४ रगणा:)	४८	४/११९
१८— ललित:	(ममता:+११ नगणा:+रसलगा:)	५०	४/११९
१९— सिंह:	(नौ+१५ रगणा:)	५१	४/११९

दण्डक	लक्षण	वर्ण	छन्दोविचिति-सन्दर्भ
२०— निचित:	(ममता:+१२ नगणा:+जभरा:)	५४	४/११७
२१— समुद्र:	(नौ+१६ रगणा:)	५४	४/११९
२२— भुजङ्ग:	(नौ+१७ रगणा:)	५७	४/११९
	असीमित दण्डक		
२३— प्रचित:	(नौ+यथेच्छं रगणा:)	—	४/१२०
	अर्धसमवृत्त		
२४— देवगीति:	(रजरजरा, १,३ पादयो:, जरजरया: २,४ पादयो:)	(१५,१५)	३/१३
	द्विपद मात्रावृत्त		
२५— चूलिका	(२७ ला:+ग:, २७ ला:+ग:)	,,	५/२५
२६— तारा	(३१ ला:+३१ ला:)	,,	५/२६
२७— वामनिका	(२७ मात्रा:, १२ मात्रासु यति:, आर्यपूर्वार्धे षष्ठगणो लघु:)	,,	५/३६
२८— गीति:	(३०+२७ मात्रा:, १२ मात्रासु यति: षष्ठगणो दकार इकारो वा)	,,	५/४०
२९— ध्रुवा	(३०+२७ मात्रा:, १६ मात्रासु यति-श्चतुर्थगणे वा)	,,	५/४१
३०— गीतिका	(३०+३० मात्रा:, तृतीये पञ्चमे सप्तमे गणे वा यकार इकारो वा)	,,	५/४२
	चतुष्पदी मात्रावृत्त		
३१— उपजाति:	(६+रयौ, ८+रयौ, ६+भो गौ, ८+भो गौ, १६, १८, १४, १६ मात्रा:)	,,	५/७
३२— दक्षिणान्तिका	(१४, १६, १४, १७ मात्रा:)	,,	५/१३

जिसप्रकार छन्द:सूत्र का वैदिक छन्दोभाग पतञ्जलि, शौनक, कात्यायन आदि के द्वारा लक्षित छन्दों का विकसित स्वरूप है, उसीप्रकार जानाश्रयी छन्दोविचिति छन्द:सूत्र का विकसित स्वरूप है। जनाश्रय के द्वारा विशिष्ट ज्ञानावदान के अन्तर्गत यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में दस गणों का विकास करके अष्टादश गणों का निर्देश किया है।[1] ग्रन्थकार ने अपने समय में प्रचलित जनभाषा के २३ छन्दों को संस्कृतनिष्ठ करते हुए उनके लक्षण एवम् उदाहरण भी प्रकाशित किये हैं।[2]

१. द्र० छन्दोविचिति १/१८-३५।

२. द्र० छन्दोविचिति ५/४५-७५ तथा—इदानीमन्याश्च काश्चिज्जातयो लोके प्रचरन्त्यो वक्ष्यन्ते (जा०छ०वि० ४/४४-४५ के मध्य वृत्तिभाग)

जनाश्रय द्वारा संस्कृतरूपित छन्द

चतुष्पदी छन्द

गलित, निर्धायिका, नर्कुटक, अधिकाक्षरा, भङ्गद्विपदी, त्रिंशद्धा भङ्गद्विपदी, विदारी, भंगुराशक, अवलम्बन, गाथा।

षट्पदी छन्द

शीर्षक, ललित, सुभद्राशीर्षक, विद्रुमशीर्षक, वंशपत्र, कुञ्जर, पुष्पदन्त, माला, द्विपदी गाथा।

अष्टपदी छन्द—रासक।

दशपदी छन्द—त्रिकलय शीर्षक, द्विपदी।

जयदेवच्छन्दः (जयदेव)

जनाश्रय के समकालीन अथवा किञ्चित् पश्चाद्वर्ती जयदेव एक प्रौढ़ छन्दःशास्त्री थे, जिनका ग्रन्थ उन्हीं के नाम पर 'जयदेवच्छन्दः' के नाम से प्रसिद्ध है। ये प्राचीन आचार्य हैं, क्योंकि १००० ईस्वी तथा उसके पश्चात् होने वाले ग्रन्थकारों ने उनके मत का उल्लेख किया है। पिङ्गल के टीकाकार भट्ट हलायुध ने इनके मत का खण्डन दो स्थानों पर किया है[१] (पि०सू० १/१० तथा ५/८)। यहाँ इनका उल्लेख, सम्भवतः उपहास के निमित्त **'श्वेतपट'** (श्वेताम्बरी जैन) नाम से किया है। भट्ट **हलायुध** का समय प्रायः दशमशती का अन्तिम चरण माना गया है। अभिनवगुप्त ने इसी शताब्दी में इनके मत का उल्लेख **अभिनवभारती** में किया है।[२] वृत्त-रत्नाकर का टीकाकार **सुल्हण,** जिसकी टीका का निर्माणकाल सं० १२४६ (ई० ११९०) है, श्वेतपट के नाम से जयदेव का मत का खण्डन करता है।

जैन ग्रन्थकारों ने विशेष रूप से **जयदेव** के मत को उद्धृत किया है और इन्हें पिङ्गल के समकक्ष मान्यता तथा आदर देने के वे पक्षपाती प्रतीत होते हैं। अतः इनकी ख्याति प्राचीनयुग में विपुल थी—इसका परिचय जैन उल्लेखों तथा संकेतों से स्थिर किया जा सकता है। यह जैन मतावलम्बी प्रतीत होते हैं। भट्ट हलायुध तथा सुल्हण के द्वारा 'श्वेतपट' शब्द से निर्देश इनके जैनी होने का निश्चित प्रमाण है। जैनग्रन्थकार **जयकीर्त्ति, नमिसाधु** तथा **हेमचन्द्र** आदि द्वारा उद्धृत करना तथा आदर देना भी इस संकेत को पुष्ट करता है। यही कारण है कि वृत्तरत्नाकर के समान सुव्यवस्थित ग्रन्थ होने पर भी इनका ग्रन्थ सर्वसाधारण वैदिक-धर्मावलम्बियों में लोकप्रिय तथा समादृत न हो सका। यद्यपि इन्होंने वैदिक छन्दों का भी विवरण विधिवत् दिया है। जयदेवच्छन्दः के टीकाकार **हर्षट** का समय ९५० ई० के आसपास है और इसलिए जयदेव का समय इससे पूर्व होना चाहिये। सम्भवतः नवमशती का अन्तिम चरण (८७५ ई०) इनका काल हो सकता है।

---

१. वान्ते ग्वक्र इति प्रोक्तं यैश्च श्वेतपटादिभिः।
तदुत्सर्गापवादेन बाधस्तैर्नावधारितः॥ (जयदेवच्छन्दःसूत्र १/४ की आलोचना)

२. अभिनवभारती १४/८३-८४, बड़ौदा संस्करण, पृ० २४४।

'जयदेवच्छन्द:' का आदर्श पिङ्गलप्रोक्त छन्द:सूत्र है और यह उसीप्रकार आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम तीन अध्याय वैदिकछन्दों का विवरण सूत्रों में देते हैं। अन्तिम पाँच अध्यायों में लौकिक छन्दों का वर्णन है। परन्तु यह सूत्रशैली में नहीं, प्रत्युत वृत्तशैली में है, जो लक्षण तथा लक्ष्य का एकत्र समन्वय प्रस्तुत करती है। यही वृत्तशैली परवर्ती युग के छन्दोग्रन्थों के लिये अनुकरणीय आदर्श बन गयी। यथा—इन्द्रवज्रा का लक्षण इन्द्रवज्रा छन्द में ही प्रस्तुत किया गया है। इस रीति से छन्दों के पृथक् उदाहरण देने की समस्या ग्रन्थकार के समक्ष उपस्थित नहीं होती।

इस ग्रन्थ के टीकाकार मुकुलभट्ट के पुत्र **हर्षट** हैं, यह वृत्ति की पुष्पिका से स्पष्ट है। टीका के हस्तलेख का समय ११२४ ईस्वी है। इससे ग्रन्थकार को प्राचीन होना चाहिए। हर्षट काश्मीरी थे और बहुत सम्भव है कि वे **'अभिधावृत्तिमातृका'** के प्रख्यात रचयिता मुकुलभट्ट के ही पुत्र हों। **मम्मट** ने अपने काव्यप्रकाश (द्वितीय उल्लास) में **मुकुलभट्ट** के मत का खण्डन किया है। साधारणत: हर्षट का समय दशम शती के पूर्वार्ध (९५० ई०) में मानना न्यायसङ्गत प्रतीत होता है।

छन्दश्शास्त्री जयदेव को **गीतगोविन्दकार** जयदेव से जो १२वीं शती में हुए,[१] भिन्न समझना चाहिये। अन्य भी जयदेव नाम के पंद्रह विद्वानों का ज्ञान होता है। १३वीं शती के एक जयदेव ने **'प्रसन्नराघव'** और **'चन्द्रालोक'** नामक ग्रन्थों की रचना की थी। जयदेव मिश्र नाम के एक प्रसिद्ध नैयायिक भी हो चुके हैं।

छन्दश्शास्त्री **जयदेव** ने अपना छन्दोग्रन्थ संस्कृतभाषा में, पिङ्गल के आदर्श पर लिखा, यह स्पष्ट है। यद्यपि जयदेव के काल में लौकिक वर्णवृत्तों का प्राधान्य हो गया था, किन्तु वैदिक छन्दों का प्रभाव बाकी था। यह **कालिदास** द्वारा एक स्थल पर[२] वैदिक छन्द के प्रयोग से विदित है। जयदेव ने अध्यायों का आरम्भ ही नहीं, उनकी समाप्ति भी पिङ्गल की भाँति की है। वैदिक छन्दों के लक्षण सूत्ररूप में ही दिये गये हैं। परन्तु लौकिक छन्दों के निरूपण की शैली पिङ्गल से भिन्न है।

'जयदेवच्छन्द:' का प्रकाशन ताडपत्र पर लिखित हस्तलिपि के आधार पर हुआ है। इस हस्तलिपि के दो भाग हैं। प्रथम में १० पृष्ठ हैं, जिसमें 'जयदेवच्छन्दस्' का पाठ है। द्वितीय भाग में 'जयदेवच्छन्दस्' की हर्षट-विरचित विवृति है, जो पृथक् रूप से अंकित पृष्ठ १-४४ तक है।[३] हस्तलिपि के प्रथम भाग पर तिथि ११९० सं० दी गयी है और द्वितीय भाग पर ११९२ सं० उल्लिखित है। यह हस्तलिपि जैसलमेर-भण्डार में सुरक्षित है।[४]

---

१. जोशी और भारद्वाज—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १८९।
२. अभिज्ञानशाकुन्तलम् ४/८।
३. इसके अतिरिक्त इस हस्तलिपि के द्वितीय भाग में विरहांक (कविशिष्ट) कृत वृत्तजाति-समुच्चय (पृ० ४६-८९), कविशिष्ट पर गोपाल की टीका (पृ० ९०-१८३), केदार का वृत्तरत्नाकर (केवल पाठ, पृ० १-१५) तथा जयकीर्त्ति का छन्दोऽनुशासन (पृ० १-२८) है।
४. एच. डी. वेलणकर—जयदामन्, भूमिका, पृ० ३६ (जयदेवच्छन्द: का प्रकाशन जयदामन् के अन्तर्गत हुआ है)

जयदेवच्छन्दः का विषयविस्तार

जयदेवच्छन्दस् के आठ अध्यायों में से प्रत्येक के वर्ण्य-विषय का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय में मंगलाचरणोपरान्त ८ सूत्र है, जिसमें अष्टगणादि विचार है। द्वितीय अध्याय के छ: सूत्रों तथा तृतीय अध्याय के ३३ सूत्रों में वैदिक छन्दोविचार है। चतुर्थ अध्याय में लौकिक छन्द आये हैं। मात्रिक छन्दों में आर्या तथा उसके भेद[1] (विपुला, चपला, मुखचपला, गीति, उपगीति, उद्गीति, आर्यगीति, आदि) वैतालीय तथा उसके भेद[2] (औपच्छन्दसक, आपातलिका, प्राच्यवृत्ति, उदीच्यवृत्ति, प्रवृत्तक, अपरांतिका, चारुहासिनी, अचलधृति[3]), मात्रासमक तथा उसके भेद[4] (उपचित्रा, विश्लोक, वानवासिका, चित्रा, पादाकुलक, अनंगक्रीड़ा[5]), तथा अतिरुचिरा है।[6] पञ्चम, षष्ठ और सप्तम अध्यायों में वर्णवृत्तविचार है तथा अष्टम अध्याय का सम्बन्ध प्रस्तारादि प्रत्ययों से है। चतुर्थ अध्याय में ३२, पञ्चम में ३९, षष्ठ में ४३, सप्तम में ३० तथा अष्टम में १२ सूत्र अथवा पद्य हैं।

इस ग्रन्थ में चौथे अध्याय से सातवें अध्याय तक १४२ लौकिक छन्दों के लक्षण प्राप्त हैं तथा आठवें अध्याय में छन्दों की प्रस्तारप्रक्रिया विवेचित है। लौकिक छन्दों के विवेचन में ग्रन्थकार के द्वारा नवीनरूप से लक्षित ५ छन्द हैं।

जयदेव के नवीनलक्षित छन्द

त्रिष्टुब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद

१— उपस्थितम्	(जसता गौ)	(जयदेवच्छन्द—६/४१)

जगतीवृत्ति द्वादशाक्षरपाद

२— चन्द्रवर्त्म	(रनभसाः)	(,, ६/४३)
३— पुष्पविचित्रा	(तयतयाः)	(,, ६/४५)
४— चलनेत्रिका	(नौ भरौ)	(,, ६/४६)

दण्डक

५— प्रचितः	(नौ+यमतरजभसगणेषु कोऽप्येको गणः सप्तवारम्)	(,, ७/३४)

जयदेवच्छन्दः का छन्दोविवेचन संस्कृतपरम्परा के अनुकूल है। जयदेव ने मात्रिक छन्दों में से पिङ्गलोक्त छन्दों की ही चर्चा की है। उस युग के लोककाव्यों में

१. जय० ४/६-१४।
२. जय० ४/१५-२३।
३. इसे पिङ्गल ने 'गीत्यार्या' कहा है (पि०सू० ४/४८)
४. जय० ४/२४-३०।
५. इसे पिङ्गल ने 'शिखा' (सौम्या) कहा है (पि० ४/५१)
६. जय० ४/३१।

प्रयुक्त उन अगणित मात्रिक छन्दों का निरूपण जयदेव ने नहीं किया, जिनका उल्लेख लगभग उनके समसामयिक लक्षणकार **स्वयम्भू** और **विरहांक** ने किया है। अत: परम्परासिद्ध और व्यवस्थित होने के कारण यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

श्रुतबोध (कालिदास)

संस्कृत साहित्य के कवि कालिदास के नाम पर प्रख्यात **श्रुतबोध** लौकिक छन्दों की अनुभूति के लिए सर्वाधिक लोकप्रचलित ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ साहित्यिक-पुट से संवलित होने के कारण नितान्त मनोरम है। संस्कृत-काव्यों में प्रयुक्त प्रचलित छन्दों का वर्णन इसका वैशिष्ट्य है। इसमें गणों के नाम तथा स्वरूप का उल्लेख है (पद्य ३), परन्तु गणपद्धति का उपयोग लक्षण-विन्यास के लिये नहीं किया गया है। लघुगुरु-पद्धति ही इसमें प्रयुक्त है तथा लक्षण एवं लक्ष्य दोनों का वर्णन एक ही पद्य में किया गया है। इससे श्रुतबोध की बालोपयोगिता स्पष्ट है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में ४३ श्लोक हैं। प्रथम मंगलपद्य को छोड़कर सबका सम्बन्ध विषय-प्रतिपादन से है। मात्राच्छन्दों में आर्या, गीति तथा उपगीति—इन तीन का ही लक्षण है तथा वर्णवृत्तों में २७ वृत्तों का वर्णन है। दोनों को मिलाकर छन्दों की संख्या ४० है। लोकव्यवहार की दृष्टि की प्रधानता होने से यहाँ न तो वैदिक छन्दों का वर्णन है, न दण्डक और न षट्प्रत्ययों का प्रतिपादन है। सरलता से छन्दों का ज्ञान कराने में श्रुतबोध निश्चय ही एक सफल प्रयास है। कालिदास के नाम से इसकी प्रसिद्धि इसकी लोकप्रियता की परिचायक है।

यद्यपि इस ग्रन्थ का परिमाण बहुत छोटा है किन्तु काव्यादि में प्रचुरतया उपयुक्त छन्दों के निरूपण तथा संक्षेप में छन्द:शास्त्र के सामान्य-नियमों के परिचय से इसकी उपादेयता अधिक है। ग्रन्थ की शैली सरल तथा हृदयग्राहिणी है।

कुछ चिन्तक **वररुचि** को भी इसका लेखक मानते हैं।[१] यदि **कालिदास** वररुचि से अभिन्न भी माने जायें, तब भी संस्कृत-साहित्य के इतिहास-लेखकों ने नौ कालिदासों का उल्लेख किया है। श्रुतबोध के लेखक इनमें से तीसरे कालिदास कहे गये हैं।[२] कालिदास की तिथि के सम्बन्ध में प्राच्य तथा पाश्चात्त्य विद्वानों के पर्याप्त मतभेद है। कीथ ने कालिदास का समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी माना है।[३] मैकडानेल का भी यही मत है।[४]

---

१. ए०बी० कीथ : हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४०६।

२. एम० कृष्णमाचारियर : क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ९०८।

३. कीथ : क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३२।

४. आर्थर ए० मैकडानेल : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३२५।

श्रुतबोध की प्रतिपादन-शैली

'श्रुतबोध' की प्रतियाँ मुद्रितरूप में सर्वसुलभ है।[1] इस लघु-पुस्तक में लघुगुरु-लक्षण और गणलक्षण के पश्चात् ही छन्दों के लक्षण-उदाहरण आरम्भ हो जाते हैं। इसमें आर्या, गीति, उपगीति, अक्षरपंक्ति, शशिवदना, मदलेखा, अनुष्टुप्, पद्य, माणवकाक्रीड, नगस्वरूपिणी, विद्युन्माला, चम्पकमाला, मणिबन्ध, शालिनी, मन्दाक्रान्ता, हंसी, दोधक, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, आख्यानकी, रथोद्धता, स्वागता, वैश्वदेवी, तोटक, भुजंगप्रयात, द्रुतविलंबित, प्रमिताक्षरा, हरिणीप्लुता, वंशस्थ, इन्द्रवंशा, प्रभावती, प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, हरिणी, शिखरिणी, पृथ्वी, शार्दूलविक्रीड़ित और स्रग्धरा छन्द आये हैं।

इस ग्रन्थ की लगभग १० टीकाएँ हैं। जिनमें मनोहर शर्मा की **सुबोधिनी** टीका प्रसिद्ध है।[2] पुस्तक की विवेचनाशैली अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। छन्दों के लक्षण उन्हीं छन्दों में दिये गये हैं, जिनके वे लक्षण हैं। अत: उदाहरण पृथक् नहीं दिये गये हैं। इसप्रकार, लक्षण और उदाहरण के एकीकरण द्वारा अध्येता की स्मरणशक्ति को सहारा दिया गया है। पिङ्गलाचार्य के ग्रंथ में ऐसा नहीं है। 'श्रुतबोध' अध्यायों में विभक्त नहीं है, एक-एक कर छन्दों का विवेचन हुआ है। मात्रिक छन्दों में केवल आर्या और उसके भेद आये हैं।

लेखक ने इसका संकेत किया है कि एक छन्द से दूसरा छन्द किसप्रकार उद्भूत हो जाता है। जैसे, गुरुवर्ण के स्थान पर लघु के प्रयोग से इन्द्रवज्रा छन्द, उपेन्द्रवज्रा छन्द बन जाता है। इस दृष्टि से समानता रखनेवाले छन्द एक साथ रखे गये हैं। छन्दों के परस्पर सम्बन्ध पर इस दृष्टि से इस ग्रन्थ में प्रथमबार विचार-संकेत मिलते हैं। कवियों ने किसप्रकार नये छन्दों की उद्भावना की होगी, इसका संकेत इस ग्रन्थ में वर्तमान है। कवियों ने प्रस्तार-विधि से कृत्रिम छन्दोवृद्धि बहुश: नहीं की होगी, अपितु लय-साम्य के आधार पर लघुगुरु-वर्णों के यत्किंचित् परिवर्तन द्वारा ही

---

१. (क) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास द्वारा लक्ष्मी-वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई से सं० १९८८ में प्रकाशित (सामान्य भाषा-टीका समेत)।

(ख) खेमराज श्रीकृष्णदास श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से सं० १९९३ में प्रकाशित संस्कृत-व्याख्या सहित।

(ग) विद्याभवन ग्रन्थमाला सं० ३४ के अन्तर्गत १९७२ में चौखम्बा वाराणसी से प्रकाशित, आदि संस्करण।

१. श्रुतबोध की अन्य टीकाओं में—माधवकृत ज्योत्स्ना, ताराचन्द्र-विरचित बालविवेकिनी, तथा हर्षकीर्ति, वासुदेव, भोलानाथ, एकदन्त, वरशर्मा आदि की टीकायें प्रचलित हैं। नवीन टीकाओं में कुशेश्वर शर्मा कुमर रचित संस्कृतटीका (१८४९ शक में दरभंगा से प्रकाशित), कनकलाल ठक्कुर रचित विमला संस्कृतटीका (चौखम्भा, वाराणसी से १९४९ ई० में प्रकाशित समास, व्याकरणादि विवेचन से युक्त), गौरीनाथ पाठक रचित सुबोधिनी टीका (वाराणसी से प्रकाशित) आदि छात्रोपयोगी तथा हिन्दी अनुवाद से संवलित हैं।

नवीन छन्दों की उद्‌भावना की होगी, यह कालिदास के विवेचन से स्पष्ट है। इस ग्रन्थ में दो मौलिक दृष्टियाँ महत्त्व रखती हैं—

१. कवियों द्वारा नवीन छन्दों की उद्‌भावना-विधि का संकेत इसमें मिलता है।

२. इसमें छन्दों के लक्षण गणों के कथन मात्र द्वारा नहीं, अपितु गुरुलघु-विचार द्वारा निरूपित हैं।

परन्तु इस उपयोगी छन्दोग्रन्थ के रचयिता रघुवंश तथा अभिज्ञानशाकुन्तल जैसी कृतियों के लेखक कालिदास ही है, इसे पहचानने में कोई पुष्ट प्रमाण अथवा साधन उपलब्ध नहीं है। कतिपय विद्वान् यह मानते हैं कि श्रुतबोध कालिदास की रचना इस कारण भी नहीं हो सकती कि इसमें बड़े छन्दों में यति पर आग्रह है। यथा वसन्ततिलका में आठ तथा छः वर्णों पर यति है। यह कवि के अभ्यास के विरुद्ध है।[१] परन्तु यह तर्क अधिक सुग्राह्य नहीं है क्योंकि महाकवि कालिदास की रचनाओं में यतिनियम का निर्वाह प्रभूत रूप से हुआ है। तथापि **श्रुतबोध** को महाकवि कालिदास की रचना मानना कठिन है।

श्रुतबोध का काल-पौर्वापर्य

श्रुतबोध में दिये गये उपजाति और आख्यानकी छन्दों के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता के समय में पिङ्गलोक्त छन्दःसूत्र के अतिरिक्त पश्चाद्वर्ती छन्दःशास्त्रीय जानाश्रयी छन्दोविचिति आदि रचनायें विद्यमान नहीं थी, जिनमें उपजाति (इन्द्रमाला) छन्द के १४ भेद प्रदर्शित किये गये हैं।[२] उक्त चतुर्दश भेदों में पिङ्गलोक्त उपजाति और आख्यानकी तथा विपरीताख्यानकी छन्द समाहित हो जाते हैं। किन्तु श्रुतबोधकार ने उपजाति का लक्षण पिङ्गलोक्त लक्षण के आधार पर दिया है और उसके अन्य भेदों का उल्लेख नहीं किया। उन्होंने आख्यानकी के लक्षण में उसे विपरीतपूर्वा कहकर उसके दोनों भेदों के प्रति सङ्केत किया है। यदि श्रुतबोध जानाश्रयी छन्दोविचिति के बाद की भी रचना होती तो उसके उपजाति छन्द के लक्षण में भेदों का निर्देश अवश्य होता। पिङ्गल ने उपजाति छन्द वही माना है, जिसमें इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के दो-दो पाद हों।[३] इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य भेदों का उल्लेख नहीं किया और इसे ही श्रुतबोधकार ने भी मान्यता दी है।[४]

जानाश्रयी छन्दोविचिति में आख्यानकी और विपरीताख्यानकी छन्द के पाद उपजाति छन्द में समाहित कर दिये गये हैं, जिससे वहाँ आख्यानकी छन्द के दोनों

---

१. द्र० संस्कृतशास्त्रों का इतिहास, पृ० ३१२।

२. जानाश्रयी छन्दोविचिति ४/३६, ३७ (त्रिवेन्द्रम्, १९४९), वृत्तरत्नाकर-नारायणी टीका ३/३२, हेमचन्द्रकृत छन्दोनुशासन २/१५६।

३. छन्दःसूत्र ६/१७।

४. श्रुतबोध, पद्य-२३।

भेदों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, क्योंकि उनमें इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के चरणों का विधान है, जो कि उपजाति के चतुर्दश भेदों में गृहीत कर लिये गये हैं।[१] किन्तु पिङ्गल ने उन दोनों छन्दों को स्वतन्त्र मानकर लक्षित किया है।[२] और इसी आधार पर कालिदास ने भी आख्यानकी छन्द को एक स्वतंत्र छन्द माना है तथा पिङ्गलोक्त लक्षण से भी भिन्न लक्षित किया है।[३] यह श्रुतबोध का स्वतंत्र छन्द है जो जानाश्रयी के इन्द्रमाला (उपजाति) के चतुर्दश भेदों में गृहीत किया गया है।[४] अत: श्रुतबोध में इस छन्द की स्वतंत्र सत्ता के आधार पर यह माना जा सकता है कि कालिदास की यह रचना जानाश्रयी छन्दोविचिति से पूर्व की है, अन्यथा इस पर उसका प्रभाव अवश्य होता।

श्रुतबोध की टीकायें

(क) कैटेलोगस कैटेलागोरम् में श्रुतबोध की निम्नलिखित मूल अथवा टीकाओं के हस्तलेखों का उल्लेख है—

चतुर्भुज (पदद्योतनिका), नागजी (हरजीतनय), मनोहरशर्मा (सुबोधिनी), लक्ष्मीनारायण, वररुचि, वासुदेव (श्रुतबोधप्रबोधिनी), शुकदेव, हंसराज (बालबोधिनी), हर्षकीर्ति आदि।

(ख) एस. कृष्णमाचारी ने श्रुतबोध के कतिपय हस्तलिपियों की 'ए हिस्ट्री आव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' में निम्नांकित लेखकों के नाम से सूचना दी है—

ताराचन्द्र (बालविवेकिनी), मेघचन्द्र, लक्ष्मीनारायण, वासुदेव।

(ग) राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रह में निम्नलिखित लेखकों के नाम से श्रुतबोध की पाण्डुलिपियों का उल्लेख है—

नेतृसिंह, मनोहरशर्मा (सुबोधिनी), माधव (गोविन्दतनय कृत ज्योत्स्ना)।

(घ) नयविमलकृत टीका का उल्लेख हिमांशुविजय जी के लेख में उपलब्ध है। सरस्वतीभवन ग्रन्थालय, वाराणसी में श्रुतबोध (सं० ४४०२९), श्रुतबोध सटीक (सं० ४४०५३), सुबोधिनी टीका (सं० ४४०७१), ज्योत्स्ना (सं० ४४१०४) आदि पाण्डुलिपियों का संग्रह है।

श्रुतबोध के नवीनलक्षित छन्द

इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार द्वारा नवीनरूप से लक्षित छ: छन्द दृष्टिगत होते हैं। यथा—

उष्णिग्वृत्ति सप्ताक्षरपाद

१—मदलेखा (मसगा:) (श्रुतबोध नवम पद्य)

---

१. जानाश्रयी छन्दोविचिति-वृत्ति ४/३७।

२. छन्द:सूत्र ५/३७, ३८।

३. श्रुतबोध पद्य २४।

४. जानाश्रयी छन्दोविचिति ४/३६, ३७ के वृत्तिभाग में 'पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनीभ्य:' पद्य, (पृ० ३९, त्रिवेन्द्रम्, १९४९)

पङ्क्तिवृत्ति दशाक्षरपाद

२—हंसी (मभनगाः) (श्रुतबोध १९ पद्य)

त्रिष्टुब्वृत्ति एकादशाक्षरपाद

३—विपरीताख्यानकी (प्रथमपादे तौ जगौ गः,
त्रिषु च जतजा गौ) (श्रुतबोध २४ पद्य)

अतिजगतीवृत्ति त्रयोदशाक्षरपाद

४—प्रभावती (तभसजगाः) (श्रुतबोध ३५ पद्य)

विषमवृत्त

५—अनुष्टुप् (श्लोकः) ८, ८, ८, ८ (पञ्चमं लघु, षष्ठं गुरु द्विचतुष्पादयोः सप्तमं लघु प्रथमतृतीयपादयोश्च गुरु) (श्रुतबोध दशम पद्य)

६—अनुष्टुप् (पद्यम्) ८, ८, ८, ८ (पञ्चमं लघु द्विचतुष्पादयोः सप्तमं लघु षष्ठं च गुरु) (श्रुतबोध एकादश पद्य)

छन्दोनुशासन (जयकीर्त्ति)

छन्दोऽनुशासन ग्रन्थ के प्रारम्भिक मङ्गलाचरण में जयकीर्त्ति ने 'वर्धमान' (जैन-तीर्थंकर) की स्तुति की है इस कारण जयकीर्त्ति का जैनमतावलम्बी होना स्पष्ट है। इस ग्रन्थकार के कन्नड़-भाषाभाषी होने का अनुमान भी लगाया जा सकता है। क्योंकि छन्दोऽनुशासन के सप्तम अधिकार में कन्नड़भाषा के छन्दों का भी विवरण है। ग्रन्थ के हस्तलेख का समय ११९२ वि० सं० (११३५ ई०) है। इस पाण्डुलिपि के आधार पर ही ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। अतः इनका समय १००० ई० के आसपास माना जा सकता है।

छन्दोऽनुशासन में केवल लौकिक छन्दों का विवरण है।[१] इसमें वैदिक छन्दों का अभाव है। यह इस तथ्य का पूरक है कि उस युग में वैदिक छन्दों के परिचय से सामान्य पण्डितजन पराङ्मुख हो गये थे और इसलिए अब उनके विवरण देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। इस घटना को **'जयदेवच्छन्दः'** के वैदिक विवरण से तुलनात्मक दृष्टि से विचारने पर दोनों के पौर्वापर्य का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। प्राचीन ग्रन्थों में वैदिक छन्दों का विवरण देना नितान्त आवश्यक माना जाता था।

जयकीर्त्ति का समग्र ग्रन्थ आर्या तथा अनुष्टुप् छन्दों में ही निबद्ध है। छन्दों के लक्षण प्रदर्शित करने वाले पद्यांश उन्हीं छन्दों में निहित है। यह ग्रन्थ संस्कृत-छन्दों से अतिरिक्त कन्नड़-छन्दों के ज्ञान के लिए भी उपयोगी है। ग्रन्थ के अन्तिम पद्य में माण्डव्य, पिङ्गल, जनाश्रय, सैतव, **श्रीपादपूज्य** तथा जयदेव के नाम छन्दःशास्त्र के ग्रन्थकर्ता रूप से उल्लिखित किये गये हैं। इनके अतिरिक्त यति

---

१. एच. डी. वेलणकर द्वारा सम्पादित तथा जयदामन् (हरितोषमाला १) के अन्तर्गत हरितोष समिति, बंबई द्वारा प्रकाशित (केवल मूल संस्कृत, पृष्ठ ४१-७०) १९४९ ई०।

मानने वाले और न मानने वाले प्राचीन आचार्यों की दो परम्पराओं का वर्णन विशेषत: गुणग्राह्य है। इन दोनों परम्पराओं का पृथक् निरूपण जयकीर्त्ति की मौलिकता का प्रमाण है। ये परम्पराएँ निम्नलिखित हैं—

(क) यति की मान्यतावादी परम्परा

(१) पिङ्गल, (२) वसिष्ठ, (३) कौण्डिन्य, (४) कपिल तथा (५) कम्बल-मुनि।

(ख) यति की अमान्यतावादी परम्परा

(६) भरत, (७) कोहल, (८) माण्डव्य, (९) अश्वतर, (१०) सैतव।

जयकीर्ति का पद्य इसप्रकार है—

वाञ्छन्ति यतिं पिङ्गल-वसिष्ठ-कौण्डिन्य-कपिल-कम्बलमुनयः।
नेच्छन्ति भरत-कोहल-माण्डव्याश्वतर-सैतवाद्याः केचित्॥

(छन्दोऽनुशासन, १ अधिकार, १३ पद्य)

उपर्युक्त आचार्यों में से अनेक नवीन हैं, जिनके छन्दोविषयक ग्रन्थों का अन्वेषण करना आवश्यक है।

जयकीर्त्ति की प्रतिपादन-शैली

जयकीर्त्ति कन्नड़-प्रदेश के निवासी दिगम्बरजैन मतावलंबी थे, यह मत विचारकों ने प्रतिष्ठापित किया है।[1]

संस्कृत-भाषा में निबद्ध जयकीर्त्ति का छन्दोऽनुशासन पिङ्गल और जयदेव की परम्परा के अनुसार आठ 'अधिकारों' (अध्यायों) में विभक्त है।

जयकीर्त्ति संस्कृत-परिनिष्ठित-परम्परा के लक्षणकार होते हुये भी समय की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए बिना न रह सके और इसीका फल है कि वैदिक छन्दों के स्थान पर उन्होंने अपभ्रंश के उन मात्रिक छन्दों की, जो व्यवहारिक काव्य-प्रयोग के बीच दिनानुदिन अधिक लोकप्रिय होते जा रहे थे, अन्य संस्कृत लक्षणकारों की अपेक्षा अधिक चर्चा की है। यद्यपि उन्होंने ग्रन्थसमाप्ति पर एक श्लोक द्वारा पिङ्गल-जयदेव की परम्परा को ही स्वीकृति प्रदान की है।[2]

यह ग्रन्थ आद्योपान्त सूत्र-पद्यबद्ध है। सामान्य विवेचन (प्रत्यय-गणितादि) के लिए अनुष्टुप्, आर्या और स्कंध—इन तीन छन्दों का सहारा लिया गया है। किंतु,

१. वेलणकर-जयदामन् (भूमिका), पृ० ३७ (जयकीर्त्ति के समय के लिए द्र०—श्री गोविंदपाइ का प्रकाशित लेख—प्रबुद्ध कर्नाटक कन्नड़ त्रैमासिक, खण्ड ५८, अंक ३, जनवरी १९४७, महाराज कालेज, मैसूर)।

२. माण्डव्यपिङ्गलजनाश्रयसैतवाख्यश्रीपादपूज्यजयदेवबुधादिकानाम्।
छन्दांसि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान्, छन्दोऽनुशासनमिदं जयकीर्त्तिनोक्तम्॥
(छन्दोऽनुशासन ८/१९)

छन्दोलक्षण पूर्णत: या अंशत: उन्हीं छन्दों में दिये गये हैं, जिनके वे लक्षण हैं। उदाहरण पृथक् नहीं दिये गये हैं। इसप्रकार इस ग्रन्थ में छन्दोविवेचन लक्षणोदाहरण—तादात्म्यशैली में किया गया है।

आठ अधिकारों में से प्रत्येक का वर्ण्य-विषय संक्षिप्तरूप में निम्नलिखित है।

प्रथम अधिकार में मगण आदि पारिभाषिक संज्ञावर्णन, द्वितीय अधिकार में उक्ता से उत्कृति जाति तक के समवार्णिक छन्दों का वर्णन, तृतीय अधिकार में अर्द्धसम वर्ण-वृत्त-वर्णन तथा चतुर्थ अधिकार में विषम वर्ण-वृत्त-वर्णन है। पंचम अधिकार में आर्या तथा मात्रासमक वर्ग के मात्रिक छन्द आये हैं। षष्ठ अधिकार में वैतालीय वर्ग के मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त द्विपदी, अब्जनाल, कामलेखा, उत्सव, महोत्सव तथा रमा नामक छन्द और वार्णिक दण्डक आये हैं। सप्तम अधिकार 'कर्णाटक-विषयभाषा-जात्यधिकार' है, जिसमें कन्नड़भाषा के छन्द निर्दिष्ट हैं। अष्टम अधिकार का सम्बन्ध प्रस्तारादि प्रत्ययों से है।

छन्दोग्रन्थ में अबतक अनुल्लिखित मात्रिक छन्दों की दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि जयदेव की भांति जयकीर्त्ति की प्रवृत्ति व्यावहारिक लोक-प्रयोग के आधार पर छन्दोविवेचन की ओर उतनी नहीं, जितनी परिनिष्ठित परम्परागत छन्दों के उल्लेख की ओर है। फिर भी, जयकीर्त्ति के युग तक कुछ अन्य नये मात्रिक छन्दों की लोकप्रियता इतनी अवश्य बढ़ चुकी थी कि परिनिष्ठित परम्परा के लक्षणकार भी उनकी उपेक्षा न कर सके। जयकीर्त्ति ने ऐसे बहुत-से मात्रिक छन्दों का उल्लेख किया है जो जयदेव के ग्रन्थ में नहीं हैं। किन्तु ऐसे छन्दों में अधिकांश के प्रथमोल्लेख का गौरव जयकीर्त्ति से विरहाङ्क ने छीन लिया है। फिर भी, संस्कृत के लक्षणकारों में उनके प्रथम उल्लेख का श्रेय जयकीर्त्ति को ही है। जयकीर्त्ति द्वारा उल्लिखित नवीन (अर्थात् इनके पहले तक अनुल्लिखित) कतिपय मात्रिक छन्द ये हैं—द्विपदी, अब्जनाल, कामलेखा, उत्सव, महोत्सव, रमा, लयोत्तर।[१] संस्कृत से प्राप्त मात्रिक छन्दों में कुछ नये नाम या छन्दोभेदों का भी जयकीर्त्ति ने उल्लेख किया है, जैसे—सर्वचपला,[२] पिङ्गलपादाकुलक, मागधी आदि। इन विशेषताओं की दृष्टि से यह छन्दोग्रन्थ महत्त्व रखता है। अत: छन्दोनुशासन का विषय-वैशिष्ट्य यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

जयकीर्त्ति का विषय-वैशिष्ट्य

जयकीर्त्ति ने अपनी रचना में कन्नड़भाषाकवि **'असग'** का उल्लेख[३] किया है; जिसका समय दसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।[४] इसलिये जयकीर्त्ति का समय दशम शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। कर्णाटकवासी आचार्य जयकीर्त्ति ने **कपिल,**

१. छन्दो० जयकी० ६/२८-३२।
२. महाचपला, पि० सू० ४/२७, सर्वचपला; छन्दो० जयकी० ५/७।
३. श्रुतिकान्तमक्षरदक्षैरादृतमसगाख्यकविना (छन्दो०जयकी० ७/७)।
४. ह०दा०, वेलणकर, जयदामन्, Critical Introduction, पृष्ठ ३७, बम्बई १९४९)।

माण्डव्य, वसिष्ठ, सैतव, भरत, कोहल, कौण्डिन्य, अश्वतर, कम्बल, पिङ्गल इत्यादि प्राचीन आचार्यों का एवं जनाश्रय, पूज्यपाद, जयदेव, स्वयम्भूदेव, इत्यादि अर्वाचीन आचार्यों का निर्देश करने के साथ मुनिदमसागर, पाल्यकीर्तीश, स्वयम्भूदेवेश, प्रज्ञासहोदय, चारुकीर्त्ति इत्यादि समसामयिक आचार्यों को भी उल्लिखित किया है[1], यह उनका वैशिष्ट्य है।

छन्दोऽनुशासन के कुल आठ अधिकारों के अन्तर्गत प्रथम अधिकार में गुरुलघुगणयति के विवेचन के साथ उक्ता से उत्कृति-पर्यन्त २६ छन्दों का उल्लेख है। दूसरे अधिकार में २७३ समवृत्तों का, तृतीय अधिकार में २६ अर्धसमवृत्तों का, चतुर्थ अधिकार में ३२ विषमवृत्तों का, पाँचवें अधिकार में २६ मात्रावृत्तों का, षष्ठ अधिकार में ३२ मिश्रितवृत्तों एवं १८ दण्डकों का तथा सप्तम अधिकार में कर्णाटकभाषा के १४ छन्दों का लक्षण-विवेचन प्राप्त होता है। आठवें अधिकार में छन्दों की प्रस्तारक्रिया का विवेचन है। सम्पूर्ण रचना सूत्रमय एवं पद्यमय है। इसके २७१ सूत्रों में एवं २१५ पद्यों में ४०३ संस्कृतवृत्त हैं एवं १४ कर्णाटकीवृत्त लक्षित किये गये हैं। कुल ४०३ छन्दों में ग्रन्थकार के नवीन रूप से लक्षित १६१ छन्द हैं; जिनमें पूर्ववर्ती छः छान्दस आचार्यों का एक-एक छन्द है। यथा—

१—भरत का छन्द—ललितपदा (नजौ जयौ) (छ०अ० २/१३५)

२—मुनिदमसागर का छन्द—सिंहप्लुतम् (श्रुति-स्मृतिपादमिश्रितम्) (छ०अ० २/१४८)

३—पाल्यकीर्तीश का छन्द—सुनन्दिनी (जतजरा, तौ जरौ) (छ०अ० ३/२१)

४—स्वयम्भूदेव का छन्द—नन्दिनी (तौ जरौ, जतौ जरौ) (छ०अ० ३/२२)

५—प्रज्ञासहोदय का छन्द—चूडामणिः (तौ जगौ गः, तभौ जौ गौ) (छ०अ० ३/२५)

६—चारुकीर्ति का छन्द—कीर्ति (सजलाः, नसजगाः नभजलगाः, सजसजगाः) (छ०अ० ४/३६)

जयकीर्ति के नवीनलक्षित छन्द

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	छन्दोऽनु० सन्दर्भ
१— नु	(ल)	उक्ता	१	२/३
२— सुखम्	(लगौ)	अत्युक्ता	२	२/५
३— जत्रु	(गलौ)	,,	२	२/६

१. द्र० छन्दोऽनुशासन—१/१३; ८/१९; २/१४८; ३/२१, २२, २५; ४/३६।

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	छन्दोऽनु० सन्दर्भ
४— बलि:	(लौ)	अत्युक्ता	२	२/७
५— सेना	(त:)	मध्यमा	३	२/१२
६— सुवस्तु	(ज:)	,,	३	२/१३
७— हृदयम्	(भ:)	,,	३	२/१४
८— दृक्	(न:)	,,	३	२/१५
९— वृद्धि	(यगौ)	प्रतिष्ठा	४	२/१७
१०— तारा	(तगौ)	,,	४	२/२०
११— सुमुखी[१]	(भगौ)	,,	४	२/२२
१२— वल्ली	(मलौ)	,,	४	२/२४
१३— सदम	(यलौ)	,,	४	२/२५
१४— वर्त्म	(रलौ)	,,	४	२/२६
१५— कदली	(सलौ)	,,	४	२/२७
१६— त्रपु	(तलौ)	,,	४	२/२८
१७— जपा	(जलौ)	,,	४	२/२९
१८— जतु	(भलौ)	,,	४	२/३०
१९— दयि	(नलौ)	,,	४	२/३१
२०— प्रीति:	(रगौ ग:)	सुप्रतिष्ठा	५	२/३२
२१— रति:	(भलौ ग:)	,,	५	२/३६
२२— रमा	(सलौ ग:)	,,	५	२/३८
२३— तिष्ठद्गु	(तगौ ग:)	,,	५	२/३९
२४— विद्युल्लेखा	(मौ)	गायत्री	६	२/४३
२५— कामलतिका	(भयौ)	,,	,,	२/४५
२६— द्रुतम्	(यौ)	,,	,,	२/५०
२७— हंसमाला	(रौ)	,,	,,	२/५१
२८— सरलम्	(मभौ ग:)	उष्णिक्	७	२/५७
२९— चित्रम्	(भनौ ग:)	,,	७	२/५९
३०— मदलेखा	(भसौ ग:)	,,	७	२/६१
३१— अनुष्टुप्	(तजलगा:)	अनुष्टुप्	८	२/६२
३२— क्षमा	(मरलगा:)	,,	,,	२/६३
३३— नाराचकम्	(तरलगा:)	,,	,,	२/७०

१. सुमुखी भरतोक्त ललिता-छन्द है (द्रष्टव्य—हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासनवृत्ति—२/१६)।

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	छन्दोऽनु० सन्दर्भ
३४— सुमालती	(नरलगा:)	अनुष्टुप्	८	२/७२
३५— बृहत्यम्	(यत्रयम्)	बृहती	९	२/७३
३६— सुन्दरलेखा	(मतया:)	,,	,,	२/७४
३७— अक्षि	(सजना:)	,,	,,	२/७५
३८— चारुहासिनी	(जतरा:)	,,	,,	२/७७
३९— उदय:	(भजसा:)	,,	,,	२/७९
४०— उत्सुरु	(भौ र:)	,,	,,	२/८०
४१— भद्रिका	(रनरा:)	,,	,,	२/८१
४२— उपच्युतम्	(नौ र:)	,,	,,	२/८२
४३— गाथा	(मसौ स:)	,,	,,	२/८३
४४— मदिराक्षी	(तयसगा:)	पङ्क्ति:	१०	२/८८
४५— मणिरङ्ग:	(रसौ सगौ)	,,	,,	२/९०
४६— बन्धूक	(भौ मगौ)	,,	,,	२/९१
४७— त्वरितगति:	(नजनगा:)	,,	,,	२/९४
४८— हंसक्रीडा	(मभौ भगौ)	,,	,,	२/९५
४९— उपस्थिता	(तजौ जगौ ग:)	त्रिष्टुप्	११	२/१०३
५०— अपरान्तिका	(सभरलगा:)	,,	,,	२/१०५
५१— लयग्राहि	(तौ तगौ ग:)	,,	,,	२/१०८
५२— अच्युत:	(रसौ सलौ ग:)	,,	,,	२/१०७
५३— पतिता, श्री:	(नयौ भगौ ग:)	,,	,,	२/११४
५४— कामावतार:	(४ तगणा:)	जगती	१२	२/११९
५५— मौक्तिकदानम्	(४ जगणा:)	,,	,,	२/१२२
५६— कलहंस:	(सभजया:)	,,	,,	२/१३२
५७— मदकोकिल:	(नभजरा:)	,,	,,	२/१३३
५८— ललितपदा[1]	(नजजया:)	,,	,,	२/१३५
५९— पुण्डरीक:	(मभरया:)	,,	,,	२/१३६
६०— शिबिका (महेन्द्रवज्रा)	(सयसया:)	,,	,,	२/१३७
६१— द्रुतपदा	(नभजया:)	,,	,,	२/१४२
६२— श्रुति:	(तभसया:)	,,	,,	२/१४६
६३— स्मृति:	(जभसया:)	,,	,,	२/१४७

१. इसे जयकीर्ति ने भरत का छन्द माना है।

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	छन्दोऽनु० सन्दर्भ
६४— कौमुदी	(नतौ तौ गः)	अतिजगती	१३	२/१४९
६५— कुटजः, भ्रमरी	(सजौ सौ गः)	,,	,,	२/१५२, १५७
६६— चन्द्रिका	(यमौ रौ गः)	,,	,,	२/१५३
६७— मञ्जुभाषिणी	(नजसजगाः)	,,	,,	२/१५६
६८— मणिकुण्डलम्	(सयसजगाः)	,,	,,	२/१५८
६९— सुवक्त्रम्, अचलम्	(नजजरगाः)	,,	,,	२/१६०
७०— अङ्गरुचिः	(भौ भौ गः)	,,	,,	२/१६१
७१— चन्द्रशाला	(नरौ तौ गौ)	शक्वरी	१४	२/१६६
७२— लक्ष्मीः	(भसौ तौ गौ)	,,	,,	२/१६८
७३— प्रथिता	(सजसयलगाः)	,,	,,	२/१७१
७४— सुदर्शना	(सजनरलगाः)	,,	,,	२/१७४
७५— मणिकटिकम्	(नजभजलगाः)	,,	,,	२/१७५
७६— दर्दुरकः	(भौ रसौ लगौ)	,,	,,	२/१७८
७७— वनलता	(रनौ भौ गौ)	,,	,,	२/१८०
७८— सुनन्दा	(सभसजा गौ)	,,	,,	२/१८१
७९— ऋषभः	(सजससयाः)	अतिशक्वरी	१५	२/१८२
८०— ज्योतिः, मित्रम्	(मौ मौ मः)	,,	,,	२/१८८
८१— सुकेसरः	(नजभजराः)	,,	,,	२/१८९
८२— अरविन्दकम्, कलभाषिणी	(नजजभराः)	,,	,,	२/१९२
८३— मयूरललितम्	(जसनभयाः)	,,	,,	२/१९४
८४— चन्द्रलेखा	(रौ तौ मः)	,,	,,	२/१९५
८५— रमणीयकम्	(रनौ भौ रः)	,,	,,	२/१९६
८६— एला	(सजौ नौ यः)	,,	,,	२/१९७
८७— स्मरशरमाला	(भौ तभौ सगौ)	अष्टिः	१६	२/१९८
८८— पद्ममुखी	(भौ भौ भगौ)	,,	,,	२/१९९
८९— मङ्गलम्, अङ्गना	(नभौ जौ जगौ)	,,	,,	२/२००
९०— कमलदलम्	(नौ नजसगाः)	,,	,,	२/२०१
९१— वाणिनी	(नजभजरगाः)	,,	,,	२/२०४
९२— कान्तम्	(नयनयसगाः)	,,	,,	२/२०६
९३— इन्द्रमुखी	(नजरभभगाः)	,,	,,	२/२०७
९४— वसुधारा	(नौ नौ नगौ गः)	अत्यष्टिः	१७	२/२१६

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	छन्दोऽनु० सन्दर्भ
९५— मुक्तामाला	(यमनसतसा:)	धृति:	१८	२/२१८
९६— मन्दारमाला	(सतनया यौ)	,,	,,	२/२२१
९७— मणिमाला	(भौ भौ भसौ)	,,	,,	२/२२२
९८— पङ्कजमुक्ता	(नौ सौ तयौ)	,,	,,	२/२२३
९९— सुरभि:	(सनजनभसा:)	,,	,,	२/२२५
१००— तरलम्	(नभरसजा जगौ)	अतिधृति	१९	२/२२६
१०१— शार्ङ्गि	(रससता जौ ग:)	,,	,,	२/२२९
१०२— रतिलीला	(जसजसजसगा:)	,,	,,	२/२३०
१०३— मत्तेभ-विक्रीडितम्	(रभरनमयलगा:)	कृति:	२०	२/२३३
१०४— कामलता	(भरनभभरलगा:)	,,	,,	२/२३४
१०५— भासुरम्	(भौ भौ रसलगा:)	,,	,,	२/२३५
१०६— मुद्रा, उज्ज्वलम्	(नभभमससलगा:)	,,	,,	२/२३६
१०७— पुटभेद:	(रसौ सौ सौ लगौ)	,,	,,	२/२३७
१०८— वनमञ्जरी	(नजौ जौ जभरा:)	प्रकृति:	२१	२/२४०
१०९— ललितगति:	(नौ नयौ यरौ म:)	,,	,,	२/२४१
११०— तरङ्गमालिका	(रनरनरनरा:)	,,	,,	२/२४२
१११— पद्मसद्म	(रसनजनभरा:)	,,	,,	२/२४३
११२— महास्रग्धरा	(सततनसररगा:)	आकृति:	२२	२/२४५
११३— मदनसायक:	(नभजभजभजगा:)	,,	,,	२/२४७
११४— हंसगति:	(नजौ जौ जौ जलगा:)	विकृति:	२३	२/२४९
११५— चित्रकम्	(रनरनरनरलगा:)	,,	,,	२/२५१
११६— शङ्ख:	(तजौ जौ जौ जलगा:)	,,	,,	२/२५२
११७— ललितलता	(नौ भनजा नौ य:)	संकृति:	२४	२/२५४
११८— हंसपदम्	(भमसभना नौ य:)	,,	,,	२/२५५
११९— महामदनसायक:	(नभजभजभजरा:)	,,	,,	२/२५६
१२०— हंसलय:	(नौ नौ सभौ भौ ग:)	अभिकृति:	२५	२/२५७
१२१— मत्तेभ:	(मौ मौ मतयमगा:)	,,	,,	२/२५९
१२२— वनलतिका	(८ नगणा:+गौ)	उत्कृति:	२६	२/२६२
१२३— मकरन्द:	(नयनया नौ नौ गौ)	,,	,,	२/२६३
१२४— सुधाकलश:	(नजभजा जौ भजलगा:)	,,	,,	२/२६४

छन्दोनाम	लक्षण	वर्ण	छन्दोऽनु० सन्दर्भ
	सीमितदण्डक		
१२५— विकसितकुसुमम्	(मभौ+६ नगणाः+सः)	२७	२/२६५
१२६— मालावृत्तम्	(मौ तनभा मौ मयौ)	,,	२/२६६
१२७— चित्रपदललितम्	(नौ नौ भनभनसाः)	,,	२/२६७
१२८— त्रिभङ्गी	(नसभनतजतसयाः)	,,	२/२६८
१२९— मणिकिरणः	(नौ भनजा नौ नौ लगौ)	२९	२/२६९
१३०— कला	(९ नगणाः+लगौ)	,,	२/२७०
१३१— ललितवृत्तम्	(भजसनभजसनभयाः)	३०	२/२७१
१३२— लहरिका	(१० नगणाः+गः)	३१	२/२७२
१३३— चक्रम्	(भननभननभननभयाः)	३३	२/२७३
१३४— चित्रलयः	(भननभननभननभनगाः)	३४	२/२७४
१३५— ललितलता	(१२ नगणाः+लगौ)	३८	२/२७५

असीमितदण्डक

१३६— सिंहः	(३ लाः + कस्यापि गणस्य संख्या)	६/३३
१३७— अब्दः	(४ लाः + ,, ,, ,,)	,,
१३८— चण्डः	(५ लाः + ,, ,, ,,)	,,
१३९— वातः	(७ लाः + ,, ,, ,,)	,,

अर्धसमवृत्त

१४०— प्रवर्त्तकम्	(रजगाः, जरलगाः)	३/९
१४१— मानिनी	(भरनभनलगाः, नजभजनसाः)	३/१४
१४२— विबोधिता (वियोगिनी)	(ससजगाः, सभरलगाः)	३/१५
१४३— विलसितलीला	(भौ तलगाः, नजनसगाः)	३/१७
१४४— क्षान्तिः, चूडा	(नौ नयौ, मौ गः)	३/१८
१४५— उरुगी	(नननसाः, ननभनलगाः)	३/१९
१४६— आमलकी, चुक्षा	(भौ भौ, भौ भो गौ)	३/२०
१४७— सुनन्दिनी	(जतजराः, तौ जरौ)	३/२१
१४८— नन्दिनी	(तौ जरौ जतजराः)	३/२२
१४९— भामा	(तभसयाः जभसयाः)	३/२३
१५०— विपरीतभामा	(जभसयाः तभसयाः)	३/२४
१५१— चूडामणिः	(तौ जगौ गः, तभजा जगौ गः)	३/२५

छन्दोनाम	लक्षण	छन्दोऽनु०
	विषमवृत्त	**सन्दर्भ**
१५२— कदम्बजातिः	(इन्द्रवंशा-वंशस्थ-पादमिश्रिताः, १४ भेदाः)	२/१४५
१५३— सिंहप्लुतम्	(श्रुति-स्मृति-पादमिश्रितम् चतुर्भेदम्)	२/१४८
१५४— प्रकीर्णकम्	(रुचि-रुचिका-पादमिश्रितम्, १४ प्रभेदम्)	२/१६५
१५५— कीर्तिः	(सजसलाः, नसजगाः, नभजलगाः, सजससजगाः, १०,१०,११,१३)	४/३६
१५६— रमा	(जः+यथेच्छं ला नगणा वा+लगौ, ८,९,९,८)	६/३१
	चतुष्पदमात्रावृत्त	
१५७— मागधी	(८+लः+२+लगौ, १०+लः+२+लगौ १४, १६, १४, १६ मात्राः)	६/२६
१५८— गुणः	(प्रतिपादं केऽपि ३ चतुर्मात्रागणाः परं तृतीयपादान्ते २ लघू)	६/२७
१५९— द्विपदी	(प्रतिपादं १ षण्मात्रागणः ५ चतुर्मात्रागणा अन्ते च १ गुरुः)	६/२८
१६०— अब्जनालः	(प्रतिपादं द्विपदीलक्षणादधिको गुरुरन्ते)	६/२९
१६१— कामलेखा	(प्रतिपादं द्विपदीलक्षणेऽन्तिम-गुरोः पूर्वलघुर्दीर्घः)	६/२९

मृतसञ्जीवनी व्याख्या (हलायुध भट्ट)

पिङ्गल के लोकप्रिय वृत्तिकार भट्ट हलायुध हैं और उनकी वृत्ति का नाम **मृतसञ्जीवनी** है। हलायुध ने **'कविरहस्य'** नामक ग्रन्थ की भी रचना भी की थी जिसमें पाणिनीय-सम्प्रदाय के समानरूपवाले धातुओं के अर्थ तथा प्रयोग का विशद उपन्यास है। इसमें उन्होंने आश्रयदाता **कृष्णराज** को 'राष्ट्रकूट-कुलोद्भव' बतलाया है।[१] यह ज्ञातव्य है कि विजयनगर के राजा कृष्णराय राष्ट्रकूट कुल के नहीं थे। राष्ट्रकूटवंश में कृष्णराज नाम से विख्यात तीन राजा हुए—(१) कृष्णराज शुभतुङ्ग, (२) कृष्णराज अकालवर्ष तथा (३) कृष्णराज अकालवर्ष (द्वितीय)। इनमें कृष्णराज अकालवर्ष द्वितीय का राज्यकाल शकाब्द ८६७ से ८८८ तक था। इसके बाद खुडिगदेव राजा बना। खुडिगदेव (शकाब्द ८८८ से ८९३ तक) का उल्लेख हलायुधवृत्ति में दो स्थानों पर है।

स्वरचित ग्रन्थ 'कविरहस्य' में दिये गये परिचय के अनुसार राष्ट्रकूट-वंशीय

---

१. तोलयत्यतुलं शक्त्या यो भारं भुवनेश्वरः।
कस्तं तुलयति स्थाम्ना राष्ट्रकूटकुलोद्भवम्॥

राजा कृष्णराज अकालवर्ष द्वितीय (९४५-९६६ ई०) तथा **खुडिगदेव** जो कृष्णराज का वैमात्रेय भ्राता था और जिसने ९६६-९७१ ई० तक राज्य किया—दोनों ही **हलायुध** के आश्रयदाता थे।[1] तत्पश्चात् वे धारानरेश वाक्पतिराज **मुञ्ज** के आश्रय में चले गये।[2]

इनकी वृत्ति में माण्डव्य, श्वेतपट, कालिदास, **भारवि, धरणीधर,** कात्यायन आदि के नाम निर्दिष्ट हैं। यह वृत्ति अत्यन्त प्रामाणिक, सर्वप्रिय, तथा सर्वप्राचीन व्याख्या है, जो पिङ्गल-छन्दःसूत्र के अर्थों का स्पष्ट प्रतिपादन करती है। इसका वैदिक-छन्दों का विवेचन प्रामाणिक होते हुए भी संक्षिप्त है। मुञ्ज के शासनकाल (८९३-९१९ शकाब्द) में पिङ्गलसूत्र की टीका की रचना संभवतः की गयी होगी। हलायुध के पिता मीमांसा के विद्वान् थे तथा इनका नाम **विश्वरूप** हो सकता है।[3] हलायुध का मुख्य विषय व्याकरण था, यह कविरहस्य से ज्ञात होता है। इसी हलायुध ने **अभिधानरत्नमाला** नामक कोशग्रन्थ की भी रचना की थी। परन्तु ब्राह्मणसर्वस्व आदि का कर्त्ता, **लक्ष्मणसेन** का मन्त्री हलायुध इससे भिन्न है।

पिङ्गलनागछन्दोविचिति-भाष्य (यादवप्रकाश)

आश्चर्य का विषय है कि 'पिङ्गलसूत्र' का सर्वाधिक प्रौढ़, नितान्त प्रामाणिक तथा पाण्डित्यमण्डित भाष्य बहुत समय तक प्रकाशित नहीं हुआ। इसके हस्तलेख उपलब्ध होते हैं। इस भाष्य का पूरा नाम—**पिङ्गलनागछन्दोविचिति-भाष्य** है। इसके रचनाकार **यादवप्रकाश** हैं जो अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता के अनुसार पुष्पिका में 'भगवान्' के आदरसूचक विशेषण से मण्डित किये गये हैं। यादवप्रकाश विशिष्टाद्वैतवेदान्त के इतिहास में **रामानुजाचार्य** के गुरु होने के कारण पूर्ण प्रसिद्ध हैं। ई० १०१७ से ११३७ पर्यन्त सम्प्रदायानुसार रामानुज का जीवनकाल माना गया है। अपने जीवन के आरम्भिक काल में रामानुज ने इनसे वेदान्त की शिक्षा प्राप्त की थी। फलतः यादवप्रकाश का समय दशमशती के अन्तिम चरण से एकादशी शती के पूर्वार्द्ध तक मानना उचित प्रतीत होता है।

वैजयन्तीकोष के रचयिता होने के कारण यादवप्रकाश की ख्याति विद्वत्समाज में पर्याप्त है। इस कोष का वैशिष्ट्य है कि वैदिक शब्दों का भी संकलन इसमें किया गया है। वेद के शब्दों को लौकिक शब्दों के साथ संकलित कर यादवप्रकाश ने अपनी वेदविषयकप्रीति तथा वैदिक पाण्डित्य का स्पष्ट संकेत किया

---

१. खुडिगराज का उल्लेख हलायुध ने अपनी वृत्ति में ७/१७ तथा ७/२० पर किया है।

२. द्र० ४/१९, का उदाहरण—

ब्रह्मक्षत्रकुलीनः समस्तसामन्तचक्रनुतचरणः।
सकलसुकृतैकपुंजः श्रीमान् मुञ्जश्चिरं जयति॥

तथा ४/२०, ५/३४, ५/३९, ७/५, ८/१२ पर भी द्रष्टव्य।

३. द्र० तमखिलजैमिनीयमतसागरपारगतम्—पितरमहं नमानि बहुरूपमुदारमतिम् (८/१४)।

है। कोष प्रकाशित है तथा पण्डितमण्डली-विद्वत्समाज में प्रख्यात है।[१] इनका दूसरा ग्रन्थ **'यतिधर्मसमुच्चय'** (संन्यासियों के कार्यकलाप का परिचायक ग्रन्थ) भी हस्तलेखों में प्राप्य है। इनके पिङ्गलसूत्रभाष्य का वैदिक-छन्दःप्रकरण अत्यन्त प्रामाणिक तथा विस्तृत है। वैदिक छन्दों का विवेचन इतना सूक्ष्म तथा सांगोपांग है कि यह प्रातिशाख्यों में भी उपलब्ध नहीं होता। इसका कारण है कि आचार्य यादवप्रकाश मन्त्र-ब्राह्मण-भाग के गम्भीर विद्वान् थे।

वैदिक छन्दों के उदाहरण इन्होंने स्वरचित पद्यों से दिये हैं और इस विषय में भी यह पिङ्गल के पूरक सिद्ध होते हैं। नवीन छन्दों की उद्‌भावना करके इनके लक्षण पिङ्गल की ही शैली में सूत्ररूप में दिये हैं।[२] इन नवीन छन्दों में कतिपय जानाश्रयी छन्दोविचिति अथवा कतिपय **हेमचन्द्र** के छन्दोऽनुशासन से मिलते हैं। ये छन्द परवर्ती कवियों द्वारा समादृत तथा काव्यों में व्यवहृत हैं। यद्यपि आचार्य यादवप्रकाश विशुद्ध शास्त्रपारङ्गत पण्डित हैं, किन्तु छन्दों के सन्दर्भ में उनकी दृष्टि व्यवहार तथा प्रयोग के समादर की ओर पर्याप्त रही है। इनके प्रौढ़ भाष्य का उपयोग परवर्ती व्याख्याकार नानाशास्त्रपारदृश्वा विद्वान् **भास्करराय** ने अपने छन्दोविषयक ग्रन्थों में किया है। एस० कृष्णमाचारी ने 'ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' में **'भाष्यराज'** संज्ञा से यादवप्रकाश के भाष्य का उल्लेख किया है।

सुवृत्ततिलक (क्षेमेन्द्र)

'सुवृत्ततिलक' एक प्रौढ महाकवि की छन्दःशास्त्र के विषय में दीर्घकालीन अनुभूति का परिचायक ग्रन्थ है। यह स्वल्पकाय है, परन्तु विषय-विवरण में महत्त्वशाली है। ग्रन्थ के तीन विन्यास (अध्याय) हैं, जिसके प्रथम विन्यास में वृत्तों के लक्षण श्लोकों में हैं। इसमें प्रसिद्ध वार्णिक छन्दों का निरूपण है। लक्षण तथा उदाहरण स्वरचित पद्यों में हैं। दूसरे विन्यास में अन्य कवियों यथा—कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, राजशेखर, श्रीहर्ष आदि की रचनाओं के कतिपय अवतरण हैं, जिनमें छन्दःशास्त्र के नियमों का पूर्णतया पालन नहीं हो पाया है। इसके आधार पर छन्दों के गुण-दोष का विचार द्वितीय विन्यास में है।

तीसरे विन्यास में रस तथा वर्ण्यविषयों के साथ छन्दों का उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित कर उनका विवेचन किया गया है। छन्द का अपना वैशिष्ट्य तथा प्रसङ्गानुकूल औचित्य है। विशेष स्थलों पर ही उसका वैभव खुलता है। यह विन्यास संस्कृत के छन्दोग्रन्थों में नितान्त अपूर्व है। इस विवरण के मूल में कवि का दीर्घकालीन कविकर्म उत्तरदायी है। **क्षेमेन्द्र** का यह स्पष्ट मत है कि काव्य में रस

१. डा० ऑपर्ट द्वारा १८९४ में मद्रास से प्रकाशित।

२. द्र० बलदेव उपाध्याय, संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पृ० २९०-९१ (वाराणसी, १९६९)

तथा वर्णन के अनुसार ही वृत्तों का विनियोग रखना अपेक्षित हैं ।[१] किस रस या भाव में कौन-सा छन्दोविशेष चमत्कृति उत्पन्न करेगा, यह तृतीय विन्यास में विवेचित है। इस सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिये क्षेमेन्द्र ने अनेक अनुभूत तथ्यों का प्रकाश किया हैं। जैसे पावस तथा प्रवास के वर्णन के लिए मन्दाक्रान्ता ही योग्यतम वृत्त है।[२] शास्त्रीय तथ्य की रचना प्रसन्नपद अनुष्टुप् के द्वारा करनी चाहिए। तभी उससे सर्वोपकारी होने का उद्देश्य सिद्ध हो सकता है।

क्षेमेन्द्र ने विशिष्ट कवियों के विशिष्टताप्राप्त छन्दों का भी उल्लेख किया है जो सर्वात्मना नूतन तथा चमत्कारी वैदुष्य है। उदाहरणार्थ—**कालिदास** का सर्वश्रेष्ठ तथा प्रिय वृत्त है मन्दाक्रान्ता। **भवभूति** की शिखरिणी, **राजशेखर** का शार्दूलविक्रीडित, **भारवि** का वंशस्थ, **पाणिनि** की उपजाति आदि इसीप्रकार के तत्तत् कवियों के सर्ववैशिष्ट्य सम्पन्न छन्द है। क्षेमेन्द्र की यह आलोचना बड़ी मार्मिक और यथार्थ है। पाणिनि के कुछ ही पद्य सूक्तिसंग्रहों में उपलब्ध हैं और उनमें उपजाति निश्चितरूपेण चमत्कारकारिणी है। वस्तुत: क्षेमेन्द्र प्रथमत: महाकवि हैं और तदनन्तर छन्द:शास्त्री हैं। फलत: वे अपनी काव्यानुभूतियों से लाभ उठाये बिना रह नहीं सके। **सुवृत्ततिलक**[३] का इसी कारण महत्त्व है।

क्षेमेन्द्र काश्मीर के महाकवि हैं। इनका समय ११वीं शती का मध्यकाल (लगभग १०२५ ई० से १०७५ ई० तक) है। कीथ ने क्षेमेन्द्र का काल **हेमचन्द्र** (१२वीं शती) के पूर्व अथवा ग्यारहवीं शती माना है।[४] मैकडानल के अनुसार क्षेमेन्द्र की **'बृहत्कथामञ्जरी'** की रचना १०३४ ई० में हुयी थी।[५] अत: क्षेमेन्द्र का समय १०वीं शती का उत्तरार्द्ध और ११वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाय, तो इसमें अनौचित्य नहीं होगा। सुवृत्ततिलक की रचना का समय यही रहा होगा।

क्षेमेन्द्र की प्रतिपादन-शैली

इस ग्रन्थ में तीन विन्यास है। प्रथम विन्यास में लक्षण श्लोकों में तथा उदाहरण स्वरचित पद्यों में है। छन्दों के नाम भी दो बार आये हैं, एक बार लक्षण में तथा द्वितीय बार उदाहरण में।

---

१. काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्॥ (सु० ति० ३/७)

२. प्रावृट्-प्रवासकथने मन्दाक्रान्ता विराजते।
शास्त्रं कुर्यात् प्रयत्नेन प्रसन्नार्थमनुष्टुभा।
येन सर्वोपकाराय याति सुस्पष्टसेतुताम्॥ (सु० ति० ३/६)

३. 'काव्यमाला' के अन्तर्गत उसके द्वितीय भाग में अन्तर्भुक्त, पं० दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ पांडुरंग परब द्वारा संपादित एवं निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से १८९६ ई० में प्रकाशित।

४. कीथ : हिस्ट्री आव् संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३३, १३५।

५. आर्थर ए० मैकडॉनल—ए हिस्ट्री आव् संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३७६।

इस विन्यास में कुल २७ प्रसिद्धवृत्तों के सोदाहरण लक्षण हैं। द्वितीय विन्यास में १९ छन्दों के गुणदोष विवेचित हैं। तृतीय विन्यास में १२ वृत्तों के प्रयोगविषय को विवेचित किया गया है।

इस ग्रन्थ में १२४ कारिकापद्य एवं ९० उदाहरण के पद्य हैं। उदाहृत पद्यों में क्षेमेन्द्र के अपने ३९ पद्य एवं प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध कवियों के ५१ पद्य प्राप्त हैं। इनमें कालिदास के ११ पद्य, **भट्टेन्दुराज** के ३ पद्य, बाणभट्ट, राजशेखर, भवभूति, भर्तृहरि, वीरदेव, **मुक्ताकण**, श्यामलभट्ट, रत्नाकर, यशोवर्मा एवं श्रीचक्र के दो-दो पद्य हैं। उत्पलराज, तुञ्जीर, कलशक, श्रीहर्ष, परिमल, वल्लटभट्ट, गन्दिनक, साहिल, भट्टनारायण, दीपक, लाटडिण्डीर, रिस्सु, **भर्तृमेण्ठ**, अभिनन्द, भारवि, महर्षि वेदव्यास एवं वैद्य वाग्भट इत्यादि के एक-एक पद्य है।

ग्रन्थकार द्वारा नवीन लक्षित छन्द नहीं हैं।

क्षेमेन्द्र ने पुराण या प्रबन्ध-काव्य के आरम्भ में, उपदेश-प्रधानरचना तथा कथा-विस्तार में अनुष्टुप् छन्द को उपयुक्त बतलाया है।[1]

शृंगार-आलम्बन के रूपवर्णन अथवा वसन्तादि के वर्णन में उपजाति छन्द अधिक समीचीन कहे गये हैं।[2] विभाव-वर्णन के अन्तर्गत चन्द्रोदय आदि के वर्णन में रथोद्धता, नीति-प्रसंग में वंशस्थ, वीररौद्रादिक रसों में वसन्ततिलका, सर्गान्त में मालिनी, उपपन्न-परिच्छेद में शिखरिणी, साक्षेपक्रोधधिक्कार आदि में मन्दाक्रान्ता, राजाओं के शौर्यस्तवन में शार्दूलविक्रीडित, सावेगपवनादि-वर्णन में स्रग्धरा छन्द निर्दिष्ट है।[3] किन्तु साथ ही यह कहा गया है—

वृत्ते यस्य भवेद्यस्मिन्नभ्यासेन प्रगल्भता।
स तेनैव विशेषेण स्वसन्दर्भं प्रदर्शयेत्।।[4]

सुवृत्ततिलक की एक और विशेषता यह है कि इसमें मात्रिक छन्द नहीं आये हैं। उन मात्रिक छन्दों का उल्लेख भी इस ग्रन्थ में नहीं है, जिनका वर्णन पिङ्गल, जयदेव और जयकीर्त्ति ने किया है, जैसे आर्या, गीति, वैतालीय, मात्रासमक आदि। अतः मात्रिक छन्दों के विकास-क्रम के अध्ययन के प्रसंग में इस ग्रन्थ का महत्त्व उल्लेख्य नहीं माना जा सकता। सुवृत्ततिलक की **'प्रभा'** नामक छात्रोपयोगी संस्कृतटीका पं० व्रजमोहन झा द्वारा प्रणीत है।

---

१. सुवृत्ततिलक ३/९, १६।
२. सुवृत्ततिलक ३/१७।
३. सुवृत्ततिलक ३/१८ से २२ तक।
४. सुवृत्ततिलक ३/२७।

वृत्तरत्नाकर (केदारभट्ट)

मध्यकालीन युग के छन्दःशास्त्रियों में **केदारभट्ट** सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इसका कारण है कि छन्दों के वर्णन में न तो उन्होंने विस्तार किया है और न ही संक्षिप्त रूप रखा है। उनका परिचय मध्यम मार्ग का है। संस्कृत-कवियों द्वारा बहुशः प्रयुक्त छन्दों का विवेचन उनके ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

वृत्तरत्नाकर की प्रतिपादनशैली

वृत्तरत्नाकर में छः अध्याय हैं और पूरा ग्रन्थ १३६ श्लोकों में निबद्ध हैं। प्रथम अध्याय में संज्ञाविधान के अन्तर्गत मगण आदि शास्त्रीय संज्ञाओं का उल्लेख है। द्वितीय अध्याय में आर्या, गीति, वैतालीय, वक्त्र और मात्रासमक के प्रकरणों के अन्तर्गत क्रमशः इन वर्गों के मात्रिक छन्दों का निरूपण है। तृतीय अध्याय में सम वर्णवृत्तों का विवरण है तथा उक्ता से उत्कृति-जाति पर्यन्त वृत्तों तथा दण्डक का भी वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में अर्धसमवृत्तों तथा पञ्चम अध्याय में विषमवृत्तों का निरूपण है। अन्तिम षष्ठ अध्याय में प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट आदि प्रत्ययों का प्रतिपादन है।

छन्दों का लक्षण गणों के द्वारा किया गया है। यहाँ लक्षण-उदाहरण का एकीकरण ग्रन्थ को संक्षिप्त बना देने में मुख्य हेतु है। समस्त ग्रन्थ पद्यबद्ध है, पिङ्गल के समान सूत्रबद्ध नहीं है। लघुकाय तथा सुव्यवस्थित होने के कारण यह ग्रन्थ बहुत लोकप्रिय रहा है। यहाँ तक कि **मल्लिनाथ** जैसे प्रौढ टीकाकार ने भी अपनी व्याख्या के छन्दों के निर्देशार्थ वृत्तरत्नाकर से ही लक्षण उद्धृत किये हैं। सम्प्रति **श्रुतबोध** तथा वृत्तरत्नाकर ही संस्कृत-पाठकों को छन्दोबोध करानेवाले मान्य ग्रन्थ हैं। इनमें से श्रुतबोध तो लघुगुरु के निर्देश से लक्षण बतलाता है और वृत्तरत्नाकर गणों के द्वारा। 'वसन्ततिलका' का लक्षण श्रुतबोध में लघुगुरु-पद्धति द्वारा वसन्ततिलका वृत्त में ही दिया गया है। वृत्तरत्नाकर इस कार्य के लिए गण-पद्धति का उपयोग करता है। यथा—

त	भ ज	ज	ग	ग
उक्ता	वसन्ततिलका	तभजा	जगौ	गः।

वसन्ततिलका १४ वर्णों का वृत्त है जिसमें क्रमशः त, भ, ज एवं ज, चार गण होते हैं तथा अन्त में दो गुरु होते हैं। जिस पाद में यह लक्षण बतलाया गया है वह वसन्ततिलका है। इसको केदारभट्ट ने **'लक्ष्यलक्षणसंयुतं छन्दः'** कहा है (१/३)।

वृत्तरत्नाकर की लोकप्रसिद्धि इस पर विरचित अनेक टीकाओं से भी स्पष्ट होती है। वृत्तरत्नाकर की अनेक टीकायें हैं। कतिपय टीकाकार विद्वानों के नाम

हैं—त्रिविक्रम भट्ट, सुल्हण, (सुकविहृदयानन्दिनी टीका), गणेश (**वृत्तिटीका**), सोमचन्द्र, रामचन्द्र विबुध, समयसुन्दरगणि, हरिभास्कर (सेतु टीका), नारायणभट्ट, जनार्दन (भावार्थदीपिका टीका), विश्वनाथ (प्रभा टीका), अयोध्याप्रसाद (**नौका टीका**) आदि। इन टीकाओं का परिचय पृथक् उल्लिखित है।

केदारभट्ट का यह छन्दोग्रन्थ पद्यबद्ध है। प्रथम और षष्ठ अध्याय, जिनमें सामान्य विवेचन है, अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है। समचतुष्पादीय छन्दों के लक्षण एक पाद में, अर्द्धसम छन्दों के लक्षण प्रथम दो असमान पादों में तथा विषम छन्दों के लक्षण पूरे छन्द में दिये गये हैं। मात्रिक छन्दों के प्रसंग में आर्या, वैतालीय, वक्त्र तथा मात्रासमक को एक साथ रखा गया है। आर्या और मात्रासमक विशुद्ध मात्रिक छन्द हैं, किन्तु **वैतालीय** को मात्रिक और वार्णिक वृत्तों का मिश्रण कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।[1] **वक्त्र** को मात्रिक न मानकर विषम वर्ण-वृत्त मानना चाहिये, जिसमें वैषम्य पादों की लम्बाई पर आधृत नहीं, अपितु पादों में मात्राओं के क्रम में निहित है। इस प्रकार केदारभट्ट द्वारा मात्रिक छन्दों का विवेचन उतना नहीं हुआ है, जितना वर्णवृत्तों का है।[2]

नये मात्रिक छन्दों के उल्लेख की दृष्टि से **'वृत्तरत्नाकर'** का महत्त्व बहुत अधिक नहीं है। आर्या, वैतालीय, मात्रासमक जैसे प्रकरणों में इन वर्गों के छन्द रखे गये हैं। इसके द्वारा वर्गीकरण की प्रवृत्ति संकेतित है, किन्तु इन वर्गों में जो छन्दोभेद निर्दिष्ट हैं, वे लगभग वही हैं जो पिङ्गल, जयदेव, जयकीर्त्ति आदि पूर्ववर्ती आचार्यों ने प्रस्तुत किये हैं। मात्रिक छन्दों के क्षेत्र में लोक-व्यवहार पर आधृत छन्दोविवेचन की प्रवृत्ति की मौलिकता केदारभट्ट में नहीं दृष्टिगत होती है। तथापि वृत्तरत्नाकर में मौलिक छन्दों के लक्षण अत्यन्त स्पष्ट, स्वच्छ और रोचक प्रकार से दिये गये हैं।

वृत्तरत्नाकर का रचनाकाल

इस ग्रन्थ के अन्तिम पद्य से इतना ही ज्ञात होता है कि कश्यप-गोत्रीय ब्राह्मणकुल में इनके पिता उत्पन्न हुए थे[3]। उनका नाम पब्बेक (पव्येक) था। वे शैव सिद्धान्त के वेत्ता थे। फलत: ये दक्षिण भारत के निवासी प्रतीत होते हैं। वृत्तरत्नाकर की सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति जैसलमेर के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसका

---

१. जयदामन, भूमिका, पृ० ३९।

२. जयदामन, भूमिका, पृ० ३९।

३. द्र० वृत्तरत्नाकर १/२ तथा-६/१०—

वंशेऽभूत्कश्यपस्य प्रकटगुणगण: शैवसिद्धान्तवेत्ता,
विप्र: पव्येकनामा विमलतरमतिर्वेदतत्त्वार्थबोधे।
केदारस्तस्य सूनु: शिवचरणयुगाराधनैकाग्रचित्त-
श्छन्दस्तेनाभिरामं प्रविरचितमिदं वृत्तरत्नाकराख्यम्॥

लेखनकाल सं० ११९२ (=११३५ ई०) है। वृत्तरत्नाकर के सबसे प्राचीन टीकाकार **त्रिविक्रम** का समय ११वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। फलत: केदारभट्ट का समय ११वीं शती का पूर्वार्ध ही मानना उचित होगा। केदारभट्ट **हेमचन्द्र** से नि:सन्देह पूर्ववर्ती छन्द:शास्त्री हैं। सोमचन्द्र की वृत्तरत्नाकर-व्याख्या में इसका प्रमाण है। **सोमचन्द्र** ने इस व्याख्या में एक स्थान पर लिखा है कि **हेमचन्द्र** ने वृत्तरत्नाकर की 'श्रुतिसुखकृदियमपि जयति' और 'निजशिर उपगतवति सति भवति' इन दोनों पंक्तियों पर विचार किया है। यह निर्देश बहुत महत्त्व का है। इसका फलितार्थ हैं कि वृत्तरत्नाकर हेमचन्द्र से (१०८८ ई० तथा ११७२ ई० के मध्य में विद्यमान) प्राचीन है। अर्थात् वृत्तरत्नाकर का रचनाकाल १००० ई० से भी पूर्वतर होना चाहिए।[१]

वृत्तरत्नाकर की टीका-सम्पत्ति

विद्वानों की रचित टीकायें वृत्तरत्नाकर की विशिष्ट सम्पत्ति हैं। वृत्तरत्नाकर पर अनेक टीकाओं का प्रणयन होता रहा है जिनमें से अधिक हस्तलिखित रूप में ही हैं। इनमें से कतिपय का परिचय निम्नांकित हैं—

१. श्री वेलणकर के अनुसार सबसे प्राचीन टीकाकार **त्रिविक्रम** हैं। इनके पिता राघवाचार्य थे। ये गोदावरी-तटस्थ एलापुर के निवासी और माध्यन्दिनीय शाखा के अध्येता गौड़ ब्राह्मण थे। त्रिविक्रम अपने को कातन्त्र व्याकरण का पारंगत पंडित और विशेषत: दुर्गाचार्य की वृत्ति का विद्वान् बतलाते हैं। सारस्वत व्याकरण पर उन्होंने एक बृहद्वृत्ति की रचना की थी, यह वे स्वयं बतलाते हैं। वृत्तरत्नाकर की इस वृत्ति का निर्माणकाल सम्भवत: ११वीं शती का उत्तरार्ध है। (जयदामन्—परिचय पृ० ४१-४२)

२. वृत्तरत्नाकर के दूसरे टीकाकार **सुल्हण** हैं जिनकी टीका का नाम **सुकवि-हृदयानन्दिनी** है। ये भी दक्षिण भारतीय प्रतीत होते हैं। ये कृष्णात्रेय गोत्र के वेलादित्य के पौत्र तथा भास्कर के पुत्र थे। तीसरे अध्याय में तथा अन्यत्र इन्होंने स्वरचित उदाहरण भी दिये हैं। इन उदाहरणों में परमारवंशी किसी विन्ध्यवर्मा राजा की संस्तुति की गई है। वृत्ति की रचना का समय १२४६ विक्रमी (अर्थात् ११८९ ई०) है। इस वृत्ति में 'जयदेवच्छन्द:' के निर्माता जयदेव का 'श्वेतपट जयदेव' नाम से उल्लेख किया गया है, जिससे जयदेव का जैनमतावलम्बी होना स्वत: सिद्ध होता है[२]।

---

१. द्र० P.K. Gode—Studies in Indian Literary History, vol. I (भारतीय विद्याभवन, बम्बई १९५८), पृ० १६८-१७०।

२. पाण्डुलिपि सं० ८६९ (१८८६-१८९२ ई०), पाण्डुलिपि सं० ४८४ (१८९५-१९०२ ई०), पाण्डुलिपि सं० १२१ (भाण्डारकर शोध संस्थान, पुणे)।

३. वृत्तरत्नाकर के तृतीय टीकाकार **सोमचन्द्र गणि** हैं। उन्होंने अपनी टीका की रचना १२७२ ई० (सं० १३२९) में की। ये श्वेताम्बर जैन थे तथा देवसूरि गच्छ के मंगलसूरि के शिष्य थे। ये हेमचन्द्र के **छन्दोनुशासन** से तथा इसकी वृत्ति **छन्दश्चूड़ामणि** से उदाहरणों को उद्धृत करते हैं। कभी-कभी सुल्हण से भी उदाहरण उद्धृत करते हैं। इनका समय त्रयोदश (१३) शती का उत्तरार्ध है[१]।

४. सोलहवीं शती से वृत्तरत्नाकर की अधिक लोकप्रियता बढ़ी। इस शती से व्याख्याओं की बहुलता आ गयी। इस शती के प्रमुख टीकाकार **रामचन्द्र विबुध** हैं। ये बौद्ध भिक्षुक थे और भारत से लंका गये थे। इस टीकावाले मूल को हम सिंहली-बौद्धवाचना का प्रतिनिधि मान सकते हैं। रामचन्द्र मूलत: भारतीय बंगाली ब्राह्मण थे जो बाद में लंका गये। वहाँ वे पराक्रमबाहु षष्ठ (१४१० ई०-१४६२ ई०) के द्वारा बौद्ध धर्म में दीक्षित किये गये। इनकी उपाधि 'बुद्धायन चक्रवर्ती' थी। यह टीका निर्णयसागर (मुम्बापुरी १९३६) से प्रकाशित हैं। डा० बेंडल के अनुसार ये महायान के विशेषज्ञ थे—वह महायान जो थेरवादी लंका में अज्ञात ही था। इन्होंने १४५५ ई० में वृत्तरत्नाकर की टीका लिखी थी।

५. **समयसुन्दरगणि** दूसरे जैन ग्रन्थकार हैं जिन्होंने वृत्तरत्नाकर के ऊपर अपनी **'सुगमा वृत्ति'** का प्रणयन १६९४ वि० (=१६३७ ई०) में किया था[२]। इस वृत्ति के उदाहरण हेमचन्द्र के 'छन्दोनुशासन' से दिये गये हैं। सोमचन्द्र तथा समयसुन्दर के द्वारा निर्दिष्ट वृत्तरत्नाकर को हम वृत्तरत्नाकर का जैन-सम्प्रदायानुमोदित मूल मान सकते हैं।

६. वृत्तरत्नाकर की एक प्रसिद्ध टीका **नारायणभट्ट** द्वारा विरचित है। नारायण भट्ट की टीका प्रकाशित है तथा मूल को समझाने के लिये विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करती है। निर्णयसागर से प्रकाशित यह टीका विद्वानों के लिए उपयोगी मानी जाती है।

नारायणभट्ट काशी के निवासी थे तथा रामेश्वर भट्ट के पुत्र थे। वर्तमान विश्वनाथ जी के मन्दिर की स्थापना नारायणभट्ट के द्वारा बतलायी जाती है। इन्होंने धर्मशास्त्र के विषय में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें **'प्रयोगरत्न'** तथा **'त्रिस्थली-सेतु'** प्रख्यात माने जाते हैं। इनकी टीका का रचनाकाल १६०२ वि० सं० अर्थात् १५४५ ई० है।[३] पंचम परिच्छेद में

---

१. पाण्डुलिपि सं० ५५७ (१८८४-८७ ई०), पाण्डुलिपि सं० ७७४ (१८९१-९५ ई०) भाण्डारकर शोध संस्थान, पुणे।

२. द्र० ह० दा० वेलणकर, जयदामन्, पृ० ४३, ५२।

३. याति विक्रमशते द्विखषड्भूसम्मिते सितगकार्तिकरुद्रे।
ग्रन्थपूर्तिसुकृतं किल कुर्मो रामचन्द्रपदपूजनपुष्पम्॥ (टीकासमाप्तिश्लोक)
सं० शा० इ०, पृ० ३०२ की कालगणना चिन्त्य है।

इस वृत्ति की यह विशेषता है कि भाषा के अन्तर्गत अनेक प्राकृत छन्दों के लक्षण तथा उदाहरण संगृहीत हैं। इसके लिए वे मुख्यतया प्राकृतपैङ्गल के ऋणी है। नारायण भट्ट प्रख्यात विद्वत्कुल में उत्पन्न महाराष्ट्र के मूल निवासी थे। (प्र० काशी संस्कृत ग्रंथमाला, सं० ५५, चौखम्भा १९२७)

७. **हरिभास्कर** की **'सेतु'** नामक टीका भी इसी युग से सम्बन्ध रखती है। इसका रचनाकाल १७३२ विक्रमाब्द है। यह १६७५ ई० अर्थात् नारायणीय टीका से प्राय: एक सौ पचीस वर्ष बाद की है। **भास्कर** महाराष्ट्र के नासिक जिले में त्र्यम्बकेश्वर के निवासी थे। परन्तु इनकी टीका-रचना का स्थान भी काशी बताया जाता है। इनके पिता का नाम आपाजी भट्ट अग्निहोत्री था। इन्होंने सुल्हण के पाठों का खण्डन तथा **'सुधा'** नाम्नी किसी अन्य वृत्तरत्नाकर[1] की व्याख्या का उल्लेख किया है। इस टीका में **वाणीभूषण** तथा **वृत्तमौक्तिक** का निर्देश है। यह टीका न बहुत विस्तृत है और न अतिसंक्षिप्त है।[2]

८. जनार्दन अथवा **जनार्दन विबुध** द्वारा रचित **भावार्थदीपिका** टीका १६वीं शती के कुछ पश्चात् की प्रतीत होती है। उसका मूल हस्तलेख शक संवत् १७११ (=१७८९ ई०) का प्राप्त हुआ है। इन्होंने **'वृत्तप्रदीप'** नामक स्वतन्त्र छन्दोग्रन्थ का प्रणयन किया था। इन्होंने नये वृत्तों के उदाहरण स्वयं नहीं बनाये। प्रत्युत सुल्हण तथा हेमचन्द्र से ही उदाहरण उद्धृत किये हैं। इन्होंने जयदेव को उद्धृत किया है। (पुणे पाण्डुलिपि सं० ४८४, ई० १८९९-१९१५)

९. **सदाशिव** द्वारा वृत्तरत्नाकर की व्याख्या का उल्लेख मिलता है। (पुणे पाण्डुलिपि सं० १७६ ई० १९०२-१९०७)

१०. **श्रीकण्ठ** ने भी वृत्तरत्नाकर की एक टीका लिखी थी यह सूचना है। (पाण्डुलिपि सं० १०४ पुणे, ई० १९१९-१९३४)

११. **विश्वनाथ ने प्रभा टीका** हरिसिंह के सत्कारार्थ लिखी थी। (पाण्डुलिपि सं० ६०८ पुणे, ई० १८८७-१८९१).

---

१. द्र० वृत्तरत्नाकर-प्राज्ञतोषिणी व्याख्या की भूमिका। इस टीका को नारायणी से पूर्ववर्ती मानना ठीक नहीं है। क्योंकि—

अक्षिवह्निहयभूमितवर्षे सद्वसन्तसमये मधुशुक्ले।
आगत: प्रतिपदीह समाप्तिं सेतुरेष बुधसंघमुदेऽस्तु ॥ (सेतुटीकासमाप्ति पर २१)

इस श्लोक के अनुसार यह परवर्ती सिद्ध होती है। (द्र० सं० शा० इ०, पृ० ३०२ चिन्त्य)

२. द्र० पाण्डुलिपि सं० १२२ B.B.R.A.S.

१२. **कृष्णसार** उपनाम **वेदेन्द्रभारती** ने **प्रकाशिका** टीका वृत्तरत्नाकर पर लिखी है। इसमें जानाश्रयी छन्दोविचिति का उल्लेख है।

१३. **करुणाकर दास** ने **कविचिन्तामणि** नामक व्याख्या लिखी है। परन्तु इसके आविर्भाव-काल का ज्ञान नहीं है। इस टीका में भी प्राचीन छन्दःशास्त्री जनाश्रय का तथा उनकी रचना 'जानाश्रयी छन्दोविचिति' का उल्लेख तथा उद्धरण मिलते हैं। सम्भवतः यह इनकी प्राचीनता का द्योतक हो।[1]

१४. **दिवाकर** द्वारा रचित **'वृत्तरत्नाकरादर्श'** नाम्नी टीका का रचनाकाल १६८४ ई० है। यह अभी इण्डिया आफिस ग्रन्थालय में हस्तलेख के रूप में हैं। इसमें छन्दोगोविन्द, छन्दोविचिति, छन्दोमञ्जरी, **छन्दोमातङ्ग, छन्दोमार्त्तण्ड,** छन्दोमाला, लक्ष्मीधर निर्मित **पिङ्गलसूत्रटीका** तथा **वृत्तकौमुदी** नामक छन्दोग्रन्थों के नाम निर्दिष्ट है।[2]

१५. **अयोध्याप्रसाद** द्वारा विरचित वृत्तरत्नाकर की **नौका टीका** का हस्तलेख सरस्वती भवन ग्रन्थालय (वाराणसी) में है।

१६. वृत्तरत्नाकर की **प्राज्ञतोषिणी** नामक संस्कृत व्याख्या पं० **श्रीधरानन्द शास्त्री** ने लिखी है। यह छात्रों के लिये उपादेय है तथा प्रकाशित है। भूमिका के उल्लेखानुसार इसका समय १९४५ ई० है।

१७. **'सुधा'** नामक वृत्तरत्नाकर की टीका सरस्वतीभवन ग्रन्थालय (वाराणसी) में उपलब्ध है।[3]

१८. **भास्करराय** द्वारा वृत्तरत्नाकर की **मृतजीवनी** (अमृतसञ्जीवनी) व्याख्या लिखी गई थी, यह उनके द्वारा ही सूचित किया गया है। इसका निर्माणकाल १७०० ई० माना गया है।

१९. वृत्तरत्नाकर की मूल अथवा टीकासहित पाण्डुलिपियों की सूचना निम्नाङ्कित-नामों से उल्लिखित हैं—

(क) कैटेलोगस् कैटेलागोरम्—

कृष्णराय, क्षेमहंस, गोविन्दभट्ट, चिन्तामणि (वृत्तपुष्पप्रकाशन), चिन्तामणि पण्डित (सुधा), चूडामणि दीक्षित, जगन्नाथ (रामात्मज)

---

१. इस टीका एवम् अन्य हस्तलेखों के लिये प्रो० वेलणकर की जयदामन् की भूमिका के पृष्ठ ४२, ४३ तथा ४९-५३ विशेष द्रष्टव्य हैं। द्र० कृष्णसार तथा करुणाकरदास की टीकाओं के हस्तलेख की सूचना हेतु जानाश्रयी छन्दोविचिति की प्रस्तावना (अनन्तशयन ग्रन्थमाला १९४९ ई०)

२. द्र० गोडे स्टडीज इन इंडियन लिटरेरी हिस्ट्री भाग १, पृ० ४६४।

३. सुधा तथा नौका टीकाओं के लिये द्र० सरस्वतीभवन ग्रन्थालय पाण्डुलिपि सूची भाग ११ (१९८४-८६ ई०)। गणेशकृत वृत्ति तथा कौमुदी नामक व्याख्या का भी उल्लेख मिलता है। विशल्यकरणी टीका (सू० ७/३४) में वृत्तरत्नाकर की तर्कवाचस्पति कृत टीका, पञ्चिका तथा श्रीकृष्ण-विरचित टीका का अनेकत्र उल्लेख है।

रचित वृत्तरत्नाकरवार्तिक, जनार्दनविबुध (भावार्थ-दीपिका), त्रिविक्रम (रघुसूरितनय), दिवाकर (महादेवतनयकृत वृत्तरत्नाकरादर्श), नारायण पण्डित (नृसिंहयज्वतनयकृत मणिमञ्जरी), रघुनाथ, विश्वनाथकवि (श्रीनाथतनयकृत प्रभा), शार्दूलकवि, श्रीकण्ठ, श्रीनाथकवि (धीशोधिनी), सारस्वत सदाशिव मुनि (वृत्तरत्नावली)।

(ख) ए हिस्ट्री आव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (एस. कृष्णमाचारी)

अयोध्याप्रसाद (नौका), आत्माराम, कृष्णवर्मा, कृष्णसार, गोविन्दभट्ट, चिन्तामणि पण्डित, तारानाथ, देवराज, नरसिंहसूरि, प्रभावल्लभ, श्रीनाथ (गोविन्दभट्टतनयकृत छन्दोलक्ष्यलक्षण), सोमपण्डित।

(ग) राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ठा० आसल, क्षेमहंस, भास्करार्य (दायाजिभट्टतनय), यशःकीर्ति (अमरकीर्तिशिष्यकृत बालबोधिनी), शुभविजय, समयसुन्दर (सुगमवृत्ति), सोमचन्द्रगणि, मेरुसुन्दर (बालावबोध)।

(घ) बड़ौदा ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट-पाण्डुलिपि सूची

करुणाकरदास (कुलपालिकातनयकृत कविचिन्तामणि), पूर्णानन्द कवि, श्रीनाथ कवि।

(ङ) अनूप संस्कृत पुस्तकालय सूची (बीकानेर)

यशःकीर्ति (बालबोधिनी), सदाशिव (विश्वनाथतनयकृत अर्थदीपिका), सुल्हण (भास्करतनयकृत सुकविहृदयानन्दिनी), सोमचन्द्रगणि (मुग्धबोधकरी), हरिभास्कर (आपाजीभट्टतनय), अवचूरि।

(च) सरस्वतीभवन ग्रन्थालय (वाराणसी) में निम्नलिखित मूल तथा टीकाओं की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं—

नौका (सं० ४४१७१), सुकविहृदयानन्दिनी (सं० ४४१३८), सुधा (सं० ४४१९४), सेतु (सं० ४४०७७, ८५), वृत्तरत्नाकर (सं० ४४०४९), वृत्तरत्नाकर सटीक, सवृत्तिक (सं० ४४२४९, ४४०१९), वृत्तरत्नाकर छन्दोवृत्ति (सं० ४४१३२), वृत्तरत्नाकरव्याख्या (सं० ४४११०), चन्द्रिका-टीका (सं० ४४१७४), भावार्थदीपिका (सं० ४४०५९), प्रभा (सं० ४४१०३) आदि।

वृत्तरत्नाकर का विषयविस्तार

वृत्तरत्नाकर की अनेक पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती हैं[१]। इस ग्रन्थ के छः अध्यायों में ६३ कारिकाएँ, २८ अर्धकारिकाएँ, १२० लक्षणसूत्र एवं १७२ छन्दों के लक्षण किये गये हैं।

ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में मगण आदि पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय में ३९ मात्रावृत्तों के सोदाहरण लक्षण प्राप्त हैं। तृतीय अध्याय में २६ छन्दोजातियों में ११० वृत्त लक्षित हैं। चतुर्थ अध्याय में ११ अर्धसमवृत्तों के लक्षण हैं। पंचम अध्याय में १२ विषमवृत्त लक्षित हैं। षष्ठ अध्याय में छन्द से सम्बन्धित षट्-प्रत्ययादि अन्य विविध चर्चायें हैं। ग्रन्थ में लक्षित १७२ छन्दों में ग्रन्थकार द्वारा नवीनरूप से भी लक्षित कतिपय छन्द हैं।

भट्टकेदार के नवीनलक्षित छन्द

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	पादवर्ण	वृत्तरत्नाकर-सन्दर्भ
१— वसुमती	(तसौ)	गायत्री	६	३/९
२— कुलकम्	(रसौ)	,,	,,	(क)३/९(८)
३— वितानम्	(जतौ गौ)	अनुष्टुप्	८	३/१९
४— मनोरमा	(नरजगाः)	पङ्क्तिः	१०	३/२७
५— दीपकमाला	(भमतगाः)	,,	,,	(क)३/२८
६— शिखण्डि	(जसरा गौ)	त्रिष्टुप्	११	(ख) ३/४३(२)
७— प्रभावती	(तभरजगाः)	अतिजगती	१३	(ख) ३/७०(८)
८— चन्द्रिका	(नौ तौ गः)	,,	,,	(ख) ३/७५
९— गौरी	(नजसरगाः)	,,	,,	(ख) ३/६८(१)
१०— अलोला	(मसमभा गौ)	शक्वरी	१४	३/८३
११— कुटिलम्	(सभनया गौ)	,,	,,	(ग)३/७७(१२)
१२— चन्द्रलेखा	(मरमयया:)	अतिशक्वरी	१५	३/९०
१३— चन्द्रलेखा	(५ रगणाः)	,,	,,	(क) ३/८४(७)
१४— वरकृत्तनम्	(रसजयभराः)	धृतिः	१८	(घ)३/९४(१५)
१५— रचना	(नजभयभजगाः)	अतिधृतिः	१९	(ग)३/९६(३)

(क) वृत्तरत्नाकर, पाण्डुलिपि सं० ७२१ (१८९१-९५ ई०) भण्डारकरशोध-संस्थान, पुणे।

(ख) वृत्तरत्नाकर (पा०लि०सं० ६०) जयदामन्, पृष्ठ ७७ से ८६ पृष्ठ के मध्य प्रकाशित।

(ग) वृत्तरत्नाकर (पा०लि०सं० १२०) Royal Asiatic Society Library, Mumbai.

(घ) पाण्डुलिपि सं० ११९—Royal Asiatic Society Library, Mumbai.

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	पादवर्ण	वृत्तरत्नाकर-सन्दर्भ
१६— लालित्यम्	(मसजयभा भनगा:)	आकृति:	२२	(ग)३/१००(३)
१७— भुजगेरितम्	(मयनतना नरयलगा:)	उत्कृति:	२६	(ग)३/१०६(२)

द्विपदमात्रावृत्त

१८— शिखा	(२८ल:+ग:, ३०ल:+ग:)	२/३९
१९— खञ्जा	(३०ल:+ग:, २८ल:+ग:)	२/४०

वृत्तरत्नाकर के प्रभूत प्रचार के कारण इसके अनेक पाठभेद हैं। अत: इन सन्दर्भों में भी पाठान्तरों के कारण संख्याङ्कन में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। कतिपय टीकाकारों ने भी अपने भेद मूल में जोड़ दिये हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक छन्दों को भट्टकेदार ने नवीन रूप से लक्षित किया है।

बृहत्संहितावृत्ति (उत्पलभट्ट)

बृहत्संहितावृत्ति के कर्त्ता भट्ट उत्पल माने जाते हैं। यह वृत्ति वराहमिहिर द्वारा रचित बृहत्संहिता पर सन् ९६६ ई० में लिखी गई थी।[१] बृहत्संहिता ज्यौतिष-विषयक रचना मानी जाती है। रचनाकार ने इसके प्रसङ्ग में १०३वें परिच्छेद में ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधि के साथ छन्दों का भी विवेचन किया है और इसमें ६४ छन्दों का प्रयोग देखने को मिलता है।[२] इस वृत्ति के टीकाकार भट्ट उत्पल ने अपनी टीका में आचार्य **वराहमिहिर** के एक छन्दोविषयक ग्रन्थ को भी प्रस्तुत किया है।[३] परंतु वैसा ग्रन्थ इस समय प्राप्त नहीं है। ग्रन्थ के १०३वें अध्याय के अन्तर्गत अपनी वृत्ति में **उत्पलभट्ट** ने जो पद्य प्रस्तुत किये हैं उनमें प्रसंगवश कुछ छन्दों के लक्षण भी दिये गये हैं।[४] उनमें लौकिक छन्द:शास्त्र में भट्ट उत्पल का निम्नांकित महत्त्वपूर्ण अवदान है—

भट्ट उत्पल के नवीनलक्षित छन्द

१. वितानम् (स स स ग) १० वर्ण (बृहत्संहितावृत्ति-१०३/४६) (पङ्क्तिवृत्ति दशाक्षरपाद)।
२. विनाशिनी (न ज भ ज भ ल ग) १७ वर्ण (बृहत्संहितावृत्ति-१०३/३५) (अत्यष्टिवृत्ति)।
३. वर्णक: (न न+७ भगण+ग ग) २९ वर्ण (बृहत्संहितावृत्ति-१०३/६२) दण्डक।
४. समुद्र: (न न+७ र+ज र) ३३ वर्ण (बृहत्संहितावृत्ति १०३/६३) दण्डक।

---

१. A paper on Varah Mihir and Utpal (in relation to Sanskrit Metres) by H. D. Velankar, published in C. K. Raja Commemoration Vol. Madras 1946 (pp. 141-152).
२. ए.बी. कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, हिदी संस्करण-II, पृ० ६७४।
३. तत्रैव, पृ० ५२३।
४. उत्पलभट्ट-कृत बृहत्संहितावृत्ति, अध्याय १०३, विजयनगर संस्कृत सीरीज सं० १०, बनारस, १८९५।

विषमवृत्त

५. वक्त्रानुष्टुप् (८, ८, ८, ८) र र ग ग, भ र ग ग, य स ग ग, ज स ग ग (बृहत्० वृ०, १०३/५६)

६. विलासः (१०, १०, ९, ११) तमय ग, ततजग, सतम, सससलग (बृहत्० वृ० १०३/५३)

७. विलास (९, १०, ९, ११) तमम, तरजग, सतम, सससलग (बृहत्० वृ० १०३/५३)

वृत्तजातिसमुच्चय-पञ्चमनियम (विरहाङ्क)

प्राकृत के छन्दश्शास्त्री **विरहाङ्क** ने वृत्तजातिसमुच्चय के पञ्चम नियम (प्रकरण) की रचना संस्कृतभाषा में की है। इसमें पचास पद्यों में गौ से भुजङ्गविजृम्भित पर्यन्त छन्दों के लक्षण उपदिष्ट हैं। इसमें मुद्रालङ्कार द्वारा लक्ष्य-लक्षण का निर्देश किया गया है। वृत्तजातिसमुच्चय का काल ह० दा० वेलणकर ने नवम-दशम शताब्दी माना है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पर संस्कृत में **श्रीगोपाल** कृत टीका भी उपलब्ध है। इसकी संस्कृत छन्दःशास्त्र के अनुशीलन में विशेष उपादेयता है। वृत्तजातिसमुच्चय का विशेष विवरण प्राकृतग्रन्थों के प्रसङ्ग में द्रष्टव्य है।

छन्दःशेखर (राजशेखर)

छन्दःशेखर के कर्त्ता कवि **राजशेखर** माने जाते हैं। इनके पिता का नाम ठक्कुरदुद्दक और माता का नाम नागदेवी था। यह लाहट के पौत्र और यश के प्रपौत्र थे। इनकी रचना छन्दःशेखर **भोजदेव** को प्रिय थी।[1] यह भोजदेव धारानरेश थे, जिनका शासनकाल १००५ से १०५४ ई० था।[2] अतः राजशेखर का भी उक्त काल ही माना जा सकता है। **छन्दःशेखर** के प्रकाशित अंश का आधारभूत हस्तलेख है, जो रचयिता से भिन्न अन्य किसी व्यक्ति द्वारा चित्तौड़ (चित्रकूट) में लिखा गया था। इस पर वि० संवत् ११७९ लिखा है।[3] उक्त प्रति से ग्रन्थ का रचयिता निश्चित ही १०० अथवा १२५ वर्ष पूर्व विद्यमान था। भोजदेव के उल्लेख

---

१. यस्यासीत्प्रपितामहो यश इति श्रीलाहटस्त्वार्यकः,
तातष्ठक्कुरदुद्दकः स जननी श्रीनागदेवी स्वयम्।
स श्रीमानिह राजशेखरकविः श्रीभोजदेवप्रियं,
छन्दःशेखरमार्हतोऽप्यरचयत्प्रीत्यै स भूयात्सताम्॥
छन्दःशेखर, बा०ब्रा०रा०ए०सो० की पत्रिका, १९४६, पृ० १४।

२. डा० भोलाशंकर व्यास, प्राकृतपैङ्गलम्, भाग-२, पृ० ३६९, वाराणसी, १९६२।

३. तत्रैव।

से उसका समय निश्चित प्रतीत होता है। यह राजशेखर कविराज **राजशेखर**[१] और बाद के राजशेखर सूरि[२] से भिन्न है।

छन्द:शेखर संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों छान्दस परम्पराओं का विवेचन प्रस्तुत करता है। इसके प्रथम चार अध्यायों में संस्कृत तथा प्राकृत छन्दों का तथा अन्तिम पंचम अध्याय में अपभ्रंश छन्दों का विवेचन है।

इस पर स्वयम्भू के **स्वयम्भूच्छन्दस्** का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। छन्दों का वर्गीकरण तथा विवरण स्वयम्भू के अनुसार ही है और कहीं-कहीं तो राजशेखर के पद्य स्वयम्भू के प्राकृत छन्दों के संस्कृत रूपान्तर प्रतीत होते हैं।[३] इनके द्वारा लक्षित संस्कृतवृत्तों में इनका नवीन कोई छन्द प्राप्त नहीं होता। इनके सभी लक्षित छन्द पिङ्गल-भरत से विरहाङ्क पर्यन्त लक्षणकारों की रचनाओं में लक्षित हो चुके हैं।

रत्नमञ्जूषा (अज्ञातकर्तृक)

अज्ञातकर्त्ता द्वारा रचित रत्नमञ्जूषा-ग्रन्थ को छन्द:शास्त्र के इतिहास में अनेक नवीनताओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मूलग्रन्थ का सम्पादन प्रो० ह० दा० वेलणकर ने भूमिका आदि-सहित किया है। **रत्नमंजूषा** सूत्रों में है जिसके ऊपर किसी अज्ञातनामा विद्वान् का भाष्य है।[४] ग्रन्थकार का तथा भाष्यकर्ता का नाम, स्थान एवं समय अज्ञात है।

इसके विषय प्रतिपादन में पिङ्गल का सादृश्य तथा प्रभाव प्रतीत होता है। यह ग्रन्थ भी आठ अध्यायों में निबद्ध है। अध्याय-संख्या में आचार्य पिङ्गल के सादृश्य होने पर भी अनेक बातों में मौलिक अन्तर है। सूत्रकार ने वैदिक छन्दों का विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। परन्तु भाष्य के मङ्गलश्लोक में वीर (महावीर) की प्रार्थना होने से भाष्यकार का जैन होना सर्वथा सिद्ध होता है। उदाहरणों में बहुत स्थलों पर (जो भाष्यकार की ही रचना प्रतीत होते हैं) 'जिन' की स्तुति तथा जैनमत के तथ्य उपलब्ध होते हैं। कुल ८५ उदाहरणों में से ४० उदाहरण मुद्रा द्वारा अपने छन्द का परिचय देते हैं। लगभग २५ उदाहरण सामुद्रिक उल्लेख करते हैं और सबमें मुद्रा द्वारा ही छन्द ज्ञात कराया गया है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी आदि ग्रन्थों के रचयिता राजशेखर, द्रष्टव्य-आचार्य राजशेखर (डा० श्यामा वर्मा), पृ० १२-१७।

२. आचार्य राजशेखर, पृ० १२ पर प्रबंधकोष के रचयिता राजशेखर सूरि।

३. द्रष्टव्य—छन्द:शेखर के अध्याय १ से ४ और स्वयम्भूछन्द: के अध्याय ४ से ८ तक।

४. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला संस्कृत ग्रन्थांक ५, के अन्तर्गत सभाष्य १९४९ ई० में प्रकाशित।

पिङ्गल के समान ही अष्टाध्यायी रत्नमञ्जूषा में वैदिक छन्दों को छोड़कर विषय का प्रतिपादन सामान्यत: पिङ्गल के सदृश हैं। परन्तु दोनों में विभेद चिह्न-विषयक है। प्रथम अध्याय में ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली तथा अष्टम अध्याय में प्रस्तार आदि का विवेचन है। शेष अध्यायों में मात्रिक तथा वार्णिक छन्दों का निरूपण है।

इसकी पारिभाषिक शब्दावली सर्वथा भिन्न तथा दुर्बोध है। पिङ्गल ने वर्णवृत्त में छन्दोबोध के लिए **त्रिक** का प्रयोग किया है जो संख्या में आठ है और व्यञ्जन ही है (भ, ज, स आदि)। यह ग्रन्थकार **त्रिक** को स्वीकार करता है, परन्तु चिह्न परिवर्तित कर देता है। चिह्नों के दो वर्ग हैं—व्यञ्जनात्मक तथा स्वरात्मक। यथा पिङ्गल का 'म' यहाँ 'क्' अथवा 'आ' है उसी प्रकार पिङ्गल का सर्वलघु 'न' यहाँ 'ह' या 'इ' है, आदि।

मात्रावृत्तों में पिङ्गल के अनुसार ही चतुर्मात्रा-वर्ग का उल्लेख किया गया है। संस्कृत में मात्रावृत्तों की संख्या न्यून है और इसमें चतुर्मात्रा-वर्ग ही लिये गये हैं। चतुर्मात्रा-वर्ग लघु और दीर्घ वर्णों के विभिन्न प्रयोगों के आधार पर पाँच प्रकार का है। ग्रन्थकार ८४ वर्णवृत्तों का लक्षण-निर्देश करता है। ८४ में से प्राय: २१ छन्दों को पिङ्गल और केदार दोनों के द्वारा लक्षित नहीं किया गया है। इसप्रकार अधिकांश प्राचीन छन्दों के साथ कुछ नवीन छन्दों का भी समावेश किया गया है। ग्रन्थकार का विभाजन हेमचन्द्र द्वारा पुरस्कृत जैनपरम्परा को ही मान्य है। यह भी ग्रन्थकार को जैनमतावलम्बी सिद्ध करने का नया प्रमाण है। सूत्रों की संख्या प्रतिअध्याय क्रमश: इस प्रकार है—२६, २८, २८, २०, ३७, ३८, ३४, १९। कुल योग २३० (दो सौ तीस मात्र) है। ग्रन्थरचना का काल हेमचन्द्र से पूर्ववर्ती लगभग ११ शती में मानना उचित प्रतीत होता है।

रत्नमञ्जूषा का कर्तृत्व एवं विषय

छन्दःशास्त्रीय सूत्रग्रन्थ रत्नमञ्जूषा के रचयिता का नाम अभी तक अज्ञात ही हैं। इस ग्रन्थ की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती हैं;[१] उनमें रचयिता के नाम नहीं हैं। इसके भाष्यकार ने कहीं भी ग्रन्थकार का नामोल्लेख नहीं किया है और न अपना ही नामोल्लेख किया है। परन्तु भाष्य के अन्त में ११ श्लोक मिलते हैं; जो लेखक के द्वारा ही उद्धृत प्रतीत होते हैं। अन्तिम श्लोक में **पुन्नागचन्द्र** नामोल्लेख भी मिलता है।[२] इससे प्रतीत होता है कि लेखक के द्वारा ही अपनी रचना पद्धति के ज्ञान के

---

१. पाण्डुलिपि सं० ८७१ (ए) तथा १०२५ (बी), राजकीय प्राचीन पुस्तकालय, मैसूर।

२. 'एकच्छन्दसि खण्डमेरुरमल: पुन्नागचन्द्रोदित:' पद्य-११ (रत्नमञ्जूषा, भारतीयज्ञानपीठ, काशी)

लिए भाष्य किया गया और भाष्य के अन्त में 'पुन्नागचन्द्र' इस नाम को भी प्रकाशित किया गया। परन्तु अधिकांश विद्वान् इसे किसी अज्ञात जैन की कृति मानते हैं।[१] ग्रन्थ के सम्पादक प्रो० हरि दामोदर वेलणकर प्रस्तावना में लिखते हैं कि इसके कई छन्द आचार्य हेमचन्द्र के द्वारा विदित हैं; परन्तु भट्टकेदार के द्वारा विदित[२] नहीं थे। इसलिये ग्रन्थकार का समय हेमचन्द्र से पूर्व ही माना जाता है।

इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में छन्दोलक्षण के संज्ञा-चिह्नों तथा परिभाषिक शब्दों के निर्देश हैं। इसमें निर्दिष्ट छन्दोलक्षण के चिह्न पिङ्गलद्वारा निर्दिष्ट मगण आदि चिह्नों से भिन्न हैं, यह विशेषता है। द्वितीय अध्याय से चतुर्थ अध्याय तक क्रमशः २१ अर्धसमवृत्त १७ मात्रिकवृत्त एवं १५ विषमवृत्तों का प्रतिपादन है। पञ्चम अध्याय से सप्तम अध्याय तक ८५ वर्णवृत्तों के लक्षण हैं। आठवें अध्याय में छन्दों की प्रस्तारप्रक्रिया प्रदर्शित हैं।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में कुल २३० सूत्र हैं; जिनमें १३८ छन्दों के लक्षण तथा भाष्य में १४३ उदाहरण के पद्य हैं। उदाहरण मुद्रा के द्वारा अपने छन्दों के परिचय प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणों में **भास** का[३] एवं **कालिदास**[४] का एक-एक पद्य है। अन्य उदाहरणों के पद्य भाष्यकार के द्वारा लिखित प्रतीत होते हैं। ग्रन्थ में लक्षित १३८ छन्दों में रत्नमञ्जूषाकार के द्वारा नवीनरूप में लक्षित २१ छन्दों का अवदान है।

रत्नमञ्जूषाकार के नवीनलक्षित छन्द

गायत्री (षडक्षरपाद)

१. सूचीमुखी	(स म)	रत्नमञ्जूषा-५/७।
२. शिखण्डिनी	(य म)	रत्नमञ्जूषा-५/८।

जगती (द्वादशाक्षरपाद)

३. समान	(र ज र ज)	रत्नमञ्जूषा-५/१।
४. प्रमाण	(ज र ज र)	रत्नमञ्जूषा-५/२।

शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)

५. राजरमणीय	(ज स र न ग ग)	रत्नमञ्जूषा-६/२१।

अष्टि (षोडशाक्षरपाद)

६. वेल्लिता	(स स न न म ग)	रत्नमञ्जूषा-६/३०।
७. कोमललता	(म त स त त ग)	रत्नमञ्जूषा-६/३२।

---

१. वृत्तमौक्तिक, भूमिका पृ० १५।

२. रत्नमञ्जूषा, प्रस्तावना, पृष्ठ-६।

३. 'मम हयखुरभिन्नं.........' (प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्-२/३), द्रष्टव्य, रत्नमञ्जूषा-६/२७।

४. 'गच्छति पुरः शरीरं......' (अभिज्ञानशाकुन्तलम्-१/३३), द्रष्टव्य, रत्नमञ्जूषा-२/४।

धृति (अष्टादशाक्षरपाद)

८. वाचालकाञ्ची (म र भ य र र) रत्नमञ्जूषा-७/३।

अतिधृति (ऊनविंशत्यक्षरपाद)

९. वायुवेगा (म स ज स न ज ग) रत्नमञ्जूषा-७/६।

१०. माधवीलता (म र भ स स ज ग) रत्नमञ्जूषा-७/७।

कृति (विंशत्यक्षरपाद)

११. दीपकशिखा (भ न य न न र ल ग) रत्नमञ्जूषा-७/८।

प्रकृति (एकविंशत्यक्षरपाद)

१२. कथागति (त र भ न ज भ र) रत्नमञ्जूषा-७/१३।

१३. ललितविक्रम (भ र न र न र र) रत्नमञ्जूषा-७/१४।

आकृति (द्वाविंशत्यक्षरपाद)

१४. दीपार्चि (म स ज स जस ज ग) रत्नमञ्जूषा-७/१६।

विकृति (त्रयोविंशत्यक्षरपाद)

१५. वृन्दारक (ज स ज स य य य ल ग) रत्नमञ्जूषा-७/१८, १९।

संकृति (चतुर्विंशत्यक्षरपाद)

१६. विभ्रमगति (म स ज स तत भर) रत्नमञ्जूषा-७/२४।

अभिकृति (पंचविंशत्यक्षरपाद)

१७. हंसपदा (त य भ भ न न न न ग) रत्नमञ्जूषा-७/२७।

उत्कृति (षड्विंशत्यक्षरपाद)

१८. आपीड (भ न न स म न न न ल ग) रत्नमञ्जूषा-७/३०।

अर्धसमवृत्त

१९. (१३, १३) यमवती (र ज र ज ग, ज र ज र ग) रत्नमञ्जूषा-२/२७।

मात्रावृत्त चतुष्पदी

२०. नृत्यगति (प्रत्येक पाद में कोई भी पाँच चतुर्मात्रगण हो, जिनमें तृतीय और अंतिम गण गुरुगण हों, और तृतीयगण पर यति हों) रत्नमञ्जूषा-३/२१-२४।

२१. नटचरण (प्रत्येक पाद में कोई भी तीन चतुर्मात्रगण हों और जिसके अन्तिम गण के अन्त में गुरु हो और द्वितीय गण पर यति हो) रत्नमञ्जूषा-३/२५-२६।

छन्दोऽनुशासन (हेमचन्द्र)

हेमचन्द्र का छन्दोऽनुशासन छन्दोविचिति के इतिहास में अनेक दृष्टियों से महत्त्व रखता है। यह सूत्रबद्ध अष्टाध्यायी पिङ्गल की छन्दोविचिति के समान ही है। संस्कृत-वृत्तों के परिज्ञान के लिए यह ग्रन्थ उतना आवश्यक तथा उपादेय भले ही

न माना जाय, परन्तु प्राकृत तथा अपभ्रंश छन्दों की जानकारी के लिए तो यह विश्वकोश जैसा उपयोगी है। आलोचकों की दृष्टि में हेमचन्द्र संग्राहक के रूप में विशेष महत्त्व रखते हैं। परन्तु इस ग्रन्थ में उनका वैशिष्ट्य विवेचक के रूप में भी दृष्टिगत होता है। प्राचीन छन्द:शास्त्रियों से उन्होंने सामग्री का संकलन अवश्य किया है, परन्तु उनका मौलिक विवेचन पदे-पदे ध्यान आकृष्ट करता है। इस ग्रन्थ पर उनकी स्वोपज्ञवृत्ति भी है[१]। यह **'छन्दश्चूडामणि'** के नाम से प्रसिद्ध है।

हेमचन्द्र की प्रतिपादन-शैली

इस ग्रन्थ में आठ अध्याय है। मूलग्रन्थ ७६३ सूत्रों में रचा गया है। प्रथम अध्याय में संज्ञाओं का वर्णन १६ सूत्रों में हैं। द्वितीय में समवृत्तों का ४१५ सूत्रों में, तृतीय में अर्धसम, विषम, वैतालीय, मात्रासमक आदि का विवेचन ७३ सूत्रों में, चतुर्थ में आर्या, गलितक, खञ्जक, शीर्षक आदि का ९१ सूत्रों में, पञ्चम में उत्साहादि अपभ्रंश छन्दों का निरूपण ४९ सूत्रों में, षष्ठ में षट्पदी, चतुष्पदी छन्दों का निरूपण २९ सूत्रों में, सप्तम में द्विपदी छन्दों का ७३ सूत्रों में तथा अष्टम में प्रस्तार—मेरु, नष्टोद्दिष्ट आदि षट्प्रत्ययों का विवरण १७ सूत्रों में है। इस सामान्य निर्देश से ही ग्रन्थ के शास्त्रीय महत्त्व की पर्याप्त अभिव्यक्ति होती है।

हेमचन्द्र की विमल प्रतिभा ने प्राकृत तथा अपभ्रंश छन्दों के अन्तर्निविष्ट सौन्दर्य का पूर्णत: आकलन कर उन्हें लोकभाषा के स्तर से उठाकर शास्त्रीय स्तर पर स्थापित कर दिया। अपभ्रंश के कविजन अपने काव्यों की रचना इन छन्दों में करते थे। परन्तु उसपर अभी शास्त्र की मुद्रास्वीकृति नहीं लगने से वे छन्द ग्रामीण तथा अपरिष्कृत माने जाते थे। हेमचन्द्र ने इस त्रुटि को अपने इस ग्रन्थ से सद्य: दूर कर दिया। हेमचन्द्र ने अपने छन्दोऽनुशासन में लगभग सात-आठ सौ छन्दों पर विचार किया है। प्राचीन छन्दों के नये भेदों का वर्णन भी यहाँ निर्दिष्ट है। विशेष तथ्य यह है कि हेमचन्द्र ने स्वरचित वृत्तों को ही उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किया है। संस्कृत के प्रसङ्ग में तथा प्राकृत तथा अपभ्रंश के छन्दों के उदाहरण के अवसर पर भी यही स्थिति है। यह समग्र ग्रन्थ संस्कृत के सूत्रों में निबद्ध है। केवल उदाहरण तत्तत् भाषा में हैं। इससे हेमचन्द्र की काव्यविरचन-चातुरी का भी पूर्ण परिचय सहृदयों को प्राप्त होता है।

छन्दोऽनुशासन में ९७९ छन्दों के लक्षण हैं। इनमें संस्कृत के ६२५ छन्दों का निरूपण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में किया गया है। इनके अन्तर्गत सम, अर्धसम, विषम छन्द तथा १० द्विपदी हैं। तदनन्तर सप्तम अध्याय तक ३५४ अपभ्रंश प्राकृत-छन्दों के लक्षण हैं। इनमें १०४ द्विपदी, ९९ चतुष्पदी, ११३ अर्धचतुष्पदी, ५ पञ्चपदी, २ अष्टपदी, ३ द्विभङ्गी, २ त्रिभङ्गी, ४ अर्धषट्पदी, शेष विषम तथा अन्य छन्द हैं। संस्कृत छन्दों के उदाहरणों में ६२६ पद्य तथा प्राकृत में ३८० पद्य उल्लिखित हैं।

---

१. प्राचीन संस्करण निर्णयसागर प्रेस (देवकरण मूलजी), मुम्बई से १९१२ में प्रकाशित।

हेमचन्द्र का काल-परिचय

मात्रिक छन्दों के नवीन प्रकारों के समुल्लेख से यह ग्रन्थ मात्रिक छन्दों के विवरण तथा विश्लेषण में बड़ा महत्त्वपूर्ण, मौलिक तथा उपादेय है। इस ग्रन्थ के द्वारा हेमचन्द्र ने काव्यविरचन के निमित्त एक विशेष त्रुटि का अपनयन किया है।

हैमशब्दानुशासन, काव्यानुशासन तथा छन्दोऽनुशासन—ये तीनों ही हेमचन्द्र की प्रतिभा से संभूत अनुशासनत्रयी के अन्तर्गत हैं। इस ग्रन्थत्रयी ने क्रमशः शब्द, अलङ्कार तथा छन्द का नियमन शास्त्रीय पद्धति से कर संस्कृत-साहित्य में अपने रचयिता के लिये प्रभूत ख्याति अर्जित की है। हेमचन्द्र का काल १०८८-११७२ ई०, तदनुसार विक्रम-संवत् ११४५-१२२९ माना जाता है।[१] हेमचन्द्र का जन्म घुण्टुक नामक स्थान में (गुजरात के वर्तमान अहमदाबाद से दक्षिण-पश्चिम ६० किमी० धुंधुका में), विक्रम सं० ११४५ (१०८८ ई०) की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था। इनके पिता का नाम चलिम (चाचिग) और माता का पाहिणी था। हेमचन्द्र के अन्य नाम चाङ्गदेव, हेमाचार्य भी हैं। अनहिलवाड (पाटन) के राजा जयसिंह के भतीजे **कुमारपाल** के ये आश्रित और गुरु कहे गये हैं।[२] हेमचन्द्र श्वेताम्बर जैन तथा पूर्णतलीयगच्छ के देवचन्द्रसूरि के शिष्य थे। ये बहुमुखी प्रतिभावाले लेखक, वैज्ञानिकदृष्टि-सम्पन्न आचार्य और शास्त्रप्रणेता थे। **त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित** तथा **योगशास्त्र** इनके जैनधर्म-संबन्धी ग्रन्थ हैं। **कुमारपालचरित** इनका प्राकृत महाकाव्य है तथा **नाममाला, काव्यानुशासन, शब्दानुशासन** और छन्दोऽनुशासन इनके शास्त्रीय ग्रन्थ हैं[३]। कुमारपाल का देहान्त ११७४ ई० में हुआ था। इसके ६ मास पूर्व सं० १२२९ (११७३ ई० के लगभग) हेमचन्द्र की मृत्यु हुई। अतः छन्दोऽनुशासन का रचनाकाल ११५० ई० प्रायः माना जा सकता है।

हेमचन्द्र का विषय-वैशिष्ट्य

हेमचन्द्र ने अपने इस छन्दोग्रन्थ को पिङ्गल, जयदेव और जयकीर्त्ति की भाँति, आठ अध्यायों में निबद्ध किया है। चतुर्थ अध्याय में आर्या, गाथा के सभेद वर्णन के बाद गलितक, खञ्जक और शीर्षक छन्द आये हैं, जो सभी प्राकृत के छन्द हैं। लघुगुरुप्रयोग में पूर्ण या आंशिक स्वच्छन्दता इन सभी छन्दों में दृष्टिगत है, अतः ये सभी मात्रिक छन्द की कोटि में ही रखे जा सकते हैं।

वैतालीय और मात्रासमक के कुछ नये भेद, जिनका उल्लेख पिङ्गल, जयदेव, विरहाङ्क, जयकीर्त्ति आदि पूर्ववर्त्ती आचार्यों ने नहीं किया था, हेमचन्द्र ने प्रस्तुत किये

---

१. कीथ, ए हिस्ट्री आव् संस्कृत लिटरेचर, पृ० १४२।
२. आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन, पृ० ९।
३. ह०दा० वेलणकर, जयदामन् (परिचय, पृ० ४६)।

हैं। जैसे—दक्षिणांतिका, पश्चिमांतिका, उपहासिनी, नटचरण, नृत्तगति। गलितक, खञ्जक और शीर्षक के क्रमशः जो भेद बताये गये हैं, वे भी शास्त्रोक्ति की दृष्टि से प्रायः नवीन हैं। हेमचन्द्र के अन्य मात्रिक छन्दों में कुछ का उल्लेख **वृत्तजाति-समुच्चय** में है। शेष सर्वथा प्रथम बार शास्त्रोल्लिखित हुए हैं।

अपभ्रंश के अनेक दूसरे छन्द जो समकालीन अपभ्रंश में प्रचलित थे, इसमें नहीं मिलते, किन्तु वे ही छन्द 'प्राकृत-पैङ्गलम्' में समाविष्ट हो गये हैं। अतः स्पष्टतया 'प्राकृत-पैङ्गलम्' परवर्ती ग्रन्थ है। तथापि मात्रिक छन्दोलक्षण के प्रसङ्ग में हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' का महत्त्व नवीन मात्रिक छन्दों के उल्लेख की दृष्टि से बहुत अधिक है।

हेमचन्द्र-कृत छन्दोऽनुशासन पर प्रो० एच० डी० वेलणकर ने पर्याप्त अनुसन्धान एवं श्रम किया है। सर्वप्रथम उन्होंने BBRAS-जर्नल में १९४३-४४ में ४ से ७ अध्याय के भाग को लेखक की अपनी टीका तथा अज्ञातकर्तृक **अवचूरिका** से साथ सम्पादित किया। तदनन्तर **हरितोषमाला** के अन्तर्गत 'जयदामन्' में अन्तर्भुक्त केवल मूलपाठ सम्पादित कर १९४९ में बम्बई से प्रकाशित किया। इसके बाद विस्तृत आंग्लभूमिका, पाठशोधन, अनेक उपयोगी परिशिष्टों तथा सूचियों आदि के साथ छन्दोऽनुशासन का सम्पादन कर प्रो० वेलणकर ने व्याख्या सहित १९६१ में सिंधी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत भारतीय विद्याभवन, बम्बई से प्रकाशित किया है। यह संस्करण अध्येताओं के लिये अतिशय उपादेय है।

हेमचन्द्र का शास्त्रीय अवदान

आचार्य हेमचन्द्र ने पद्यकाव्यों के अन्तर्गत ही छन्द माने हैं। वे गद्यकाव्यों में छन्द नहीं मानते।[१] उन्होंने वैदिक छन्दों को लौकिक काव्यों में उपयोगी नहीं माना है।[२] इसलिये तत्कालीन लोकव्यवहार में आने वाले छन्दों का ही निरूपण किया है।[३] ग्रन्थ में छन्दों के विषय में सात पूर्वाचार्यों-सैतव, काश्यप, भरत, पिङ्गल, अहीन्द्र, जयदेव, स्वयम्भू के मत दिये गये हैं।[४] तथा **सातवाहन, श्रीहर्ष, धनमाल** आदि कुछ कवियों के नाम से छन्दों में उदाहरण भी मिलते हैं।[५] हेमचन्द्र ने

---

१. गद्यकाव्ये न छन्दसामुपयोगः (छन्दोऽनुशासन-१/१, वृत्तिभाग)

२. काव्योपयोगाभावाच्च न वैदिकानि छन्दांसीह लक्षयिष्यन्ते (हैमच्छन्दोनु० १/१ वृत्तिभाग)

३. काव्योपयोगिनां वक्ष्ये छन्दसामनुशासनम् (हैम० वृत्तिभाग-१/१)

४. हैमछन्दोऽनुशासन—२/२३१/१, २/२३१/१, २/१२/१, (३३ बार) २/१२ से २/११० वें सूत्र तक वृत्तिभाग में, २/२४३/१, २४४/१, ३/४४/१, ३/३२/१, ५२/१, २/२९७/१, ३/५२/१, ३/३२३/१।

५. हैमछन्दोऽनुशासन—५/३२/१, ४/८५/१, ३/७३/२ क्रमशः।

पूर्वाचार्यों में सर्वाधिक उल्लेख **भरत** का किया है, जिसमें उनके नाम के साथ वृत्ति में अनेक छन्दों के नामान्तर दिये हैं, जो वर्तमान में प्राप्त भरत के नाट्य-शास्त्र में प्राप्त नहीं होते।

छन्दोऽनुशासन के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों के अन्तर्गत जिन ६२५ संस्कृतवृत्तों के लक्षण दिये गये हैं, उनमें से अनेक वृत्त भरत-पिङ्गलादि पूर्वाचार्यों की रचनाओं में लक्षित हो चुके हैं। उनमें से आचार्य हेमचन्द्र का संस्कृत-लौकिक छन्दःशास्त्र में निम्नाङ्कित ९१ छन्दों का अवदान है।

हेमचन्द्र द्वारा नवीनलक्षित छन्द

छन्दोनाम	लक्षण	छन्दोऽनुशासन-ग्रन्थसन्दर्भ
सुप्रतिष्ठा (पञ्चाक्षरपाद)		
१— नन्दा	(त ल ग)	-२/२८।
२— सावित्री	(म ल ग)	-२/३०।
गायत्री (षडक्षरपाद)		
३— तटी	(म र)	-२/३४।
४— गुरुमध्या	(स भ)	-२/३७।
५— कच्छपी	(र न)	-२/४४।
उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)		
६— गान्धर्वी	(म म ग)	-२/५२।
७— हंसमाला	(र र ग)	-२/५८।
अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)		
८— विभा	(त र ग ग)	-२/७२।
९— गुणलयनी	(न स ग ग)	-२/८४।
१०— मही	(स स ल ग)	-२/८५।
बृहती (नवाक्षरपाद)		
११— वक्त्र	(भ म ग)	-२/८८।
१२— तार	(स स म)	-२/९८।
१३— सौम्या	(स स स)	-२/९९।
१४— सिंहाक्रान्ता	(म भ स)	-२/१०५।
पङ्क्ति (दशाक्षरपाद)		
१५— पणव	(म न स ग)	-२/११० (वृत्ति १)
१६— निलया	(न न न ग)	-२/११५।

छन्दोनाम	लक्षण	छन्दोऽनुशासन-ग्रन्थसन्दर्भ
१७— उषिता	(ज ज ज ग)	-२/११६।
१८— बन्धूक	(भ न म ग)	-२/११८।
१९— कलिका	(र म स ग)	-२/१२१।
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
२०— प्रत्यवबोध	(भ त न ग ग)	-२/१२३।
२१— रोचक	(भ भ र ग ग)	-२/१२७।
२२— विदुषी	(स स स ल ग)	-२/१३१।
२३— वातोर्मि	(म भ भ ग ग)	-२/१३७।
२४— सारणी	(स ज य ल ग)	-२/१५३।
जगती (द्वादशाक्षरपाद)		
२५— कल्याण	(म म म म)	-२/१७३।
२६— कमुदिनी	(र य न य)	-२/१८५।
२७— मेघावली	(न र र र)	-२/१८८।
२८— ह्री	(न न न स)	-२/१९२।
२९— कोल	(ज स स य)	-२/१९३।
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
३०— क्षमा	(न त त र ग)	-२/२००।
३१— श्रेयोमाला	(म म ज ज ग)	-२/२०१।
३२— क्ष्मा	(न न म र ग)	-२/२०३।
३३— चन्द्रिका	(न न र य ग)	-२/२०५।
३४— मञ्जुभाषिणी	(ज त स ज ग)	-२/२०६।
३५— लय	(न स ज ज ग)	-२/२०८।
३६— विद्युन्मालिका	(न स त त ग)	-२/२०९।
३७— अभ्रक	(त भ ज ज ग)	-२/२१५।
३८— कोड्डम्भ	(म त स र ग)	-२/२१६।
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
३९— सिंह	(न भ र स ल ग)	-२/२२८।
४०— सुकेशर	(न र न र ल ग)	-२/२३३।
४१— इन्दुवदना	(भ ज स न ल ग)	-२/२३८।
४२— शरभललित	(न भ न त ग ग)	-२/२३९।

छन्दोनाम	लक्षण	छन्दोऽनुशासन-ग्रन्थसन्दर्भ
अतिशक्वरी (पञ्चदशाक्षरपाद)		
४३— चन्द्रलेखा	(र र म य य)	-२/२५१।
४४— गौ	(न न भ भ र)	-२/२५७।
४५— भोगिनी	(न न र य य)	-२/२५८।
४६— शिशु	(त ज स स य)	-२/२५९।
४७— केतन	(भ य स स य)	-२/२६०।
४८— मृदङ्ग	(त भ ज ज र)	-२/२६१।
अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
४९— कामुकी	(म म म म म ग)	-२/२६६।
५०— कामुकी	(स स स स स ग)	-२/२६७।
५१— चलधृति	(न न न न न ग)	-२/२६८।
५२— सुरतललिता	(म न स त र ग)	-२/२८०।
अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)		
५३— वाणिनी	(न ज भ ज ज ग ग)	-२/२९९।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
५४— चित्रलेखा	(म त न य य य)	-२/३०३।
५५— भङ्गि	(भ भ भ भ न य)	-२/३१९।
५६— बुद्बुद	(स ज स ज त र)	-२/३२०।
अतिधृति (ऊनविंशत्यक्षरपाद)		
५७— मुग्धक	(य म न न र र ग)	-२/३२९।
५८— तरुणीवदनेन्दु	(स स स स स स ग)	-२/३३३।
कृति (विंशत्यक्षरपाद)		
५९— सद्रत्नमाला	(म न स न म य ल ग)	-२/३४०।
प्रकृति (एकविंशत्यक्षरपाद)		
६०— मत्तक्रीडा	(म म त न न न स)	-२/३४८।
विकृति (त्रयोविंशत्यक्षरपाद)		
६१— चपलगति	(भ म स भ न न न ल ग)	-२/३६३।
संकृति (चतुर्विंशत्यक्षरपाद)		
६२— सुभद्र	(भ भ भ भ भ भ भ भ)	-२/३६८।
अभिकृति (पञ्चविंशत्यक्षरपाद)		
६३— चपल	(न ज ज य न न न न ग)	-२/३७५।

छन्दोनाम	लक्षण	छन्दोऽनुशासन-ग्रन्थसन्दर्भ
सीमित दण्डक		
६४— मालाचित्र	(म त त त न न य य य, २७ वर्ण)	-२/३८१।
६५— पन्नग[1]	(न ग+८ रगण, २८ वर्ण)	-२/३९०।
६६— प्रमोदमहोदय	(म य य त न न न र स ल ग, २९वर्ण)	-२/३८२।
६७— दम्भोलि	(न+९ तगण+ग = ३१ वर्ण)	-२/३९०।
६८— हैलावली	(न+१० तगण+ग = ३४ वर्ण)	-२/३९०।
६९— मालती	(न+११ तगण+ग = ३७ वर्ण)	-२/३९०।
७०— केलि	(न+१२ तगण+ग = ४० वर्ण)	-२/३९०।
७१— ककेल्लि	(न+१३ तगण+ग = ४३ वर्ण)	-२/३९०।
७२— लीलाविलास	(न+१४ तगण+ग = ४६ वर्ण)	-२/३९०।
असीमित दण्डक		
७३— उत्कलिका	(न न+कोई भी पंचमात्रगण संख्या)	-२/४०।
अर्द्धसमवृत्त		
७४— (१२, १५) मकरावली	(न भ भ र, न भ भ भ र)	-३/१२।
७५— (१०,१२) करिणी	(म स स ग, स भ भ स)	-३/१३।
७६— (१७,१८) मानिनी	(म र न ज न ल ग, न ज भ ज न स)	-३/१९।
७७— (३,८) कामिनी	(र, ज र ल ग)	-३/२०।
७८— (३,१२) शिखी	(र, ज र ज र)	-३/२१।
७९— (३,१६) नितम्बिनी	(र, जर जर जग)	-३/२२।
८०— (३,२०) वारुणी	(र, जर, जर जर लग)	-३/२३।
८१— (३,२४) वतंसिनी	(र, जर जर जर जर)	-३/२४।
८२— (८,३) वानरी	(ज र ल ग, र)	-३/२५(१)
८३— (१२,३) शिखण्डी	(ज र ज र, र)	-३/२५(२)
८४— (१६, ३) सारसी	(ज र ज र ज ग, र)	-३/२५(३)
८५— (२०,३) अपरा	(ज र ज र ज र ल ग, र)	-३/२५(४)
८६— (२४,३) हंसी	(ज र ज र जर जर, र)	-३/२५(५)
८७— (५,११) इला	(स ल ग, स स स ल ग)	-३/२६।
८८— (५,२४) मृगाङ्कमुखी	(स ल ग, ८ स)	-३/२७।

१. हेमचन्द्र ने पन्नग का लक्षण न ग+८ रगण दिया है, जो क्रमशः न+८ तगण ग होता है।

छन्दोनाम	लक्षण	छन्दोऽनुशासन ग्रन्थसन्दर्भ
मात्रावृत्त (द्विपदी)		
८९— अतिरुचिरा	(२७ ल+ग, २७ ल+ग)	-३/३१।
९०— अतिरुचिरा	(२८ ल+ग, २८ ल+ग)	-३/३२।
मात्रावृत्त (चतुष्पदी)		
९१— पद्धति (प्रत्येक पाद में ४ चतुर्मात्रगण कोई भी, किन्तु अन्तिम गण में बाण अथवा सर्वलघुगण)		-३/७३।

छन्दोरत्नावली (अमरचन्द्रसूरि)

तेरहवीं शताब्दी में गुजरात के महामात्य वाघेला-वंश के **वस्तुपाल** के विद्यामण्डल के अग्रगण्यों में से एक कवि अमरचन्द्र है। अमरचन्द्रसूरि ने **छन्दोरत्नावली** नामक एक ग्रन्थ छन्दशास्त्र पर लिखा। अमरचन्द्रसूरि का काल हेमचन्द्र से लगभग १५० साल बाद का है।

छन्दोरत्नावली में नौ (९) अध्याय हैं तथा इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्राय: ८१० श्लोक है। पहला अध्याय संज्ञा-अध्याय कहा गया है। इसमें ग्रन्थ में प्रयुक्त संज्ञाओं अर्थात् साङ्केतिक शब्दों—वर्णगण, मात्रागण, वृत्त, समवृत्त, विषमवृत्त, अर्द्धसमवृत्त, पाद, यति आदि के स्वरूप समझाये गये हैं। दूसरे का शीर्षक है समवृत्ताध्याय। इसमें अनेक समवृत्तों का निर्वचन है तथा अनेक दण्डकों और उनमें गणों की योजना का विवेचन भी है। तीसरा अध्याय अर्द्धसमवृत्ताध्याय तथा चतुर्थ विषमवृत्ताध्याय है। दोनों में क्रमश: सम और विषम छन्दों का विवेचन है। पाँचवाँ मात्रावृत्ताध्याय है और इसमें आर्या, गीति आदि अनेक प्रकार के मात्रावृत्तों के गुण अर्थात् लक्षण दिये गये हैं। षष्ठ प्रस्ताराध्याय है। इस अध्याय में छन्द:शास्त्र के प्रत्ययविधान द्वारा उन छन्दों का विचार किया गया है जो गणितीय गणनाओं से अनेक प्रकार के बनते हैं। सप्तम प्राकृतछन्दोऽध्याय में गाथा, आर्या, खञ्जक, द्विपदी, खण्डगीति आदि अनेक छन्दों का विवेचन है जो प्राकृतभाषा के विशेषरूप से मात्रावृत्त हैं। आठवाँ और नवम अध्याय क्रमश: उत्साहादि-प्रतिपादन तथा षट्पदी, द्विपदी, चतुष्पदी-व्याख्यावर्णन का है।

इस रचना का समय तेरहवीं शताब्दी माना जाता है। **अमरचन्द्रसूरि** श्वेताम्बर जैनों के वायडगच्छ के जिनदत्त सूरि के शिष्य थे। गुजरात के अणहिलवाड से पन्द्रह मील उत्तर-पश्चिम-स्थित वायड के आधार पर इस गच्छ का नाम पड़ा था। अमरचन्द्र जैनसाधु होने के पूर्व वायड ब्राह्मण थे। क्योंकि उन्होंने अपनी काव्यकृति बालभारत के प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में व्यास की तथा कुलदेव वायु (वायड) की

स्तुति की है।[१] १४वीं सदी के हमीर-महाकाव्य में अमरचन्द्र की ब्रह्मज्ञ वेदज्ञ के रूप में प्रशंसा की गयी है।[२] घण्टामाघ, दीपशिखा कालिदास आदि की भाँति महाकवि अमरचन्द्र की कविप्रख्याति **वेणीकृपाण** नाम से भी थी। इनकी अन्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

बालभारत महाकाव्य (महाभारत का सार काव्यमाला सं० ४५ में प्रकाशित),

काव्यकल्पलता (अलङ्कारशास्त्रीय ग्रन्थ),

कविशिक्षा (काव्यकल्पलता-टीका स्वरचित),

काव्यकल्पलतापरिमल (काव्यकल्पलता-टीका स्वरचित),

छन्दोरत्नावली (छन्द:शास्त्रीय ग्रन्थ),

स्यादिशब्दसमुच्चय (व्याकरणशास्त्रीय ग्रन्थ),

पद्मानन्दमहाकाव्य (जैन काव्य अपरनाम जिनेन्द्रचरित) आदि।

इनके अतिरिक्त **काव्यलतामञ्जरी** (टीका), **अलङ्कारप्रबोध** सूक्तावली, और **कलाकलाप**—इन कृतियों के नाम अमरचन्द्र ने सूचित किये हैं। किन्तु ये प्राप्त नहीं होते।[३]

छन्दोरत्नावली में भरत, जयदेव, पिङ्गल, स्वयम्भू, धनपाल (१० शती), तथा हेमचन्द्र के मत उद्धृत किये हैं। हेमचन्द्र सूरि के छन्दोऽनुशासन एवं उसकी वृत्ति से अमरचन्द्र पूर्णत: प्रभावित हैं।[४] यह ग्रन्थ मुद्रित दृष्टिगोचर नहीं है। संस्कृत के आलङ्कारिक के रूप में अमरचन्द्र सूरि ने काव्य की व्यावहारिक शिक्षा देने का भी श्लाघनीय प्रयत्न किया है। उनका एतद्-विषयक एक ग्रन्थ कवि-शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसे ग्रन्थों में सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है काव्यकल्पलता। इस ग्रन्थ का अंशत: निर्माण अरिसिंह ने किया और पूर्ति अमरचन्द्र ने की। अमरचन्द्र ने ही इसकी वृत्ति भी लिखी हैं जिसका नाम ग्रन्थ की पुष्पिका के अनुसार **कविशिक्षावृत्ति**

---

१. किञ्चित् सञ्चलितेऽपि वस्तुनि भृशं यत्सम्भवान्मन्महे,
विश्वं यन्मयमीश्वरादिमयतास्पष्टप्रमाणेप्सितम्।
संसारप्रसर: परस्तनुमतां यस्यानुरोधेषु यत्,
संरोधेषु शिव: स गच्छतु सतां श्रीचारुतां मारुत:॥
(बा.भा. अन्तिमसर्ग प्रथमश्लोक)

२. ब्रह्मज्ञप्रवरो महाव्रतधरो वेणीकृपाणोऽमर: (ह.म.का. १४/३१)।

३. विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य—महामात्य वस्तुपाल का साहित्य-मण्डल (डा० भोगीलाल साण्डेसरा) जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी से १९५९ में प्रकाशित (पृ० ९२, २४५)।

४. श्रीहेमचन्द्रसूरिप्रणीतछन्दश्चूडामणेरिह।
किञ्चित्किञ्चिच्चान्यस्माल्लक्ष्यं छन्दोऽभिधान्वितम्॥ (छन्दोर ७/२)

हैं। वृत्ति से परिचय मिलता है कि इस मूल ग्रन्थ की रचना में दोनों ग्रन्थकारों का योगदान है[१]। लावण्य सिंह या लवण सिंह के पुत्र अरिसिंह ने ढोलका (गुजरात) के राणा धीरधवल के प्रसिद्ध जैन मन्त्री वस्तुपाल की स्तुति में '**सुकृतसंकीर्तन**' नामक काव्य लिखा है। अमरचन्द्र इससे अधिक बड़े लेखक प्रतीत होते हैं।

अमरचन्द्र और **अरिसिंह** दोनों एक ही गुरु जिनदत्त सूरि के सहपाठी शिष्य प्रतीत होते हैं। धीरधवल तथा वस्तुपाल के समकालीन होने से इन दोनों ग्रन्थकारों का समय १३ शतक का मध्यभाग है। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में चार प्रतान (खण्ड) हैं और प्रत्येक प्रतान में अनेक स्तबक (अध्याय) हैं। इन प्रतानों के विषय क्रमश: हैं—(१) छन्द:सिद्धि, (२) शब्दसिद्धि, (३) श्लेषसिद्धि और (४) अर्थसिद्धि। कविता सीखने के लिए यह नितान्त उपादेय ग्रन्थ है[२]।

सुकविहृदयानन्दिनी टीका (सुल्हण)

सुकविहृदयानन्दिनी केदारभट्ट के छन्दोग्रन्थ वृत्तरत्नाकर की टीका है। इसके रचयिता **सुल्हण** हैं। इस टीका को सुल्हण ने वि०सं० ११८९ (ई० वर्ष १२४६) में लिखा था। इनके पिता भास्कर आत्रेय थे तथा ये श्रीकृष्णवेलादित्य के पौत्र थे।[३] इन्होंने वृत्तरत्नाकर के तृतीय अध्याय की टीका में कतिपय छन्दों को नवीनरूप से लक्षित किया है। इनकी टीका की पाण्डुलिपियाँ पाण्डुलिपि-पुस्तकालय, भण्डारकरशोध-संस्थान, पुण्यनगर में[४] एवं रायल एशियाटिक-सोसायटी-पुस्तकालय, मुम्बई में सुरक्षित हैं। टीका में जिन छन्दों के लक्षण किये गये हैं, उनमें सुल्हण का छन्दश्शास्त्र में आठ छन्दों का अवदान है।

सुल्हण के नवीन-लक्षित छन्द

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	सुकविहृदयानन्दिनी-सन्दर्भ
१. सान्द्रपदम्	भतनगला:	त्रिष्टुप्	११	३/४३/९
२. उपस्थितम्	जसतसगा:	अतिजगती	१३	३/७०/२

१. किञ्चिच्च तदरचितमात्मकृतञ्च किञ्चित्,
व्याख्यास्यते त्वरितकाव्यकृतेऽत्र सूत्रम्॥

(काव्यकल्पलतावृत्ति, पृ० १)

२. ग्रन्थकार की ही व्याख्या के साथ काव्यमाला में (सं० ४३) प्रकाशित बम्बई, १८९४ ई०।

३. जयदामन्, क्रिटिकल एपराट्स (Critical Aprats), पृ० ५२, विल्सन कॉलेज, मुम्बई, १९४९।

४. पाण्डुलिपि संख्या—८४ (१८९५-१९०२ ई०), पाण्डुलिपि संख्या—८६९ (१८८६-९२), पाण्डुलिपि संख्या—१२१।

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	सुकविहृदयानन्दिनी सन्दर्भ
३. लता	नौ रभौ रौ	धृति	१८	३/९४/१
४. सिंहविस्फूर्जितम्	मौ भमौ यौ	धृति	१८	३/९४/१३
५. रचना	नजभयसजगाः	अतिधृति	१९	३/९६/२
६. वल्लकी	रभजततततगाः	अतिधृति	१९	३/९६/१०
७. लालित्यम्	मसरसतजनगाः	आकृति	२२	३/१००/२
८. महास्त्रग्धरा	सजतनसररगाः	आकृति	२२	३/१००/४

कविदर्पणवृत्ति

प्राकृतभाषा में रचित कविदर्पण की वृत्ति संस्कृत में उपलब्ध है। प्रो० एच०डी० वेलणकर द्वारा राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला (सं० ६२) के अन्तर्गत १९६२ में इसका सम्पादन एवं प्रकाशन किया गया है। मूल ग्रन्थ का रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी माना जाता है। इस वृत्ति का कर्ता भी अज्ञात है। परन्तु मूल **कविदर्पण** की अपेक्षा यह संस्कृतवृत्ति बहुत विस्तृत है। अतः संस्कृत छन्दःशास्त्र की दृष्टि से इसका महत्त्व अपरिहार्य है। कविदर्पण का विस्तृत परिचय प्राकृतग्रन्थों के प्रसङ्ग में द्रष्टव्य है।

अजितशान्तिस्तवटीका (जिनप्रभ)

नन्दिषेण द्वारा रचित अजितशान्तिस्तव के टीकाकार जिनप्रभ हैं। इन्होंने उपर्युक्त स्तव की टीका वि०सं० १३६५ (ई० सन् १३०८) में लिखी।[१] टीका में कुछ संस्कृत के छन्द नवीन रूप से लक्षित किये गये हैं। ये लक्षण प्राकृतभाषा में हैं, जो कविदर्पण के तृतीय एपैण्डिक्स में **जिनप्रभीय** नाम से प्रकाशित हैं। टीका में लक्षित संस्कृत-छन्दों में जिनप्रभ का निम्नाङ्कित एक छन्द का अवदान छन्दशास्त्र में है।

जिनप्रभ का नवीन-लक्षित छन्द

छन्दोनाम	लक्षण	वृत्ति	वर्ण	अजितशान्तिस्तवटीका
१. नन्दितकम्	सौ गः	उष्णिक्	७	२९वाँ पद्य

कविकल्पलता (देवेश्वर)

कविशिक्षा पर दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ कविकल्पलता है। इसके रचयिता का नाम देवेश्वर है। इनके पिता का नाम **वाग्भट** था, जो मालवा के राजा के महामात्य थे।

---

१. कविदर्पण प्रस्तावना (ह०दा० वेलणकर), पृ० १।

देवेश्वर ने अपने ग्रन्थ के लिए अमरचन्द्र की **काव्यकल्पलता** को ही आदर्श माना है। विषय के निरूपण में ही वे उनके ऋणी नहीं हैं, अपितु अनेक नियमों तथा लक्षणों का अक्षरशः ग्रहण देवेश्वर ने अपने ग्रन्थ में किया है। ये अमरचन्द्र के द्वारा दिये गये उदाहरणों को भी देने में सङ्कोच नहीं करते। यह केवल आकस्मिक घटना नहीं है प्रत्युत व्यवस्थित रूप से ऐसा किया गया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्होंने काव्यकल्पलता के अनन्तर ही अपने इस नवीन ग्रन्थ की रचना की।

देवेश्वर का एक पद्य **शार्ङ्गधरपद्धति** में उद्धृत किया गया है (सं० ५४५)। इस सूक्तिग्रन्थ की रचना १३६३ ई० में की गई थी। इसलिए १४वीं शताब्दी का मध्यभाग देवेश्वर के समय की अन्तिम अवधि है। इसप्रकार इनका समय अमरचन्द्र तथा शार्ङ्गधर के मध्य में अर्थात् १४वीं शताब्दी के आरम्भ में मानना उचित है। देवेश्वर की **कविकल्पलता** की अनेक टीकाएँ भी हुई हैं।

कविकल्पलता के यतिविषयक नियमों का उल्लेख तथा समादर प्रायः समस्त परवर्ती छन्दोलक्षणकारों ने किया है। वृत्तरत्नाकर के टीकाकार **नारायणभट्ट** ने कविकल्पलता के यतिविषयक नियमों को यथावत् उद्धृत करते हुए (वृ०र० १/१२) उनकी सोदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की है। **वृत्तमौक्तिक** का यतिनिरूपण-प्रकरण देवेश्वर की कविकल्पलता पर आधारित है, यह स्वयं ग्रन्थकार ने (पृ० २०६) निर्दिष्ट किया है। अतः छन्दोग्रन्थों की परम्परा में देवेश्वर की कृति का विशेष महत्त्व है।

सङ्गीतराज-पाठ्यरत्नकोश (राणाकुम्भा)

पन्द्रहवीं शताब्दी के सिसोदिया-वंशभूषण कालसेनाख्य **राणाकुम्भाकृत** एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **सङ्गीतराज** है। इसके प्रथम परिच्छेद का नाम पाठ्यरत्नकोश है। इस ग्रन्थ में भारतीय संगीतशास्त्र के सिद्धान्तों का विशद विवेचन है। इसमें व्याकरण काव्य, छन्द आदि शास्त्रों का भी साररूप से वर्णन है। पाठ्यरत्नकोश के इस ग्रन्थांश में प्रसङ्गतः संस्कृत-महाकवियों की परम्परा में प्रयुक्त वार्णिक एवं मात्रिक छन्दों का विशिष्ट विवेचन है। यह छन्दश्शास्त्र का साक्षात् ग्रन्थ नहीं है। अपितु इसमें संगीतशास्त्र के सहयोग के लिये छन्दों का निरूपण किया गया है।

सङ्गीतराज का काल

इतिहास के अनुशीलन एवं प्रमाणों से यह स्पष्ट है वि महाराणा कुम्भा ने १४३३ ई० में मेवाड (चित्तौडगढ़) के राज्यसिंहासन पर आरूढ होकर प्रायः ३५ वर्षों तक राज्य किया। उनके राज्यकाल में संग्रथित सङ्गीतराज की पूर्णतातिथि ग्रन्थान्त में उल्लिखित श्लोक के आधार पर वि०सं० १५०९ अर्थात् १४५६ ई०

ज्ञात होती है।[१] विभिन्न पाण्डुलिपियों के आधार पर सङ्गीतराज का समीक्षात्मक उपादेय संस्करण वाराणसी से प्रकाशित है।[२] इसके प्रथम परिच्छेद **पाठ्यरत्नकोश** में सङ्गीतोपयोगी पाठ्यरीति का निर्देश है तथा द्वितीय गीतरत्नकोश में गीतियों का विधान है। पाठ्यरत्नकोश के चार उल्लासों में से तृतीय छन्द उल्लास में छन्दों का निरूपण किया गया है। चतुर्थ अलङ्कार उल्लास में भी रसानुरूप छन्दों का विधान करने का निर्देश दिया गया है।[३] इसके अतिरिक्त सङ्गीतराज की यह विशेषता है कि इसके गीतरत्नकोश के अन्तर्गत गीति की तानों का विस्तार छन्दश्शास्त्र के प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट आदि प्रत्ययों के अनुसार करने की विधि बतलायी गयी है। इस अंश में खण्डमेरु में नष्टोद्दिष्टादि विधियाँ भी प्रतिपादित हैं। इस दृष्टि से छन्दश्शास्त्र की सङ्गीत में उपादेयता सर्वप्रथम इस ग्रन्थ में पूर्णतः वर्णित है।[४]

सङ्गीतराज की छन्दःसामग्री

पाठ्यरत्नकोश में कुल चार उल्लास हैं; जिनमें तृतीय उल्लास का नाम 'छन्द-उल्लास' है। छन्द उल्लास भी चार परीक्षणों में विभक्त है। इन परीक्षणों में छन्दोविषयक विविध विवेचन सम्प्राप्त होते हैं। प्रथम परीक्षण की संज्ञा 'अनुष्टुप्' परीक्षण है। इसमें प्रबन्धों के मूलभूत छन्दों का निरूपण, वर्णगणलक्षण, इनके देवता एवं फलों का प्रतिपादन है। तदनन्तर मात्रिकगणलक्षण, छब्बीस छन्दोजातियाँ, मालावृत्त; लघुगुरुनियम; यतिलक्षण; पादलक्षण आदि प्रतिपादित हैं। छन्दों में सर्वप्रथम उक्ता, अत्युक्ता, मध्या एवं प्रतिष्ठा जातियों में श्री, स्त्री, नारी, कन्या छन्द विवेचित हैं। इस परीक्षण में ही अत्युक्ता, मध्या एवं प्रतिष्ठा के भेद; समासम भेद से दो प्रकार के अनुष्टुप् एवं चित्रपदा, विद्युन्माला, प्रमाणिका, नाराच, वक्त्रानुष्टुप्, पथ्यावक्त्र तथा विपुलादि के लक्षणों का निरूपण है।

द्वितीय 'वृत्त' परीक्षण में वर्णमात्रा-भेद से वृत्त के द्विविधत्व-प्रतिपादन के साथ प्रतिभेद सम, अर्धसम एवं विषम भेदों का निरूपण किया गया है। नवाक्षर पाद के वृत्तों से प्रारम्भकर छब्बीस अक्षरवाले वृत्तों के लक्षण भी इस परीक्षण के विषय हैं। भद्रिका, मत्ता, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, रथोद्धता, स्वागता, शालिनी, दोधक, इन्द्रवंशा, वंशस्थ, पञ्चचामर, द्रुतविलम्बित, तोटक, भुजङ्गप्रयात, स्रग्विणी,

---

१. द्र० नृपतिकुम्भकर्णप्रणीत सङ्गीतराज की भूमिका, पृ० २९।

२. हिन्दूविश्वविद्यालय नेपालराज्य संस्कृत-ग्रन्थमाला के ग्रन्थाङ्क ५ के अन्तर्गत उपयोगी टिप्पणियों तथा विशिष्ट भूमिका के सहित डा० प्रेमलता शर्मा द्वारा १९६३ ई० में काशी से प्रकाशित।

३. रसेषु शेषेषु यथारसं तु छन्दः प्रयोज्यं विदुषा विलोक्य।
तस्यानुरूपा घटना पदानामलङ्क्रिया चाक्षरसंहतिश्च ॥ (१/४/४/२४)

४. सङ्गीतराज २/१/६ तत्त्व-प्रकरण।

प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, वृषभुजगविलसित, शिखरिणी, हरिणीपद, चित्रलेखा, शार्दूलविक्रीडित, सुवदना, स्रग्धरा, मद्रक, चित्रक, ललितलता, हरिणशिशुनयना, भुजङ्गविजृम्भित एवं सततगति छन्दों के निरूपण के अनन्तर— चण्डवृद्धि, अर्ण, अर्णव, व्याल, जीमूत, लीलाकर, उद्दाम, शङ्ख, मालावृत्त, पन्नग, दम्भोलि, हेलावलि, मालतीकेलि, कङ्केलि, लीलाविलास, खण्डकाल, सिंहविक्रान्त, मेघमाला, मत्तमातङ्ग, कुसुमास्तरण, सिंहविक्रीड, अनङ्गशेखर, अशोकपुष्पमञ्जरी, भुजङ्गविलास, उत्कलिकादि दण्डकों का निरूपण है।

तृतीय परीक्षण का नाम 'आर्यावलोकन' है। यह परीक्षण अन्य परीक्षणों की अपेक्षा बड़ा है। इस परीक्षण में आर्यालक्षण के अनन्तर युक्ता, पथ्या, मुखचपला, जघनविपुला एवं महाविपुला आदि आर्याभेदों का निरूपण है। इसके अनन्तर आर्याभेदप्रस्तारसंख्या; गाथालक्षण; गीतिनिरूपण, आर्यागीति, उपगीति, उद्गीति इत्यादि गीति के भेदप्रदर्शनोपरान्त गीतियों में मात्रासंख्या एवं लघुगुरुनियमादि छन्दोविवेचन प्राप्त है। इस परीक्षण में वसन्तोत्सवबन्ध (खञ्जक-भेद); द्विभङ्गी, त्रिभङ्गी (शीर्षकभेद); कर्पूरद्विपदी, भ्रमरपद, कुङ्कुम, गरुडपद, हरिणीपद, कमलाकर, भ्रमररुत, रत्नकण्ठिका, कुङ्कुमतिलकावली, कदलीपत्र इत्यादि द्विपदीभेद, इनके नाम, उदाहरण एवं कतिपय के लक्षण भी हैं। अन्य जिन छन्दों का विवेचन है, वे इसप्रकार हैं—

खञ्जक, उपखञ्जक, खञ्जिका, अवलम्बक, त्रिभङ्गी इत्यादि के लक्षण; वास्तुक, रास, मात्रापञ्चपदी, दोहक, वस्तु, रड्डा, वस्तुवदनक, उपवदनक, वदनक, अडिला, श्रीधवल, यशोधवल, कीर्तिधवल, गुणधवल, मङ्गल, धवलमङ्गल, उत्साह, हेला इत्यादि प्रायः अपभ्रंश में प्रयुक्त छन्दों के नाम एवं लक्षण तथा कम्बडक (कडवक), ध्रुवा, द्विपदी, चतुष्पदी, षट्पदी इत्यादि ध्रुवाभेद, उनके लक्षण चतुष्पदी-भेद—अर्धसमा, सर्वसमा, व्यामिश्रा (अन्तरसमा) एवं सङ्कीर्णा, इनके अन्तरसमान्तर्गत के पचपन भेद एवं पुनः इनके व्यत्यय के पचपन भेदों का निरूपण, शुद्धद्विपदी, मात्राद्विपदी, गणद्विपदी, मानवी, चन्द्रिका, उपगन्धर्वक सङ्गीत इत्यादि द्विपदीभेद तथा वार्णिकवृत्तभेदों—धृति, तारा एवं कलहंस; मात्रिक छन्द—पद्धडी एवं रासक—इनके नाम एवं लक्षणों का निरूपण किया गया है।

तृतीय परीक्षण के अन्त में रासलक्षण; शिखाद्विपथक के सारसादि नवभेद एवं त्रिपदी, चतुष्पदी, षट्पदी तथा वस्तु के लक्षण निरूपित है।

अन्तिम चतुर्थ परीक्षण 'प्रस्तार-परिपाटी' नामक है। यह अन्य सभी परीक्षणों की अपेक्षा अत्यन्त छोटा है। इसमें प्रस्तारविधि एवं नष्टोदिष्टविधि का महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन है।

वाणीभूषण (दामोदर मिश्र)

पंडित दामोदर मिश्र का उल्लेख **लक्ष्मीनाथ** द्वारा प्राकृत-पैंगल की व्याख्या **पिङ्गलार्थप्रदीप** (१५९० ई०) में हुआ है। इस उल्लेख का काल लगभग १६०० ई० कहा जा सकता है। छन्दश्शास्त्र से सम्बद्ध इनकी रचना का नाम वाणीभूषण है[१] अतः, दामोदर मिश्र का समय १६वीं शताब्दी या इसके पूर्व माना जा सकता है। परम्परा में इन्हें कवि **भोजराज** (११वीं शती) का समकालीन माना जाता है। किन्तु जानकीनाथ सिंह ने इनका समय १४वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अनुमित किया है। परन्तु यह समय इनके आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह से समन्वित नहीं होता। पं० भोलाशङ्कर व्यास ने प्राकृतपैङ्गल के संग्राहक हरिहर को इनका पितामह और रविकर को पिता या पितृव्य स्वीकार किया है।[२] **रविकर** का उल्लेख वाणीभूषण में भी प्राप्त होता है।[३]

दामोदर मिश्र के संस्कृत-छन्दःशास्त्र पर विशिष्ट ग्रन्थ **'वाणीभूषण'** के दो परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद संज्ञाप्रकरण है। इसमें प्रथमतः ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली वर्णित है। तदनन्तर इसमें मात्रावृत्तों का भी प्रतिपादन है। दूसरे परिच्छेद में एकाक्षर आदि वार्णिक छन्दों का निरूपण है। इस परिच्छेद में एकाक्षर से आरंभ कर प्रायः २५ अक्षर तक के छन्दों का सोदाहरण विवेचन है।

इस ग्रन्थ की लक्षणनिर्देश-रीति पद्यशैली में है, जिसमें छन्दोलक्षण भी उसी छन्द में दिये गये हैं, जिनके लक्षण हैं। उदाहरण पृथक् दिये गये हैं। इसप्रकार प्रत्येक लक्षितोदाहृत छन्द का प्रयोग दो बार हुआ है। मात्रिक छन्दों की लक्षणसिद्धि मात्रासंख्या-निर्देशादि द्वारा तथा वर्णवृत्तों की लक्षणसिद्धि वार्णिक गणों के आधार पर की गई है। इस ग्रन्थ में सभी छन्दों के मात्राओं और वर्णों के परिगणन-अनुरोध से लक्षण बनाये गये हैं। अतः पृथक् रूप से उदाहरण भी दिये गये हैं।

प्राकृत छन्दश्शास्त्र से प्रभावित ग्रन्थों में दामोदर मिश्र का वाणीभूषण अन्यतम है। दामोदर मिश्र दीर्घघोष-कुलोत्पन्न मैथिल ब्राह्मण थे।[४] ये मिथिला के सुप्रसिद्ध राजा **कीर्तिसिंह** (१३९० ई० से १४०० ई०) के दरबार से सम्बद्ध थे। यही राजा कीर्तिसिंह विद्यापति के अवहट्ट भाषा में निबद्ध **'कीर्तिलता'** के नायक है। फलतः

---

१. काव्यमाला (सं० ५३) के अंतर्गत निर्णयसागर प्रेस बंबई से पं० शिवदत्त तथा काशीनाथ पांडुरंग परब द्वारा सम्पादित होकर १८९५ ई० में प्रकाशित।

२. प्राकृतपैङ्गल भाग २, पृ० १६-१८।

३. दीर्घघोषकुलदेवदीर्घिकापङ्कजं रविकरो व्यराजत (वा०भू० २/१६) द्र० वाणीभूषण की पाण्डुलिपि सं० ४२०२८ (सरस्वतीभवन ग्रन्थालय, वाराणसी)।

४. दीर्घघोषकुलोद्भूतो दामोदर इति श्रुतः।
छन्दसां लक्षणं तेन सोदाहरणमुच्यते ॥ (वा०भू० १/४)।

दामोदर मिश्र मैथिल कोकिल **विद्यापति** के समकालीन (१३२५-१४२५ ई०) सिद्ध होते हैं तथा इनका समय १५ शती में स्थित होता है। वाणीभूषण में प्राकृत-पैंगल के समान ही दो परिच्छेदों में—प्रथम में मात्रावृत्तों तथा द्वितीय में वर्णवृत्तों का सोदाहरण विवेचन है। प्राकृतपैंगल का विपुल प्रभाव इस ग्रन्थ पर है। दामोदर मिश्र का अपर नाम **दामोदर ठक्कुर** भी प्राप्त होता है। इनका स्थितिकाल १४३९ ई० से १४९६ ई० कुछ विद्वानों ने निश्चित किया है। प्राकृत से प्रभावित होने पर भी पूर्णतः यह ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में है।

दामोदर मिश्र की प्रतिपादन-शैली

वाणीभूषण के उदाहरणों में प्राकृतपैङ्गल के समान नागराज, फणिपति, फणीन्द्र आदि पिङ्गलाचार्य के विविध विशेषणों का सादृश्य है। उस समय संस्कृत के छन्दश्शास्त्री प्राकृत-छन्दोग्रन्थों के अनुशीलन में रुचि नहीं रखते थे। इस कारण दामोदर मिश्र ने उनके लिये वाणीभूषण की रचना की।[1] इस रीति से उनका ग्रन्थ प्राकृतपैङ्गल का संस्कृतानुकरण ज्ञात होता है। इसमें ३५० पद्यों में ४३ मात्रिक तथा ११३ वर्णच्छन्दों के लक्षण एवम् उदाहरण हैं।

वाणीभूषण में नन्दिताढ्य, स्वयम्भू, विरहाङ्क, हेमचन्द्र तथा प्राकृतपैङ्गलकर्ता की कृतियों में वर्णित प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दों को संस्कृतरूपित कर मात्रावृत्तप्रकरण में लक्षित किया गया है तथा उनके उदाहरण भी संस्कृतपद्यों में प्रस्तुत किये गये हैं। यह दामोदर मिश्र की विशिष्टता है। उनके संस्कृतरूपित ३२ छन्द हैं (वा०भू० १/५५-१२६)।

वाणीभूषण में संस्कृतरूपित छन्द

द्विपदी छन्द—धत्ता, धत्तानन्द (प्रा०पै०) द्विपदी (प्रा०पै०) रुचिरा (नवीन)।

चतुष्पदी छन्द— दोहा (स्व०छ०) रोला, गन्धानक, चौपैया (प्रा०पै०) प्रज्झटिका (स्व०छ०), अरिला (वृ०जा०स०), पादाकुलक (प्रा०पै०), पद्मावतिका, गगनांगन, चुलिआला, सोरठा, हाकलि, आभीर, दुर्मिला, दीपक, सिंहविलोकित, प्लवङ्गम, लीलावती, हरिगीतिका, त्रिभंगी, हीरक, जनहरण, मदहट्ठा, मरहट्ठा (प्रा०पै०)।

षट्पदी छन्द— ललित (प्रा०पै०), षट्पद (गा०ल०)।

अष्टपदी छन्द— कुण्डलिका (प्रा०पै०)।

---

१. अलसधियः प्राकृतमधि सुधियः केचिद् भवन्तीह।
कृतिरेषा मम तेषामातनुतादीषदपि तोषम्॥ (वा०भू० १/३)

नवपदी छन्द— नवपद (स्व०छ०)।

वाणीभूषण में वर्णित १५४ छन्दों में दामोदर मिश्र का लौकिक-संस्कृत-छन्दश्शास्त्र में दो छन्दों का नवीन अवदान है।

दामोदर मिश्र के नवीनलक्षित छन्द

छन्दोनाम	लक्षण	वाणीभूषण-सन्दर्भ
१— मधुभार (गायत्री षडक्षरपाद)	स ज	१/९९
२— दमनक (त्रिष्टुप् एकादशाक्षरपाद)	न न न ल ग	२/१११

छन्दोगोविन्द (पुरुषोत्तम भट्ट)

पुरुषोत्तम भट्ट ने छन्दोगोविन्द नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था, यह ज्ञात होता है। छन्दोमञ्जरी के रचयिता **गंगादास** ने इनके मत को पद्य में उद्धृत किया है। यह पद्य श्वेतमाण्डव्य आचार्य के यतिविषयक मत के समुल्लेख करने से अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है।[१] छन्दोगोविन्द के प्रणेता **पुरुषोत्तम भट्ट** गंगादास के गुरु थे। छन्दोगोविन्द ग्रन्थ से गङ्गादास द्वारा उद्धृत एकमात्र उपलब्ध पद्य है—

क्वचिच्छन्दस्यास्ते यतिरभिहिता पूर्वकृतिभिः,
पदान्ते सा शोभां व्रजति पदमध्ये त्यजति च।
पुनस्तत्रैवासौ स्वरविहितसन्धिः श्रयति तां,
यथा कृष्णः पुष्णात्वतुलमहिमा मां करुणया।।

छन्दोगोविन्द का पद्य वाणीभूषण (चतुर्दश शताब्दी) में उद्धृत होने का उल्लेख है। अतः छन्दोगोविन्द का रचनाकाल त्रयोदश शताब्दी से अर्वाचीन नहीं होना चाहिये।

छन्दोमञ्जरी (गङ्गादास)

गंगादास की छन्दोमञ्जरी अपनी कोमल दृष्टान्तावली तथा सुबोध लक्षणावली के कारण नितान्त लोकप्रिय है। उड़िया लेखक का यह ग्रन्थ लोकप्रियता में दूसरे उड़िया लेखक विश्वनाथ कविराज के साहित्यदर्पण के समान ही अपने क्षेत्र में ख्यातिलब्ध है। आचार्य **गङ्गादास** कोमल कविता के रचयिता उत्कलीय वैष्णव थे। छन्दोमञ्जरी के प्रणेता गङ्गादास के जीवनवृत्त की घटनायें अज्ञात ही हैं। इस ग्रन्थ के मङ्गलश्लोक से इतना ही प्रतीत होता है कि इनके पिता का नाम वैद्य गोपालदास तथा माता का नाम सन्तोषी देवी था।[२] ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक में इनकी अन्य

---

१. अयं च श्लोकः छन्दोगोविन्दे मम गुरोः (छन्दोम० १/१३) तथा
श्वेतमाण्डव्यमुख्यास्तु नेच्छन्ति मुनयो यतिम्।
इत्याह भट्टः स्वग्रन्थे गुरुर्मे पुरुषोत्तमः॥ १४॥

२. देवं प्रणम्य गोपालं वैद्यगोपालदासजः।
सन्तोषातनयश्छन्दो गङ्गादासस्तनोत्यदः॥ (१/१)

रचनायें इस प्रकार सूचित हैं :—

(१) **अच्युतचरित महाकाव्य** (षोडश-सर्गात्मक),

(२) **कंसारिशतक** (श्रीकृष्ण की स्तुति) तथा

(३) **दिनेशद्विशतक** (सूर्य की स्तुति)।

गङ्गादास परम वैष्णव थे एवं गोपाल के भक्त थे। यह इनके मङ्गल-पद्य से भी ज्ञात होता है। इन्होंने अपनी रचनाओं का आधार श्रीकृष्ण को बनाया है। इन्होंने अपने पिता की रचना **'पारिजातहरण'** नाटक का एक पद्य उद्धृत किया है।[1] अपने 'अच्युतचरित' से तथा **गोपालशतक** से भी उद्धरण दिये हैं।[2] यह 'गोपालशतक' इनका नया कोई ग्रन्थ है अथवा 'कंसारिशतक' का ही नामान्तर है, यह ज्ञातव्य है। गङ्गादास के देशकाल का यथार्थतः परिचय अप्राप्त थां। प्रसिद्धि है कि वे उत्कल के रहनेवाले थे। **छन्दोमञ्जरी** में उन्होंने वृत्तरत्नाकर (समय १००० ई०) का संकेत किया है।

छन्दोमञ्जरी का काल

१६८४ ई० में निर्मित **वृत्तरत्नाकरादर्श** नामक व्याख्या में छन्दोमञ्जरी का निर्देश है। इण्डिया आफिस लाइब्रेरी (लन्दन) में १६७८ ई० में लिखित, इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि विद्यमान है।[3] **उज्ज्वलनीलमणि** में रूपगोस्वामी (जन्मकाल १४९० ई०, मृत्युकाल १५६३ ई०) ने छन्दोमञ्जरी को उद्धृत किया है। अतः नीलमणि की रचना १५५० ई० के आसपास मानना अनुचित न होगा। इसमें उल्लिखित होने से छन्दोमञ्जरी १६वीं शताब्दी से प्राचीन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में **जयदेव** भी उद्धृत है। यदि ये **चन्द्रालोक** के रचयिता जयदेव से अभिन्न हों, तो यह ग्रन्थ १३०० ई० के अनन्तर निर्मित हुआ। फलतः छन्दोमञ्जरी का समय १३०० ई० तथा १५०० ई० के बीच में मानना चाहिये।

परन्तु कुछ लेखकों ने गंगादास का समय अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है।[4] परन्तु इसका आधार प्रस्तुत नहीं किया। इंडिया आफिस लाइब्रेरी में विद्यमान प्रति के लेखनकाल के आधार पर तो अठारहवीं शती का समय मानना भ्रमपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त १६१८-१९ ई० की रचना **वृत्तमौक्तिक** में चन्द्रशेखर भट्ट

---

१. मत्पितुः पारिजातहरणनाटके (छ०म० १/११)।

२. द्र० छ०म० २/४।

३. द्र० संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पृ० ३०६।

४. द्र० परमेश्वरदीन पाण्डेय कृत सुधाव्याख्या सहित छन्दोमञ्जरी भूमिका, पृ० ६ (१९८७), कृष्णदास संस्कृत सीरीज, वाराणसी तथा विषयप्रवेश, पृ० ख (छन्दोमंजरी हिन्दी व्याख्या, फैजाबाद १९७६)।

अक्षरजाति-संज्ञा का ही प्रयोग है। छन्दोमञ्जरी, सुवृत्ततिलक आदि में इसे **अक्षरवृत्ति** कहा गया है।

मात्राछन्दों की जातियों में एक, तीन, तेरह, चौदह तथा पन्द्रह पादों को कविदर्पण के अनुसार नहीं माना गया है।[१] कविदर्पण आदि के उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि **जाति** संज्ञा प्रारम्भ में वर्ण एवं मात्राछन्दों में व्यापक थी। किन्तु बाद में मात्राछन्दों में ही सङ्कुचित हो गयी।[२] यह स्थिति उसीप्रकार है जिसप्रकार अष्टाक्षरपाद के समस्त पद्यभेदों की व्यापक अनुष्टुप्-संज्ञा बाद में श्लोकछन्द को ही अनुष्टुप् मानकर रूढ़ हो गयी।[३] यह व्याप्ति-सङ्कोच की स्थिति अनेक संज्ञाओं में दृष्टिगोचर होती है। इसके प्रत्युदाहरण में अनुष्टुप् के अवान्तरभेद **पद्य** नामक छन्द की संज्ञा कालान्तर में समस्त चतुष्पाद छन्दों के लिये प्रयुक्त हो रही है।

यह भी ज्ञातव्य है कि यद्यपि पिङ्गलाचार्य ने उक्ता (उक्था) आदि प्राथमिक अक्षरजातियों का उपदेश स्फुट रूप से नहीं किया है। परन्तु इससे पिङ्गलाचार्य की अनभीष्टता नहीं माननी चाहिये। वस्तुतः उक्तादि अक्षरजातियाँ सूत्रकार द्वारा अनुमोदित हैं। भास्करराय ने तो पिंगलसूत्र के तीन सूत्रों (४/१०-१२) में उक्तादि पाँच छन्दों का स्पष्ट निर्देश माना है (सुना प्रतिष्ठा, मध्या, सातिरुक्ता)। **भास्करराय** का मत है कि ये तीन सूत्र विस्मृति के कारण हलायुधवृत्ति में नहीं है। कात्यायन द्वारा भाष्य में इन सूत्रों की पिंगलप्रोक्ति उल्लिखित है (भा० रा० ४/१२)। इसका सङ्केत पिङ्गलाचार्य ने प्रस्तार की प्रक्रिया में **द्विकौ ग्लौ** (पि० छ० ८/२०) सूत्र द्वारा भी प्रदर्शित किया है। इन सूत्रों की सङ्गति उक्तादि अक्षरजातियों के द्वारा ही सम्भव है।

वृत्तरत्नाकर के टीकाकार **नारायणभट्ट** ने भी उक्ता से उत्कृति-पर्यन्त को स्पष्टतः जाति माना है।[४] इस प्रकार नारायणभट्ट के उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि उनके द्वारा अपनी टीका में पूर्व (१/१३) में उद्धृत **'जातिर्मात्राकृता भवेत्'** मत एकदेशीय है तथा अनभिप्रेत है।

पिङ्गलसूत्र की **हलायुधवृत्ति** में गाथाच्छन्दों की भी त्रिष्टुप्, शक्वरी, कृति आदि जातियाँ निर्दिष्ट हैं।

---

१. दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान्।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः।
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतःकामी च ते दश॥ (उद्योग० ३३/१०१) नारायण भट्ट के अनुसार यह गाथा में तीन पादों का भी उदाहरण महाभारत में उपलब्ध है (वृ० र० ५/१२)।

२. द्र० जातिर्मात्राकृता भवेत् (वृ०र०ना० १/१३ टीकोद्धृत)।

३. द्र० छन्दःकौमुदी, पृ० ९।

४. इयं च जातिसंज्ञा (वृ०र०ना० १/१९-२१ टी०)।

गणनिरूपण

गण दो प्रकार के हैं—(१) वर्णगण और (२) मात्रागण। मुख्यत: तीन अक्षरों के समूह को वर्णगण कहते हैं। इन गणों का विवेचन आचार्य पिङ्गल ने छन्द:सूत्र के प्रथम अध्याय में प्रथमसूत्र से अष्टमसूत्र तक किया है। इन ८ गणों के नाम हैं—मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण। वक्र (ऽ) और ऋजु (।) रेखाओं द्वारा गणों का स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है। वक्ररेखा को गुरु और ऋजुरेखा को लघु माना गया है। वक्ररेखा की दो मात्राएँ और ऋजुरेखा की एक मात्रा होती है।

वर्णगण

वर्णगणों के स्वरूप को निम्न प्रकार से प्रकट किया जाता है—

(१) **मगण** (म ऽऽऽ)—मगण के स्वरूप में तीन वक्र रेखाएँ होती हैं, जो तीन गुरु वर्णों के समूह (धी श्री स्त्री) को प्रकट करती है और जिनकी ६ मात्राएँ गिनी जाती हैं। इस गण की देवता भूमि मानी जाती है। पद्यारम्भ में इसका प्रयोग करने से कवि को श्री की प्राप्ति होती हैं। इस गण को मित्रगण माना गया है।

(२) **यगण** (य ।ऽऽ)—यगण के स्वरूप में एक ऋजु और दो वक्र रेखाएँ होती हैं, जो एक लघु और दो गुरु वर्णों के समूह (व रा सा) को प्रकट करती है, जिनकी पाँच मात्राएँ होती हैं। इस गण का देवता जल है। पद्यारम्भ में इसका प्रयोग करने से प्रयोक्ता की वंशवृद्धि होती है। यह भृत्यगण है।

(३) **रगण** (र ऽ।ऽ)—रगण के स्वरूप में मध्य में एक ऋजु और उसके दोनों ओर एक-एक वक्राकार रेखा होती है, जो मध्य में एक लघु और उसके दोनों ओर एक-एक गुरु वर्णों के समूह (का गुहा) को प्रकट करती है। इसकी पाँच मात्रायें होती हैं। इस गण का देवता अग्नि है। पद्यारम्भ में इसका प्रयोग करने से प्रयोक्ता को मृत्यु प्राप्त होती है। यह उदासीन गण हैं।

(४) **सगण** (स ।।ऽ)—सगण के स्वरूप में प्रारम्भ में दो ऋजु और अन्त में एक वक्र रेखा होती है, जो प्रारम्भ में दो लघु और अन्त में एक गुरु वर्ण के समूह (वसुधा) को प्रकट करती है। इसकी ४ मात्रायें होती हैं। इस गण का देवता वायु है। पद्यारम्भ में इसका प्रयोग करने से प्रयोक्ता का दूरगमन होता है। इस गण को नीच (शत्रु) गण माना जाता है।

(५) **तगण** (त ऽऽ।)—तगण का स्वरूप प्रारम्भ में दो वक्र और अन्त में एक ऋजु रेखा से प्रकट होता है, जिसकी मात्रायें पाँच होती हैं। यह प्रारम्भ में दो गुरु और अन्त में एक लघु वर्ण के समूह (सा ते क्व) को प्रकट करता है। इस गण का देवता व्योम है। पद्यारम्भ में इसके प्रयोग से प्रयोक्ता को शून्यत्व प्राप्त होता है। इस गण को नीच माना जाता है।

(६) **जगण** (ज ।ऽ।)—जगण के स्वरूप में मध्य में एक वक्र और प्रारम्भ तथा अन्त में एक-एक ऋजु रेखा होती है, जिसकी ४ मात्रायें होती हैं। यह मध्य में एक दीर्घ और प्रारम्भ तथा अन्त में एक-एक लघु वर्ण के समूह (कदा स) को प्रकट करता है। इस गण का देवता सूर्य है। पद्यारम्भ में इसका प्रयोग करने से प्रयोक्ता को रोग की प्राप्ति होती हैं। यह उदासीन गण है।

(७) **भगण** (भ ऽ।।)—भगण का स्वरूप प्रारम्भ में एक वक्र और अन्त में दो ऋजु रेखाओं से प्रकट होता है। इसकी मात्रायें ४ होती हैं, जो प्रारम्भ में एक गुरु और बाद में दो लघु वर्णों के समूह (किं वद) को प्रकट करती हैं। इस गण का देवता चन्द्र है। पद्यारम्भ में इसका प्रयोग करने से प्रयोक्ता को यश प्राप्त होता है। इसे भृत्य (दास) गण माना जाता है।

(८) **नगण** (न ।।।)—नगण के स्वरूप में तीन ऋजु रेखाएँ होती हैं, जो तीन लघु वर्णों के समूह (न हस) को प्रकट करती हैं। इसकी तीन मात्रायें होती हैं। इस गण का देवता नाक (स्वर्ग) है। पद्यारम्भ में इसके प्रयोग से प्रयोक्ता को सुख प्राप्त होता है। इसे मित्रगण माना जाता है।

वर्णगणना में पिङ्गलाचार्य एवं भरतमुनि की शैली

वर्णच्छन्द के अवान्तर भेद गणच्छन्द तथा अक्षरच्छन्द हैं। इनमें यद्यपि सभी गणों के अक्षर-घटित होने के कारण गणच्छन्द को अक्षरच्छन्द भी कहा जा सकता है। किन्तु गणों के समारम्भ से रहित पृथक् रूप से अक्षरों का छन्द:प्रयोजकत्व भी पिङ्गलाचार्य ने **ग्लौ** (पिं० छ० १/१४) सूत्र द्वारा सङ्केतित किया है तथा **ग्लिति समानी** (पिं० सू० ५/६) आदि सूत्रों के द्वारा गणरहित अक्षरों का भी छन्दोविधायकत्व होता है, यह पिङ्गलाचार्य का तात्पर्य अनुमित किया जा सकता है।

आचार्य पिङ्गल ने समानी, वितान तथा वृत्त छन्दों के लक्षण भी गुरुलघुवर्ण-निर्देश-पद्धति से प्रदर्शित किये हैं।[१] प्रमाणी आदि छन्दों के लक्षण पिङ्गलमुनि द्वारा गणनिर्देश-पद्धति से भी किये जा सकते थे। परन्तु **शास्त्रप्रवर्त्तक** होने के कारण पिङ्गलाचार्य का अभिप्राय दोनों पद्धतियों की उपयोगिता उपदिष्ट करना है।

उपर्युक्त के आधार पर कतिपय विचारकों का यह अभिमत समीचीन नहीं है कि **भरतमुनि** पिङ्गल से प्राचीन हैं[२] क्योंकि उन्होंने गुरुलघुपद्धति का आश्रय लिया है। वस्तुत: गणप्रणाली से भरत अपरिचित नहीं थे। उन्होंने भी मात्राछन्दों के लिये पञ्चमात्र, षण्मात्रगण उल्लिखित किये हैं। इस रीति से भरत त्रिवर्णगणों का भी प्रयोग कर सकते थे। अत: दोनों आचार्यों के द्वारा यथार्ह गण और लघुगुरु दोनों पद्धतियों का उपयोग किये जाने के कारण इसके आधार पर पौर्वापर्य का निर्धारण करना उचित नहीं है।

---

१. ग्लिति समानी, वितानमन्यत् (पि०सू० ५/६, ८), ग्लिति वृत्तम् (पिं०सू० ७/२५)।
२. द्र० संस्कृत छन्दों का उद्‌भव तथा विकास, पृ० १०३।

अष्टादशगण

इन अष्टगणों का लौकिक काव्यों के अपार-छन्दों में प्रयोग होता है। जिस प्रकार भगवान् विष्णु से त्रिलोकी व्याप्त हैं, उसीप्रकार मगणादि गणों से समस्त वाङ्मय व्याप्त है।[१] भरत, पिङ्गलादि दु:खभञ्जन-पर्यन्त सभी छन्दश्शास्त्रीय आचार्यों ने मगणादि अष्टगणों का उल्लेख किया है, किन्तु **जनाश्रय**कृत छन्दोविचिति में १८ वर्णगणों का निरूपण मिलता है[२]; जिनमें मगणादि अष्टत्रिकों के अतिरिक्त जो १० गण दिये गये हैं, वे निम्नांकित हैं—

(क) द्विक (द्विवर्णयुक्त) (१) सगण = स UU, (२) जगण = ज ।U[३], (३) पगण = प U।, (४) रगण = र ।।,

(ख) चतुष्क (चतुर्वर्णयुक्त) (५) दगण = द ।।।।, (६) यगण = य ।।।U, (७) षगण = ष U।UU,

(ग) पञ्चक (पञ्चवर्णयुक्त) (८) टगण = ट U।U।U, (९) त्रगण = त्र U।।UU,

(घ) षट्क (षड्वर्णयुक्त) (१०) णगण = ण ।।।।।।,

मगणादि अष्टत्रिकों के नाम जानाश्रयी में इस प्रकार मिलते हैं—

म = ग, य = ड, र = श, स = ल, त = ब, ज = क, भ = त, न = म। परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों ने जनाश्रय की अठारह भेदों की गणपद्धति को नहीं स्वीकार किया तथा पिङ्गलाचार्य द्वारा उपदिष्ट आठ गणों को ही मूल मानकर अपने ग्रन्थों में उनका प्रयोग किया। वस्तुत: जनाश्रय के उपदिष्ट र, य, स, ज-गणनामों से भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी तथा अतिरिक्त दस गणों का भी समावेश पिङ्गलोक्त प्रस्तार-पद्धति से सम्भव था।

मात्रागणों का मूल

जिसप्रकार वर्णच्छन्दों के लिये पिङ्गलाचार्य ने आठ गणों का उपदेश किया है, उसीप्रकार मात्राछन्दों में प्रयोग हेतु भी पिङ्गलाचार्य ने चतुर्वर्णात्मक गण का निर्देश किया है तथा इसकी प्रस्तारविधि भी अग्रिम सूत्र में निरूपित की है।[४] इस विधि में द्विवर्णात्मक (ऽऽ) गण का निरूपण करते हुए आचार्य पिङ्गल ने यह सङ्केतसूत्र दिया है कि अन्य गणों का प्रस्तार भी इसीप्रकार किया जा सकता है। अत: जनाश्रय द्वारा षड्वर्णात्मक-पर्यन्त सभी गणों का मूल स्रोत पिङ्गलाचार्य का गणविधान ही है। साथ ही यह समझना भी भ्रमपूर्ण होगा कि पिङ्गलमुनि मात्रागणों से अनभिज्ञ थे।

---

१. म्यरस्तजभ्नगैर्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः।
समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना। (भट्टकेदारकृत वृत्तरत्नाकर १/६)।

२. जानाश्रयी छन्दोविचिति—१/१८ से ३५ तक सूत्र।

३. जनाश्रय द्वारा स्वीकृत ह्रस्व चिह्न ।, दीर्घ चिह्न U

४. लः समुद्रा गणः, गौ गन्तमध्यादिर्न्लश्च (पिं०सू० ४/१२-१३)।

मात्रागण

मात्राच्छन्दों के लिये भी परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों ने अनेक गणों का निर्देश किया है। परन्तु उनकी संज्ञा में वर्णगणों की भाँति एकरूपता नहीं है। **कविदर्पणकार** ने क, च, ट, त और प इन पाँच गणों को मात्राछन्दों में उपयोगार्ह स्वीकृत किया है।[१] ये कादि गण क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच तथा छः मात्राओं के निर्दिष्ट हैं। इनमें गुरु-लघु के मात्रा-विन्यास की रीति से कगण के दो भेद, चगण के तीन भेद, टगण के पाँच भेद, तगण के आठ भेद तथा पगण के तेरह भेद होते हैं।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में पञ्चमात्र, षण्मात्र आदि का उल्लेख मिलता है।[२] किन्तु पिङ्गल के छन्दःसूत्र में मात्रावृत्तों के निरूपणार्थ केवल चतुर्मात्रिक गण का भेद तथा स्वरूप-सहित निरूपण किया गया है।[३] जनाश्रय ने पञ्चमात्रिक गण का भी उल्लेख किया है तथा छन्दोविचिति की वृत्ति में **गणस्वामी** ने उस पञ्चमात्रिक गण का सभेद विवरण दिया है।[४] **स्वयम्भूच्छन्द** में षाण्मात्रिक गण से द्वैमात्रिक गण तक के (पांच) गणों के क्रमशः छ, प, च, त, द—ये नाम और उनका विवरण मिलता है।[५] विरहांक ने कुछ गणों के भेदों के नाम भी दिये हैं।[६] हेमचन्द्र ने उनके प्रस्तारभेद भी किये हैं,[७] प्राकृत पैङ्गल में ट, ठ, ड, ढ, ण नाम भी मिलते हैं।[८] ये भेद परवर्ती छन्दोग्रन्थ वाणीभूषण[९], वृत्तमौक्तिक[१०] तथा वाग्वल्लभ[११] में भी नामसहित स्वीकृत किये गये हैं।

---

१. ज्ञेया मात्राच्छन्दसि द्वित्रिचतुःपञ्चषट्कला गणाः पञ्च।
द्वित्रिपञ्चाष्टत्रयोदशभेदवन्तः कचटतपनामानः॥ (क०द० १/२)

२. प्राकृतः प्रकृतीनान्तु पञ्चमात्रो गणः स्मृतः।
वैतालीयं पुरस्कृत्य षण्मात्राद्यास्तथैव च (नाट्यशास्त्र-१५/१०८-१०९)

३. लः समुद्रा गणः। गौ गन्तमध्यादिर्न्लश्च (छन्दःसूत्र ४/१३-१४)

४. पञ्चहाश्च (जानाश्रयी छन्दोविचिति-१/३९) इसी सूत्र की वृत्ति में पञ्चमात्रिक गण के ८ भेद किये गये हैं—कृशांगी (-), धीवरा (।), ते श्रीः क्व (-।), चन्द्रननु (।।।), नदी ननु (।।।), ननु चन्द्र (।। ।), कमलिनी (।।।), ननुतरति (।।।।।)।

५. छप्पञ्चच तिदुअलाछपचतदा पा अम्मि पञ्च गणा (स्वयम्भूच्छन्द, पूर्वभाग-१/२)।

६. विरहाङ्ककृत वृत्तजातिसमुच्चय १/१७-२२, २७-२९।

७. द्वित्रिचतुःपञ्चषट्कला दतचपषा द्वित्रिपञ्चाष्टत्रयोदशभेदा मात्रागणाः (छन्दोनुशासन १/३)।

८. प्राकृतपैङ्गल-१/१२, १३।

९. टठडढणेति गणाःस्युः षट्पञ्चचतुस्त्रियुग्ममात्राणाम् (वाणीभूषण-१/७)।

१०. वृत्तमौक्तिक-१/१/१५-३८।

११. वाग्वल्लभ-मात्राप्रस्तार-१ से ३४।

वर्णच्छन्द निश्चित गण-वर्ण तथा गुरुलघु-क्रमानुसार पंक्तिबद्ध होते हैं; किन्तु मात्रिक छन्दों में मात्रायें पूर्ण की जाती हैं, भले ही उनकी पंक्ति में वर्ण अधिक हों, अथवा कम।[१] किन्तु कुछ मात्रिकछन्द ऐसे भी होते हैं, जिनमें मात्रिक-नियम के पालन के साथ किसी विशिष्ट पाद के अन्तर्गत किसी गणविशेष का नियमन भी आवश्यक होता है।

यथा— डगणाश्चतुरः पादे विधेहि, अन्ते गणमिह मध्यगमवेहि।
इति पज्झटिका निखिलचरणेषु, षोडशमात्राः सर्वचरणेषु ॥[२]

इससे स्पष्ट है कि पज्झटिका छन्द के प्रत्येक पाद में १६ मात्रायें होती हैं और प्रत्येक पाद के अन्त में जगण का भी विधान होता है। इसके अतिरिक्त इसका प्रत्येक चरण निश्चित गण, वर्ण तथा गुरुलघु-क्रम से स्वतंत्र हैं।

गणों के पारिभाषिक शब्दसङ्केत

छन्दश्शास्त्र में प्रयुक्त विविध गणों के निर्देशार्थ छन्दोलक्षणकारों ने विभिन्न पारिभाषिक संज्ञायें प्रतिपादित की हैं। इन संज्ञाओं के माध्यम से तत्तद् गणों का सरलता से अवगम हो जाता है। परन्तु विभिन्न छन्दश्शास्त्रियों के द्वारा अपनी-अपनी दृष्टि से पृथक्-पृथक् पारिभाषिक सङ्केत स्वीकृत किये जाने के कारण इन संज्ञाओं में परस्पर वैविध्य तथा साङ्कर्य दृष्टिगत होता है। इस विविधता को स्पष्ट करने हेतु गणों के निर्देशार्थ प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दसङ्केतों का निरूपण आवश्यक हैं।

गणों के पारिभाषिक नामों के पर्याय-शब्द भी छन्दोग्रन्थकारों ने प्रयुक्त किये हैं। परन्तु पिङ्गलोक्त आठ वर्णगणों में संज्ञा का वैविध्य अधिक नहीं हैं। मात्रिक गणों के लिये ही अनेक संज्ञायें प्रयुक्त हैं। ट, ठ, ड, ढ, ण—गणों की कलायें, प्रस्तारभेद, नाम तथा पर्याय, प्राकृतपैङ्गल, वाणीभूषण और वाग्वल्लभ में वृत्तमौक्तिक के समान ही हैं, किन्तु प्राकृतपैङ्गल में ट, ठ, ड, ढ, ण के स्थान पर छ, प, च, त, द—ये गणनाम भी स्वीकृत हैं। स्वयम्भूछन्द और कविदर्पण में टादि के स्थान पर छ, प, च, त, द और प, त, ट, च, क, स्वीकृत हैं। इन दोनों ग्रन्थों में केवल छः, पाँच, चार आदि कलाविधान ही दिये हैं। इनके प्रस्तार-भेद, नाम तथा पर्याय की सूची नहीं हैं। हेमचन्द्रीय छन्दोनुशासन में ष, प, च, त, द—गण और प्रस्तारभेद दिये हैं, किन्तु नामादि की सूची नहीं हैं।

गणभेद-विवेचन

मात्राओं के पौर्वापर्य के अनुसार गणों के अनेक भेद छन्दश्शास्त्रीय ग्रन्थों में विवेचित हैं।

---

१. सुवृत्ततिलक-१/६।
२. वृत्तमौक्तिक-१/३/१।

इन मात्रागणों का मूल भी पिङ्गलाचार्य ने—लः समुद्रा गणः (पि०छ० ४/१५) सूत्र में सङ्केतित किया है, भास्करराय का मत है। उन्होंने समुद्रपद को सात का वाचक मानते हुए इस सूत्र की विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत की है। मात्रागणों का तुलनात्मक विवरण इसप्रकार है—

१. **टगण**—६ मात्रिक (भेद १३)—

१. SSS हर[१]	८. IIISI धातृ[५]
२. IISS शशि	९. SSII कलि
३. ISSI सूर्य[२]	१०. IISII चन्द्र
४. SIIS शक्र[३]	११. ISIII ध्रुव
५. IIIIS शेष	१२. SIIII धर्म
६. ISIS अहि	१३. IIIIII शालि[६]
७. SISI कमल[४]	

२. **ठगण**—पञ्चमात्रिक (भेद ८)—

१. ISS—इन्द्रासन, सुनरेन्द्र, अधिप, कुञ्जर-पर्याय,[७] रदन, मेघ, ऐरावत,[८] तारापति।[९]

२. SIS—सूर्य,[१०] वीणा, विराट्,[११] मृगेन्द्र, अमृत, विहग, गरुड़-पर्याय,[१२] जोहल, यक्ष, भुजङ्गम,[१३] पक्षी।

३. IIIS—चाप।

४. SSI—हीर।

५. IISI—शेखर।

६. ISII—कुसुम।

---

१. वाणीभूषण और वाग्वल्लभ में हर के स्थान पर शिव हैं।
२. सूर्य के स्थान पर प्राकृतपैङ्गल में सूर, वाणीभूषण में दिनपति, और वाग्वल्लभ में दिनेश्वर हैं।
३. शक्र के स्थान पर वाणीभूषण में सुरपति और वाग्वल्लभ में सुरेश हैं।
४. कमल के स्थान पर वाणीभूषण में सूरपति और वाग्वल्लभ में सरोज हैं।
५. धातृ के स्थान पर प्राकृतपैङ्गल में ब्रह्मा और वाग्वल्लभ में धाता हैं।
६. शालि के स्थान पर प्राकृतपैङ्गल, वाणीभूषण और वाग्वल्लभ में शालिकर हैं।
७. कुञ्जर के पर्यायवाची शब्दों में वृत्तमौक्तिक के मतानुसार 'गज' शब्द सम्मिलित नहीं हैं। 'गज' को चतुर्मात्रिक स्वीकार किया गया है।
८. वृत्तजातिसमुच्चय के अनुसार पञ्चमात्रिक ISS ऐरावत के निम्नलिखित पर्याय और स्वीकृत हैं—सुरगज, सुरवारण, सुरहस्तिन्।
९. प्राकृतपैङ्गल के अनुसार पञ्चमात्रिक ISS में गगन, झम्प और लम्प तथा वाग्वल्लभ में दन्तावल, पयोददन्त भी स्वीकृत हैं।
१०. सूर्य के स्थान पर प्राकृतपैङ्गल, वाणीभूषण और वाग्वल्लभ में 'सूर' है।
११. विराट् के स्थान पर प्राकृतपैङ्गल और वाणीभूषण में विडाल है।
१२. वृत्तजातिसमुच्चय में गरुडपर्यायों में निम्नलिखित शब्द और स्वीकृत हैं—पक्षिनाथ, विहगनाथ, विहगाधिपति, विहङ्गपति, सुपर्ण।
१३. प्राकृतपैङ्गल, वाणीभूषण और वृत्तमौक्तिक में 'भुजङ्गम' को SIS पञ्चमात्रिक स्वीकार किया गया है किन्तु वृत्तजातिसमुच्चय में भुजगेन्द्र, भोगिन्, विषधर को IIIS पञ्चमात्रिक माना है।

७. ऽ।।।—अहिगण।

८. ।।।।।—पापगण।

तथा प्रहरण[१] (आयुध) के विविध नाम पञ्चकल के वाचक हैं।

३. **डगण**—चतुर्मात्रिक (५ भेद)—

१. ऽऽ (गुरुयुग्म)[२]—कर्ण, सुरतलता, गुरुयुगल, कर्णसमान, रसिक, रसलग्न, सुमतिलम्बित, मनोहर,[३] लहलहित[४]।

२. ।।ऽ (गुर्वन्त)—करतल, कर,[५] पाणि, कमल, हस्त, प्रहरण, भुजदण्ड, बाहु, रत्न, वज्र, गजाभरण, भुजाभरण।

३. ।ऽ। (गुरुमध्य)—पयोधर,[६] भूपति,[७] नायक, गजपति, नरेन्द्र, कुचवाचक शब्द, गोपाल, रज्जु, भवन।

४. ऽ।। (आदिगुरु)—वसुचरण, दहन, पितामह, तात्त, पद-पर्याय, गण्ड, बलभद्र, जङ्घायुगल, रति[८]।

५. ।।।। (सर्वलघु)—विप्र, द्विज, जाति, शिखर, पञ्चशर, बाण,

---

१. वृत्तमौक्तिककार ने प्रहरण (आयुधों) के विविध नाम पञ्चकल के वाचक माने हैं। परन्तु ऐसा मानते हुए भी 'प्रहरण'' और 'वज्र' को ।।ऽ चतुष्कल में 'पञ्चशर' को ऽ।। चतुष्कलवाची, 'तोमर' को ।ऽ त्रिमात्रिक और 'बाण' को ।।।। चतुष्कलवाची तथा एकमात्रिक भी स्वीकार किया है। वृत्तजातिसमुच्चयकार ने तोमर, प्रहरण और बाण को पञ्चकलवाची ही माना है। उसमें प्रहरण के नामों की निम्नलिखित तालिका भी दी है— अशनि, असि, आयुध, कणक, करवाल, क्षुरप्र, चाप, तोमर, धनुष, पट्टिश, प्रालम्ब, बाण, बाणासन,, मुद्‌गर, रथाङ्क, शक्तिदण्ड, शर, शरासन, शिलीमुख।

वृत्तजातिसमुच्चय में पुरोहित, पुरोधस् और मन्त्रिन् शब्दों को चतुष्कल एवं पञ्चकलवाची स्वीकार किया गया है। वृत्तमौक्तिक, प्राकृतपैङ्गल और वाणीभूषण में इनका कोई उल्लेख नहीं हैं।

२. चतुर्मात्रिक ऽऽ के और ।।।। के पर्याय वाणीभूषण में प्राप्त नहीं है।

३. मनोहर के स्थान पर प्राकृतपैङ्गल में मनहरण है।

४. प्राकृतपैङ्गल में ऽऽ चतुर्मात्रिक में सुवर्ण अधिक है।

५. 'करपल्लव' को भी ।।ऽ चतुर्मात्रिक वृत्तजातिसमुच्चयकार ने माना है। वाग्वल्लभकार ने अलंकृति नाम भी स्वीकार किया है।

६. वृत्तजातिसमुच्चय में पयोधर के वाची 'स्तन, स्तनभार' भी स्वीकृत हैं। परन्तु स्तनादि का प्रयोग वृत्तमौक्तिककार ने कुचवाची शब्दों में किया है। वाग्वल्लभ में पयोधृत्, पयोद, जलद, जलधर, वारिद—नाम भी स्वीकृत हैं।

७. भूपति के पर्यायों में वृत्तजातिसमुच्चय में नराधिप, पार्थिव, भूमिनाथ, राजन् और सामन्त भी स्वीकृत हैं। प्राकृतपैङ्गल में नरपति, उद्गतनायक संज्ञायें अधिक हैं। वाणीभूषण में मनुजपति नाम अधिक है। प्रा०पै० और वाणीभूषण में अश्वपति और चक्रवर्ती अधिक है; जबकि प्रा०पै०, वृत्तजातिसमुच्चय और वाणीभूषण द्वारा समर्थित वसुधाधिप संज्ञा अधिक है। वाग्वल्लभ में मनुजपति, चक्राधीश, तुरगपति और वर्ष अधिक है।

८. प्राकृतपैङ्गल में चतुर्मात्रिक ऽ।। में नूपुर भी स्वीकृत है। परन्तु यह प्रा०पै०, वृत्तमौक्तिकादि में द्विमात्रिक ऽ में स्वीकृत एवं प्रयुक्त हैं। वाग्वल्लभ में दहन, बलभद्र, जङ्घायुगल और रति, शब्द हैं एवं पिता, हलायुध और पावक अधिक हैं।

द्विजकर तथा गज, रथ,[१] तुरङ्गम और पदाति, ये सब चतुष्कल के वाचक हैं।

४. **ढगण**—त्रिमात्रिक (भेद ३)—

१. ।ऽ—ध्वज[२], चिह्न, चिर, चिरालय, तोमर, पत्र, चूतमाला[३], रस, वास, पवन, वलय, तुम्बुरु।

२. ऽ।—करताल, पटह, ताल, सुरपति, आनन्द, तूर्य[४], निर्वाण, सागर[५]।

३. ।।।—भाव[६], रस, ताण्डव और भामिनी के पर्यायवाची शब्द।

५. **णगण**—द्विमात्रिक (भेद २)—

१. ऽ—नूपुर, रसना, चामर, फणि, मुग्धाभरण, कनक, कुण्डल, वक्र, मानस, वलय, कङ्कण, हारावली, ताटङ्क, हार, केयूर[७]।

२. ।।—सुप्रिय, परम[८]।

६. एक लघु। के नाम निम्नलिखित हैं—

शर, मेरु, दण्ड, कनक, शब्द, रूप, रस, गन्ध, काहल, पुष्प, शङ्ख तथा बाण[९]।

---

१. वृत्तजातिसमुच्चय में चतुष्कलवाची गजादि के निम्नलिखित पर्याय स्वीकृत हैं—करि, कुञ्जर, गज, मातङ्ग, वारण, वारणेन्द्र, हस्तिन्, तुरग, हरि, योध, स्यन्दन। किन्तु वृत्तमौक्तिककार ने गजातिरिक्त कुञ्जर—पर्यायों को पञ्चमात्रिक ।ऽऽ स्वीकार किया है।

२. वृत्तजातिसमुच्चय में ।ऽ त्रिकलवाची निम्नांकित शब्द और अधिक हैं—कदलिका, ध्वज-पट, ध्वजपताका, ध्वजाग्र, पताका, वैजयन्ती। वाग्वल्लभ में पटच्छदन-नाम अधिक है।

३. वाणीभूषण में चूतमाला के स्थान पर चूडमाला है। वाग्वल्लभ में चूतभवा, स्रक्, आम्रमाला—पर्याय है।

४. वृत्तमौक्तिककार ने तूर्य और पटह को ऽ। त्रिकलवाची माना है, परन्तु वृत्तजातिसमुच्चयकार ने तूर्य और पटह को ।।। त्रिकलवाची माना है।

५. प्राकृतपैङ्गल में 'छन्द' ऽ। त्रिकलवाची अधिक है। वाग्वल्लभकार ने सखा, अयः, आयः, नाम अधिक स्वीकार किये हैं और सुरपति के स्थान पर स्वःपति तथा आनन्द के स्थान पर नन्द, पर्याय स्वीकार किये हैं।

६. वृत्तमौक्तिक में भाव और रस ।।। त्रिकलवाची स्वीकृत हैं और रस। एककलवाची भी माना है। परन्तु वृत्तजातिसमुच्चय में भाव ।। और रस ।। द्विमात्रिक स्वीकृत हैं। वाग्वल्लभ में ।।। में कुलभाविनी भी स्वीकृत हैं।

७. वृत्तजातिसमुच्चय में ऽ द्विमात्रिक में निम्नलिखित शब्द भी स्वीकृत हैं—कटक, पद्मराग, भूषण, मणि, मरकत, मुक्ता, मौक्तिक, रत्न, विभूषण, हारलता। वाणीभूषण में 'मञ्जरी' भी स्वीकृत है। वाग्वल्लभ में अङ्गद, मञ्जरी, कटक भी स्वीकृत हैं।

८. प्राकृतपैङ्गल में सुप्रिय, परम के स्थान पर निजप्रिय, परमप्रिय भी प्राप्त हैं।

९. लघुवाचक। शब्दों में प्राकृतपैङ्गल में 'लता' और वाणीभूषण एवं वाग्वल्लभ में 'स्पर्श' भी स्वीकृत हैं।

इस पद्धति से मगणादि ८ गणों के पर्याय निम्नलिखित होते हैं—

१. मगण—हर।

२. यगण—इन्द्रासन, सुनरेन्द्र, अधिप, कुञ्जर-पर्याय, रदन, मेघ, ऐरावत तारापति।

३. रगण—सूर्य, वीणा, विराट्, मृगेन्द्र, अमृत, विहग, गरुड-पर्याय, जोहल, यक्ष, भुजङ्गम।

४. सगण—करतल, कर, पाणि, कमल, हस्त, प्रहरण, भुजदण्ड, बाहु, रत्न, वज्रगजाभरण, भुजाभरण।

५. तगण—हीर।

६. जगण—पयोधर, भूपति, नायक, गजपति, नरेन्द्र, कुचवाचक शब्द, गोपाल, रज्जु, पवन।

७. भगण—वसुचरण, दहन, पितामह, तात, पद-पर्याय, गण्ड, बलभद्र, जङ्घायुगल, रति।

८. नगण—भावरस, ताण्डव और भामिनी के पर्यायवाची शब्द।

लघु-गुरु-वर्णविचार

छन्दःशास्त्र में लवर्ण से लघु और 'ग' से गुरु का ज्ञान होता है।[1] लघु का प्रथम तात्पर्य ह्रस्व है। **ह्रस्व** मात्रा का सबसे छोटा प्रकार है। एक मात्रा के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतने समय में उच्चारित स्वर को ह्रस्व कहते हैं और ह्रस्व स्वर के उच्चारण से प्रयुक्त वर्ण को लघु कहा जाता है।[2] गुरु से प्रायः दीर्घ का अभिधान होता है। दीर्घ स्वर में दो मात्रायें होती हैं। दो मात्राओं के साथ उच्चारण करने में प्रयुक्त वर्ण को दीर्घ कहते हैं। उसी दीर्घ शब्द को गुरु वर्ण के व्यवहार से जाना जाता है।[3]

ह्रस्व का साङ्केतिक चिह्न सरल रेखा (।) और दीर्घ का साङ्केतिक चिह्न सरल रेखा का वक्ररूप वक्ररेखा (ऽ) है।[4]

संयुक्त वर्ण, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय चिह्नों से पूर्व और अनुस्वार से युक्त लघु वर्ण भी गुरु-संज्ञक होता है।[5] किन्तु पाद के अन्त में स्थित लघुवर्ण

---

१. ग्लौ (पि०छ० १/१४), गुर्वेकं गिति विज्ञेयं तथा लघु लिति स्मृतम् (ना०शा० १५/८९)।
२. गृल् (पि०छ० १/९)।
३. हे, लौ सः (पि०सू० १/१२-१३)।
४. वान्ते ग्वक्रः (ज०छ० १/४) द्र० जा०छ०वि० १/१७।
५. ध्रादिपरः (पि०सू० १/११)।
जिह्वामूलीय और उपध्मानीय से युक्त का उदाहरण—
मन्दः कवियशः प्रार्थी (रघु० १/३)।
व्यञ्जनपूर्वलघु का उदाहरण—
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् (रघु० १/९)।

की गुरुता विकल्प से स्वीकार की जाती है।[१] इसका तात्पर्य है कि पादान्त का लघु-वर्ण कहीं गुरु माना जाता है और कहीं वह लघु रूप में ही रहता है।[२] उदाहरणार्थ—**अथ वासवस्य वचनेन**[३] यह उद्गता छन्द का प्रथम पाद है। इसके पादान्तर्गत 'न' लघुवर्ण गुरुता को प्राप्त नहीं होता, अपितु वह अपने लघु रूप में ही रहता है। किन्तु इसके विपरीत उपजाति छन्द के प्रथम पाद **'संचारपूतानि दिगन्तराणि'**[४] के पादान्तर्गत ह्रस्व णि-वर्ण अपनी लघुता के स्थान पर गुरुता को प्राप्त करता है। यह **नारायण भट्ट** के अनुसार व्यवस्थित विकल्प है। कतिपय मनीषियों के अनुसार पादान्त वर्ण के गुरुत्व का विकल्प वर्णच्छन्दों में ग्राह्य है। मात्राछन्दों में पादान्त वर्ण की गुरुता प्राप्त नहीं होती, यह सम्प्रदाय है।

संयुक्त वर्ण से पूर्व लघु वर्ण की जो गुरुता स्वीकार की जाती है, वह पाद के मध्य में होती है, किन्तु प्र और ह्र संयुक्त वर्ण के पूर्व लघुवर्ण कहीं-कहीं विकल्प से गुरु होता है।[५] छन्दोमञ्जरी में कवियों के कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनमें प्र और ह्र से पूर्व लघुवर्ण गुरु न होकर ह्रस्व ही रहता है। जैसे—**गृहीत-प्रत्युद्गमनीयवस्त्र**[६] इस कुमारसंभवान्तर्गत उपजातिवृत्त के द्वितीय पाद में संयुक्त प्र-वर्ण के पूर्व लघु तकार ह्रस्व ही माना जाता है। **प्राप्य नाभिह्रदमज्जनमाशु**[७] स्वागताछन्द के इस प्रथम पाद में संयुक्त ह्र-वर्ण के पूर्व लघु भि-वर्ण गुरु न होकर ह्रस्व ही रहता है। इस सन्दर्भ में **कण्ठाभरणकार**[८] का मत है कि तीव्र प्रयत्न (झटके) के साथ उच्चारण करने में संयुक्त वर्ण से पूर्व लघु, गुरु न होकर ह्रस्व ही रहता है और ऐसी स्थिति में छन्दोभंग दोष भी नहीं होता। किन्तु इसी पद्य के द्वितीय तथा तृतीय चरण में संयुक्त वर्णों के पूर्व लघु वर्ण को गुरुता प्राप्त है।

पादादि में स्थित वर्ण-संयोग को **क्रम** कहते हैं। इस क्रमसंज्ञक संयोग के पूर्व

---

१. गन्ते (पि०छ० १/१०), पादान्ते वा (छ०वि० १/१३), वा पादान्ते (वृ०र० १/९)।

२. दीर्घः संयुक्तपरो बिन्दुयुतः पातितश्च चरणान्ते।
स गुरुर्वक्रो द्विमात्रोऽन्यो लघुर्भवति शुद्ध एककलः॥ (प्रा०पै०) पादान्त में गुरुत्व का विकल्प कवि-छान्दस सम्प्रदाय के अनुसार मानकर लक्ष्मीधर ने 'पातितश्च' की व्याख्या में च को विकल्पार्थक माना है।

३. किरात० १२/१।

४. रघु० २/१५।

५. प्रह्रे वा इति पिङ्गलमुनेर्विकल्पविधायकसूत्रं नाद्यत्वे प्रचलिते पिङ्गलच्छन्दस्सूत्रे दृश्यते (छ०म० १/११ प्रभा टीका)।

६. कुमार० ६/११।

७. छ०म० १/११।

८. यदा तीव्रप्रयत्नेन संयोगादेरगौरवम्।
न च्छन्दोभङ्ग इत्याहुस्तदा दोषाय सूरयः॥ (सर० १/१३)

लघु वर्ण गुरुता को प्राप्त होकर भी इष्टसिद्धि न कर सकने के कारण लघु माना जाता है। जैसे—**'अल्पव्ययेन सुन्दरि ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति'**[1] इस आर्या के तृतीय पाद के अन्त में 'सुन्दरि' सम्बोधन पद का रि-वर्ण, छन्द के चतुर्थपाद के आदि में 'ग्रा' संयुक्त वर्ण के पूर्व में होने से गुरु है और उसके गुरु होने पर १३ मात्रायें हो जाती हैं। परन्तु आर्या छन्द के प्रथम और तृतीय पाद में बारह मात्रायें इष्ट होती हैं। इसप्रकार इष्ट की सिद्धि न होने से यहाँ उसके गुरुत्व होने पर भी लघुत्व ही माना जाता है।

गुरुत्व-लघुत्व का विशेष निर्णय महाकवियों के प्रयोग-दर्शन के अनुसार होता है। स्वेच्छा से इसका निर्धारण नहीं करना चाहिये, यह नारायण भट्ट का अभिमत है। उनके अनुसार प्राकृत आदि में वर्णों के त्वरित पाठ से भी एकवर्णता होती है।[2] परन्तु संस्कृत-छन्दों में जिह्वासौकर्य की अपेक्षा **कविसम्प्रदाय** का अधिक प्रामाण्य है।

यतिनियम

आचार्य पिङ्गल ने **'यतिर्विच्छेदः'** (पिं०सू० ६/१) सूत्र द्वारा यति का विधान किया है। विच्छेद-शब्द के अर्थनिर्वचन के सन्दर्भ में अनेकविध विवेचन विद्वानों ने किये हैं।[3] वस्तुतः जिसप्रकार स्वर, राग, लय, ताल की अनुभूति से परिपक्व संस्कारयुक्त-श्रवणेन्द्रियवाले मनीषियों द्वारा अनेक रूप से उनकी सुष्ठुता का निर्धारण किया जाता है, उसीप्रकार विविध स्थानों पर उचित, अकटु, हृद्य यति भी उसप्रकार के संस्कारयुक्त श्रवणेन्द्रिय के प्रमाण से ही निर्धारित होती है। इस दृष्टि से कहा गया है कि छन्दों में जिस स्थान पर जिह्वा असौविध्य से रहित होकर विश्राम करती है वह **यति** है।[4] विश्राम, विच्छेद, विराम, विरति आदि पर्यायशब्दों से यति को व्यवहृत किया जाता है। परन्तु इसमें विशेषता यह है असौविध्य का निर्धारण छन्दस्तत्त्ववेत्ता सहृदयों पर आश्रित है।

इस अभिप्राय से ही श्वेतमाण्डव्य, भरतमुनि आदि ने यति की अनिवार्यता नहीं मानी है। प्राचीन विश्रुत, सिद्ध-कवियों में भी **भर्तृहरि, जयदेव** आदि ने यति

---

१. वृ०र० १/१०-११।

२. दीर्घाक्षरमपि जिह्वा ह्रस्वं चेत्पतति तदपि भवति लघु।
द्वौ वा त्रीनथ वर्णानेकं जानीहि शीघ्रपठनाच्च॥

३. भरतः—नियतः पादविच्छेदो यतिरित्यभिधीयते (ना०शा० १५/९०)।
जनाश्रयः-यतिः पदच्छेदः (छ०वि० १/४०)।
दण्डी—श्लोकेषु नियतस्थाने पदच्छेदं यतिं विदुः (काव्यादर्श)।
भामहः—यतिश्छन्दोऽधिरूढानां शब्दानां या विधारणा (काव्यालङ्कार ४/२४)।
केदारः—यतिर्विच्छेदसंज्ञिता (वृ०र० १/१२)।

४. यत्विर्जिह्वेष्टविश्रामस्थानं कविभिरुच्यते (छ०म० १/१२)।

की अपेक्षा नहीं रखी है।[१] इन दोनों सम्प्रदायों के समन्वय से यही तात्पर्य प्राप्त होता है कि श्रुतिसुखदता और अनुद्वेग की सिद्धि के लिये यति का उपदेश है। यदि ये दोनों तत्त्व कवि के द्वारा समादृत हैं तो काव्य सौन्दर्य उत्तम होगा[२]। इसी उद्देश्य से—

अनुक्तयतिकेऽप्येवं कार्या श्रुतिसुखा यति;, (वृ०र०ना०)
इत्याद्यौचित्यतो ज्ञेया यतिः श्रुतिसुखा बुधैः,
एवं यथा यथोद्वेगः सुधियां नोपजायते।
तथा तथा मधुरतानिमित्तं यतिरिष्यते।।

इत्यादि **कविकल्पलता** आदि ग्रन्थों में विशेष प्रतिपादित किया गया है। इसीकारण यति में लक्षणकारों के समान **आम्नायपरम्परा** का भी महत्त्व है।[३]

मन्दारमरन्दकार ने (पृ० १६२) यतिविधान के विषय में निर्देश किया है कि—
पादान्त एव केचिच्च पादमध्येऽपि केचन।
यतिं वदन्ति तत्रापि विशेषः स्फुटमुच्यते।।
धातुनामस्वभिन्नेषु यतिर्भवति नान्यथा।
उपसर्गान्ततश्छेदः प्रत्ययादौ तयोः क्वचित्।।
स्वरसन्धौ तु सम्प्राप्तसौन्दर्याद्यतिरिच्यते।
तुचादयो न प्रयोज्या विच्छेदात्परतस्तथा।।
प्रत्ययादौ यतिर्नाम्नां षष्ठ्यामेवेति केचन।।

यतिविधान मुख्यतः छन्दों का सौष्ठव अभिवर्द्धित करता है। किन्तु इसके अतिरिक्त छन्दों के विस्तार में भी यति का योगदान है। उदाहरणार्थ चन्द्रावर्ताछन्द मात्र **यतिभेद** से माला तथा यतिभेद से ही मणिगुणनिकर में परिवर्तित हो जाता है।[४]

आचार्यों ने छन्दों के अनुसार यतिस्थान निश्चित किये हैं। समवृत्त पद्यों में पादान्त में यति अवश्य होती है। अर्धसमवृत्त पद्यों में पादान्त और पद्यार्ध में भी होती है। कहीं विषमवृत्त पद्यों में तीन पादों के अन्त में यतिविधान है। उपस्थित-प्रचुपितछन्दःप्रकरण में छन्द के प्रथम चरण के बाद शेष तीन चरणों को एक साथ पढ़ा जाता है। ये यतिविधान के विशेष स्थल हैं।

---

१. द्र० नीतिशतक (५)—लभेत सिकतासु तैलमपि; तथा गीतगोविन्द (१२/१२)—भावं शृङ्गाररसारस्वतमिह, आदि।
२. **कालिदास** यतिनियम के समादर में सिद्ध कवि हैं। उनके काव्य-सौन्दर्य का यह भी एक प्रमुख कारण है। कालिदासीय कृतियों में एक-दो स्थलों, यथा—
अनेन तनुमध्यया मुखरनूपुराराविणा नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन सम्भावितः।
अशोक यदि सद्य एव मुकुलैर्न सम्पत्स्यसे वृथा वहसि दोहदं ललितकामिसाधारणम्।।
(माल० ३/१७) में यतिभङ्ग नगण्य है।
३. द्र० भुजगशिशुभृता, हलमुखी, छन्द (पि० ६/७, ८) पर हलायुध-भाष्य।
४. पि०सू०वि०क०, पृ० १५३।

सामान्यरूप से यतिनियम पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार निर्दिष्ट किये हैं—

यतिः सर्वत्र पादान्ते श्लोकार्धे तु विशेषतः।
समुद्रादिपदान्ते च व्यक्ताव्यक्तविभक्तिके।।
क्व चित्तु पदमध्येऽपि समुद्रादौ यतिर्भवेत्।
यदि पूर्वापरौ भागौ न स्यातामेकवर्णकौ।।
पूर्वान्तवत् स्वरः सन्धौ क्व चिदेव परादिवत्।
एष्टव्यो यतिचिन्तायां यणादेशः परादिवत्।।
नित्यं प्राक्पदसम्बद्धाश्चादयः प्राक्पदान्तवत्।
परेण नित्यसम्बद्धाः प्रादयश्च परादिवत्।।

इसके अनुसार उदाहरण प्रदर्शित हैं।

१. पाद के अन्त में स्पष्ट-विभक्ति का उदाहरण—
'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'। 'नमस्तस्मै महादेवा—य शशाङ्कार्धधारिणे' इसप्रकार पादान्त में यति न होना दोष माना गया है।

२. पाद के अन्त में अस्पष्ट-विभक्ति का उदाहरण—
'नमस्तुङ्गशिर**श्चुम्बि-चन्द्र**चामरचारवे'

३. श्लोकार्ध में सन्धिकार्य के अभाव अथवा स्पष्ट-विभक्ति का उदाहरण—
'अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्'
सुरासुरशिरोरत्नस्फुरत्किरणमञ्जरी-, पिञ्जरीकृतपादाब्जद्वन्द्वं वन्दामहे शिवम्।।
इस प्रकार श्लोकार्ध में यति न होना माना जाता है।

४. चार आदि संख्यात्मक वर्णवाले पद के अन्त में स्पष्ट-विभक्तिवाले (अन्त में विभक्ति श्रुत होने पर) उदाहरण—
'यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु'

५. अन्त में विभक्ति श्रुत न होने पर (अस्पष्ट-विभक्तिवाले) चार आदि संख्यात्मक वर्णवाले पद के अन्त में उदाहरण—
'जनक**तनया-स्नान**पुण्योदकेषु'

६. पद के पूर्व तथा उत्तर भाग में एक वर्ण न होने पर पद के मध्य में यति का उदाहरण—
'वैरिञ्चानां तथोच्चा-रितरुचिरऋचामाननानां चतुर्णाम्'
पूर्व में यतिविधान चार वर्णों के पद में करने के बाद पुनः यहाँ पद के मध्य में यतिविधान का तात्पर्य है कि इस प्रकार की यति पादान्त में उचित नहीं है। उदाहरणार्थ—
प्रणमत भवबन्धक्लेशनाशाय नारा-यणचरणसरोजद्वन्द्वमानन्- तुम्।।
पूर्व और परवर्ती पदभाग के एकवर्णात्मक होने पर यति उचित नहीं है। उदाहरणार्थ—
एतस्या रा—जति सुमुखमिदं पूर्णचन्द्रप्रकाशम्।
तथा—सुरासुरशिरोनि—घृष्टचरणारविन्दः शिवः।

७. स्वरसन्धि में पूर्व-परवर्णों का एकादेश दो प्रकार का होता है। कहीं पूर्व के अन्त के समान तथा कहीं परादि के सदृश[1]। इन एकादेशों के स्थल में पूर्वान्तवद्भाव होने पर (एकवर्णात्मक रहने पर भी) यति हो सकती है। उदाहरण—

'जम्भारातीभ**कुम्भो-द्भव**मिव दधतः सान्द्रसिन्दूररेणुम्'

कुत्रचित् परादिवद्भाव में भी श्रुतिकटुता न होने पर यति के उदाहरण—

'अन्तेवासिदयालुरुज्झितनये—ना सादितो जिष्णुना'

यहाँ व्यञ्जन की गौणता से स्वर के कारण पराङ्गता मानी गयी है।

'शूलं शूलं तु गाढं प्रहर हर हृषीकेश केशोऽपि वक्र-श्चक्रेणाकारि किं ते'

इत्यादि में स्वर के परादिवद्भाव होने पर व्यञ्जन भी उस स्वर के आश्रित होने के कारण परादिवत् होता है। 'पूर्व तथा परवर्ती भाग एकवर्णात्मक न हों' यह नियम अन्तादिवद्भाव में भी प्रवृत्त होता है। इस कारण **'अस्या वक्त्रा-ब्जमवजितपू-र्णेन्दुशोभं विभाति'** इस प्रकार की यति उचित नहीं है।

८. यणादेश को परादिवत् मानकर यति का उदाहरण—

'विततघनतुषारक्षोदशुभ्रासु **दूर्वा-स्ववि**रलपदमालां श्यामलामुल्लिखन्तः'

९. 'च' आदि (निपातों) का पूर्व से नित्य-सम्बन्ध होता है, इस स्थिति पर यति का उदाहरण—

'स्वादु स्वच्छं सलिलम**पि च-प्रीत**ये कस्य न स्यात्।'

१०. 'प्र' आदि उपसर्गों का परवर्ती से नित्य सम्बन्ध होता है। इस स्थिति पर यति का उदाहरण—

'दूरा**रूढप्रमो**दं हसितमिव **परि-स्पृष्ट**माशासखीभिः।'

इत्यादि विधान यति के मुख्य नियम हैं। यति का विशेष महत्त्व मानते हुए आचार्यों ने इसे वृत्त के स्वरूप से भिन्न माना है। इस कारण काव्यालङ्कारसूत्र में आचार्य **वामन** ने वृत्तदोष से पृथक् **यतिदोष** का सिद्धान्त माना है।[2] **दुःखभञ्जन** कवीन्द्र के मत से मात्रावृत्त में यति आवश्यक है, वर्णवृत्तों में यह विकल्पित है।[3] चित्रादि-बन्धकाव्यों में भी यति आवश्यक नहीं है। यति के सन्दर्भ में दुःखभञ्जन कवि ने **उदलक,** श्वेत, माण्डव्य आदि आचार्यों के साथ **अगस्त्य** मुनि का विशेष मत प्रदर्शित किया है।[4]

---

१. अन्तादिवच्च (पा० ६/१/८५)

२. वृत्तस्य यत्यात्मकत्वात् न लक्ष्मणः पृथक्त्वात् (का०वा०सू० २/२/५-६)।

३. वर्णवृत्ते विभाषा (वाग्व० १/४५)।

४. किन्तु न्यभिलषतितरां कुम्भजन्मोभयत्र (वाग्व० १/४६)।

पिङ्गलछन्दस्सूत्र के सप्तम अध्याय के आरम्भसूत्र में भाष्यकार **भास्करराय** ने यति के १८ विभेदों का निरूपण किया है। उनके अनुसार प्रथमतः यति के तीन विभाग हैं—पादमध्यस्था, पादान्तस्था, अर्धान्तस्था। इनके पुनः दो-दो भेद हैं—पदमध्यस्था तथा पदान्तस्था। प्रत्येक पदमध्यस्था दो प्रकार की होती है—स्वान्यतरभागैकवर्णा और स्वोभयभागानेकवर्णा। प्रत्येक पदान्तस्था यति के चार भेद हैं—ससमाससन्धिस्था, विसमाससन्धिस्था, ससमासविसन्धिस्था तथा विसमास-ससन्धिस्था।

भास्करराय ने यतिभेदों के उदाहरण भी भाष्यराज में निर्दिष्ट किये हैं। कतिपय (पृ० २३९) उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) पादमध्यस्था पदमध्यस्था स्वोभयभागानेकवर्णा यति—
मम स्वामी चामी-करशिखरिचापोऽस्ति पुरतः।

(२) पादमध्यस्था पदान्तस्था ससमाससन्धिस्था यति—
मनोभव-मनोभवान्तकवतंसवक्री भवत्।

(३) पादमध्यस्था पदान्तस्था विसमाससन्धिस्था यति—
हितं न विहितं मया विषयवासनावासिना। आदि।

प्रत्ययविवेचन

संस्कृत के छन्दश्शास्त्र का एक विशिष्ट अङ्ग प्रत्ययविधान है।[1] छन्दश्शास्त्र की प्रत्ययविधि छन्दों के निस्सीम विस्तार की आधारभित्ति है। इसकारण छन्दोग्रन्थों के रचयिता शास्त्रपारङ्गत आचार्यों ने अपनी कृतियों में प्रत्ययों का निरूपण अवश्य किया है। छन्दःप्रतिपादक लघुग्रन्थों में कतिपय विद्वानों ने छात्र-अध्येताओं के सौकर्य की दृष्टि से प्रत्ययों का निर्देश नहीं किया है। परन्तु यह उस रचना की सीमित आवश्यकता का सूचक है। क्योंकि पिङ्गलाचार्य ने **प्रत्यय**-विधि के सूत्रों का उपदेश कर (पिं०छ० ८/२०-३५) छन्दश्शास्त्र में उनकी आवश्यकता का सङ्केत किया है।

वृत्तरत्नाकर में ६ प्रत्ययों का निर्देश इस प्रकार है—

प्रस्तारो नष्टमुद्दिष्टमेकद्व्यादिलगक्रिया।
संख्यानमध्वयोगश्च षडेते प्रत्ययाः स्मृताः॥

इसके अनुसार प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, लगक्रिया, संख्यान तथा अध्वयोग—ये ६ प्रत्यय हैं। अन्यत्र कतिपय अन्य प्रत्ययों का भी उल्लेख है -

पूर्णः खण्डो मेरुर्बृहती लघ्वी पताका च।
मर्कटिकापि च तादृक् पातालं सूचिका चैव॥

१. छन्दसां भेदादिप्रत्यायकत्वात् प्रत्ययाः (पिं० ८/२० वि०क०)।

इसके आधार पर—पूर्णमेरु, खण्डमेरु, बृहती पताका, लघ्वी पताका, लघुमर्कटी, बृहती मर्कटी, पाताल तथा सूची ये भी प्रत्ययों के अन्तर्गत माने गये हैं।

प्रस्तारादिरत्नाकर में इन दोनों उल्लेखों के समन्वय से प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, पताका तथा मर्कटी, इन ६ प्रत्ययों का निरूपण किया गया है। मात्रा एवं वर्ण के भेद से इन प्रत्ययों में प्रत्येक के दो भेद हो जाते हैं। वाग्वल्लभ के प्रारम्भ में ही मात्राप्रस्तार तथा वर्ण-प्रस्तार इन दो भागों में प्रस्तारप्रकरण निबद्ध है। इस शीर्षक-संज्ञापन से प्रतीत होता है कि **वाग्वल्लभकार** के मत में प्रस्तार के अन्तर्गत उद्दिष्ट, नष्ट, मेरु, पताका, मर्कटी तथा पाताल—ये ६ प्रत्यय हैं।

संख्या आदि की प्रतीति (परिज्ञान) कराने के कारण अथवा सम्भावनात्मक स्थानों पर विश्वासरूप निश्चय-प्रतिपादन के कारण इन्हें **प्रत्यय** कहा जाता है।[१] ये समस्त प्रत्यय मात्रा आदि के भेदों से युक्त सम, अर्धसम, विषम आदि प्रभेदोंवाले सभी छन्दों में यथासम्भव समन्वित होते हैं।

दुर्गमबोधटीका के रचयिता ने प्रत्ययों की संख्या चौबीस मानी है।[२] उनके अनुसार प्रत्ययों का परिगणन इसप्रकार है—

१. प्रस्तार	७. मेरु
२. नष्ट	८. पताका
३. उद्दिष्ट	९. मर्कटी
४. लगक्रिया	१०. समपाद
५. संख्या	११. अर्धसमपाद
६. अध्वा	१२. विषमपादता

उक्त सभी प्रत्ययों में वर्ण और मात्रा के भेद से प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण संख्या २४ हो जाती है।

प्रस्तार

छन्दों में मात्रा-वर्णात्मक स्वरूप के अवयवों के स्वरूपज्ञान की प्रस्तुति प्रस्तार में की जाती है।[३] हेमचन्द्र ने इस प्रक्रिया से वृत्तों की विस्तारपूर्वक अवस्थिति मानी है।[४]

---

१. प्रत्ययत्वं चैषां संख्यादिप्रतीतिकरणत्वात् सम्भावनास्पदविषयेषु विश्वासापरनामकप्रत्ययोत्पादकत्वाद् वा।

२. वृत्तमौक्तिक, पृ० ३६६ (जोधपुर संस्करण)।

३. तत्तन्मात्रावर्णजातिघटकव्यक्तीनां स्वरूपादिज्ञानं यत्र प्रस्तीर्यतेऽसौ प्रस्तारः। अयं च योग्यतानुसारेण सर्वगुरुकव्यक्तिमारभ्य सर्वलघुकव्यक्त्यवसानो वामपार्श्वतः सम्प्रदायानुरोधेनोपरिष्टात् प्रदर्श्यते, परन्तु दक्षिणपार्श्वतोऽप्यधस्ताच्चापि भवितुमर्हति।

४. प्रस्तीर्यते इति प्रस्तारः, वृत्तानां विस्तारतो विन्यासः (छन्दोऽनुशासन, पृ० ४६, पं० ४, निर्णयसागर संस्करण १९१२)।

प्रस्तार के परिशोधनार्थ नष्ट तथा उद्दिष्ट प्रत्यय हैं।[1]

नष्ट

किसी संख्याविशेषवाले वृत्त का स्वरूपज्ञान नष्ट के द्वारा होता है। उदाहरणार्थ—गायत्री-अक्षरजाति के समवृत्त में षष्ठ भेद क्या है, यह नष्ट-प्रत्यय द्वारा समाधान किया जाता है।

उद्दिष्ट

वृत्त का स्वरूपविशेष प्रदर्शित करने पर, यह कौन-सा भेद है इसका समाधान उद्दिष्ट के द्वारा किया जाता है।

लगक्रिया

मात्रा-वर्णात्मक स्वरूप में कितने गुरु तथा कितने लघु घटक हैं, इस जिज्ञासा के समाधान की विधि एक-द्व्यादि लगक्रिया है।[2]

संख्यान एवम् अध्वयोग

मात्रावर्णात्मक स्वरूप के घटक अंशों की संख्या का निरूपण करनेवाला संख्यान प्रत्यय है। प्रस्तार को लिखने की रीति प्रदर्शित करने के मार्ग को अध्वयोग कहा गया है।[3]

अन्य प्रत्यय

जिस चित्र में पर्वत के समान आकृति के द्वारा वर्णमात्रात्मक अनेक स्वरूपों के अन्तर्गत अंशों के घटक गुरु-लघु संख्या का ज्ञान एकसाथ कराया जाता है, वह **मेरु** है।

जिस चित्र में पताका की आकृति द्वारा अलग-अलग एक, दो, आदि गुरु-लघु अंशों की संख्या का नियमन किया जाता है वह **पताका** कही गयी है।[4]

वृत्ति, भेद, मात्रा, वर्ण, गुरु, लघु की संख्याओं का एकसाथ उल्लेख **लघुमर्कटी** में होता है। **बृहती मर्कटी** में गुर्वन्त, लघ्वन्त तथा पिण्डों की संख्या भी

---

१. प्रस्तारपरिशोधनफलकं नष्टं तदर्थमेवोद्दिष्टं, विशेषश्चैषः संख्याविशेषधर्मिणि स्वरूपं यत्र जिज्ञास्यते तन्नष्टम्, स्वरूपविशेषं प्रदर्श्य कतिथोऽयं भेद इति यत्र जिज्ञास्यते तदुद्दिष्टम्।

२. अस्यां जातौ कियद् गुरुकाः कति कियल्लघुकाश्च कति व्यक्तय इति जिज्ञासापनोदनानुगुणो व्यापार एकद्व्यादिलगक्रिया।

३. जातिघटकव्यक्तिसंख्याबोधकः प्रत्ययः संख्यानम्, अध्वयोगस्तु प्रस्तारलिखनरीति-प्रदर्शनमार्गः।

४. यत्र मेरुसदृशाकृतिकचित्रेऽनेकजात्यन्तर्गतव्यक्तिघटकगुरुलघुसंख्याज्ञापनं यौगपद्येन क्रियते स मेरुः, यत्र पताकाकृतिके चित्रे पार्थक्येनैकद्व्यादिगुरुलघुकव्यक्तीनां संख्यानियमनं सा पताका।

बतलायी जाती है।[१] दूसरी विधि से गुरु-लघु का ज्ञापक **पाताल** नामक प्रत्यय है तथा **सूची** भी इसीप्रकार ज्ञान कराती है।[२]

छन्दोविस्तार में प्रत्ययों का योगदान

प्रत्ययों के आधार पर संस्कृत-छन्दों के विस्तार की प्रक्रिया में आश्चर्यावह वृद्धि सम्भव है। संस्कृतछन्दों की संख्या तथा प्रयोग की व्यापकता में प्रत्ययों का अपूर्व योगदान है। यह प्रत्ययविधान काल्पनिक नहीं हैं, अपितु पूर्णत: गणितीय आश्रय पर अवस्थित है। **'छन्दोगणितम्'** आदि ग्रन्थों की निर्मिति इस प्रक्रिया के गणितीय स्वरूप को स्पष्ट करती है। वृत्तप्रत्ययकौमुदी, प्रस्तारचिन्तामणि प्रस्तारादिरत्नाकर आदि अनेक पुस्तकें मात्र प्रत्ययविवेचन की दृष्टि से विरचित हैं। प्रत्ययों की छन्दश्शास्त्र में अतिशय उपादेयता के कारण पिङ्गलाचार्य से प्रारम्भ कर वाग्वल्लभ-पर्यन्त प्रतिष्ठित छन्दश्शास्त्रियों ने प्रत्ययविधान का निर्देश अवश्य किया है। प्रत्ययविधि के कारण संस्कृतछन्दों की अनुमित भेदसंख्या इस प्रकार है—

जाति	वृत्तभेद	जाति	वृत्तभेद
१. एकाक्षर पाद	२	१४. चतुर्दशाक्षर पाद	१६,३८४
२. द्व्यक्षर पाद	४	१५. पञ्चदशाक्षर पाद	३२,७६८
३. त्र्यक्षर पाद	८	१६. षोडशाक्षर पाद	६५,५३६
४. चतुरक्षर पाद	१६	१७. सप्तदशाक्षर पाद	१,३१,०७२
५. पञ्चाक्षर पाद	३२	१८. अष्टादशाक्षर पाद	२,६२,१४४
६. षडक्षर पाद	६४	१९. एकोनविंशाक्षर पाद	५,२४,२८८
७. सप्ताक्षर पाद	१२८	२०. विंशाक्षर पाद	१०,४८,५७६
८. अष्टाक्षर पाद	२५६	२१. एकविंशाक्षर पाद	२०,९७,१५२
९. नवाक्षर पाद	५१२	२२. द्वाविंशाक्षर पाद	४१,९४,३०४
१०. दशाक्षर पाद	१,०२४	२३. त्रयोविंशाक्षर पाद	८३,८८,६०८
११. एकादशाक्षर पाद	२,०४८	२४. चतुर्विंशाक्षर पाद	१,६७,७७,२१६
१२. द्वादशाक्षर पाद	४,०९६	२५. पञ्चविंशाक्षर पाद	३,३५,५४,४३२
१३. त्रयोदशाक्षर पाद	८,१९२	२६. षड्विंशाक्षर पाद	६,७१,०८,८६४

उपर्युक्त वृत्तभेदों की कुल संख्या १३,४२,१७,७२६ होती है। यह भेद वर्णवृत्तों के माने गये हैं[३]। मात्रावृत्तों के भेद इससे अतिरिक्त भी हो सकते हैं।

---

१. यत्र वृत्तिभेदमात्रावर्णगुरुलघुसंख्योल्लेखो युगपत्सा लघुमर्कटी, यत्र गुर्वन्तलघ्वन्त-पिण्डानामपि संख्या ज्ञायेरन् सा बृहती मर्कटी।

२. प्रकारान्तरेण गुरु-लघुज्ञापकमेव पातालम्, तथैव सूची चेति।

३. षड्विंशतिः सप्तशतानि चैव तथा सहस्राण्यपि सप्तपंक्तिः।
लक्षाणि दृग्वेदसुसम्मतानि कोट्यस्तथा रामनिशाकरैः स्युः ॥ (वृ०मौ० पृ० १८०)

नारायण भट्ट ने मात्रावृत्तों के प्रस्तार का भी परिगणन किया है। मात्र **आर्या** की भेदसंख्या ८१९२०००० है।[1] छन्दों का यह असंख्य विस्तार संस्कृत-छन्दश्शास्त्र की अनन्त क्षमता का प्रमाण है।[2]

छन्दःपरिचय

संस्कृत के छन्दों की अगणनीय राशि में से प्रस्तार आदि की प्रक्रिया के अन्तर्गत छन्दोलक्षणकारों ने अधिकतम २०००-२५०० छन्दों का ही निर्देश किया है। इनमें भी लक्षणग्रन्थों के अतिरिक्त काव्य-आदि में प्रयुक्त, प्रचलित छन्दों की संख्या प्राय: सौ ही है। इसप्रकार विशाल छन्दोराशि का लक्षणोदाहरण परिचय अत्यन्त दुष्कर है। विभिन्न छन्दश्शास्त्रीय आचार्यों के द्वारा अद्यावधि लक्षित छन्दों का भी एकत्र लक्षण तथा उदाहरण-सहित सङ्कलन समय तथा ग्रन्थ की मर्यादा का अतिरेक होगा। अत: प्रत्येक छन्दोजातियों में से उपलक्षण की रीति से कतिपय वर्णच्छन्दों तथा मात्राच्छन्दों का परिचय संक्षेप में प्रस्तुत है।

वर्णवृत्त (सम-चतुष्पाद)

१. उक्ता (एकाक्षरपाद)

(१) **श्री**—गु: श्री: (वृ०र० ३/१)

जिसके प्रत्येक पाद में एक-एक अक्षर गुरु (ऽ) हो, उसे श्री-छन्द कहते हैं।

यथा— या श्री:।
सा गौ: ॥ (जानाश्रयी छन्दोविचितिवृत्ति-४/३)

इस उक्ता-छन्दोवृत्ति में प्रस्तार से दो भेद होते हैं।

२. अत्युक्ता (द्व्यक्षरपाद)

(२) **काम:**—गौ चेत्काम: (वृ०मौ० २/१/७)

जिस छन्द में प्रत्येक पाद में दो अक्षर गुरु (ऽऽ) हों, उसे काम-छन्द कहते हैं।

यथा— ईशं देवम्।
शर्वं वन्दे ॥ (नाट्यशास्त्र-३२/४९)

इस अत्युक्ता वृत्ति में प्रस्तार से चार भेद होते हैं।

३. मध्या (त्र्यक्षरपाद)

(३) **तटि**— यत्पदं मध्यत:,
स्याल्लघु सा तटि: (नाट्यशास्त्र-३२/५०)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में तीन अक्षर हों और उसमें पादगत मध्यम अक्षर लघु हो तथा शेष दोनों अक्षर गुरु हों अर्थात् प्रत्येक पाद में रगण (ऽ।ऽ) हो, उसे तटि छन्द कहते हैं।

---

१. वृ०र० २/२ टीका।

२. न पर्यन्तोऽस्ति वृत्तानां प्रस्तारगणनाविधौ (पिं०सू० ६/१ पर हलायुध)।

यथा— शंकरः शूलभृत्।
पातु मां लोककृत्॥ (नाट्यशास्त्र ३२/५१)
इस त्र्यक्षरा वृत्ति में प्रस्तार से ८ छन्दोभेद होते हैं।[१]

४. प्रतिष्ठा (चतुरक्षरपाद)

(४) **पुष्प**—(ना०शा० ३२/५७)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में चार अक्षर हों और उनमें पादगत मध्यम अक्षर लघु हो तथा शेष तीनों अक्षर गुरु हों, अर्थात् प्रत्येक पाद में एक रगण और एक गुरु वर्ण (ऽ।ऽऽ) हो, तो उसे पुष्प छन्द कहते हैं।
(यथा—हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन वृत्ति-२/१८/१)
इस चतुरक्षरवृत्ति में प्रस्तार से १६ छन्दोभेद होते हैं।

५. सुप्रतिष्ठा (पञ्चाक्षरपाद)

(५) **शिखा**— द्वितीयं नैधनं चैव चतुर्थं च गुरु यदा।
सुप्रतिष्ठाकृते पादे सा शिखा कथिता तथा॥
(ना०शा० ३२/७१)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में पाँच अक्षर हों और उनमें पादगत द्वितीय, चतुर्थ तथा अन्तिम वर्ण गुरु हो, शेष दोनों अक्षर लघु हों, अर्थात्, एक जगण और दो गुरुवर्ण (।ऽ।ऽऽ) हो, उसे शिखा छन्द कहते हैं।
(यथा—हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासनवृत्ति २/२७/१)
इस पंचाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ३२ छन्दोभेद होते हैं।

६. गायत्री (षडक्षरपाद)

(६) **तनुमध्या**— आद्ये पुनरन्त्ये द्वे द्वे गुरुणी चेत्।[२]
वृत्तं तनुमध्या गायत्रसमुत्था॥ (नाट्यशास्त्र-१६/२१)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में ६ अक्षर हों और उनमें प्रारम्भ तथा अन्त के दो-दो वर्ण गुरु तथा मध्य के दो वर्ण लघु हों अर्थात् तगण, यगण (ऽऽ।, ।ऽऽ) हों तो उसे तनुमध्या कहते हैं।
(यथा—भट्टिकृत-रावणवध १०/१२)

षडक्षर चतुष्पाद आर्ष-गायत्री छन्द से प्राप्त इस षडक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ६४ छन्दोभेद माने जाते हैं, जिनमें भरत ने १३, पिङ्गल ने १,

---

१. प्रस्तार द्वारा छन्दोभेद-विधि में उस छन्द के पाद में गुरु, लघु, वर्ण-क्रम से जो भी परिवर्तन हो सकता हो, वह किया जाता है। इसप्रकार उसमें छन्दोभेद बढ़ते जाते हैं।

२. भरत ने छन्दों के लक्षण गुरु-लघुवर्णनिर्देश-पद्धति से किये हैं और पिङ्गल ने गणात्मक पद्धति से। यहाँ से गणात्मक पद्धति द्वारा ही छन्दों के लक्षण निर्दिष्ट हैं।

जयकीर्ति ने १०, हेमचन्द्र ने १९ और दुःखभञ्जन ने समस्त ६४ भेद प्रदर्शित किये हैं।

७. उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)

(७) **कुमारललिता**—कुमारललिता ज्सौ ग् (पि० छन्दःसूत्र ६/३)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में सात अक्षरों में जगण, सगण एक गुरुवर्ण (।ऽ।, ।।ऽ, ऽ) हो, उसे कुमारललिता छन्द कहते हैं। (यथा—हैम छन्दोनुशासनवृत्ति २/५४/२)

इस सप्ताक्षरवृत्ति में प्रस्तार से १२८ छन्दोभेद होते हैं।

८. अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)

(८) **मत्तचेष्टित**— चतुर्थं च द्वितीयं च षष्ठमष्टममेव च।
गुरूण्यष्टाक्षरे पादे वदन्ति मत्तचेष्टितम्॥
(ना०शा० १६/१४)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर हों और उनमें द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और अष्टम वर्ण गुरु हों तथा शेष लघु हों उसे मत्तचेष्टित कहते हैं। आचार्य पिङ्गल ने भी लघु-गुरुवर्ण-निर्देश द्वारा इसी छन्द के नामान्तरित छन्द प्रमाणी का लक्षण किया है। (ल्गिति प्रमाणी-छन्दस्सूत्र ५/७)।

इस अष्टाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से २५६ छन्दोभेद होते हैं।

९. बृहती (नवाक्षरपाद)

(९) **हलमुखी**—रो नसाविह हलमुखी (वाग्व०, पृ० १४४)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में ९ अक्षर हों और उनमें रगण, नगण और सगण (ऽ।ऽ-।।।-।।ऽ) हों, उसे हलमुखी कहते हैं। (यथा—हैम छन्दोऽनुशासन, वृ० २/९०/११)

वैदिक चतुष्पाद आर्षबृहती छन्द के पादघटक नवाक्षर की इस वृत्ति में प्रस्तार करने पर ५१२ छन्दोभेद होते हैं।

१०. पंक्ति (दशाक्षरपाद)

(१०) **हंसी**— मन्दाक्रान्ताऽन्त्ययतिरहिता, सद्योग्राहिन् भवति यदि सा।
तद् विद्वद्भिर्ध्रुवमभिहिता ज्ञेया हंसी शुचितममते॥
(श्रुतबोध[१]-१९)

मन्दाक्रान्ता छन्द यदि अन्तिम सात अक्षरों से रहित हो, उसे हंसी छन्द कहते हैं, अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक पाद में मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रथम १० अक्षरों में पहले चार और अन्तिम एक वर्ण दीर्घ तथा

---

१. श्रुतबोध के छन्दोलक्षण वर्णनिर्देशपद्धति से हैं।

शेष मध्य के पाँच वर्ण ह्रस्व हों, अर्थात् मगण, भगण, नगण तथा एक गुरु वर्ण (ऽऽऽ-ऽ।।-।।।-ऽ) हो, तो उस छन्द को हंसी कहते हैं। यह मन्दाक्रान्ता से विकसित है।

(यथा—छन्दोमञ्जरी २/१०/६)

इस दशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से १०२४ छन्दोभेद होते हैं। इसके अतिरिक्त इस वृत्ति के छन्दोभेद मदिराक्षी (जयकीर्ति छन्दोऽनुशासन-२/८८), का उदाहरण भर्तृहरिकृत **शृङ्गारशतक** (९०) में प्राप्त होता है।

११. त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)

(११) **उपेन्द्रवज्रा**—उपेन्द्रवज्रा केजृ (जानाश्रयी छन्दोविचिति ४/३५)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में ११ अक्षर हों और उनमें केजृ = (विभाति क् ।U।, ते, श्रीः क्वब् UU।, नदी ज् ।U, कृशांगीङ्) वर्ण हो, उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं।

(यथा—वा०रा० अयोध्या० ६१/२६१)

इस छन्द के अन्य उदाहरण रघुवंश (६/८४), किरातार्जुनीय (१५/५०), शिशुपालवध (४/२७) में भी देखे जा सकते हैं।

इस दशाक्षरवृत्ति में २०४८ छन्दोभेद निरूपित होते हैं, जिनमें से १२७ भेदों के लक्षण भरत से दुःखभञ्जन पर्यन्त छन्दशास्त्रियों के ग्रन्थों में मिलते हैं। उनमें उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, वातोर्मी, रथोद्धता, शालिनी, दोधक और भ्रमरविलसिता वृत्त काव्यों में प्रयुक्त हैं। शेष वृत्त अप्रयुक्त हैं।

१२. जगती (द्वादशाक्षरपाद)

(१२) **द्रुतविलम्बित**—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ (जयदेवच्छन्दः ६/३०, छन्दोमञ्जरी २/१२/१०)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १२ अक्षर हों और उनमें क्रमशः नगण, भगण, भगण, रगण (।।।-ऽ।।-ऽ।।-ऽ।ऽ) हों तो उसे भरत के मत में हरिणप्लुत और पिङ्गल के मत में द्रुतविलम्बित कहते हैं।[१]

(यथा—महाभारत द्रोणपर्व-१८४/४७)

इस द्वादशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ४०९६ छन्दोभेद होते हैं। इनमें से १४६ भेदों के लक्षण मिलते हैं। उनमें तोटक, प्रमिताक्षरा, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, भुजङ्गप्रयात, स्रग्विणी, इन्द्रवंशा, जलो-

---

१. द्रष्टव्य—नाट्यशास्त्र १६/४८ तथा छन्दःसूत्र ६/३०।

द्धतगति, वैश्वदेवी, प्रमुदितवदना, जलधरमाला, वलभी—छन्दों के उदाहरण काव्यों में मिलते हैं।

१३. अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)

(१३) **मत्तमयूर**—विश्रामोऽब्धौ मत्तमयूरं मतया: स्गौ (जयकीर्त्तिकृत छन्दोऽनुशासन २/१५)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १३ अक्षर हों तथा उसमें मगण, तगण, यगण, सगण और एक गुरु वर्ण (ऽऽऽ-ऽऽ।-।ऽऽ-।।ऽ-ऽ) हों और चतुर्थ वर्ण पर यति हो, उसे मत्तमयूर कहते हैं।

(यथा—शिशुपालवध ६/७६)

इस त्रयोदशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ८१९२ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें ११७ भेदों के लक्षण मिलते हैं। उनमें से रुचिरा, मत्तमयूर, कुटिलगति, मृगेन्द्रमुख, भ्रमरी, प्रहर्षिणी तथा मञ्जुभाषिणी छन्दों का काव्यों में प्रयोग मिलता है।

१४. शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)

(१४) **वसन्ततिलका**—'वसन्ततिलका त्भौ जौ गौ (पिं० छन्द:सूत्र ७/८)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १४ अक्षर हों तथा उनमें तगण, भगण, दो जगण और दो गुरुवर्ण (ऽऽ।-ऽ।।-।ऽ।-।ऽ।-ऽऽ) हों, उसे सैतव के मत में उद्धर्षिणी, काश्यप के मत में सिंहोन्नता, शाकल्य के मत में मधुमाधवी, भरत के मत में वसन्ततिलका, **कविसुन्दर** के मत में कर्णोत्पला और भुजगाधिप के मत में शोभावती कहते हैं।[१] किन्तु यह छन्द वसन्ततिलका नाम से प्रसिद्ध है।

(यथा—वाल्मीकिकृत रामायण ७/८/२८)

इस चतुर्दशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से १६३८४ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें ९९ भेदों के लक्षण मिलते हैं। इनमें वसन्ततिलका, प्रहरणकलिता, कुटिला, मणिकटिका, प्रथिता, छन्द काव्यों में प्रयुक्त हैं। वसन्ततिलका का काव्यों में सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

१५. अतिशक्वरी (पञ्चदशाक्षरपाद)

(१५) **मालिनी**—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकै:।

(छन्दोमञ्जरी २/१५/४)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १५ अक्षर हों तथा उनमें क्रमश: दो नगण, एक मगण, दो यगण (।।।-।।।-ऽऽऽ-।ऽऽ-।ऽऽ) हों और

१. छन्द:सूत्र ७/१०, ९, (वृत्तरत्नाकर ३/७९-८१)।

अष्टम तथा सप्तम वर्ण पर यति हो, उसे भरत के मत में नान्दीमुखी और पिङ्गल के मत में मालिनी कहते हैं।[१]

(यथा—वाल्मीकीय रामायण ६/४०/२९)

इसके अतिरिक्त माघ ने शिशुपालवध के ११वें सर्ग में १ से ६६ तक पद्य इसी छन्द में लिखे हैं। इस पञ्चदशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ३२७६८ छन्दोभेद होते हैं। इनमें ५७ भेदों के लक्षण मिलते हैं, उनमें रमणीयक का क्वचित्, किन्तु मालिनी का काव्यों में अधिक प्रयोग मिलता है।

१६. अष्टि (षोडशाक्षरपाद)

(१६) **पञ्चचामर**—जरौ जरौ जगाविदं वदन्ति पञ्चचामरम्।

(जयकीर्ति छन्दोऽनुशासन-२/२०३)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १६ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः जगण, रगण, जगण, रगण, जगण, एक गुरु वर्ण (।ऽ।-ऽ।ऽ-।ऽ।-ऽ।ऽ-।ऽ।-ऽ) हों, उस छन्द को पञ्चचामर कहते हैं।

(यथा—छन्दोमञ्जरी २/१६/४)

उक्त छन्द की रचना भरत के मत्तचेष्टित छन्द के दो पदों के मेलन से होती है।[२] वाणीभूषण और वाग्वल्लभ में इसकी नराच संज्ञा मिलती है।[३] इसमें प्रमाणिका के दो पदों के मेलन से इसे लक्षित बताया गया है। प्रमाणिका का वही लक्षण है, जो मत्तचेष्टित का है।[४] प्रमाणिका पिङ्गल के प्रमाणी छन्द[५] का ही द्योतक नाम है। लाक्षणिक-ग्रन्थोक्त लक्षण के साथ उदाहरण के अतिरिक्त लौकिककाव्यों में इसका उदाहरण प्राप्त नहीं होता। इस षोडशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ६५५३६ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें ५२ भेदों के लक्षण मिलते हैं। किन्तु उनमें से किसी का काव्यों में अधिकतर प्रयोग नहीं मिलता।

१७. अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)

(१७) **शिखरिणी**—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

(वृत्तरत्नाकर ३/८, छन्दोमञ्जरी २/१७/१)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १७ अक्षर हो तथा उनमें क्रमशः

---

१. नाट्यशास्त्र १६/७०, तथा पि० छन्दःसूत्र ७/१४।
२. द्रष्टव्य—नाट्यशास्त्र १६/१४।
३. वाग्वल्लभ १६/२० तथा वाणीभूषण २/१७५।
४. प्रमाणिका और मत्तचेष्टित का लक्षण—जरलग ।ऽ।-ऽ।ऽ-।ऽ
५. छन्दःसूत्र ५/७।

यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण (।ऽऽ-ऽऽऽ-।।।-।।ऽ-ऽ।।-।-ऽ) हों और छठें एवं ग्यारहवें वर्ण पर यति हो, उसे शिखरिणी कहते हैं।

(यथा—स्वप्नवासवदत्तम् १/१४)

कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तल, भवभूतिकृत उत्तररामचरित, तथा श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित में यत्र-तत्र शिखरिणी के अनेक उदाहरण दृष्टिगत होते हैं। पण्डितराज-जगन्नाथकृत गङ्गालहरी शिखरिणी से परिपूर्ण रचना है।

इस सप्तदशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से १३१०७२ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें ४१ भेदों के लक्षण मिलते हैं। इनमें शिखरिणी, वृषभ-ललित, मन्दाक्रान्ता, वंशपत्रपतित, अतिशायिनी, अवितथ, विलम्बितगति आदि कतिपय छन्दोभेदों का काव्यों में प्रयोग प्राप्त होता है। शिखरिणी तथा मन्दाक्रान्ता का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

१८. धृति (अष्टादशाक्षरपाद)

(१८) **नाराचक**—नाराचकं नौ रौ रौ (पि० छन्दःसूत्र ८/१७)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १८ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः दो नगण और चार रगण (।।।-।।।-ऽ।ऽ-ऽ।ऽ-ऽ।ऽ-ऽ।ऽ) हों, उसे नाराचक कहते हैं। जयकीर्ति के छन्दोऽनुशासन (२/२२४) में इसका नाम वरदा-निशा और छन्दोमञ्जरी (२/१८/३) में नाराच तथा मल्लिनाथकृत शिशुपालवध की **सर्वंकषा टीका** (११/६७) में **महामालिका** भी मिलता है। (यथा—रघुवंश १२/१०४)

माघकृत शिशुपालवध (११/६७) में इसका उदाहरण प्राप्त होता है।

इस अष्टादशाक्षरवृत्ति में प्रस्तार से २६२१४४ छन्दोभेद होते हैं, जिसमें ५१ भेदों के लक्षण मिलते हैं। इनमें नाराचक और नन्दन—ये दो भेद काव्यों में प्रयुक्त हैं।

१९. अतिधृति (एकोनविंशत्यक्षरपाद)

(१९) **शार्दूलविक्रीडित**—सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

(वृत्तरत्नाकर-३/१०१)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १९ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण, एक गुरु वर्ण (ऽऽऽ-।।ऽ-।ऽ।-।।ऽ-ऽऽ।-ऽऽ।-ऽ) हो, और द्वादश तथा सप्तम वर्ण पर यति हो, उसे शार्दूलविक्रीडित कहते हैं।

(यथा—अभिज्ञानशाकुन्तल ४/६)

महाभारत अनुशासनपर्व (१४/२३४) में तथा कुमारसम्भव (१५/५३), शिशुपालवध (१/७५, १६/८४, १७/६९, १९/१२०, २०/७९), भर्तृहरिकृत वैराग्यशतक (५१) तथा श्रीहर्षकृत, नैषधीयचरित में यत्र-तत्र शार्दूलविक्रीडित के उदाहरण देखे जा सकते हैं। इस एकोनविंशत्यक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ५२४२८८ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें ३९ भेदों के लक्षण मिलते हैं। इनमें शार्दूलविक्रीडित और विस्मिता—ये दो छन्द काव्यों में प्रयुक्त हैं। शार्दूलविक्रीडित का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

२०. कृति (विंशत्यक्षरपाद)

(२०) **गीतिका**—सजजा भरौ सलगा यदा कथिता तदा खलु गीतिका।

(छन्दोमञ्जरी २/२०/२)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २० अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः सगण, दो जगण, भगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण (।।ऽ-।ऽ।-।ऽ।-ऽ।।-ऽ।ऽ-।।ऽ-।-ऽ) हों तो प्राकृतपैङ्गलकार के मत में गीता और दामोदर मिश्र के मत में गीतिका कहते हैं।[1]

(यथा—छन्दोमञ्जरी ८/२०/२१)

इस विंशत्यक्षरवृत्ति में प्रस्तार से १०४८५७६ छन्दोभेद निरूपित होते हैं, जिनमें २५ भेदों के लक्षण मिलते हैं। इनमें किसी भी छन्द का काव्यगत प्रयोग नहीं मिलता, किन्तु लाक्षणिक ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में उनके स्वनिर्मित उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

२१. प्रकृति (एकविंशत्यक्षरपाद)

(२१) **स्रग्धरा**—म्रोभ्नौ याश्च त्रयः स्युः स्वरमुनितुरगैः स्रग्धरा स्याद्विरामैः। (जयदेवच्छन्द ७/२४)।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २१ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण एवं तीन यगण हो (ऽऽऽ-ऽ।ऽ-ऽ।।-।।।-।ऽऽ-।ऽऽ-।ऽऽ) और सात-सात अक्षरों पर विराम हो उसे स्रग्धरा कहते हैं।

(यथा—अभिज्ञानशाकुन्तल १/१)

शिशुपालवध (१५/९६) में १, शृङ्गारशतक में ९, जानकीहरण में १०, नैषधीयचरित में २७ और मयूरशतक में १०० पद्य स्रग्धरा

---

१. प्रा०पै० २/१६९, वा०भू० २०/२००।

छन्द में मिलते हैं। इस एकविंशतिवर्णवृत्ति में २०९७१५२ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें २६ भेदों के लक्षण मिलते हैं। स्रग्धरा और शशिवदना छन्द काव्यों में प्रयुक्त हैं। स्रग्धरा का काव्यों में सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

२२. आकृति (द्वाविंशत्यक्षरपाद)

(२२) **मदालस**—

कर्णं जकार-रसयुग्मं विधेहि सखि कर्णं ततः कुरु रसम्।
हारं नकारमथ कर्णं नरेन्द्रमिह हस्तं विधेहि च ततः।
सूर्याश्वसप्तयतिं कुर्याद् यथाऽभिरुचि पश्चाद् वसौ च विरतिम्।
नेत्रद्वयेन कुरु पादान्तवर्णमिति वृत्तं मदालसमिदम्॥

(वृत्तमौक्तिक २/१/५५२)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २२ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः कर्ण, जकार, रसयुग्म, कर्ण, रस, हार, नकार, कर्ण, नरेन्द्र, हस्त (ऽऽ, ।ऽ।, ।।, ऽऽ, ।, ऽ, ।।।, ऽऽ, ।ऽ।, ।।ऽ) हों और सात, सात तथा आठ अक्षरों पर यति हो, उसे मदालस छन्द कहते हैं। (यथा— रामचन्द्रभट्टकृत नारायणाष्टक, वृत्तमौक्तिक-२/१/५५५)

चन्द्रशेखर भट्ट की **लक्षणशैली** पिङ्गल की गणात्मक शैली से भिन्न है।[१] इसी छन्द का लक्षण दुःखभञ्जन ने सितस्तबक-नामक छन्द के रूप में गणात्मकपद्धति से इसप्रकार किया है—

उक्तं सितस्तबकवृत्तं तभौ यजसरा नो गुरुर्यदि तदा।

(वाग्वल्लभ २२/१६)

यह लक्षण मदालस छन्द में पूर्णतः घटित होता है। अतः गणात्मक-पद्धति में यह लक्षण चन्द्रशेखर की विस्तृत पद्धति की अपेक्षा संक्षिप्त और समुचित है। इस द्वाविंशत्यक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ४१९४३०४ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें ३१ भेदों के लक्षण मिलते हैं। किन्तु लाक्षणिक ग्रन्थों में प्रदर्शित तथा छन्दोलक्षणकारों द्वारा प्रणीत उदाहरणों के अतिरिक्त काव्यों में उनका प्रयोग नहीं मिलता।

२३. विकृति (त्रयोविंशत्यक्षरपाद)

(२३) **वृन्दारक**—वृन्दारकं रिति तौ तौ (रत्नमञ्जूषा ७/१९)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २३ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः र,

---

१. चन्द्रशेखर भट्ट की लक्षणशैली के प्रवर्त्तक विरहाङ्क हैं। विरहाङ्ककृत 'लक्षणशैली' में वृत्तजातिसमुच्चय, प्राकृतपैङ्गल, दामोदरमिश्रकृत वाणीभूषण, वृत्तमौक्तिक तथा वाग्वल्लभ में मात्रावृत्त-विभाग परिलक्षित मिलते हैं।

इ, त्, इ, त्, त्, त्, त् (।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) हों, उसे वृन्दारक कहते हैं।

(यथा—रत्नमञ्जूषा ७/१९)

रत्नमञ्जूषाकार की लक्षणशैली गणात्मक-शैली का प्रतिरूप है। उन्होंने द्विक, त्रिक, गणों की रचना के साथ म् को गुरु और न् को लघुवर्णसूचक प्रदर्शित किया है।[१] गणों के नामों में अन्तर है।[२] उक्त छन्द का लक्षण हेमचन्द्र ने गणात्मक-शैली में इसप्रकार किया है—

ज्सौ ज्सौ यिल्गा वृन्दारकम् (छन्दोऽनुशासन-२/२६४)

अर्थात् जिस छन्द के पादगत क्रमशः जगण, सगण, जगण, सगण, तीन यगण, एक लघु तथा एक गुरुवर्ण (।ऽ।-।।ऽ-।ऽ।-।।ऽ-।ऽऽ-।ऽऽ-।ऽऽ-।-ऽ) हो, उसे वृन्दारक कहते हैं। यह लक्षण रत्नमञ्जूषाकार द्वारा लक्षित उक्त छन्द में पूर्णतः घटित होता है। दोनों ही लक्षण संक्षिप्त सूत्रशैली में हैं परन्तु उनमें केवल प्रकार और गणनामों में भेद है।

इस त्रयोविंशत्यक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ८३८८६०८ छन्दोभेद होते हैं। जिनमें २८ भेदों के लक्षण मिलते हैं। इनमें से किसी विरल छन्द का ही काव्यगत प्रयोग होता है। जैसे—छन्दःसूत्र (७/२७, २८) में लक्षित अश्वललित छन्द का उदाहरण भट्टिकाव्य (८/१३१) में मिलता है।

२४. संकृति (चतुर्विंशत्यक्षरपाद)

(२४) **दुर्मिला**—विनिधाय करं कुरु रत्नमनोहर-बाहुयुगं कुरु रत्नधरं,
सगणं च ततः कुरु पाणितलं वरपुष्पयुगं विनिधाय गुरुम्।
इति दुर्मिलका फणिनायकसंरचिता किल वर्णविलासपरा,
चतुराश्रितविंशतिवर्णकृता कविता सुकृताश्रयशिल्पधरा॥
(वाणीभूषण २/२१९)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २४ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः कर, रत्न, बाहुयुग, रत्नधर, सगण, पाणितल, पुष्पयुग, गुरु (।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ) हों, उसे दुर्मिला कहते हैं। गणात्मक शैली में इस छन्द में अष्ट सगण होते हैं। दुःखभञ्जन ने इसे द्विमिला नाम से निम्नांकित रूप में लक्षित किया है—

---

१. रत्नमञ्जूषा १/१-२ सूत्रों का भाष्य।
२. रत्नमञ्जूषा १/१-८।

सगणा यदि चाष्ट तथा फणिनायकसंलपिता भवति द्विमिला ।

(वाग्वल्लभ २४/१५)

अर्थात् जिस छन्द के पादगत क्रमशः आठ सगण हों, उसे द्विमिला छन्द कहते हैं। यह दुर्मिला का नामान्तर है।

(यथा—वाणीभूषण २/२२०)

इस चतुर्विंशत्यक्षरवृत्ति में प्रस्तार से १६७७७२१६ छन्दोभेद निरूपित होते हैं, जिनमें २८ भेदों के लक्षण मिलते हैं।

२५. अभिकृति (पञ्चविंशत्यक्षरपाद)

(२५) **क्रौञ्चपदा**—अभिकृतौ भ्मस्भनीगाः क्रौञ्चपदा ङङजैः ।

(हैम छन्दोऽनुशासन २/३७२)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २५ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः, भगण, मगण, सगण, भगण, चार नगण, एक गुरुवर्ण (ऽ।।-ऽऽऽ-।।ऽ-ऽ।।-।।।-।।।-।।।-।।।-ऽ) हों और ङ ङ ज अर्थात् पाँच, पाँच और आठ अक्षरों पर यति हो, उसे क्रौञ्चपदा कहते हैं।

(यथा—हैम छन्दोऽनुशासनवृत्ति २/३७२/१)

इस पञ्चविंशत्यक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ३३५५४४३२ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें २४ भेदों के लक्षण मिलते हैं।

२६. उत्कृति (षड्विंशत्यक्षरपाद)

(२६) **भुजङ्गविजृम्भित**—

आदौ बाले ! मुक्तायुग्मं विकसितकुवलयनयने ! भवेत्तु सचामरम्,
पश्चात्कर्णौ मुग्धे ! तस्मात् सुमुकुटरसरवपटहैस्तथाप्यपरो रवः ।
स्पर्शं भावं रत्नं दत्त्वा वरतनु! शशिमुखि ! सुभगे ! मया तव कथ्यते,
मुग्धे! भूभृद्युक्तं देयं पुनरपि नरपतिकटकं भुजङ्गविजृम्भितम् ॥

(वृत्तजातिसमुच्चय ५/५०)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २६ अक्षर हों तथा उनमें क्रमशः मुक्तायुग्म, चामर, कर्णौ (दोकर्ण), मुकुट, रस, रव, पटह, रव, स्पर्श, भाव, रत्न, भूभृत्, नरपति, कटक (ऽऽ, ऽ, ऽऽ, ऽऽ, ऽ, ।।, ।, ।।।, ।, ।, ।।, ऽ, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽ) हो, उसे भुजङ्गविजृम्भित कहते हैं। यही लक्षणपद्य इसका उदाहरण भी है उक्त लक्षण पूर्णपद्य में व्याप्त होकर स्पष्ट हो रहा है। यह विरहाङ्क की **लक्ष्यलक्षण-विस्तारशैली** है। इसका गणात्मक **लक्ष्यलक्षणशैली** में संक्षिप्त लक्षण यह होगा—

मौत्नौनौरः सल्गाः प्राहुर्वसुमदनदहनमुनिभिर्भुजङ्गविजृम्भितम् ।
(जयदेवच्छन्दः ७/३०)

इसके अनुसार छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः म, म, त, न, न, न, र, स, ल, ग (ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽ।, ।।।, ।।।, ।।।, ऽ।ऽ, ।।ऽ, ।, ऽ) हो और वसु (८), मदनदहन (११) तथा मुनि (७) अक्षरों पर यति हो, उसे भुजङ्गविजृम्भित कहते हैं। यह छन्दोलक्षण स्वयं एक-पंक्ति रूप में उदाहरण भी है। इससे भी अतिसंक्षिप्त लक्षण हेमचन्द्र ने **सूत्रशैली** में किया है—'भौ तो निरसल्गाभुजङ्गविजृम्भितं जटैः' (छन्दोऽनुशासन २/३७६)

इसका अतिप्राचीन उदाहरण भरतमुनि ने **नाट्यशास्त्र** में प्रस्तुत किया है—

रूपोपेतां देवैः स्पृष्टां समदगजविलसितगतिं निरीक्ष्य तिलोत्तमाम्,
प्राप्तं द्रष्टुं कन्दर्पं तं बहुवदननयनसहितं तिरस्तुतवान् हरः ।
दीर्घं निःश्वस्यान्तर्गूढं स्तनवदनजघनकलिता निरीक्ष्य तथा पुनः,
पृष्ठन्यस्तां देवेन्द्रेण प्रवरमणिगणकवलयं भुजङ्गविजृम्भितम् ।।
(ना०शा० १६/१११)

इस षड्विंशत्यक्षरवृत्ति में प्रस्तार से ६७१०८८६४ छन्दोभेद होते हैं, जिनमें ३४ भेदों के लक्षण मिलते हैं। किन्तु लाक्षणिक ग्रन्थों में प्रदर्शित उदाहरणों के अतिरिक्त लौकिक कविरचनाओं में उनका स्वाभाविक, साधारण-प्रयोग प्राप्त नहीं होता।

सम (सीमित) दण्डक (वर्णवृत्त)

जिन वृत्तों के पाद में २६ अक्षर से अधिक होते हैं उनको दण्डक कहा गया है। उनसे निर्मित वृत्तों को **मालावृत्त** भी कहते हैं। (नाट्यशास्त्र १६/११२)

छन्दश्शास्त्र के लाक्षणिक ग्रन्थों में २७ अक्षरपाद के दण्डक से ९९९ अक्षरपाद तक के दण्डकों का लाक्षणिक उल्लेख मिलता है (द्र.वृ.र. रामचन्द्र विबुधटीका)। इनमें से आदर्श कतिपय दण्डकों के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. **चण्डवृष्टिप्रयात**—दण्डको नौ रः, प्रथमश्चण्डवृष्टिप्रयातः (पि० छन्दःसूत्र ७/३३, ३४), भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र (१६/११३) में इस दण्डक का उदाहरण दिया है। उसको जानाश्रयी छन्दोविचिति के वृत्तिकार गणस्वामी ने भी चण्डवृष्टि-प्रपात दण्डक के उदाहरण में प्रदर्शित किया है (४/११८ का वृत्तिभाग)। इसके प्रत्येक पाद में २७ अक्षर होते हैं।

२. **ललित**—मध्ये दवृद्ध्या मेघ-पिपीलिका-पणव-करभ-ललितानि (जानाश्रयी छन्दोविचिति ४/११६)। इसके प्रत्येक पाद में ५० अक्षर होते हैं।

इन सीमित दण्डकों में ८३ दण्डकों के लक्षण मिलते हैं, जिनका छन्दोग्रन्थों में प्रदर्शित उदाहरणों के अतिरिक्त कवियों की रचनाओं में प्रयोग प्रायः नहीं मिलता।

असीमित दण्डक (वर्णवृत्त)

असीमितदण्डक के पादों में कुछ विशिष्ट गणों के अतिरिक्त अन्य गणों की कोई सीमा नहीं होती। इस प्रकार के २१ दण्डकों के लक्षण मिलते हैं, जिनमें दो गद्यदण्डक भी हैं (उदाहरण–श्रीकृष्णभट्टकृत वृत्तमुक्तावली ३/२८४, २९९ के अनन्तर)। आदर्शरूप में उत्कलिका नामक दण्डक उदाहृत है—

१. **उत्कलिका**—नाम्यां पञ्चमात्रैरुत्कलिका (हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन २/४०१) इस दण्डक का उदाहरण भी छन्दोऽनुशासनवृत्ति में उपलब्ध है।

अर्धसमचतुष्पदी (वर्णवृत्त)

अर्धसमचतुष्पदी वृत्तों का प्रथमपाद एवं तृतीय पाद समान होता है और द्वितीय पाद चतुर्थ पाद के समान होता है। इसप्रकार के १७३ अर्धसमवृत्तों के लक्षण मिलते हैं, जिनमें से कुछ छन्दों के लक्षण प्रदर्शित हैं—

१. **सुबोधिता (मालभारिणी)**— ससजा गुरुयुग्मसंयुताः स्युः सभरायश्च सुबोधिता प्रिया वा। (जयकीर्तिकृत छन्दोनुशासन ३/१६)

जिस छन्द के प्रथम तथा तृतीय पाद में ससजगग (।।ऽ-।।ऽ-।ऽ।-ऽऽ) हों और द्वितीय तथा चतुर्थ पाद में स, भ, र, य (।।ऽ-ऽ।।-ऽ।ऽ-।ऽऽ) हों उसे सुबोधिता कहते हैं। इसको रत्नमञ्जूषा (२/२३) तथा हेमचन्द्र ने मालभारिणी संज्ञा दी है। इसके उदाहरण— रघुवंश (९/६६, ७२)
किरातार्जुनीय (१३/१-३४)
शिशुपालवध (२०/१-७५)
नवसाहसांकचरित (५/१-८०) आदि में प्रभूत हैं।

२. **उपजाति**—आद्यन्तावुपजातयः (पि० छन्दःसूत्र ६/२३)।

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के परस्पर तृतीय, चतुर्थ पादों के होने पर ये उपजातियाँ कही जाती हैं। इसके भी अनेक भेद वृत्तमौक्तिक में कुमारसम्भव के उदाहरणों के साथ प्रदर्शित हैं। अन्यत्र भी रघुवंश (६/६७, २/८) आदि में उपजाति के क्रमशः दोनों प्रकार हैं।

विषम वर्णवृत्त

विषम (चतुष्पदी) वर्णवृत्तों का प्रत्येक पाद असमान (विषम) वर्णस्थिति से युक्त होता है। इस प्रकार के ९७ विषमवृत्तों के लक्षण मिलते हैं, जिनमें से अतिप्रसिद्ध अनुष्टुप् श्लोक छन्द का उदाहरण लक्षणपूर्वक प्रदर्शित हैं—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥ (श्रुतबोध १०)

अनुष्टुप् (श्लोक) के प्रत्येक पाद में ८ अक्षर होते हैं। षष्ठ वर्ण गुरु तथा पञ्चम वर्ण लघु होता है एवं द्वितीय, चतुर्थ पादों में सप्तम वर्ण ह्रस्व होता है, प्रथम, तृतीयपादों में गुरु होता है। (४+ISS+१, ४+ISI+१, ४+ISS+१, ४+ISI+१)। (उदा०—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः, वा० १/२/१५) वाल्मीकीय रामायण में अनुष्टुप् श्लोकों की संख्या प्रायः २२७०४ प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने रघुवंश में ५४८, कुमारसम्भव में २६५, भारवि ने किरातार्जुनीय में १२५, श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में ३७६ अनुष्टुपों का प्रयोग किया है। भट्टिकाव्य में १३०८, जानकीहरण में २८० तथा नवसाहसाङ्कचरित में ४५४ अनुष्टुपों का प्रयोग मिलता है।

मात्रावृत्त

मात्रावृत्तों के प्रत्येक पाद मात्राओं, मात्रिकगणों और लघुगुरुनिर्देश-द्वारा नियमित किये जाते हैं। इनमें दो प्रकार हैं, द्विपदी और चतुष्पदी। द्विपदी मात्रावृत्तों में आर्या के अनेक भेद-प्रभेदों का वर्णन मिलता है। इनमें मात्रागणवृत्त भी सम्मिलित किये गये हैं। कुछ विद्वानों की दृष्टि से मात्रावृत्तों के तीन मुख्य भेद हैं—आर्या, वैतालीय तथा मात्रासमक। इनमें से कतिपय के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

मात्रावृत्त चतुष्पदी (विषम)

आर्या—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश सार्या (श्रुत० ४)

जिस छन्द के प्रथम तथा तृतीय पाद में १२, १२ मात्रायें और द्वितीय पाद में १८ तथा चतुर्थ पाद में १५ मात्रायें हों, उसे आर्या कहते हैं। यथा—आर्यासप्तशती (१९०)

मात्रावृत्त-समचतुष्पदी

गीत्यार्या—गीत्यार्या लः (पि० छन्दःसूत्र ४/४८)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १६, १६, १६, १६ लघुवर्ण अर्थात् १६-१६ मात्रायें हों, उसे गीत्यार्या कहते हैं। (यथा—नैषधीयचरित २२/१४६)

मात्रावृत्त (द्विपदी)

१. **गीति**—आद्यर्धसमा गीतिः (पि०छन्दःसूत्र ४/२८)

जिस छन्द में आर्या के पूर्वार्द्ध के समान प्रत्येक अर्धभाग रचित हो (अर्थात् प्रत्यक में सात गण एक अर्धगण=दो गुरु ३०+३० मात्रायें) जिनमें छठा गण

जगणात्मक (।ऽ।) अथवा चतुर्लघुरूप नगण-लात्मक (।।।।) हो, उसे गीति कहते हैं (द्र० पि०सू० ४/२८ हलायुध)। (यथा—अभिज्ञानशाकुन्तलम् ३/१३)

२. **उपगीति**—अन्त्येनोपगीतिः (पि० छन्दःसूत्र ४/३९)

जिस आर्या का पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्धवत् हो, अर्थात् दोनों अर्धभागों में २७-२७ मात्रायें हों, उसे उपगीति कहते हैं। (यथा—महाभारत अनुशासनपर्व १४/१९)

३. **आर्यागीति**—अर्द्धे वसुगण आर्यागीतिः (पि० छन्दःसूत्र ४/३१)

जिस छन्द के प्रत्यर्धभाग में कोई भी यथेष्ट अष्टमात्रिकगण हों, जिनमें षष्ठगण जगणात्मक या नगणात्मक हो, अर्थात् ३२-३२ मात्रायें हों, उसे आर्यागीति कहते हैं। (यथा—शिशुपालवध ४/४८)

इसके अतिरिक्त इस छन्द के उदाहरण शिशुपालवध (४/५१) तथा भट्टिकाव्य (१३/१-२५, २९-५० पर्यन्त पद्य) में प्रभूत देखे जा सकते हैं। इस छन्द को जयकीर्ति ने (छन्दोऽनुशासन ५/१३) **स्कन्ध** नाम दिया है।

मात्रावृत्तों में अनेकविध श्रुतिसुखद छन्द लक्षणकारों ने वर्णित किये हैं। इनमें निर्धायिका, शीर्षक (जा०छ०वि०), द्विपदा (दोहा-मात्रार्धसमवृत्त), चतुष्पदी (चौपैया-मात्रासमवृत्त), कुण्डलिका (अष्टपदी-विषममात्रावृत्त), सौराष्ट्रम् (सोरठा-मात्रार्धसमवृत्त), चतुर्वचन (चौबोला-अर्धसमचतुष्पदी), घनाक्षरम् (मात्रावर्णसम-चतुष्पदी) आदि विभिन्न छन्दों के लक्षण एवं भेद-प्रभेदों के सहित उदाहरण श्रीकृष्णभट्ट की वृत्तमुक्तावली, दामोदर मिश्र के वाणीभूषण, चन्द्रशेखर-लक्ष्मीनाथ भट्ट के वृत्तमौक्तिक, नारायण भट्ट की वृत्तरत्नाकरटीका तथा दुःखभञ्जन कवीन्द्र के वाग्वल्लभ में मुख्यतः उपलब्ध होते हैं।

विरुदावली छन्द

गद्य-पद्यमय राजस्तुति को विरुद कहा जाता है और उन विरुदों के समूह को **विरुदावली** कहते हैं।[1] इन विरुदावलियों के लक्षण वृत्तमौक्तिक से पूर्व किसी रचना में स्पष्ट नहीं मिलते। विरुदावलियों के लक्षणकार लक्ष्मीनाथ भट्ट है। उन विरुदावलियों में से कुछ छन्दों का लक्षणपूर्वक उदाहरण प्रस्तुत है।

१. **द्विगाकलिका**—

चतुर्भिस्तुरंगैर्निजैर्द्विगा मैत्री हृदयद्वये। (वृत्तमौक्तिक २/९/५)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १६ मात्रायें चार तुरगों (चतुष्कलगणों) से नियमित हों, जिनमें दो हयो (चतुष्कलगणों) में द्विगा मैत्री (दो गुरुवर्णयुक्त वर्ण-

१. गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते।
तदावली समाख्याता कविभिर्विरुदावली॥ (वृत्तमौक्तिक २/९/२)

समता) हो, उसे द्विगा कलिका कहते हैं। यह चतुष्पदी होती है। इसके उदाहरण में एक पाद उद्धृत है—

जय जय वीर! क्षितिपतिहीर! (वृत्तमौक्तिक २/९/६)

इसमें चार चतुष्कलों (।।।।-ऽऽ-।।।।-ऽऽ) का प्रयोग है, जिसमें द्वितीय तथा चतुर्थ चतुष्कलों (हयों) में एक-एक गुरुवर्ण और रेफ से मैत्री प्रदर्शित है। द्वितीय हय का रेफ संयोग से गुरु और चतुर्थ हय का रेफ पादान्त में होने से गुरु माना गया है।

२. **द्विभङ्गीकलिका**—

द्वितुर्यौ मधुरश्लिष्टौ षड्गा लान्ताश्चतुर्गुरुः।

अत्र भङ्गात्तयोर्मैत्री षड्भङ्गः स्याद् द्विभङ्गिका ॥ (वृत्तमौक्तिक २/९/९)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में २८ वर्ण हो, जिनमें गुरुलघुक्रम से २४ और अन्त में ४४ वर्ण गुरु हों तथा पादान्तर्गत प्रथम २४ वर्णों में यह भङ्ग हो जिनमें परस्पर मित्रता हो, और प्रत्येक भङ्ग के अन्तर्गत द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ग शिलष्ट हो, अंतिम चार गुरु वर्णों में भी द्वितीय वर्ण शिलष्ट हो, उसे द्विभङ्गीकलिका कहते हैं। यथा—

रङ्गरक्त सङ्गसक्त चण्डचक्र दण्डशक्र चन्द्रमुद्र सान्द्रभद्र विष्णो जिष्णो।
(वृत्तमौक्तिक २/९/९)

३. **उत्पलचण्डवृत्त**—

भद्वयं चोत्पलं मतं शिलष्टौ द्विपञ्चमौ। (वृत्तमौक्तिक २/९/२१)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में ६ वर्ण भ भ (ऽ।।-ऽ।।) से नियमित हों, द्वितीय तथा पञ्चम वर्ण शिलष्ट हों अथवा १२ वर्णों के पाद हों, जिनमें ४ भगण हों, उसे उत्पलचण्डवृत्त कहते हैं। यथा—

नर्तितशर्क्कर चर्कृतचर्क्कर, वृद्धमरुद्धर-नर्दननिर्भर।

दुष्टविमर्दन शिष्टविवर्द्धन, सर्वविलक्षण मित्रकृतक्षण ॥

(रूपगोस्वामिकृत श्रीगोविन्द विरुदावली, द्र० वृत्तमौक्तिक २/९/२/१५)

४. **मञ्जरी खण्डावली**—

नरेन्द्रवर्जिता यत्र रचिताः स्युस्तुरङ्गमाः।

आद्यन्तपदसंयुक्ता मञ्जरी सा निगद्यते ॥ (वृत्तमौक्तिक २०/१०/३)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १६ मात्राएँ जगणरहित चतुष्फलगणों से नियमित हों और आदि या अन्त में आशीर्वादात्मक पद्य हों, उसे मञ्जरी खण्डावली कहते हैं।

लक्ष्मीनाथ भट्ट ने वृत्तमौक्तिक में लोक में प्रचलित विरुदावली आदि ६५ छन्दों का संस्कृत-लक्षण किया है।

५. **खञ्जविशाल—**

यत्र चरणे पूर्वं पंचदशादौ विरामस्ततः षोडशादौ तत् खञ्जविशालं भवति।

(वृत्तमुक्तावली ३/२७३)

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में ३१ वर्ण हों, जिनमें १५ और १६ वर्णों पर यति रहे; उसे खञ्जविशाल कहते हैं।

श्रीकृष्णभट्ट ने वृत्तमुक्तावली में लोक में प्रचलित १५ छन्दों का संस्कृत-लक्षण किया है।

६. **शुद्धध्वनि—**

आदौ षण्मात्रा यदि चरमे गा लघुरिति मध्ये वदतितराम्।
दण्डीवृतमोहा रचितजनोहा रसिकमनोहारि च नितराम्।
भुजगाधिपशेषो विहितविशेषो नियतमशेषोऽपहृतमदः।
शुद्धध्वनिवृत्तं सुकविविवृत्तं हृतजनचित्तं सततमदः।

(वाग्वल्लभ, मात्रासम० ३३)

जिस छन्द के प्रत्येक पादारम्भ में पहले ६ मात्राएँ, पुनः मध्य में दण्डी छन्द का लक्षण—तन तन त न, अन्त में एक गुरु (ऽ) हो, उसे शुद्धध्वनि कहते हैं। यही लक्षणपद्य उदाहरण भी है।

गद्यच्छन्द

छन्दश्शास्त्रीय आचार्यों ने वृत्तनिरूपण के साथ लक्षणग्रन्थों में गद्यों का भी सोदाहरण निरूपण किया है। संस्कृत के गद्यभाग में भी वृत्तों की भाँति श्रुतिमाधुर्य तथा बन्धवैशिष्ट्य प्राप्त होता है। अतः गद्यों को भी छन्दोयुक्त मानने की परम्परा वैदिक **यजुश्छन्दों** से प्रारम्भ होकर वाग्वल्लभ पर्यन्त दृष्टिगोचर होती है।[१]

गद्य के प्रमुख भेदों में मुक्तक, चूर्णक, वृत्तगन्धि तथा उत्कलिकाप्राय हैं। मुक्तक समासरहित, चूर्णक अल्पसमासयुक्त तथा उत्कलिकाप्राय बहुसमासयुक्त गद्य माने जाते हैं। वृत्तगन्धि गद्य में पद्यगणों का प्रभाव अनुभूत होता है। चूर्णक के आविद्ध, शुद्ध, ललित, अवृत्तिमुग्ध, अत्यल्पवृत्तिमुग्ध—ये भेद वृत्तमौक्तिककार (२/८) ने निर्दिष्ट किये हैं तथा वृत्तगन्धिगद्य के उदाहरण **मालतीमाधव**, **कादम्बरी** से उद्धृत किये हैं।

---

१. मुक्तकमल्पसमासं स्यादल्पसमासं च चूर्णकं कथितम्।
उत्कलिकाप्रायं बहुसमासमन्यच्च वृत्तभागयुतम्॥ (वाग्व० १/५१)

भास्करराय ने गाथा एवं गद्य मं सूक्ष्म भेद निरूपित करते हुए उनका लक्षण इसप्रकार किया है—

चतुरूनाधिकसंख्याकपादा गाथा,

पादविरहितं गद्यम् (पि० छ० ५/२ भाष्यराज)

उनके अनुसार **'सममर्धसमं विषमञ्च'** (पि० ५/२) सूत्र में 'च' पद से पिंगलाचार्य ने **गद्यच्छन्द** का भी सङ्केत किया है।[१]

दण्डकच्छन्द

भास्करराय के विवेचन (पि०सू० द्वितीयाध्यायान्त) के अनुसार गद्यात्मक यजुर्भाग में भी दण्डकच्छन्दों का अन्वेषण उचित है। उन्होंने दण्डकच्छन्दों का मूल वैदिक यजुर्मन्त्रों को मानते हुए अथर्व-संहिता के १८ मन्त्रों को उदाहरणार्थ निर्दिष्ट किया है। इनमें १०४ से अधिक वर्ण हैं तथा **बृहत्सर्वानुक्रमणी** में इनको दण्डक माना गया है।[२] **ऐतरेयब्राह्मण** (८/२७/७) के 'अस्मिन् राष्ट्रे' आदि मन्त्रों को भी भाष्यराज में (पि० ७/८०) दण्डक के रूप में उदाहृत किया गया है।

लौकिक संस्कृत में वर्णवृत्तों के अन्तर्गत सीमित तथा असीमित दण्डकों का विभाजन किया गया है। कतिपय स्तोत्रकारों की स्फुट दण्डक-रचनायें उपलब्ध होती हैं। केवल दण्डक छन्द की काव्यरचना **कवीन्द्राचार्य सरस्वती** द्वारा प्रणीत **'जगद्विजयच्छन्दः'** उपलब्ध है। काशीस्थ कवीन्द्राचार्य (ई० सत्रहवीं शताब्दी) के बृहत् एवं लघु जगद्विजयच्छन्दः काव्यों का टीका सहित प्रकाशन डा० सी० कुन्हन राजा ने विस्तृत भूमिका के साथ (गंगा ओरियन्टल सिरीज-ग्रन्थाङ्क २ के अन्तर्गत) अनूप संस्कृत लाइब्रेरी (बीकानेर) से १९४५ में किया है। सम्पादक ने इस रचना के लिये काव्य की अपेक्षा गान (Song) की संज्ञा उपयुक्त मानी है (द्र० भूमिका पृ० ५१-५२) क्योंकि इस छन्दोविधि में वर्णसाम्य, तान लय (Rhyming) का वैशिष्ट्य है।

---

१. गाथागद्ययोर्लगानुपूर्वीघटितलक्षणाभावाच्छन्दोवृत्तोभयविभाजकोपाधिप्राये कण्ठरवेण कथनायोग्यत्वाच्चकारेणैव तत्संग्रहः आचार्येण कृतः (भाष्यराज ५/२)।

२. ततश्चैनमिति द्वासप्ततिर्मन्त्रैकदेवत्याः...... तथा छन्दस्येता अष्टादश दण्डका भवन्ति (बृहत्-सर्वानुक्रमणी ७/२४) यत्तु समान्यादीनामुत्कृतिपर्यन्तानां वैदिकत्वं लौकिकत्वञ्चेति वृत्तिवाक्यम्। अस्योत्कृतिपर्यन्तानामित्युक्तिरयुक्ता। दण्डकेष्वपि वैदिकत्वस्येष्टत्वात्। अत एवाथर्वणवैदिकछन्दचितावथर्गक्षराण्युच्यन्त इत्युपक्रम्य चतुरक्षरोक्तेत्यादि चतुः शताक्षरोत्कृतिरित्यन्तमुक्ता। अतः परं दण्डका भवन्तीत्यृग्लक्षणमित्युपसंहारेण दण्डकानामपि वैदिकान्तःपात उक्तः (वृ० च० उ० १०५बी.-१०६ए.)। आथर्वणे "ततश्चैनमन्येन शीर्षा (अ० ११/२/२) इत्यादयोऽप्युदाहार्याः। तथा च तदीयमनुक्रमणिकासूत्रम्—ततश्चैनमिति द्वासप्ततिरिति प्रकृत्याद्या अष्टादश दण्डका भवन्तीति अग्निमद्य होतारमित्यादिसूक्ता ब्रूहि" इत्यन्तः (तै० ब्रा० ३.६.१५.) सप्तत्युत्तरशताक्षरः। एवमध्रिगुप्रैषादयो दण्डका उदाहार्याः।

ग्रन्थों में लक्षित छन्दों की प्रभेद-तालिका

वैदिक छन्द (उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६)

- वर्णछन्द (१९२६)
- मात्राछन्द (१२०)
  - द्विपदी छन्द (९०) → आर्या (२०, २७ मात्रा) इत्यादि
  - चतुष्पदी छन्द (३०) → औपच्छन्दसक (१६, १८, १६, १८ मात्रा) इत्यादि

वर्णछन्द →

- समपाद छन्द (१५३९) → (चारों चरणों में वर्ण तथा मगणादि गणों से सम)
- अर्धसमपाद छन्द (१७३) → (१,३ तथा २,४ चरणों में सम) → यथा-पुष्पिताग्रा (ननरय, नजजरग, इत्यादि
- विषमपादछन्द (९७) → (चारों चरणों में विषम) → यथा-उद्गता इत्यादि (सजसल, नसजग, भनजलग, सजसजग)

समपाद छन्दों के वर्णित प्रभेद

उक्तावृत्ति में २ छन्द	यथा-ह्री	(ग) इत्यादि
अत्युक्तावृत्ति में ४ छन्द	यथा-सुख	(लग) इत्यादि
मध्यावृत्ति में ८ छन्द	यथा-स्त्री	(म) इत्यादि
प्रतिष्ठावृत्ति में १६ छन्द	यथा-कुसुमिता	(नग) इत्यादि
सुप्रतिष्ठावृत्ति में ३२ छन्द	यथा-नन्दा	(तलग) इत्यादि
गायत्रीवृत्ति में ६४ छन्द	यथा-तनुमध्या	(तय) इत्यादि
उष्णिग्वृत्ति में १२८ छन्द	यथा-सुभद्रा	(जरग) इत्यादि
अनुष्टुप्वृत्ति में १०० छन्द	यथा-समानी	(रजगल) इत्यादि
बृहतीवृत्ति में ७० छन्द	यथा-हलमुखी	(र न स) इत्यादि
पंक्तिवृत्ति में १०९ छन्द	यथा-मत्ता	(म भ स ग) इत्यादि
त्रिष्टुप्वृत्ति में १२८ छन्द	यथा-इन्द्रवज्रा	(ततजगग) इत्यादि
जगतीवृत्ति में १७९ छन्द	यथा-वंशस्थ	(जतजर) इत्यादि
अतिजगतीवृत्ति में ११८ छन्द	यथा-प्रहर्षिणी	(मनजरग) इत्यादि

शक्वरीवृत्ति में ११४ छन्द	यथा-वसन्ततिलका	(तभजजगग) इत्यादि
अतिशक्वरीवृत्ति में ८४ छन्द	यथा-मालिनी	(न न म यय) इत्यादि
अष्टिवृत्ति में ५२ छन्द	यथा-ऋषभगजविलसित	(भरनननग) इत्यादि
अत्यष्टिवृत्ति में ४१ छन्द	यथा-मन्दाक्रान्ता	(मभमततगग) इत्यादि
धृतिवृत्ति में ५२ छन्द	यथा-चित्रलेखा कुसुमितलतावेल्लिता	(मतनयyय) इत्यादि
अतिधृतिवृत्ति में ४० छन्द	यथा-शार्दूलविक्रीडित	(मसजसततग) इत्यादि
कृतिवृत्ति में २५ छन्द	यथा-सुवदना	(मरभनयमलग) इत्यादि
प्रकृतिवृत्ति में २५ छन्द	यथा-स्रग्धरा	(मरभनययय) इत्यादि
आकृतिवृत्ति में ३१ छन्द	यथा-मद्रक	(भरनरनरनग) इत्यादि
विकृतिवृत्ति में २८ छन्द	यथा-अश्वललित	(नजभजभजभलग) इत्यादि
संकृतिवृत्ति में २९ छन्द	यथा-तन्वी	(भतनसभभनय) इत्यादि
अभिकृतिवृत्ति में २४ छन्द	यथा-क्रौञ्चपदा	(भमसभननननग) इत्यादि
उत्कृतिवृत्ति में ३५ छन्द	यथा-भुजङ्गविजृम्भित	(ममतनननरसलग) इत्यादि

दण्डकछन्दोभेद (११७)

सीमितदण्डक में ९५ दण्डक छन्द	असीमित दण्डक में २२ दण्डक छन्द
↓	↓
(२७ वर्ण से ९९९ वर्ण-पादपर्यन्त मगणादि गणों तथा गुरु-लघुवर्णों से सीमित) यथा-चण्डवृष्टिप्रयात (२ नगण, ७ रगण) इत्यादि	(मगणादि गणों तथा गुरु-लघुवर्णों की गणना से रहित तथा समपाद) यथा-प्रचित (नन+यथेच्छ रगण संख्या) इत्यादि।

छन्दोवृद्धि की प्रक्रिया

मगणादि अष्टगणों और गुरु-लघुवर्णों को पंक्ति में नियमानुसार परिवर्तित कर समदशा में पद्य के चारों चरणों में प्रयुक्त करने पर समवृत्तों का, पद्य के प्रथम और तृतीय, द्वितीय और चतुर्थ चरणों में मगणादि गणों को समता के साथ नियमित करने पर अर्द्धसमवृत्तों का और पद्य के प्रत्येक चरण में यथोक्त पृथक् गणों, मात्राओं के प्रयोग से विषमवृत्तों का निर्माण होता है। छन्दोनिर्माण में वृद्धि की प्रक्रिया को छन्दःप्रस्तार-प्रक्रिया कहते हैं। छन्दःप्रस्तार-प्रक्रिया का प्रयोग आचार्य पिङ्गल से वाग्वल्लभ के रचयिता दुःखभञ्जन पर्यन्त प्रायः प्रत्येक छन्दःप्रवक्ता की रचना में प्राप्त होता है। स्वयम्भू के बाद **जयकीर्ति** ने छन्दोऽनुशासन में अपने पूर्ववर्ती छन्दःप्रवक्ताओं की अपेक्षा अधिक वृत्तों का निर्माण किया है। उसके अनन्तर

वाणीभूषण तथा वृत्तमौक्तिक में अधिक छन्दों को लक्षित किया गया है। **वाग्वल्लभ** में तो दु:खभञ्जन ने छन्द:प्रस्तार की प्रक्रिया द्वारा सर्वाधिक वृत्त-निर्माण कर संस्कृत-छन्द:शास्त्र में अपूर्व योगदान किया है। उनके द्वारा लक्षित प्राय: १५४० छन्दों में से १०३१ छन्द प्रस्तार-प्रक्रिया के अन्तर्गत नवीन उल्लिखित छन्द है। प्रस्तार-प्रक्रिया के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि लौकिक छन्दों के विस्तार में वर्णवृद्धि के साथ पंक्ति में मगणादि को परिवर्तित कर अंकित करने की प्रक्रिया प्रधान रही है।

संस्कृतकाव्यों में प्रयुक्त छन्द

संस्कृतकाव्य-परम्परा में आदिकाव्य वाल्मीकि-रामायण में सर्वाधिक अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है। किन्तु **रामायण** में अनुष्टुप् के अतिरिक्त १५ अन्य छन्दों का प्रयोग भी मिलता है। तदनन्तर महर्षि व्यास द्वारा प्रणीत **महाभारत** का स्थान है, जो छन्दों का सागर है। जिस प्रकार समुद्र में नाना नदियों की धाराएँ समाहित होती हैं, उसीप्रकार महाभारत में विभिन्न छन्दोधाराओं का समावेश है। इन समस्त लौकिक छन्दोधाराओं का मूल-स्रोत वेद हिमशैल-स्वरूप है, जिसकी छन्दोनदियों से धारायें प्रवाहित होकर लौकिक काव्यधारा को सरस और परितृप्त बनाती हैं। काव्यों में कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, जयदेव आदि की छन्दोधाराएँ प्रमुख हैं, जिनसे आधुनिक नवीन छन्द:प्रवाह भी प्रभावित है। भरत से वर्तमानकाल तक छन्दोलक्षणकारों के ग्रन्थों में अनुमानत: २३४५ छन्दों के लक्षण मिलते हैं; जिसमें प्राय: सौ छन्दों का काव्यों में प्रयोग हुआ है। उनमें भी कुछ छन्द ऐसे हैं, जिनका प्रयोग यत्र-तत्र एक-दो पद्य के रूप में मिलता है। काव्यों में जिन छन्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, इसप्रकार के २८ प्रमुख छन्द निम्नांकित हैं—

(१) अनुष्टुप् , (२) उपजाति (इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रा), (३) वंशस्थ, (४) उपेन्द्रवज्रा, (५) इन्द्रवज्रा, (६) पुष्पिताग्रा, (७) वैतालीय, (८) द्रुतविलम्बित, (९) रथोद्धता, (१०) मन्दाक्रान्ता, (११) वियोगिनी, (१२) स्वागता, (१३) उद्गता, (१४) औपच्छन्दसक, (१५) उपगीत्यार्या, (१६) मालिनी. (१७) उपजाति (अन्य छन्दों का मिश्रण), (१८) वसन्ततिलका, (१९) प्रमिताक्षरा, (२०) प्रहर्षिणी, (२१) मञ्जुभाषिणी, (२२) रुचिरा, (२३) शालिनी, (२४) शार्दूलविक्रीडित, (२५) शिखरिणी, (२६) हरिणी, (२७) आर्या और (२८) स्रग्धरा।

संस्कृत के दृश्यकाव्यों (नाटकों) में भी अधिकतर वही छन्द प्रयुक्त हैं, जो संस्कृत-महाकाव्यों में प्रमुख रूप से निर्दिष्ट किये गये हैं। इनके अतिरिक्त नाटकों में निम्नाङ्कित छन्दों के विरल प्रयोग मिलते हैं—

तोटक, सुबोधिता, मत्तमयूर, नाराचक, अपरवक्त्र, पथ्यावक्त्र, मालभारिणी, क्षमा, प्रमुदितवदना, जलधरमाला, जलोद्धतगति, वंशपत्रपतित, धृतश्री, कुररीरुता, स्रग्विणी, दोधक, आर्यागीति, नन्दन, प्रहरणकलिता और वैश्वदेवी।

इस विषय में भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भट्टनारायण, भवभूति, राजशेखर, जयदेव आदि नाटककारों के नाटक दर्शनीय हैं।

प्रसिद्ध काव्यों में मुख्यतः व्यवहृत छन्द

संस्कृत के महाकवियों की काव्यरचनाओं में प्रायः ५० छन्द ही प्रयुक्त दृष्टिगोचर होते हैं। सर्वाधिक छन्दोवैविध्य **माघ** द्वारा प्रदर्शित किया गया है। आर्षकाव्यों में **श्रीमद्भागवत** महापुराण में प्रायः २५ प्रकार के छन्द प्राप्त हैं। महाभारत में प्रायः १८ तथा रामायण में प्रायः १३ प्रकार के छन्द हैं।

कतिपय प्रसिद्ध महाकवियों की रचनाओं में सर्गानुसार प्रधानरूप से जो छन्द प्रयुक्त हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इसप्रकार हैं—

	छन्दोनाम सर्गसंख्या
(१) **नैषधीयचरितम्**–	वंशस्थबिलम् (१, ९, १२, १५, १६)
	वैतालीयम् (२)
	उपजातिः (३, ६, १०, १४, २२ विशुद्धा)
	द्रुतविलम्बितम् (४)
	स्वागता (५, २१)
	इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा (७)
	उपेन्द्रवज्रा (८)
	वसन्ततिलका (११, १३)
	अनुष्टुप् (१७, २०)
	रथोद्धता (१८)
	हरिणी (१९)
२. **शिशुपालवधम्**–	वंशस्थबिलम् (१)
	अनुष्टुप् (२, १९)
	उपजातिः (३, ४ उपजातिभेद १२)
	वसन्ततिलका (५)
	द्रुतविलम्बितम् (६)
	पुष्पिताग्रा (७)
	प्रहर्षिणी (८)
	प्रमिताक्षरा (९)
	स्वागता (१०)
	मालिनी (११)
	मञ्जुभाषिणी (१३)
	रथोद्धता (१४)
	उद्गता (१५)

	छन्दोनाम	सर्गसंख्या
	वैतालीयम् (१६)	
	रुचिरा (१७)	
	शालिनी (१८)	
	औपच्छन्दसकम् (२०)	
३. **किरातार्जुनीयम्–**	वंशस्थबिलम् (१, ४, ८, १३, १४)	
	सुन्दरी (२)	
	इन्द्रवज्रा (३, १७)	
	द्रुतविलम्बितम् (५, १८)	
	प्रमिताक्षरा (६)	
	प्रहर्षिणी (७)	
	स्वागता (९)	
	पुष्पिताग्रा (१०)	
	औपच्छसकम् (११)	
	उद्गता (१२)	
	अनुष्टुप् (१५)	
	उपेन्द्रवज्रा (१६)	
४. **रघुवंशम्–**	अनुष्टुप् (१, ४, १०, १२, १५, १७)	
	उपजाति: (२, ५, ६, ७, १३, १४, १६, १८)	
	वंशस्थबिलम् (३)	
	सुन्दरी (८)	
	द्रुतविलम्बितम् (९)	
	रथोद्धता (११, १९)	
५. **कुमारसम्भवम्–**	उपजाति: (१, ३, ७, ९, ११, १२, १३)	
	अनुष्टुप् (२, ६, १०, १६)	
	सुन्दरी (४)	
	वंशस्थबिलम् (५, १४)	
	रथोद्धता (८)	
	इन्द्रवज्रा (१५)	
	वसन्ततिलका (१७)	
६. **भट्टिकाव्यम्–**	रुचिरा (१)	
	उपजाति: (२, ३, ११, १२)	
	अनुष्टुप् (४-९, १४-२२)	
	द्रुतविलम्बितम् (१०)	
	गीतिभेद (१३)	

अलङ्कारशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के छन्द

अलङ्कारशास्त्र के आचार्य, भरत, भामह, दण्डी, वामन, उद्भट, रुद्रट, आनन्दवर्धन, धनञ्जय, भोजराज, मम्मट, क्षेमेन्द्र, रुय्यक, हेमचन्द्र तथा जगन्नाथ आदि की रचनाओं एवं दर्शनशास्त्रीय ग्रन्थों में शास्त्रविषयक प्रतिपादन में अनुष्टुप् तथा आर्या छन्द का ही प्रयोग प्राय: मिलता है। धर्मशास्त्रीय स्मृतियों, वेदाङ्ग, शिक्षा, प्रातिशाख्यादिग्रन्थों, गृह्यकर्मादिप्रतिपादक कारिकाग्रन्थों, आयुर्वेदीयग्रन्थों, नीतिग्रन्थों, कोषग्रन्थों तथा अन्य प्रकरणग्रन्थों की पद्यबद्ध रचनाओं में अनुष्टुप् का अधिकतम प्रयोग है। अनुष्टुप् के अतिरिक्त आर्या भी शास्त्रकारों का प्रिय छन्द है।

धार्मिक ग्रन्थों की दृष्टि से पौराणिक वाङ्मय विविध छन्दों का भाण्डागार है। पुराणों में अनेकविध वर्णच्छन्द तथा मात्राच्छन्द उपलब्ध होते हैं। विशेषत: **श्रीमद्भागवत** में साङ्गीतिक लय की दृष्टि से उत्कृष्ट छन्दों का मनोहर प्रयोग है। गोपीगीत, युगलगीत, वेणुगीत, वेदस्तुति आदि अनेक स्तुति-वर्णनों में सम्पूर्ण अध्याय मनोहर तथा असामान्य छन्दों से परिपूर्ण है। इसके साथ श्रीमद्भागवत के पञ्चमस्कन्ध में गद्यच्छन्दों की विशिष्ट अवस्थिति भी साहित्यजगत् के लिये प्रेरणा-स्रोत है।

धार्मिक स्तोत्र-साहित्य भी संस्कृतछन्दों के नवीन प्रयोग की दृष्टि से महनीय है। महाकवियों की अपेक्षा, स्तोत्रसाहित्य के भक्तकवियों ने अनेक अल्पज्ञात छन्दों की सुमधुर प्रस्तुति की है। **श्रीशङ्कर भगवत्पाद** की रचनायें इस दृष्टि से विशेष महनीय हैं तथा अन्य स्तोत्रों के परिशीलन से भी यह ज्ञात होता है कि नियमित काव्य-रचनाओं की अपेक्षा स्फुट स्तोत्ररचनाओं में छन्दों की छटा विशेष दर्शनीय है।

छन्दों की पारस्परिक निर्मिति

संस्कृतछन्दों में प्रस्तारप्रक्रिया से विविध छन्दोभेदों की सृष्टि आचार्यों के द्वारा निरूपित है। इसके अतिरिक्त आचार्य **क्षेमेन्द्र** ने एक अन्य प्रक्रिया का सङ्केत दिया है, जिसके द्वारा छन्दों की परस्पर निर्माणविधि ज्ञात होती है। क्षेमेन्द्र के उल्लेखानुसार शालिनी छन्द में प्रारम्भिक चार वर्णों के बाद और अन्तिम सात वर्णों से पूर्व छ: वर्ण (पाँच लघु तथा एक गुरु) जोड़ देने से मन्दाक्रान्ता छन्द बन जाता है। इसीप्रकार उपेन्द्रवज्रा छन्द में अन्तिम वर्ण से पूर्व एक लघु वर्ण की संयोजना से वंशस्थ छन्द की सृष्टि हो जाती है।[१]

---

१. मन्दाक्रान्ता भवेन्मध्ये शालिनी पूरिताक्षरा।
उपेन्द्रवज्रं वंशस्थं पर्यन्तैकाक्षराधिकम्॥ (सुवृत्ततिलक २/४४)

इस सङ्केत के आधार पर कतिपय अन्य छन्दों की निर्मिति भी इस प्रकार होती है।

१. चन्द्रिका छन्द के अन्त में एक गुरु और एक लघु जोड़ देने से **रथोद्धता** छन्द बनता है।
२. इन्द्रवज्रा के उपान्त में एक लघु वर्ण जोड़ने से **इन्द्रवंशा** छन्द बनता है।
३. विदुषी छन्द के अन्तिम दो वर्णों से पूर्व एक लघु वर्ण जोड़ देने से **मोटक** छन्द बनता है।
४. मोटक छन्द के प्रारम्भिक दोनों गुरुवर्णों के स्थान पर लघु वर्ण रख देने पर **तोटक** छन्द हो जाता है।
५. रथोद्धता छन्द के प्रथम ह्रस्व वर्ण को गुरु कर देने से **ललिता** छन्द प्रकाश में आ जाता है।
६. वंशस्थ में सातवें वर्ण के आगे एक लघुवर्ण अधिक जोड़ने से **मञ्जुभाषिणी** बनती है।
७. स्वागता छन्द के आदि में दो लघु वर्णों की योजना **कुटज** छन्द की सृष्टि करती है।
८. वंशस्थ छन्द के आदि में एक और लघुवर्ण जोड़ने से **सुदन्त** छन्द विकसित होता है।
९. इन्द्रवज्रा के प्रारम्भिक चार वर्णों के बाद एक नगण जोड़ देने से **वसन्ततिलका** छन्द बनता है।
१०. शालिनी छन्द में प्रारम्भिक चार वर्णों के आगे चार गुरु वर्णों की संयोजना से **चित्रा** छन्द बनता है।
११. शिखरिणी में अन्तिम वर्ण से पूर्व दोनों लघु वर्णों को गुरु बना देने पर **जयानन्द** नामक छन्द बनता है।
१२. मन्दाक्रान्ता में प्रारम्भिक चार वर्णों के बाद एक और लघु वर्ण जोड़ने से **चन्द्रलेखा** छन्द हो जाता है।
१३. लक्ष्मी छन्द में प्रारम्भ के सात वर्णों के बाद तीन लघु और एक गुरु वर्ण जोड़ने से **काञ्ची** छन्द बन जाता है।
१४. मन्दाक्रान्ता में चार वर्णों के बाद एक गुरु वर्ण होने पर **कुसुमलतावेल्लिता** छन्द होता है।
१५. हरिणी छन्द के प्रारम्भ में एक लघु वर्ण और जोड़ देने से **ललित** नामक छन्द बनता है।

१६. मन्दाक्रान्ता के आदि में एक लघु और एक गुरु वर्णों के जोड़ने से **मेघविस्फूर्जिता** छन्द का निर्माण होता है।

१७. शार्दूलविक्रीडित के प्रारम्भ के दो गुरु वर्णों को दो लघु वर्णों में परिवर्तित कर देने पर **मत्तेभविक्रीडित** छन्द होता है।

१८. शार्दूलविक्रीडित के अन्तिम चार वर्णों को हटाकर उनके स्थान में एक सगण रख दिया जाये तो **शार्दूलललित** छन्द बनता है।

१९. मन्दविस्फूर्जिता के छह वर्णों के आगे एक लघु वर्ण और जोड़ दिया जाये तो **शोभा** नामक छन्द बन जाता है।

२०. काञ्ची छन्द में सात अक्षरों के आगे दो लघु वर्ण अधिक जोड़ देने पर **चित्रमाला** छन्द प्रकाश में आ जाता है।

२१. काञ्ची छन्द में सात वर्णों के आगे तीन लघु वर्णों को और जोड़ दिये जाने पर तथा स्रग्धरा छन्द में प्रारम्भ के दो गुरु वर्णों को लघु से बदल दिये जाने से **महास्रग्धरा** नामक नया छन्द बन जाता है।

२२. काञ्ची छन्द में सात वर्णों के आगे एक नगण, एक भगण और एक गुरुवर्ण की योजना से **स्रग्धरा** छन्द की सृष्टि होती है।

२३. स्रग्धरा छन्द के आदिम सात वर्णों से अथवा हरिणी के अन्तिम सात वर्णों से **जया** नामक छन्द बन सकता है।

२४. स्रग्धरा के आदिम सात वर्ण और हरिणी के अन्तिम सात वर्ण मिलकर **ज्योत्स्ना** नामक छन्द की सृष्टि करते हैं।

२५. मालिनी के आदिम आठ वर्ण और शार्दूलविक्रीडित के अन्तिम सात वर्ण मिलकर **चन्द्रोद्योत** छन्द का निर्माण करते हैं।

२६. मालिनी के आदिम आठ अक्षर और हरिणी के अन्तिम सात अक्षर मिलकर **रूपमालिनी** छन्द को विकसित करते हैं।

२७. मन्दाक्रान्ता के आदिम दस वर्णों और शिखरिणी के अन्तिम छह वर्णों को मिलाकर **मदनललिता** छन्द बनाया जाता है।

२८. हरिणी छन्द के आदिम दस वर्ण और शालिनी के अन्तिम सात वर्ण मिलकर **पद्य** नामक छन्द बनाते हैं।

२९. हरिणी के आदिम दस वर्ण और शार्दूलविक्रीडित के अन्तिम सात वर्ण मिलकर **रोहिणी** छन्द की सृष्टि करते हैं।

३०. चन्द्रलेखा छन्द के आदि से दस अक्षरों और शार्दूलविक्रीडित के अन्तिम सात वर्णों को मिलाकर **केसर** छन्द बनता है।

३१. शिखरिणी के आदिम बारह वर्ण और शार्दूलविक्रीडित के अन्तिम सात अक्षर मिलकर **छाया** नामक छन्द बनाते हैं।

३२. स्रग्धरा के प्रारम्भिक चौदह वर्ण और शिखरिणी के अन्त के छः वर्ण मिलकर **सुवदना** नामक छन्द की सृष्टि करते हैं।

इस रीति से अन्य छन्दों की सृष्टि भी अन्वेषणीय है।

काव्यरस तथा वर्ण्य-प्रसङ्गानुरूप छन्दों का प्रयोग

संस्कृतसाहित्य के आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण से प्रारम्भ कर संस्कृत में जितने काव्य प्राप्त होते हैं, उनमें काव्यकला और वर्ण्यविषय की दृष्टि से छन्दोविशेष प्रयुक्त हुए हैं, तथा वर्ण्यविषय को प्रस्तुत करने में प्रसङ्ग की दृष्टि से अनुरूप छन्दों को प्रसिद्धि प्राप्त है, यह भी विवेच्य विषय है। सामान्यतः संस्कृत के छन्दोलक्षण-ग्रन्थों में २०४६ छन्दों के लक्षण प्राप्त होते हैं, जिनमें प्रायः ७० छन्दों का काव्यों में प्रयोग मिलता है। इन ७० छन्दों में से भी निम्नांकित १५ छन्दों का काव्यकला तथा वर्ण्यविषय की दृष्टि से प्रभूत प्रयोग हुआ है। इस कारण ये छन्द अन्य छन्दों की अपेक्षा काव्यजगत् में अधिक प्रसिद्ध हुये हैं।

अनुष्टुप्—अनुष्टुप् छन्द का उपयोग महाकाव्य के आदि में, कथा-प्रारम्भ के प्रसङ्ग में, वैराग्यजनक उपदेश में तथा काव्यों में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों के अन्त में किया जाता है।[1] काव्यों में अनुष्टुप् छन्द का सर्वाधिक उपयोग मिलता है। वाल्मीकीय रामायण का प्रारम्भ भी इसी छन्द से हुआ है।[2] लौकिक छन्दोजगत् में तो अनुष्टुप् को आदि छन्द का गौरव प्राप्त है। महर्षि वाल्मीकि के मुख से निस्सृत सर्वप्रथम छन्द की वाणी[3] अनुष्टुप् नाम से व्यवहृत है। वाल्मीकि के अनन्तर महर्षि व्यास, कालिदास आदि कवियों ने भी अपने-अपने काव्यों में इसका अधिकाधिक उपयोग किया गया है।[4] उपदेशात्मक दृष्टि से महाभारत से गीता-भाग को उद्धृत किया जा सकता है, यह प्रायः अनुष्टुप् छन्दों में ही है।[5] इतिहास-पुराण-प्रसङ्गों के लिये अनुष्टुप् सर्वथा उपयुक्त माना गया है। शास्त्ररचना के लिये भी अनुष्टुप् श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त कवि क्षेमेन्द्र ने **अभिनन्द** नामक कवि की अनुष्टुप्छन्द के रचना-प्रयोग में प्रशंसा की है।[6]

---

१. आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तरसंग्रहे।
समोपदेशवृत्तान्ते सन्तः शंसन्त्यनुष्टुभम्॥ (सुवृततिलक ३/१६)

२. तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्॥ (वाल्मीकीय रामायण १/१/१)

३. मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ (वाल्मीकीय रामायण १, /१५)

४. महाभारत में अधिकतम श्लोक अनुष्टुप् है। रघुवंश के प्रारम्भ में १-१.८ श्लोक अनुष्टुप् है।

५. श्रीमद्भगवद्गीता में अधिकतम श्लोक अनुष्टुप् हैं।

६. अनुष्टुप् सततासक्ता साभिनन्दस्य नन्दिनी।
विद्याधरस्य वदने गुलिकेव प्रभावभूः॥ (सुवृत्ततिलक ३/२९)

काव्यकला की दृष्टि से भी अनुष्टुप् छन्द का सर्वाधिक उपयोग किया गया है। भारवि ने **किरातार्जुनीय** के १५वें सर्ग में और माघ ने **शिशुपालवध** के १९वें सर्ग में इसी छन्द में अर्थत्रयवाची[१], एकाक्षरपाद[२], गोमूत्रिकाबन्ध[३], एकाक्षर[४], समुद्रक[५], प्रतिलोमानुलोमपाद[६], सर्वतोभद्र[७], अर्धभ्रमक[८], द्व्यक्षर[९], शृङ्खलायमक[१०], गूढचतुर्थपाद[११], मुरजबन्ध[१२], गतप्रत्यागत[१३] आदि से रचना में काव्यकला का प्रदर्शन किया है। भाव तथा कला की दृष्टि से भी यह छन्द सर्वथा उपयुक्त है। यथा—

जगतीशरणे युक्तो हरिकान्तः सुधासितः।
दानवर्षी कृताशंसो नागराज इवाबभौ॥ (किरातार्जुनीय १५/४५)

यह अर्थत्रयवाची श्लोक है। भाव की दृष्टि से इसमें प्रयुक्त पद तीन प्रकार के अर्थों को प्रकट करते हैं। भारवि ने लघुच्छन्द अनुष्टुप् में तीन अर्थों से युक्त भाव को प्रदर्शित करते हुए अर्जुन की उपमा शिलष्ट पदों से अगराज (हिमालय), नागराज (ऐरावत तथा अहिराज) द्वारा प्रकट की है। यह उनकी रचना-प्रक्रिया में छोटे छन्द द्वारा अनेक भावों को प्रदर्शित करने की अर्थगौरव-क्षमता को प्रकट करता है। इससे स्पष्ट होता है कि अनुष्टुप् छन्द में अनेक भावों का एक साथ, एक ही पद्य में समावेश किया जा सकता है, जो अन्य छन्दों में दुष्कर है।

काव्यकला की दृष्टि से अनुष्टुप् छन्द के उपयोग का प्रदर्शन सर्वप्रथम भारवि के काव्य में देखने को मिलता है। किरातार्जुनीय में विविध बन्धों में पद्यों का प्रणयन किया गया है। उदाहरण के लिए उनमें से सर्वतोभद्र का प्रदर्शन प्रस्तुत है—

दे वा का निनि का वा दे, वाहि का स्व स्व का हि वा।
का का रे भ भ रे का का, निस्व भव्य व्य भ स्व नि॥
(किरातार्जुनीय १५/२५)

---

१. किरातार्जुनीय १५/४५, शिशुपालवध १९/११६।
२. किरातार्जुनीय १५/५।
३. किरातार्जुनीय १५/१२।
४. किरातार्जुनीय १५/१४।
५. किरातार्जुनीय १५/१६।
६. किरातार्जुनीय १५/१८।
७. किरातार्जुनीय १५/२०।
८. किरातार्जुनीय १५/२७।
९. किरातार्जुनीय १५/३८।
१०. किरातार्जुनीय १५/४२।
११. किरातार्जुनीय १५/४३।
१२. शिशुपालवध १९/२९।
१३. शिशुपालवध १९/८८।

इसप्रकार काव्यकला में प्रयोग के अतिरिक्त सम्पूर्ण काव्यजगत् के चारों विभागों (शास्त्र, काव्य, शास्त्रकाव्य और काव्यशास्त्र) में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया जाता है।[१]

उपजाति—अन्य विषयों की अपेक्षा कवि क्षेमेन्द्र ने उपजाति छन्द में शृङ्गार-रस के आलम्बनभूत उदात्त नायिकाओं के रूपों का, वसन्तादि षड् ऋतुओं का और उसी के अनुकरण पर ऋतुओं के अङ्गों का वर्णन करना उचित बतलाया है।[२] उपर्युक्त वर्णनप्रसङ्गों में जितनी शोभा इस छन्द की होती है, उतनी अन्य किसी छन्द की नहीं है। उदाहरणार्थ रूप-वर्णन में कालिदासकृत उपजाति-छन्द का प्रयोग प्रस्तुत किया जाता है—

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥

(कुमारसंभव १/३९)

क्षेमेन्द्र ने उपजातिछन्द के प्रयोग में **पाणिनि** की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[३] चमेली की लता से वाटिका की शोभा जैसे बढ़ जाती है, उसीप्रकार चमत्कारिक उपजाति छन्द के द्वारा पाणिनि का काव्य स्पृहणीय बन गया है। पाणिनि का उक्त काव्य **पातालविजय** या **जाम्बवतीविजय** था। सम्भवतः उसमें उपजाति छन्द का चमत्कारिक प्रयोग हुआ था। यह काव्य उपलब्ध नहीं है, किन्तु उसका इतिहास में उल्लेख है तथा सुभाषितसंग्रहों में पाणिनि के नाम से उक्त काव्यों से पद्यों के उद्धरण प्राप्त होते हैं।[४] सम्भवतः कवि क्षेमेन्द्र के समय में वे काव्य उपलब्ध रहे हों, जिससे उन्होंने पाणिनि के उपजाति छन्द के प्रयोग की कालिदास आदि के प्रयोग की अपेक्षा अधिक प्रशंसा की है।

रथोद्धता—चन्द्रचन्दनादि उद्दीपन-विभावों के वर्णन में रथोद्धता छन्द का प्रयोग अच्छा होता है।[५] इस छन्द में उक्त उद्दीपनविभाव जितने उत्कृष्ट ढंग से उद्दीप्त होते हैं, उतने अन्य किसी छन्द में नहीं। उदाहरण केलिये उद्दीपनविभाव के वर्णन में कालिदास का पद्य प्रस्तुत हैं—

---

१. सुवृत्ततिलक ३/२-९ (हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला २७६)।

२. शृङ्गारालम्बनोदारनायिकारूपवर्णनम्।
वसन्तादि तदङ्गं च सच्छायमुपजातिभिः ॥ (सुवृत्ततिलक ३/१७)।

३. स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः।
चमत्कारैकसाराभिरुत्थानस्येव जातिभिः ॥ (सुवृत्ततिलक ३/३०)।

४. ए०बी० कीथ—संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी, अनु० मंगलदेव शास्त्री, पृ० ५७)।

५. रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु (सुवृत्ततिलक ३/१८ का पूर्वार्द्ध)

अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सन्नियम्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥
(कुमारसम्भव ८/६२)

यौवनोद्भव, चन्द्रोदय, उद्यान आदि का वर्णन रथोद्धता में उत्कृष्ट होता है। कालिदास ने चन्द्रोदयरूप उद्दीपन विभाव के वर्णन में रथोद्धता छन्द का प्रयोग किया है, जो विषय के समान ही रस के उद्दीपन में सहायक बन रहा है।

वंशस्थ—सन्धिविग्रहादि-षड्गुणों से प्रशस्त राजनीति के वर्णन में वंशस्थ छन्द का प्रयोग सुन्दर माना गया है।[१] महाकवि भारवि ने राजनीति के वर्णन में वंशस्थ छन्द का प्रयोग कर विशेष ख्याति अर्जित की। इससे उन्हें **आतपत्र** की उपाधि से अलंकृत किया गया। जैसे बाँस के दण्ड में लगा हुआ छाता अपनी छाया देकर लोगों की कार्य-शक्ति को बढ़ा देता है, उसीप्रकार छन्दों में प्रधान वंशस्थ छन्द की यह विशेषता है कि उसने महाकवि **भारवि** को आतपत्र की उपाधि दिलाकर उनकी प्रतिभा को प्रकाशित किया।[२] भारवि को राजनीति के वर्णन में वंशस्थ छन्द द्वारा जो सफलता प्राप्त हुई, वह किसी अन्य कवि को नही है। अतः भारवि का वंशस्थ छन्द विशेषतः प्रसिद्ध है और उस पर उनका अधिकार माना जाता है। यात्रा, उपेक्षा, आश्रय, द्वैधीभाव, कोष, दुर्ग, चतुरंग शक्ति, राजैश्वर्य, सम्पत्ति, ऊहापोह, पराक्रम, उद्योग, उत्साह, वृद्धि, क्षय, अभ्युदय आदि के वर्णनप्रसङ्गों में वंशस्थ छन्द का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ है।

वसन्ततिलका—वीर और रौद्र रसों के प्रसङ्गों में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग सुशोभित होता है।[३] कवि क्षेमेन्द्र ने वसन्ततिलका के रसानुरूप प्रणयन में कवि **रत्नाकर** की प्रवीणता प्रदर्शित की है। जैसे वसन्त-ऋतु के भूषणस्वरूप तिलपुष्प के वृक्ष पर अच्छी तरह फैली हुई लता वन में कुसुमित होकर सुशोभित होती है, उसीप्रकार वसन्ततिलका छन्द से आबद्ध वाणी कवि रत्नाकर के मुख में प्रौढ़ता प्राप्त कर भूषित होती है।[४] उदाहरण के लिये वीर तथा रौद्र रस के मिश्रण में वसन्ततिलका के प्रयोगस्वरूप कवि रत्नाकर का एक पद्य प्रस्तुत है—

जृम्भाविकासितमुखं नखदर्पणान्तराविष्कृतप्रतिमुखं गुरुरोषगर्भम्।
रूपं पुनातु जनितारिचमूविमर्शमुद्वृत्तदैत्यवधनिर्बहणं हरेर्वः ॥
(सुवृत्ततिलक ३/१९)

---

१. षाड्गुण्यप्रगुणा नीतिः वंशस्थेन विराजते (सुवृत्ततिलक ३/१८ का उत्तरार्द्ध)

२. वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छयेनाधिकीकृता ॥ (सुवृत्ततिलक ३/३१)

३. वसन्ततिलकं भाति संकरे वीररौद्रयोः (सुवृत्ततिलक ३/१९ का पूर्वार्द्ध)

४. वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसंगिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥ (सुवृत्ततिलक ३/३२)

यहाँ वीरता में क्रोध का समावेश हो जाने से वीर और रौद्र रस का संकर स्पष्ट लक्षित होरहा है। उसके वर्णनक्रम में कवि ने वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया है। इसके द्वारा प्रसंगोचित उत्साह द्विगुणित होता हुआ प्रतीत होता है। अत: वसन्त-तिलका छन्द के प्रयोग में कवि की प्रवीणता सार्थक होती है।

मालिनी—क्षेमेन्द्र ने मालिनी छन्द का प्रयोग सर्गों के अन्त में स्पृहणीय माना है। सर्गों के अन्त में मालिनी छन्द का प्रयोग उसी भांति स्पृहणीय होता है, जैसे गीतों के अन्त में ताल की द्रुत गति सुशोभित होती है।[१] किन्तु इसके अतिरिक्त कवियों ने प्रभात तथा विरह-वर्णन में भी मालिनी छन्द का प्रयोग किया है, यह समुचित प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ सर्ग के अन्त में कालिदास द्वारा प्रयुक्त कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग का अन्तिम पद्य प्रस्तुत है—

अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादै:॥
(कुमारसम्भव १/६०)

यहाँ कवि ने सर्गान्त में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है। यह स्वयं गीतों के अन्त की गति के समान सर्गान्त की सूचना देता है।

प्रभातवर्णन में कवि **माघ** ने शिशुपालवध के ११वें सर्ग में अन्तिम पद्य को छोड़कर शेष सभी पद्य (प्रथम से ६६वें पर्यन्त) मालिनी छन्द में ही लिखे हैं।

शिखरिणी—क्षेमेन्द्र ने किसी विषय के सीमा-निर्धारण में शिखरिणी छन्द के प्रयोग को संकेतित किया है।[२] किन्तु विरह का वर्णन प्रस्तुत करने में भी शिखरिणी की प्रसिद्धि है। अत: कवियों में **भवभूति** के शिखरिणी-छन्द के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हुए क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि भवभूति के द्वारा प्रयुक्त शिखरिणी छन्द उस पर्वतीय नदी के समान है, जो मेघ के सम्पर्क में आकर सुंदर मयूरी के समान स्वच्छन्द नाच उठती है।[३] उदाहरण में भवभूति का एक पद्य प्रस्तुत है—

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव॥ (उत्तररामचरित ३/१३)

यहाँ विरह-वर्णन में भवभूति की शिखरिणी विरहिणी बन रही है। इसके अतिरिक्त स्तोत्र-रूप में जगन्नाथ की **गंगालहरी** के शिखरिणी-पद्य प्रसिद्ध हैं। विश्लेषणात्मक

---

१. कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनी द्रुततालवत्। (सुवृत्ततिलक ३/१९ का उत्तरार्द्ध)
२. उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता। (सुवृत्ततिलक ३/२० का पूर्वार्द्ध)
३. भवभूते: शिखरिणी निरर्गलतरंगिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥ (सुवृत्ततिलक ३/३३)

प्रस्तुति, युक्तिसमर्थन के परिच्छेदों में भी शिखरिणी उपयुक्त छन्द माना गया है। शान्तरसप्रधान देवस्तुति, भक्ति-श्रद्धात्मक पद्यों के लिये भी शिखरिणी का प्रयोग कवियों ने किया है।

हरिणी—उदारता के औचित्यपूर्ण सुन्दर वर्णन में हरिणी छन्द का प्रयोग प्रभावशाली माना जाता है।[1] उदाहरणस्वरूप सुवृत्ततिलक (३/२०) में उद्धृत **भर्तृहरि**-विरचित एक पद्य प्रस्तुत है—

विकलहृदयैरन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा,
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते,
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः॥

यहाँ पर सम्पूर्ण विश्व का तृणवत् उत्सर्ग करनेवाले महर्षि **परशुराम** के औदार्य के वर्णन में हरिणी छन्द का प्रयोग अत्यन्त औचित्य प्रकट कर रहा है। महत्ता, रुचिरता, औचित्य आदि के विचार में हरिणी का प्रयोग उचित है।

पृथ्वी—निन्दा और क्रोधपूर्वक तिरस्कार के वर्णन में पृथ्वी छन्द ही तात्पर्य-प्रकाशन करने में पूर्ण समर्थ होता है।[2] उदाहरणार्थ निन्दापूर्वक तिरस्कार के वर्णन में कवि **यशोवर्मा** का पद्य प्रस्तुत है—

स यस्य दशकन्धरं कृतवतोऽपि कक्षान्तरे
गतः स्फुटमबन्ध्यतामधिपयोधि सान्ध्यो विधिः।
तदात्मज इवांगदः प्रहित एष सौमित्रिणा,
क्व स क्व स दशाननो ननु निवेद्यतां राक्षसाः॥

यहाँ पर रावण की निन्दापूर्वक उपेक्षा के वर्णन में पृथ्वी-छन्द का प्रयोग अभिधेयार्थ के प्रकटन में उत्कृष्ट है। धिक्कार, क्रोधाक्षेप आदि में पृथ्वी छन्द उपयुक्त होता है।

मन्दाक्रान्ता—वर्षाऋतु, प्रवास तथा किसी व्यसन-विशेष के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द की अपनी विशिष्ट शोभा होती है।[3] उक्तप्रकार के वर्णन में **कालिदास** के मन्दाक्रान्ता छन्द की विशेष ख्याति है। क्षेमेन्द्र का मत है कि जैसे कम्बोज देश की घोड़ी सशक्त अश्व के सामीप्य से वशवर्तिनी होकर हिनहिनाने लगती है, उसीप्रकार मन्दाक्रान्ता भी कालिदास की वशवर्तिनी होकर स्वयं बोल उठती है।[4] उदाहरणार्थ मेघदूत का एक पद्य प्रस्तुत है—

---

१. औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा। (सुवृत्ततिलक ३/२० का उत्तरार्द्ध)
२. साक्षेपक्रोधधिक्कारे परं पृथ्वी भरक्षमा। (सुवृत्ततिलक ३/२१ का पूर्वार्द्ध)
३. प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते। (सुवृत्ततिलक ३/२१ का उत्तरार्द्ध)
४. सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।
सदश्वदमकस्येव कम्बोजतुरगांगना॥ (सुवृत्ततिलक ३/३४)

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां,
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुंगानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्,
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ (मेघदूत २/५)

यहाँ पर प्रवासी यक्ष द्वारा पत्नी-वियोग में मेघ से प्रेषित सन्देश में उसकी प्रेम-भावना मन्दाक्रान्ता छन्द द्वारा अपने अभिधेयार्थ के प्रकाशन में शोभावृद्धि कर रही है। विप्रलम्भशृङ्गाररस, विदेशगमन, वासनादि में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग उत्तम है।

शार्दूलविक्रीडित—राजाओं की वीरता की प्रशंसा में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग श्रेष्ठ माना जाता है।[1] क्षेमेन्द्र ने शार्दूलविक्रीडित के प्रयोग में कवि **राजशेखर** की प्रशंसा की है। जैसे सिंहों के द्वारा खेल में किये गये टेढ़े-मेढ़े नख के चिह्नों से पर्वत प्रसिद्ध हो जाता है, उसीप्रकार उल्लेख और वक्रोक्ति अलंकारों से युक्त शार्दूलविक्रीडित-छन्द के द्वारा ही राजशेखर कविशेखर बन गये।[2] उदाहरणार्थ राजशेखर का एक पद्य प्रस्तुत है—

भो लंकेश्वर! दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते,
कोऽयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किञ्चिद् गतम्।
नैवं चेत् खरदूषणत्रिशिरसां कण्ठासृजा पंकिलः,
पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्याबन्धबन्धूकृतः ॥ (बालरामायण ९/१९)

यहाँ राम की लंकेश्वर के प्रति कही गयी यह उक्ति वीररस के परिपाक का सुन्दर उदाहरण है। राजशेखर ने **बालरामायण** नाटक में २०८ बार, **बालभारत** में ४१ बार, **विद्धशालभञ्जिका** में ३९ बार और **कर्पूरमञ्जरी** में २४ बार शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

काव्यकला के वैचित्र्य को प्रदर्शित करते हुए महाकवि माघ ने **शिशुपालवध** के १९वें सर्ग के अन्त में शार्दूलविक्रीडित छन्द में ही चक्रबन्ध पद्य भी प्रस्तुत किया है। इसप्रकार की काव्य-कला के वैचित्र्य के प्रवर्तक कवि **भारवि** तथा प्रसारक माघ रहे हैं, जो विश्व की अन्य भाषाओं के ग्रन्थों में दुर्लभ हैं। सेनानायकों, राज्यशासकों तथा वीरों की प्रशस्तिपरक स्तुतियों के लिये शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग उत्तम है।

स्रग्धरा—क्षेमेन्द्र के अनुसार आवेगयुक्त झञ्झा, पवनादि के वर्णन में स्रग्धरा छन्द का प्रयोग श्रेष्ठ माना जाता है,[3] किन्तु देवस्तुति में भी स्रग्धरा छन्द की कोई

---

१. शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलक्रीडितं मतम्। (सुवृत्ततिलक ३/२२ का पूर्वार्द्ध)
२. शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः ॥ (सुवृत्ततिलक ३/३५)
३. सावेगपवनादीनां वर्णने स्रग्धरा मता। (सुवृत्ततिलक ३/२२ का उत्तरार्द्ध)

समता नहीं है। **मयूरभट्ट** (६५० ई०) ने स्रग्धरा छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया है। उन्होंने सूर्यदेव की स्तुति में सूर्यशतक की रचना की थी। यह समस्त स्रग्धरा छन्द में है। उदाहरणार्थ एक पद्य उद्धृत है—

सा नो सा नोदयेनारुणितदलपुनर्यौवनानां वनाना-
मालीमालीढपूर्वा परिहृतकुहरोपान्तनिम्ना तनिम्ना।
भा वो भावोपशान्तिं दिशतु दिनपतेर्भासमानासमाना,
राजी राजीवरेणोः समसमयमुदेतीव यस्या वयस्या॥

(सूर्यशतक ३८)

यहाँ प्रत्येक पंक्ति में अनुप्रास तथा यमक से अलंकृत स्रग्धरा सूर्यदेव की स्तुति में अक्षरमाला को धारण करती हुई अपने स्रग्धरा नाम को सार्थक बना रही है।

दोधक—वीरसैनिकों के प्रस्थान-प्रसङ्ग में दोधक छन्द का प्रयोग उत्तम माना गया है। वाहन-सञ्चलन, शकटिकागमन (आधुनिक बस-धूमयानादि) के प्रसङ्ग भी दोधकवृत्त में उपयुक्त माने गये हैं।

तोटक—विप्लव, भूकम्प, अस्तव्यस्तता, समुद्र के ज्वार आदि के वर्णन हेतु तोटक छन्द उपयुक्त माना गया है।

द्रुतविलम्बित—सैन्यप्रशिक्षण, पथसञ्चलन आदि पदयात्रा-प्रसङ्गों के वर्णन में द्रुतविलम्बित छन्द उपयुक्त होता है।

इसके अतिरिक्त **कालिदास** ने छन्दों में उपजाति[१], रथोद्धता[२], वैतालीय[३], (वियोगिनी) का, **भट्टि** ने उपगीत्यार्या[४] का, **कुमारदास** ने पुष्पिताग्रा[५], द्रुतविलम्बित का[६], **माघ** ने प्रहर्षिणी[७] प्रमिताक्षरा, मालिनी, विलम्बिता (मञ्जुभाषिणी), उद्गता, रुचिरा तथा शालिनी का, **परिमलपद्मगुप्त** ने औपच्छन्दसक[८] का, और **श्रीहर्ष** ने[९] वंशस्थ, स्वागता[१०], वसन्ततिलका[११] और हरिणी[१२] का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

---

१. रघुवंश सर्ग २, ५, ६, ७, १३, १४, १६, १८ और कुमारसंभव-सर्ग १, ३, ७, ९, ११-१३।
२. रघुवंश सर्ग ११, १९, कुमारसम्भव सर्ग ८।
३. रघुवंश सर्ग ८, कुमारसम्भव सर्ग-४।
४. भट्टिकाव्य सर्ग १३।
५. जानकीहरण सर्ग १, १६।
६. जानकीहरण सर्ग ११, १४।
७. शिशुपालवध-सर्ग ८, ९, ११, १३, १५, १७ तथा १८।
८. नवसाहसीकचरित-सर्ग ५।
९. नैषधीयचरित-सर्ग १, ९, १२, १५, १६।
१०. नैषधीयचरित-सर्ग ५, २१।
११. नैषधीयचरित-सर्ग ११, १३, २१।
१२. नैषधीयचरित-सर्ग १९।

किन्तु इन छन्दों में उनकी प्रसिद्धि का कोई उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि उक्त काव्यकारों ने अपने-अपने काव्यों में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु निर्दिष्ट छन्दों के प्रति उनका विशेष आदर दृष्टिगत होता है।

अर्थज्ञान की दृष्टि से छन्दशशास्त्र का महत्त्व

सामान्यतः यह माना जाता है कि उच्चारण में लयमाधुर्य, स्पष्टता और शुद्धता आदि के लिये छन्दों का महत्त्व है। उच्चारण में मनोरम गतिकारक होने के कारण **छन्दोवेदाङ्ग** पादस्थानीय माना गया है। किन्तु इससे भी विशिष्ट तथ्य यह है कि अर्थज्ञान में भी छन्दों की अतिशय उपादेयता है। विशेषरूप से छन्दोबद्ध पद्यों के अर्थावबोध में तो छन्दों की महत्ता अपरिहार्य मानी गयी है। यद्यपि लौकिक संस्कृत-प्राकृत के छन्दशशास्त्रियों ने इस तथ्य की ओर विशेष दृष्टि नहीं दी है, किन्तु यह प्राचीन वैदिक सिद्धान्त है जिसके आधार पर महर्षि जैमिनि का ऋग्लक्षण प्रवर्तित है।

पूर्वमीमांसा के आचार्य **जैमिनि** ने ऋचा का लक्षण—**'तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था'** (जै०सू० २/१/३५) इसप्रकार निरूपित करते हुए अर्थानुरूप पादों को व्यवस्थित करने का नियम स्पष्ट किया है। ऋचाओं में प्रयोजनानुकूल अर्थ की सम्पूर्ति प्रत्येक छन्द के पाद में सम्पन्न हो जाती है।[१] इसप्रकार ऋचाओं के यथार्थ अवबोधन में छन्दोज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वेदभाष्यकार **सायण** ने[२] पाद और अर्थ दोनों का सामानाधिकरण्य प्रतिपादित करते हुए इस सिद्धान्त को और दृढ़ किया है।

वैदिक ऋचाओं की यह विशेषता है कि उनमें छन्दोगत प्रत्येक पाद में अर्थ स्फुट हो जाता है तथा यही प्रसादगुण का बीज है। अर्थानुगुण पादों में व्यवस्थित वैदिकछन्दों में दूरान्वय-दोष की कल्पना दूर-दूर तक नहीं है। वैदिक ऋचाओं की स्पष्ट अर्थप्रतिपत्ति में छन्दोविधान अत्यन्त सहायक है। आचार्य जैमिनि ने इसी तथ्य का अनुभव कर ऋचा का लक्षण प्रतिपादित किया है।

वस्तुतः आचार्य **जैमिनि** का यह निर्देश समस्त कवियों के लिये है। काव्य-रचना में छन्दों का पादविधान अर्थानुगुण होने पर पद्य की चारुता में अभिवृद्धि होती है। यह वैदिक सिद्धान्त आर्ष काव्यरचना में आदिकवि वाल्मीकि द्वारा पूर्णतः आत्मसात् किया गया है। रामायण के पद्यों में अर्थानुकूल पादव्यवस्था का दर्शन होता है।[३]

---

१. द्र० अग्निमीडे पुरोहितम् (ऋ० १/१/१), अग्न आ याहि वीतये (सा० १/१), ये त्रिषप्ताः परियन्ति (अथ० १/१/१), ईशा वास्यमिदं सर्वम् (मा०सं० ४०/१) आदि।

२. पादेन अर्थेन चोपेता वृत्तबद्धा मन्त्रा ऋचः। (ऋ०भा०भू०, पृ० ७१)

३. द्र० स मन्दराग्रस्थ इवांशुमाली, रामो धर्मभृतां श्रेष्ठः, विहर मया सह भीरु काननानि, आदि विभिन्न छन्दों के प्रथम, अन्तिम चरण उदाहरणार्थ। (सुन्दरकाण्ड)

आदिकवि की यह रीति प्रसन्न पदावली का कारण है तथा दूरान्वय के अनौचित्य से रक्षा करती है।

यद्यपि परवर्ती कवियों ने आदिकवि द्वारा अनुपालित इस **वैदिक सिद्धान्त** का पूर्णतः अनुसरण नहीं किया है। तथापि कविकुलगुरु कालिदास ने इस तथ्य को ध्यान में रखकर काव्यरचना की है। लौकिक-संस्कृत के कवियों में मात्र **कालिदास** ने अर्थानुगुण पादव्यवस्था का पूर्ण प्रयास किया है। संस्कृत के महाकवियों में कालिदास का यह अनितरसाधारण वैशिष्ट्य है कि उनके छन्दों में अर्थानुरूप पादविधान के कारण अन्वय की अपेक्षा नहीं होती तथा प्रसादगुणपरिप्लुत अर्थ सहज रूप से अध्येता को प्राप्त हो जाता है।[१] कालिदास की अतिशय लोकप्रियता का यही रहस्य ज्ञात होता है कि उन्होंने **'अर्थवशेन पादव्यवस्था'** के वैदिक नियम को यथाशक्ति परिपालित किया। संस्कृत के अन्य कवियों में यह गुण दृष्टिगोचर नहीं होता।[२]

छन्द के पादों में साकांक्षता होने के कारण अध्येता को अन्वय में परिश्रम होता है तथा इसप्रकार काव्य की हृदयग्राहिता बाधित होकर बुद्धिग्राह्यता का आधिक्य हो जाता है। इस प्रसङ्ग में रघुवंशमहाकाव्य (२/६) का पद्य—

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्।।

भी उदाहरणार्थ स्मरणीय है। महाकवि कालिदास के लिये इस वर्णन हेतु यथासंख्य अलङ्कार का प्रयोग सुकर था, किन्तु उसका परित्याग कर कवि ने अर्थानुगुण पादव्यवस्था का पालन किया है। कालिदास के अनेक पद्यों में तो अन्वय की आवश्यकता ही नहीं होती, यह उनका अप्रतिम गुण है।[३]

छन्दों में प्रतिपादित **यतिनियम** भी अर्थनिर्णय के लिये बहुत उपादेय है। संस्कृत विशेषरूप से समासनिष्ठ भाषा है। विभिन्न समासों के अङ्गभूत पदों का सङ्गत अर्थ-निर्धारण करने में यति सहायक होती है। कवि का स्वाभीष्ट अर्थ उसके द्वारा निबद्ध छन्द के अन्तर्गत नियमित यति से ज्ञात हो सकता है। इसप्रकार रचयिता की अनुपस्थिति में तथा उसकी स्वयंकृत व्याख्यां के अभाव में भी कवि के

---

१. द्र० क्व सूर्यप्रभवो वंशः (रघुवंश १/२) शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने (शाकुन्तल ४/१८) तया स पूतश्च विभूषितश्च (कुमारसम्भव १/२८) आदि।

२. द्र० श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं (किरात० १/१) श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत् (शिशु० १/१) आदि।

३. अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश।। (रघु० २/२६) आदि पद्यों में तो गद्य में चरणव्यवस्था मात्र से छन्दोबन्ध पूर्ण हो जाता है।

अभिप्राय की स्पष्टता छन्दों के द्वारा की जा सकती है, यह भी छन्दों का अर्थज्ञान की दृष्टि से माहात्म्य है। द्विसन्धानादि-काव्यों में अथवा समीक्षकों, वृत्तिकारों के द्वारा एक पद्य के विविध अर्थ प्रतिपादित करने के अवसर पर कवि का अभीष्ट अर्थ यतिनियम के माध्यम से स्फुट हो सकता है। सभङ्गश्लेष में तो ऐसे प्रभूत स्थल उपलब्ध होते हैं। नैषधीयचरित के **'तव वर्त्मनि वर्ततां शिवम्'** पद्य में **'निवर्ततां शिवम्'** यह विपरीत अर्थ कवि को अभीष्ट नहीं है, यह यतिनियम से ही स्पष्ट होता है।

विविध वैदिक यागादि-कर्मों में मन्त्रों के विनियोग की दृष्टि से भी छन्दों की उपादेयता बतलायी गयी है। ब्राह्मणग्रन्थों में बहुत्र तत्तच्छन्दस्क ऋचाओं का ही प्रयोग उपदिष्ट है। सामवेदीय गानों का यागप्रयोजनानुकूल विनियोग भी प्राय: छन्दोनिर्देश पर ही आश्रित है। इन तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अर्थज्ञान में भी छन्दश्शास्त्र की गूढ़ उपयोगिता है।

छन्दश्शास्त्र के विषय-विस्तर की परम्परा

वैदिक स्वर-वृत्त अथवा अक्षर-वृत्त, जिसमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित-स्वरों के उच्चारण से ध्वनिप्रकारों का नियमन तथा अनुच्छेदगत अक्षर-संख्या की स्थूल गणना की पद्धति थी, कालान्तर में लघुगुरु-वर्णात्मक सांगीतिक अनुशासन में बँधकर वर्ण-वृत्त में रूपान्तरित हुआ। इस नवीन वर्ण-संगीत के प्रति रचयिताओं का ध्यान कुछ वैदिक छन्दों के पाद-परिवर्द्धन की प्रक्रिया में वैदिक मन्त्रों से ही आकृष्ट हो चुका था, यह गायत्री के कुछ पादों और ब्राह्मण-गाथाओं से विदित है। वेदागत प्राय: सभी छन्दों ने अपने लौकिक अवतरण में वर्ण-वृत्त के रूप में गण-बन्धन स्वीकार किया। इनमें भी अनुष्टुप् पुराणकार और महाकाव्यकारों के मध्य व्यापक रूप से लोकप्रिय होने के कारण अर्द्धनियमित (स्वर-मुक्त, वर्णगण-मुक्त) रूप में ही परिनिष्ठित हो गया। अनुष्टुप् स्वर-वृत्त और वर्ण-वृत्त के मध्य की संयोजक शृङ्खला का विशिष्ट उदाहरण है।

वैदिक छन्दों की पादगत अक्षर-संख्या वर्णवृत्तान्तर्गत गणों में विभक्त हुयी और इन गणों के प्रस्तारभेद से समान अक्षर-संख्यावाले अनेक छन्दोभेदों की सृष्टि हुयी। विभिन्न वैदिक छन्दों के नाम क्रमश: उनकी विभिन्न अक्षर-संख्याओं की उक्तादि छन्दोजातियों के बोधक बन गये। वर्णवृत्तों के नये नामकरण कहीं शृङ्गारिक प्रसंगों में उनके प्रयोग से प्रभावित हैं, जैसे—इन्दुवदना, प्रियंवदा, वियोगिनी आदि। कहीं शृंगारेतर प्रकृति-व्यापार के बोधक हैं, यथा—जलोद्धतगति, भुजंगप्रयात आदि, तथा कहीं छन्दोगत विशेष भंगिमा के सूचक हैं; यथा—द्रुतविलंबित, मन्दाक्रान्ता आदि।

षडक्षरपाद के मध्यवर्ती दो वर्णों के लघु होने के कारण तनुमध्या, सर्पशिशु के समान द्रुत और वक्र पठित होने के कारण भुजगशिशुसृता, द्रुत और विलम्बित पाठगति के कारण द्रुतविलम्बित, तीन यतियों में विश्राम से मन्दगति के कारण मन्दाक्रान्ता, सिंह की छलांग ७ हाथ ऊँची और १२ हाथ लम्बी होती है इस प्रसिद्धि के कारण १२ वर्ण पर यति से शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों के नाम अन्वर्थ माने जाते हैं।

गणप्रधान छन्दों के लघु-गुरुभाव का विस्तार भी वैदिक वृत्तों से हुआ। शौनक ने जागत तथा गायत्र पादों के उपोत्तम अर्थात् अन्त्य से पूर्ववर्ती अक्षर को लघु और वैराज तथा त्रैष्टुभ पादों के उपोत्तम अक्षर को गुरु होने पर इसे **'वृत्त'** बतलाया है।[१] इससे स्पष्ट है कि मात्रिक वृत्तों का मूल वैदिक छन्दोनियम में उपलब्ध है। वर्णों के अङ्गत्वविचार के सूक्ष्म विवेचन से गुरु-लघुभाव तथा मात्राकाल आदि का सम्पूर्ण निर्देश वैदिक छन्दोविषयक भाग में प्राप्त होता है।[२] इस सूक्ष्मविवेचन को आधार बनाकर परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों ने लौकिक मात्रावृत्तों का विस्तार किया है। वर्ण-गणों के साथ देवता तथा फलाफलादि का विचार धर्म-भावनाप्रधान परिवेश का फल है, जिसका पालन परवर्ती युग में भी रूढि की भाँति हुआ है। व्यावहारिक काव्य के प्रसङ्ग में इस विचार की उपयोगिता स्थूल दृष्टि से नहीं दिखलायी देती। परन्तु सूक्ष्म आधिदैविक तत्त्वविवेचन में यह उपादेय है।

छन्दश्शास्त्रीय विवेचन के उत्स

छन्दःशास्त्रीय विवेचन की प्रवृत्ति के मूल भी वैदिक वाङ्मय में मिल जाते हैं।[३] यथा—वैदिक अवसाननिर्णय ही लौकिक छन्दों के पाद-यतिनियमों के स्रोत हैं। किन्तु पृथक् ग्रन्थरूप में उसकी सम्यक् परम्परा का प्रवर्त्तन पिङ्गलाचार्य के 'छन्दःशास्त्र' द्वारा हुआ। संस्कृत-लक्षणकारों में प्रथमतः हेमचन्द्र ने लोकच्छन्दः-परम्परा से उद्भूत तथा अपभ्रंश में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों की विशद चर्चा की है। **हेमचन्द्र** के पूर्व प्राकृत के लक्षणकार विरहांक और स्वयंभू ने ऐसे छन्दों का उल्लेख किया था। इनके ग्रन्थों में प्रायः सभी ज्ञात छन्दों को अन्तर्भुक्त कर लेने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। तथापि **प्राकृतपैंगल** और **छन्दःकोश** में वेही छन्द आये हैं, जो अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित अथवा लोकप्रिय थे। इन दो ग्रन्थों

१. वर्षिष्ठाणिष्ठयोरेषां लघूपोत्तममक्षरम्।
गुर्वितरयोर्ऋक्षु तद् वृत्तं छन्दसां प्राहुः॥ (ऋ०प्रा० १७/३९) तथा द्र० ऋ०प्रा० १७/२५

२. द्र० ऋ०प्रा० १८/३७-४४ आदि।

३. द्र० पादज्ञान (ऋ०प्रा० १७/२५); पादनिर्धारण (ऋ०प्रा० १७/४४); गुरुलघुविचार तथा अङ्गत्व (ऋ०प्रा० १/२०-२६); मात्राविचार (ऋ०प्रा० २७-३०) तथा अवसाननिर्णय (ऋ०प्रा० ४७-५१) आदि।

में आये छन्दों के उदाहरण व्यावहारिक काव्यों में दीर्घकाल तक सुगमता से मिल जाते हैं। परवर्ती छन्दोलक्षणकार प्रायः पिङ्गलच्छन्दःसूत्र तथा प्राकृतपैंगल से प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

संस्कृत-लक्षणग्रन्थों में आरम्भ से ही उल्लिखित छन्द वर्णवृत्त से उद्भूत है। आर्या और उसके कतिपय भेद अनुष्टुप् के पाद-परिवर्द्धन तथा मात्रिक रूपान्तर के प्रतिफलन हैं। प्राकृत-गेय कथाकाव्यों अथवा चरितकाव्यों में प्रयुक्त होने के कारण आर्या का ही नाम **गाथा** के रूप में परिवर्तित और विकसित हुआ। अक्षर-परिमाणात्मक वैदिकछन्दों का प्रभाव तथा एक-दो अक्षरों की न्यूनता तथा आधिक्य होने पर भी छन्दों का नियमन करने की **वैदिक-पद्धति**[१] के विस्तार से ही लौकिक-छन्दों में अक्षरवृत्ति के अनुसार प्रस्तार द्वारा छन्दोनिर्देश प्रारम्भ हुआ। अनेक परवर्ती कवियों ने तो **'निचृच्छार्दूलविक्रीडित छन्द'** आदि में पद्यरचना भी की है।[२] भुरिक् के भी लौकिक उदाहरण मिलते हैं। मात्रासमक, षोडशमात्रापादी, दोधक, आदि समवर्णवृत्तों के मात्रिक समचतुष्पदी रूपान्तर है, जिनमें कालान्तर में पादाकुलक और चौपाई छन्द विकसित हुए। वैतालीयछन्द संस्कृत के अर्द्धसम छन्दों का प्रतिनिधि है, जिसके पाद-संघटन में आंशिक रूप से मात्राओं तथा आंशिक रूप से वर्ण-गणों का उपयोग होता है। यह छन्द वर्णवृत्त तथा लोकगत तालच्छन्द के पादांश-मिश्रण द्वारा उद्भूत है।

प्राकृत-अपभ्रंश के छन्दोग्रन्थों में उपरिलिखित तीन वर्गों के छन्दों के अतिरिक्त प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में प्रयुक्त शताधिक मात्रिक छन्द उल्लिखित हैं। परवर्त्ती ग्रन्थों (प्राकृतपैंगल तथा छन्दःकोश) में इनमें से अधिकांश के अनुल्लेख द्वारा यह ध्वनित है कि ये सभी छन्द चिरंजीवी न हो सके। लक्षणग्रन्थों में उल्लिखित सभी छन्द किसी युग में व्यावहारिक काव्य-प्रयोग से लिये गये हों, यह आवश्यक नहीं है। सम्भव है, उनमें से अनेक छन्द कल्पना और सम्भावना के आधार पर लक्षणकारों के मस्तिष्क की उद्भूति हों। किंतु इन छन्दों के प्रारम्भिक उल्लेख से इसका ज्ञान अवश्य होता है कि अपभ्रंशकाल में मात्रिक छन्दों के नये-नये प्रयोग व्यावहारिक काव्य के मध्य हो रहे थे तथा आदिकालीन रचयिता अपनी विविध भावनाओं और प्रसंगों के साथ समान सांगीतिक अनुकूलता रखने वाले नवीन छन्दःस्वरूपों की निरन्तर वितति की रुचि में थे। छन्दों के काव्यगत ऐतिहासिक अध्ययन द्वारा इसकी पुष्टि होती है।

---

१. ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ, द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ (पि०सू० ३/५९-६०)।
२. द्र० नैष्कर्म्यसिद्धि का अन्तिम पद्य (४/७७) सुरेश्वराचार्य, चन्द्रिका टीका की उक्ति- निचृच्छार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

छन्दोग्रन्थों का विषयगत स्वरूप

छन्दःशास्त्र में प्रमुख तीन अङ्ग हैं—(१) स्वरूप-परिचय, (२) गुणदोष-विवेचन तथा (३) विनियोग (प्रयोगविषय)। प्रथम अङ्ग में लघु-गुरु आदि मात्राओं का निरूपण तथा गण, विराम आदि की परिभाषायें, वृत्त-जाति आदि का विभाग और छन्दों के लक्षण, उदाहरण आदि आते हैं। इससे छन्दों के स्वरूप (निर्मिति, बनावट) का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, जो रचना के लिए मूलतः आवश्यक है।

द्वितीय अङ्ग में रचनागत सुष्ठुता एवम् असुष्ठुता पर प्रकाश डाला जाता है। क्योंकि रचना की सफलता के लिये छन्दों के नियमों का पालन ही केवल पर्याप्त नहीं होता, अपितु सुष्ठुता भी अपेक्षित रहती है। कभी-कभी नियमानुसार शब्द-योजना होने पर भी विस्वरता आ सकती है। स्पृहणीयता की दृष्टि से इसका निराकरण अत्यावश्यक होता है, क्योंकि श्रव्यता (सुनने में विस्वर या त्रुटित प्रतीति न होना) छन्दों का आवश्यक गुण है। उसके अभाव में काव्य की हीनता तो प्रकट होती ही है, काव्य अनुपादेय भी बन जाता है। सुन्दर से सुन्दर भाव भी इसके बिना प्राणहीन लगते हैं। कवि और काव्य की सफलता के लिये इस अङ्ग का ज्ञान भी अत्यावश्यक है।

तृतीय अङ्ग में इस तथ्य पर विचार किया जाता है कि कौन-सा विषय किस छन्द में उपनिबद्ध किया जाय। क्योंकि विषयानुरूप छन्दों के प्रयोग से छन्द तो प्रकाशित होते ही हैं, काव्य भी चमत्कृत हो उठता है। इसलिये विषयवस्तु के अनुरूप छन्दश्चयन नितान्त उपयोगी तथा आवश्यक है।

तात्पर्य यह है कि छन्दश्शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से स्वरूप-परिचय परमावश्यक, गुणदोषनिरूपण अत्यावश्यक और वृत्तविनियोग आवश्यक अङ्ग हैं। व्यावहारिक दृष्टि तथा काव्यरचना के उपयोग हेतु मुख्यता स्वरूप-परिचय की ही है। इसकारण अनेक छन्दोलक्षणकारों ने छन्दों के सोदाहरण निरूपण तक ही अपना विवेचन सीमित रखा है। वैदिक छन्दों के प्रतिपादन में भी आचार्यों ने **'छन्दःसम्पत्ति'** के लिये नियम[१] उपदिष्ट करते हुये यह संकेत दिया है कि लौकिक छन्दों में गुणाधान तथा दोष-समाधान हेतु सचेष्ट रहना आवश्यक है। विषयानुरूप छन्दोविनियोग तो कविप्रतिभा का परिचायक है। लौकिक छन्दश्शास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में उपर्युक्त में से एक अथवा दो अङ्गों का निरूपण किया है। तीनों अङ्गों का सोदाहरण विवेचन क्षेमेन्द्र के **'सुवृत्ततिलक'** में उपलब्ध होता है।

छन्दोग्रन्थों का रचनागत स्वरूप

शतशः उपलब्ध छन्दोग्रन्थों की रचनाशैली चार प्रकार की दृष्टिगोचर होती है—सूत्रात्मक, पौराणिक, वृत्तानुसारिणी तथा अक्षरानुसारिणी। पिङ्गलसूत्र आदि

---

१. द्र० ऋ०प्रा० १७/२२, २४।

ग्रन्थ **सूत्रात्मक शैली** में हैं। इनमें संक्षेप में वृत्त का नाम तथा गणों की संख्या निर्दिष्ट की जाती है।[१] **अग्निपुराण, भरतनाट्यशास्त्र** आदि आर्ष ग्रन्थ **पौराणिक शैली** के हैं। इनमें अनुष्टुप् आदि में छन्दों के नाम तथा लक्षण पुराण-वर्णन की भांति उपदिष्ट होते हैं।[२] अर्वाचीन ग्रन्थों में सुवृत्ततिलक भी पौराणिक शैली की रचना है। **वृत्तानुसारिणी शैली** में वृत्तों के नाम तथा लक्षण उसी छन्द में वर्णित होते हैं। **वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी** आदि इस शैली की रचनायें हैं। **अक्षरानुसारिणी शैली** के अन्तर्गत किस वृत्त में कितने अक्षर लघु तथा कितने गुरु हैं, इसको आधार बनाकर उस क्रम से लक्षणों की रचना उसी वृत्त में की गयी है। **श्रुतबोध** आदि इस शैली की रचनायें हैं।

छन्दःशास्त्र की आचार्य-परम्परा का समीक्षण

छन्दःशास्त्र की विषयवस्तु पर ऐतिह्यपरकदृष्टि रखने से अनेक नवीन तथ्यों का आविष्करण होता है। **यादवप्रकाश** के द्वारा निर्दिष्ट छन्दःशास्त्रीय आचार्यपरम्परा पर्याप्त प्रामाणिक प्रतीत होती है। परन्तु इसके अतिरिक्त **गरुडाम्नाय** नाम से एक विभिन्न आम्नाय का उल्लेख **भास्करराय** ने अपने भाष्यराज में विशेषतः आर्या के प्रसंग में किया है। यहाँ यह आम्नायोपदेश विष्णुवाहन गरुड के द्वारा प्रवर्तित छन्दशास्त्रीय परम्परा का संकेत करता है तथा वहाँ जो ज्ञानस्रोत उद्धृत है, उसका तात्पर्य 'गरुडपुराण' से है।

आम्नाय के प्रति निष्ठा धारणकरना प्रत्येक छन्दःशास्त्री का मुख्य कर्तव्य है। हलायुध ने **आम्नाय** को अनिवार्य नियम माना है (पि०छन्दःसूत्र-६/३, ४, ७, ९ आदि)।

छन्दःशास्त्र के प्राचीन आचार्यों के मत अनेक छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, जिससे उन मतों की प्रामाणिकता तथा लोकप्रियता सिद्ध होती है। कुछ आचार्यों के संकेतस्थलों का निर्देश यहाँ संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है—

आचार्य		**सङ्केतस्थल**
(१) पाञ्चाल (बाभ्रव्य)	—	उपनिदानसूत्र
(२) यास्क	—	उपनिदान, पिङ्गल, यादवप्रकाश
(३) ताण्डी	—	उपनिदान, पिङ्गल
(४) निदान (सूत्रकार पतञ्जलि)	—	उपनिदान
(५) पिङ्गल	—	उपनिदान, जयकीर्ति, यादवप्रकाश

१. यथा—'तनुमध्या त्यौ' आदि।

२. यथा—मकारयुगपर्यन्ते यत्संयुक्तं गुरुद्वयम्।
विद्युन्मालाभिधं तद्धि वृत्तमष्टाक्षरं विदुः॥ आदि

आचार्य		सङ्केतस्थल
(६) उक्थशास्त्रकार	—	उपनिदान
(७) क्रौष्टुकि	—	पिङ्गल, यास्क (निरुक्त ८/२)
(८) सैतव	—	पिङ्गल, जयकीर्ति, यादवप्रकाश
(९) काश्यप	—	पिङ्गल
(१०) रात	—	पिङ्गल-जयकीर्ति, यादवप्रकाश
(११) माण्डव्य	—	पिङ्गल-जयकीर्ति, यादवप्रकाश

संस्कृतवाङ्मय में स्वतन्त्ररूप से सर्वप्रथम छन्दश्शास्त्रीय लक्षणग्रन्थ शेषावतार **पिङ्गल** आचार्य ने ही प्रस्तुत किया, यह मान्यता है। अत: छन्द:शास्त्र के जनक पिङ्गल मुनि माने जाते हैं। अपने से प्राचीन आचार्यों के विवरणों को अपने अनुभव से पुष्ट कर उन्होंने विख्यात सूत्रग्रन्थ को लिखकर इस शास्त्र केलिये आधार-स्तम्भ का निर्माण किया। अन्य उल्लिखित आचार्यों के स्वतन्त्र ग्रन्थ थे अथवा उनके विशिष्ट मत ही थे, इसका ज्ञान करना कठिन है। इन आचार्यों के रचित पद्य यत्र-तत्र टीकाकारों ने उद्धृत किये हैं और इतिहास की दृष्टि से वह उल्लेख ही हमारे लिए मूल्यवान् निधि है। **नारायणभट्ट** ने नामत: सैतव-रचित एक पद्य उद्धृत किया है,[१] जिसे हलायुध ने भी (पिङ्गल सूत्र ५/१८ की टीका में) उल्लिखित किया है। इसी शैली पर पिङ्गल सूत्र (७/८) में उद्धर्षिणी का मत भी **सैतव** का ही है। पिङ्गल सूत्र के भाष्य (४/२३) में **माण्डव्य** का पद्य भी सुरक्षित है[२]। इन आचार्यों ने पद्यों को स्वनामाङ्कित करने की पद्धति प्रदर्शित की थी, जो पिछले युग के लेखकों ने भी अपनायी।

परवर्ती छन्द:शास्त्रीय ग्रन्थकारों ने पिङ्गलमुनि को ही अपना आराध्य माना है और उनके क्षुण्ण मार्ग से हटकर चलने का सर्वथा निषेध किया है। जयदेव, जयकीर्ति तथा केदारभट्ट—ये सब आचार्य पिङ्गल के ही अनुयायी हैं।

परम्परानुसार शेषावतार पिङ्गलनाग द्वारा प्रवर्तित छन्द:परम्परा में **अग्निपुराण** भी इस श्रेणी से बहिर्मुख नहीं है। उसमें आठ अध्यायों द्वारा (३२८ अ० से आरम्भ कर ३३५ अध्याय तक) परिभाषा, दैव्य आदि संज्ञा, पादाधिकार, उत्कृति आदि छन्द, आर्या आदि मात्रावृत्त, विषमवृत्त, अर्धसमवृत्त, समवृत्त, प्रस्तार—आदि क्रम से विवेचित किये गये हैं। इस पुराण में प्रतिज्ञा है कि पिङ्गलमत के अनुसार ही छन्दों

---

१. सैतवेन पथार्णवं तीर्णो दशरथात्मज:।
रक्ष:क्षयकरीं पुन: प्रतिज्ञां स्वेन बाहुना॥

२. स्निग्धच्छाया लावण्यलेपिनी किञ्चिदवनतघ्राणा।
मुखविपुला सौभाग्यं लभते स्त्रीत्याह माण्डव्य:॥

का लक्षण कहा जायेगा (छन्दो वक्ष्ये मूलशब्दैः पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम्, अ०पु० ३२८/१)। इस प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह इन अध्यायों में किया गया है।

गरुडपुराण के छः अध्यायों (पूर्वखण्ड के २०७-२१२ अ०) में छन्दश्शास्त्र का विवरण उपलब्ध होता है। इनमें परिभाषा, मात्रावृत्त, समवृत्त, अर्धसमवृत्त, विषमवृत्त तथा प्रस्तार का वर्णन क्रमशः किया गया है। यहाँ कतिपय नवीन छन्दों का लक्षण भी निर्दिष्ट किया गया है, किन्तु पिङ्गल से विशेष भिन्नता नहीं है। भास्करराय इसे ही गरुडाम्नाय के नाम से अभिहित करते हैं। **वराहमिहिर** की बृहत्संहिता (१०३वाँ अध्याय) में उपलब्ध तथा **ईशानदेव** (दशम, एकादश शती) की पद्धति के पूर्वार्द्ध पटल (अ० १९-२७ तक) में प्राप्त छन्दोवर्णन भी पिङ्गलानुयायी हैं। इससे पिङ्गल के सार्वभौम प्रभाव एवं महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है।

पिङ्गलसूत्रपाठ तथा व्याख्या की हलायुध से पूर्ववर्ती परम्परा

पिङ्गलछन्दस्सूत्र की उपलब्ध व्याख्यासम्पत्ति में प्रथम गणनीय **हलायुधभट्ट** की **मृतसञ्जीवनी** व्याख्या है। परन्तु इससे पूर्व भी पिङ्गलसूत्र की व्याख्यान-परम्परा थी। किन्तु वह लुप्तप्राय हो गयी थी इसका सङ्केत 'मृतसञ्जीवनी' अभिधान द्वारा हलायुध ने किया है। हलायुधभट्ट को भी प्राचीन टीका उपलब्ध नहीं थी यह प्रतीत होता है। क्योंकि **षड्गुरुशिष्य** ने—

''उक्तम्, अत्युक्तम्, मध्यम्, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठेति चतुरुत्तरवृद्ध्या चतुरक्षरादिविंशत्यक्षरान्तं पुरस्ताच्छन्दःपञ्चकम्,.. एतान्यपि भगवता पिङ्गल-नागेन सूत्र्यन्ते–उक्तम्, साति, मध्यम्, प्रतिष्ठा, सुच''

इस उल्लेख द्वारा उक्तादि पाँच छन्दों को पिङ्गलसूत्रोक्त बतलाया है। परन्तु हलायुध ने इन सूत्रों का उल्लेख नहीं किया।

इसीप्रकार षट्प्रत्ययों के अन्तर्गत **एकोनेऽध्वा** (पि० छ० ८/३३) सूत्र प्राचीन वैदिकपाठ में गृहीत है तथा **अग्निपुराण** (३३५/४) में इसका निरूपण भी है। परन्तु हलायुध ने इसकी व्याख्या नहीं प्रस्तुत की तथा **'षष्ठप्रत्ययोऽप्य-ध्वपरिच्छित्तिरित्येके'** द्वारा अध्वयोग-प्रत्यय का संकेतमात्र किया है। वैदिकपाठ में **'अत्रानुक्तं गाथा'** (पि० छ० ८/१) के अनन्तर अठारह सूत्र मान्य नही हैं तथा **हंसरुतं म्नौ गौ** (पि० छ० ६/७), **ततं नौ मरौ** (पि० छ० ६/६४) आदि सूत्र भी वैदिकपाठ में मान्य नहीं है। **मत्स्यपुराण** में भी ये समादृत नहीं है। तथापि हलायुध ने इनकी व्याख्या की है।

इस विपर्यास से यह ज्ञात होता है कि हलायुध के समक्ष जो पाठान्तर उपलब्ध थे तदनुसार उन्होंने सूत्रव्याख्यान किया। वस्तुतः इस व्याख्या के पहले भी छन्दस्सूत्र की व्याख्या-परम्परा थी। क्योंकि पिङ्गलव्याख्या (गन्ते १/१०) में हलायुध ने ही—**'केचिदिदं सूत्रं व्यवस्थित-विभाषया व्याचक्षते'** इस उक्ति के द्वारा पूर्वव्याख्यानों का सङ्केत दिया है।

इसके अनुमान के लिये अन्य हेतु यह भी है कि छन्दश्शास्त्र के प्रारम्भ में—

मयरसतजभनलगसम्मितं भ्रमति वाङ्मयं जगति यस्य ।
स जयति पिङ्गलनागः शिवप्रसादाद् विशुद्धमतिः ।।

इत्यादि छः पद्य परम्परागत क्रम में पठित होते हैं। ये पद्य हलायुध-प्रणीत नहीं हैं तथा उनके द्वारा व्याख्यात भी नहीं है। अतः ये किसी प्राचीन भाष्य के आद्य-पद्य हैं, यह स्पष्ट होता है। देवीभागवत में (११/१०/९)—

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पञ्चसंवत्सरेति च ।
मयरसतजभनेत्येव गौर्ग्या इत्येव कीर्तयेत् ।।

इसका उल्लेख है तथा ब्रह्मयज्ञ में प्रतीक रूप में इन पद्यों का ग्रहण किया जाता है।

इस विवेचन से यह स्फुट होजाता है कि हलायुधभट्ट के पूर्व भी छन्दोभाष्यग्रन्थ प्रणीत थे, किन्तु वे हलायुध को पूर्णतः प्राप्त नहीं हुए। हलायुध ने यथोपलब्ध सूत्रपाठ को आधार बनाकर अपनी वृत्ति की निर्मिति की है। अतः पिङ्गलसूत्रपाठ की प्रामाणिकता के लिये मात्र हलायुधभाष्य का आश्रय लेना समीचीन नहीं होगा।

पिङ्गलाचार्य से परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों का योगदान

पिङ्गल के एकाधिपत्य होने पर भी तदितरसम्प्रदाय की सत्ता का अपलाप नहीं किया जा सकता। भरतमुनि के **नाट्यशास्त्र** का छन्दोवर्णन अनेक तथ्यों में पिङ्गल से भिन्न है। भरत त्रिक को जानते थे, परन्तु उन्होंने उसका प्रयोग नहीं किया। **जानाश्रयी छन्दोविचिति** पिङ्गल की आलोचना करती है और अपने मत का संकेत वृत्ति के आरम्भ में ही वह करती है। यहाँ छन्दों के नाम भी पिङ्गल से भिन्न हैं।

अवान्तरकालीन ग्रन्थकारों में हेमचन्द्र ने इस ग्रन्थ का अंशतः अनुगमन किया है। जैनमतावलम्बी होने पर भी जयदेव पिङ्गल के मत को मानने से विरत नहीं हुए। उनका ग्रन्थ पिङ्गल के समान अष्टाध्यायी मात्र नहीं है, प्रत्युत उसमें वैदिकछन्दों का भी विवरण है। यह जैन ग्रन्थकार की रचना में अवश्य ही कौतूहलोत्पादक है।

छन्दश्शास्त्र के विस्तार में छन्दों की परिवर्द्धित होती हुई संख्या ध्यान देने योग्य है। समवृत्तों की संख्या पिङ्गल में केवल ७० है, जयदेव में ८०, केदारभट्ट में १०९ तथा हेमचन्द्र में लगभग ३०० है। इसप्रकार छन्दःशास्त्रियों ने अपने युग में निबद्ध काव्य-नाटकों में प्रयुक्त छन्दों का विवरण अपने शास्त्रीय ग्रन्थों में निबद्ध कर उसे पूर्ण तथा सामयिक बनाने का अश्रान्त प्रयास किया।

छन्दःशास्त्र के इतिहास में प्रो० अर्नेस्ट वाल्डश्मिर के द्वारा स्थापित बर्लिन एकेडमी द्वारा प्रकाशित **छन्दोविचिति** ग्रन्थ (१९५८ ई०) बहुत महत्त्व का है। ग्रन्थ की अन्तरंग परीक्षा से लेखक का नाम **मित्रधर सिद्ध** ज्ञात होता है, जो आम्नाय को

सर्वथा अज्ञात है (२/५/२)। मध्य एशिया के तुरफान नामक स्थान से इस शताब्दी के आरम्भ में डा० ल्यूडर्स ने जिन ग्रन्थों के हस्तलेखों का बृहत् संग्रह किया, उनमें से यह अन्यतम है। इसके पत्र जीर्ण-शीर्ण तथा अस्त-व्यस्त प्राप्त हुए हैं। इन्हीं पत्रों को सुव्यवस्थित कर ग्रन्थ का प्रकाशन सम्पादक के बहुल परिश्रम तथा दीर्घ अध्यवसाय का सूचक है। ग्रन्थ अभी अपूर्ण ही है, परन्तु प्राप्त अंशों का मूल्य कम नहीं है। इस ग्रन्थ के दृष्टान्त नाट्यशास्त्र में उद्धृत छन्दों के उदाहरणों से मिलते हैं, यह ध्यातव्य वैशिष्ट्य है। इससे भरतमुनि-सम्मत पृथक् छन्द:परम्परा का संकेत मिलता है।

जानाश्रयी का मात्रावृत्तों का विवरण पूर्वापिक्षया विशद तथा पूर्ण है। षष्ठ शती के इस ग्रन्थ में सूत्र तथा वृत्ति दोनों की सत्ता है, परन्तु वृत्ति उतनी विशद नहीं है जितनी प्राचीन ग्रन्थ के रहस्यों के आविष्करण के लिये आवश्यक है। वृत्तरत्नाकर वस्तुत: छन्द:शास्त्र की जानकारी के लिए एक आदर्श ग्रन्थ है।

परवर्ती ग्रन्थों में वैदिक छन्दोविवेचन

प्राचीन युग में वैदिक-साहित्य का अध्ययन लोकप्रिय था। इसलिये वैदिक छन्दों का विवरण देना अनिवार्य था। परन्तु मात्र नाट्यशास्त्रीय प्रयोजन के कारण भरतमुनि के ग्रन्थ में तथा सङ्गीतशास्त्रीय प्रयोजन की दृष्टि से पाठ्यरत्नकोश में कतिपय आवश्यक छन्दों का ही विवेचन है। परवर्ती अध्येताओं की ह्रासोन्मुखी शक्ति के कारण बाद में यह आवश्यक नहीं रहा कि वैदिकछन्दों का विवरण अनिवार्यत: दिया जाये। इसीलिये केदारभट्ट ने अपने **'वृत्तरत्नाकर'** में उस अंश की उपेक्षा की तथा लौकिक छन्दों का ही विवरण प्रस्तुत किया। इसमें छन्द का लक्षण उसी छन्द में देकर लक्ष्य-लक्षण का सुन्दर समन्वय किया गया है। यह प्रकार परवर्ती युग के लिये अनुकरणीय आदर्श बन गया। **भास्करराय** (१८वीं शती का पूर्वार्द्ध) ने इस शास्त्र की शास्त्रीय मर्यादा का रक्षण अपने अनेक मौलिक तथा व्याख्याग्रन्थों में सुदृढता तथा सुन्दरता से किया है।

यहाँ यह तथ्य स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि परवर्ती छन्दोग्रन्थों में वैदिक छन्दों का विवेचन न होने का कारण उन लेखकों का वैदिकछन्दों का अज्ञान अथवा वैदिकछन्दों से विमुखता नहीं है। अध्येतृवर्ग में वैदिकछन्दों का प्रयोजन समाप्त होना भी इसका मुख्य कारण नहीं है। वस्तुत: भारतीय परम्परा में अपौरुषेय वैदिक शब्दराशि का परिमाण नियत है तथा उस वेदशब्दराशि के स्वर, वर्ण, अवसान, ऋषि, देवता एवं छन्द आदि भी सुनियत एवम् आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट हैं। उनमें परिवर्तन सम्भव नहीं है तथा मन्त्रलक्षण की भाँति छन्दोनिर्दे भी ऋषिपरम्परा से प्राप्त है। ऐसी स्थिति में शौनक आदि आचार्यों के द्वारा वैदिक छन्दों का उपदेश हो जाने के अनन्तर मात्र उनका ज्ञान ही आवश्यक था। वैदिकमन्त्रों को उदाहृत करते हुए छन्द:परिवर्तन अथवा छन्द:स्वरूप-परिवर्धन का कोई प्रयोजन तथा मान्यता नहीं

थी। फलतः परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों ने या तो वैदिकछन्दों का पूर्ववर्ती विवेचन स्वीकार करते हुए स्वयं पृथक् विवेचन नहीं किया अथवा कतिपय (**वृत्तमुक्तावली, जयदेवच्छन्दः** आदि) छन्दश्शास्त्रियों ने श्रद्धापूर्वक वेदाङ्गता प्रतिष्ठित करने हेतु वैदिक छन्दों का निरूपण किया है।

परवर्ती छन्दश्शास्त्रियों की प्रतिपादन-शैली

परवर्ती युग के अधिकांश छन्दःशास्त्री स्वीकृत सिद्धान्त का ही विवरण देने में अपने को कृतकृत्य मानते हैं। यद्यपि उन्होंने छन्दःशास्त्र के मौलिक तथ्यों की गवेषणा में विशेष श्रम नहीं किया। तथापि छन्दों के विस्तार की प्रक्रिया को अङ्गीकार करते हुए अनेक नवीन छन्दोलक्षणों का आविष्कार किया तथा संस्कृत के छन्दश्शास्त्र के विस्तार में अपना विशिष्ट अवदान प्रस्तुत किया। टीकाकारों ने नये उदाहरणों के द्वारा मूलग्रन्थ के लक्षणों को सरल-सुबोध बनाया। विशेषकर अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में उनके द्वारा ये उदाहरण विरचित हैं। हलायुध ने पिङ्गलसूत्रों की अपनी वृत्ति में आश्रयदाता मुञ्जराज के विषय में अनेक पद्यों को दृष्टान्तरूपेण उपस्थित किया है (द्रष्टव्य पिं०सू० ४/१९, ४/२०; ५/३४, ३६, ३७ वृत्ति)। अतः इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

लोकप्रिय छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन परवर्ती काल में भी विभिन्न उपयोगिताओं को ध्यान में रखते हुए भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में होता रहा। ऐसे ग्रन्थों में गंगादास की **छन्दोमञ्जरी** पूर्वी भारत में बहुत प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थकार उत्कलदेशीय था और इनकी छन्दोमञ्जरी उत्कलदेशीय ग्रन्थकार विश्वनाथ कविराज के साहित्यदर्पण के समान ही लोकप्रिय रही है। इसीप्रकार महाराष्ट्र, बंगप्रदेश, उत्तरभारत के प्रान्तों तथा कर्णाटक आदि के विद्वानों ने भी संस्कृत-छन्दःशास्त्र की परम्परा के विस्तार में अपना योगदान किया तथा अपने-अपने क्षेत्र की सीमाओं को त्यागकर समग्र भारत में एकात्मभाव से छन्दोविवेचन-अनुशीलन को प्रभावित किया।

छन्दश्शास्त्रीय विस्तार तथा विविध छन्दोलयविधियों को आत्मसात् करने की दृष्टि से सत्रहवीं शती की रचना **वृत्तमौक्तिक** का विशेष महत्त्व है। इस गम्भीर ग्रन्थ में प्रायः ६७१ छन्दों का विशाल संग्रह है। अनेक काललयप्रधान छन्दों, मात्रिक छन्दों की विविध प्रस्तुतियों, विरुदावली, खण्डावली–प्रभृति सामयिक राजतन्त्रीय रचना-विधियों के निरूपण से इस ग्रन्थ की विषयगत नवीनता स्पष्ट होती है। विभिन्न उदाहरणों से समन्वित होने के कारण यह ग्रन्थ मूल रूप में वाग्वल्लभ से भी बड़ा तथा महत्त्वशाली है। परन्तु **वाग्वल्लभ** की वरवर्णिनी व्याख्या के कारण उसका कलेवर बढ़ा है।

यह भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य है कि अद्यतन बीसवीं शताब्दी में भी वाग्वल्लभ-सदृश छन्दोग्रन्थों में मौलिक छन्दोविधान की सुदृढ परम्परा दृष्टिगोचर होती है। डेढ़ हजार से भी अधिक छन्दों का विवेचन करनेवाला यह ग्रन्थ संस्कृत-छन्दश्शास्त्र की अद्भुत विस्तार-क्षमता को द्योतित करता है।

संस्थापन

विश्वसाहित्य में सम्भवत: सर्वप्रथम संस्कृतभाषा ही ऐसी विशिष्टता से अलंकृत है जिसमें गद्य तथा पद्य दोनों को छन्दों से निबद्ध करते हुए नियमित-सौष्ठव प्रदान किया गया है। इस सिद्धान्त के आधार-स्रोत वेद हैं। ऋग्वेद की पादव्यवस्था से युक्त ऋचाओं के आधार पर पद्यच्छन्दों का विस्तार तो स्पष्ट है। गद्यात्मक यजुर्मन्त्रों का छन्दोनिरूपण ही दण्डक आदि लौकिक गद्यच्छन्दों का भी स्रोत है। यजुर्वेद के अनेक यजुर्मन्त्रांश मात्रागणों के लालित्य से परिपूर्ण हैं[१]। स्पष्टत: दण्डक, चूर्णकगद्य, उत्कलिकाप्रायगद्य (वृ०मौ०) आदि इनसे उद्भूत हुए होंगे, यह कथन उचित है।

यद्यपि वैदिक उदाहरणों के आधार पर वेदमन्त्रों को साहित्यिक-स्वरूप देकर छन्दोनिर्देशक मानना अभीष्ट नहीं है। किन्तु **'सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति'** (मनु० १२/९७) इस मान्यता के अनुसार छन्दश्शास्त्र के बीज वेद में उपलब्ध होना स्वाभाविक है। इन बीजों को वैदिक शब्दराशि में प्राप्त कर आचार्यों ने छन्दश्शास्त्र का विस्तार किया, यह आर्ष सिद्धान्त है।[२]

अपौरुषेय वेदशब्दों से अधिगत छन्दश्शास्त्रीय परम्परा शौनक, **व्यास**,[३] आचार्य पिङ्गल, केदारभट्ट, क्षेमेन्द्र आदि आचायों से समुपबृंहित होती हुई ईशवीय बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भी **वृत्तमञ्जरी** आदि ग्रन्थों से समृद्ध तथा सफल है यह विश्ववाङ्मय के लिये सुखद आश्चर्य है। वस्तुत: शास्त्ररक्षा का यह स्वाभाविक गुण ही अमरवाणी संस्कृत का स्वरूप है।

ऋग्वेद में छन्दश्शास्त्र की अपरिमेय वितति (ऋ० १०/११४/९) के माहात्म्य एवं छन्दस्तत्त्व के रहस्यज्ञान द्वारा अमृतत्त्व का अधिगम (ऋ० १/१६४/२३) छन्दोवाङ्मय के अध्ययन का अभिलषितार्थ है—

कश्छन्दसां योगमा वेद धीर: को धिष्ण्यां प्रतिवाचं पपाद।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय क: स्वित्॥
यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशु:॥

—०—

१. द्र० शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे (मा०सं० १८/३), तथा—श्यामाकाश्च में नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे (मा०सं० १८/१२) आदि।

२. द्र० वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे (मनु० १/२१)।

३. द्र० नमश्छन्दोनिधानाय सुवृत्ताचारवेधसे।
तप:सत्यनिवासाय व्यासायामिततेजसे (सुवृत्ततिलक १/३)।

परिशेष-भाग

१. प्रमुख वैदिकछन्दों की वर्णानुक्रमशः सूचिका
२. वैदिकछन्दों की अक्षरसंख्यानुसार नामतालिका
३. प्रमुख वैदिकछन्दों का पादाक्षरानुसार स्वरूप तथा उदाहरणस्थल सूचिका
४. यजुश्छन्दों की अक्षरगणनानुसार उदाहरण-सूचिका
५. प्रमुख वर्ण-वृत्तों के स्वरूप, नामभेद एवं लक्षणग्रन्थ
६. प्रमुख मात्रा-छन्दों के स्वरूप, नामभेद एवं लक्षणग्रन्थ
७. गाथादि छन्दोभेदों के लक्षण एवं नामभेद
८. मुख्यलक्षणग्रन्थोक्त छन्दों की वर्णानुक्रमशः सूचिका

प्रथम परिशेष

प्रमुख वैदिकछन्दों की वर्णानुक्रमशः सूचिका

छन्दोनाम

अक्षरपङ्क्तिः
अतिजगती
अतिधृतिः
अतिनिचृत्
अतिपादनिचृत्
अतिशक्वरी
अत्यष्टिः
अनुष्टुप्
अनुष्टुप्गर्भा
अभिकृतिः
अभिसारिणी
अष्टिः
आकृतिः
आर्ची गायत्री
आर्ची जगती
आर्ची त्रिष्टुप्
आर्ची पङ्क्तिः
आर्ची बृहती
आर्च्यनुष्टुप्
आर्च्युष्णिक्
आर्षी गायत्री
आर्षी जगती
आर्षी त्रिष्टुप्
आर्षी पङ्क्तिः
आर्षी बृहती
आर्ष्यनुष्टुप्
आर्ष्युष्णिक्
आसुरी गायत्री
आसुरी जगती

छन्दोनाम

आसुरी त्रिष्टुप्
आसुरी पङ्क्तिः
आसुरी बृहती
आसुर्यनुष्टुप्
आसुर्युष्णिक्
आस्तारपङ्क्तिः
उत्कृतिः
उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती
उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्
उपरिष्टाद्बृहती
उरोबृहती
उष्णिक्
उष्णिग्गर्भा
ऊर्ध्वबृहती
ककुद्मती गायत्री
ककुद्मती जगती
ककुद्मती त्रिष्टुप्
ककुद्मती पङ्क्तिः
ककुद्मती बृहती
ककुद्मत्यनुष्टुप्
ककुद्मत्युष्णिक्
ककुप्
ककुप् न्यङ्कुशिराः
काविराट्
कृतिरनुष्टुप्
कृतिः
गायत्रमध्यपादा त्रिपादनुष्टुप्
गायत्रान्तपादा त्रिपादनुष्टुप्
चतुष्पादुष्णिक्

विशेष—स्थूलाक्षरों में मुद्रित छन्दोभेद शौनक-कात्यायनादि द्वारा भिन्नतया लक्षित है। शेष पिङ्गलोक्त छन्दों में भी द्विविध लक्षण सूची में दो बार निर्दिष्ट हैं।

छन्दोनाम
चतुष्पाद्गायत्री
चतुष्पाद्बृहती
जगती
जागती पङ्क्तिः
जागतद्विपादा त्रिष्टुप्
ज्योतिष्मती जगती
ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्
तनुशिराः
त्रिपदा गायत्री
त्रिष्टुप्
दैवी गायत्री
दैवी जगती
दैवी त्रिष्टुप्
दैवी पङ्क्ति
दैवी बृहती
दैव्यनुष्टुप्
दैव्युष्णिक्
द्विपदा
द्विपदाक्षरपङ्क्तिः
द्विपदा गायत्री
धृतिः
नष्टरूपी
नागी
निचृत्
न्यङ्कुसारिणी
पङ्क्तिः
पङ्क्त्युत्तरा त्रिष्टुप्
पथ्यापङ्क्तिः
पथ्या बृहती
पदपङ्क्तिः
पदपङ्क्तिः
परोष्णिक्
पादनिचृद्गायत्री

छन्दोनाम
पिपीलिकमध्या गायत्री
पिपीलिकमध्यानुष्टुप्
पिपीलिकमध्या बृहती
पिपीलिकमध्योष्णिक्
पुरउष्णिक्
पुरस्ताज्ज्योतिर्जगती
पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्
पुरस्ताद्बृहती
प्रकृतिः
प्रस्तारपङ्क्तिः
प्राजापत्या गायत्री
प्राजापत्या जगती
प्राजापत्या त्रिष्टुप्
प्राजापत्यानुष्टुप्
प्राजापत्या पङ्क्तिः
प्राजापत्या बृहती
प्राजापत्योष्णिक्
बृहती
बृहती
ब्राह्मी गायत्री
ब्राह्मी जगती
ब्राह्मी त्रिष्टुप्
ब्राह्मी पङ्क्तिः
ब्राह्मी बृहती
ब्राह्म्युष्णिक्
भुरिक्
भुरिक्त्रिष्टुप्
भुरिक्पङ्क्तिः
भुरिगनुष्टुप्
भुरिगुष्णिक्
भुरिग्गायत्री
भुरिग्जगती
भुरिग्बृहती

छन्दोनाम
मध्येज्योतिर्जगती
मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप्
महापङ्क्तिः
महापदपङ्क्तिः
महाबृहती
महाबृहती
महासतो बृहती
यवमध्या
यवमध्या त्रिष्टुप्
यवमध्योष्णिक्
याजुषी गायत्री
याजुषी जगती
याजुषी त्रिष्टुप्
याजुषी पङ्क्तिः
याजुषी बृहती
याजुष्यनुष्टुप्
याजुष्युष्णिक्
वर्धमाना
वर्धमाना
वाराही
विकृतिः
विपरीतापङ्क्तिः
विराट्
विराट्
विराट् त्रिष्टुप्
विराट्पङ्क्तिः
विराट्पङ्क्तिः
विराट्पूर्वा
विराट्स्थाना
विराडनुष्टुप्
विराडुष्णिक्
विराड्गायत्री
विराड्जगती

छन्दोनाम
विराड्बृहती
विराड्रूपा
विषमपदा बृहती
विष्टारपङ्क्तिः
विष्टारबृहती
शक्वरी
शङ्कुमती गायत्री
शङ्कुमती त्रिष्टुप्
शङ्कुमती पङ्क्तिः
शङ्कुमती बृहती
शङ्कुमत्यनुष्टुप्
शङ्कुमत्युष्णिक्
सतः पङ्क्तिः
सतो बृहती
संकृतिः
संस्तारपङ्क्तिः
साम्नी गायत्री
साम्नी जगती
साम्नी त्रिष्टुप्
साम्नी पङ्क्तिः
साम्नी बृहती
साम्न्यनुष्टुप्
साम्न्युष्णिक्
स्कन्धोग्रीवी
स्वराट्त्रिष्टुप्
स्वराट्पङ्क्तिः
स्वराडनुष्टुप्
स्वराडुष्णिक्
स्वराड्गायत्री
स्वराड्जगती
स्वराड्बृहती
ह्रसीयसी

द्वितीय परिशेष

वैदिक छन्दों की अक्षरसंख्यानुसार नाम-तालिका

अक्षर-संख्या **छन्द की विविध संज्ञायें**

१. दैवी गायत्री; दैवी उष्णिक् निचृत् ; दैवी अनुष्टुप् विराट् ।

२. दैवी उष्णिक् ; दैवी अनुष्टुप् निचृत् ; दैवीं गायत्री भुरिक् ; दैवी बृहती विराट् ।

३. दैवी अनुष्टुप् ; दैवी बृहती निचृत् ; दैवी उष्णिक भुरिक् ; दैवी पंक्तिर्विराट् ; दैवी गायत्री स्वराट् ।

४. दैवी बृहती ; दैवी पंक्तिर्निचृत् ; दैवी अनुष्टुप् भुरिक् ; दैवी त्रिष्टुप् विराट् ; याजुषी गायत्री विराट् ; दैवी उष्णिक् स्वराट् ।

५. दैवी पंक्ति: ; दैवी त्रिष्टुप् निचृत् ; याजुषी गायत्री निचृत् ; दैवी बृहती भूरिक् ; दैवी जगती विराट् ; याजुषी उष्णिक् विराट् ; दैवी अनुष्टुप् स्वराट् ।

६. दैवी त्रिष्टुप् ; याजुषी गायत्री ; दैवी जगती निचृत् ; याजुषी उष्णिक् निचृत् ; दैवी पंक्तिर्भुरिक् ; प्राजापत्या गायत्री विराट् ; याजुषी अनुष्टुप् विराट् ; दैवी बृहती स्वराट् ।

७. दैवी जगती ; याजुषी उष्णिक् ; प्राजापत्या गायत्री निचृत् ; याजुषी अनुष्टुप् निचृत्; दैवी त्रिष्टुप् भुरिक् ; याजुषी गायत्री भुरिक् ; आसुरी जगती विराट् ; याजुषी बृहती विराट् ; दैवी पंक्ति: स्वराट् ।

८. प्राजापत्या गायत्री ; याजुषी अनुष्टुप् ; आसुरी जगती निचृत् ; याजुषी बृहती निचृत् ' दैवी जगती भुरिक् ; याजुषी उष्णिक् भुरिक् ; आसुरी त्रिष्टुप् विराट् ; याजुषी पंक्तिर्विराट् ; दैवी त्रिष्टुप् स्वराट् ।

९. आसुरी जगती ; याजुषी बृहती ; आसुरी त्रिष्टुप् निचृत् ; याजुषी पंक्तिर्निचृत् ; प्राजापत्या गायत्री भुरिक् ; याजुषी अनुष्टुप् भुरिक् ; आसुरी पंक्तिर्विराट् ; याजुषी त्रिष्टुप् विराट् ; दैवी जगती स्वराट् ; याजुषी गायत्री स्वराट् ।

छन्द की विविध संज्ञायें

अक्षर-संख्या			
१०.	आसुरी त्रिष्टुप् ;	याजुषी पंक्तिः ;	आसुरी पंक्तिर्निचृत् ;
	याजुषी अनुष्टुप् निचृत् ;	आसुरी जगती भुरिक् ;	याजुषी बृहती भुरिक् ;
	प्राजापत्योष्णिग्विराट् ;	आसुरी बृहती विराट् ;	याजुषी जगती विराट् ;
	साम्नी गायत्री विराट् ;	प्राजापत्या गायत्री स्वराट् ;	याजुषी अनुष्टुप् स्वराट् ।
११.	आसुरी पंक्तिः ;	याजुषी त्रिष्टुप् ;	प्राजापत्योष्णिक् निचृत् ;
	आसुरी बृहती निचृत् ;	याजुषी जगती निचृत् ;	साम्नी गायत्री निचृत् ;
	आसुरी त्रिष्टुप् भुरिक् ;	याजुषी पंक्तिर्भुरिक् ;	आसुरी अनुष्टुप् विराट् ;
	आसुरी जगती विराट् ;	याजुषी बृहती स्वराट् ।	
१२.	प्राजापत्योष्णिक् ;	आसुरी बृहती ;	याजुषी जगती ;
	साम्नी गायत्री ;	आसुरी अनुष्टुप् निचृत् ;	आसुरी त्रिष्टुप् विराट् ;
	याजुषी पंक्तिर्विराट् ;	आसुरी पंक्ति भुरिक् ;	याजुषी पंक्तिः स्वराट् ।
	याजुषी त्रिष्टुप् भुरिक् ;	आसुरी उष्णिग्विराट् ;	साम्नी उष्णिग्विराट् ;
	आसुरी त्रिष्टुप् भूरिक् ;		
१३.	आसुरी अनुष्टुप् ;	आसुरी उष्णिक् निचृत् ;	साम्नी उष्णिक् निचृत् ;
	प्राजापत्योष्णिक् भुरिक् ;	आसुरी बृहती भुरिक् ;	याजुषी जगती भुरिक् ;
	साम्नी गायत्री भुरिक् ;	आसुरी गायत्री विराट् ;	आसुरी पङ्क्तिः स्वराट् ;
	याजुषी त्रिष्टुप् स्वराट् ।		
१४.	आसुरी उष्णिक् ;	साम्नी उष्णिक् ;	आसुरी गायत्री निचृत् ;
	आसुरी अनुष्टुप् भुरिक् ;	प्राजापत्यानुष्टुप् विराट् ;	साम्नी अनुष्टुप् विराट् ;
	प्राजापत्योष्णिक् स्वराट् ;	आसुरी बृहती स्वराट् ;	याजुषी जगती स्वराट् ;
	साम्नी गायत्री स्वराट् ।		
१५.	आसुरी गायत्री ;	प्राजापत्यानुष्टुप् निचृत् ;	साम्नी अनुष्टुप् निचृत् ;
	आसुरी उष्णिक् भुरिक् ;	साम्नी उष्णिक् भुरिक् ;	आसुरी अनुष्टुप् स्वराट् ।
१६.	प्राजापत्यानुष्टुप् ;	साम्नी अनुष्टुप् ;	आसुरी गायत्री भुरिक् ;
	आर्ची गायत्री विराट् ;	साम्नी बृहती विराट् ;	आसुरी उष्णिक् स्वराट् ;
	साम्नी उष्णिक् स्वराट् ।		

अक्षर-संख्या **छन्द की विविध संज्ञायें**

१७. आर्ची गायत्री निचृत् ; साम्नी बृहती निचृत् ; प्राजापत्यानुष्टुप् भुरिक् ;
आसुरी गायत्री ; गायत्री स्वराट् ।

१८. आर्ची गायत्री ; साम्नी बृहती ; प्राजापत्या बृहती विराट् ;
साम्नी पंक्तिः विराट् ; प्राजापत्यानुष्टुप् स्वराट् ; साम्नी अनुष्टुप् स्वराट् ।

१९. प्राजापत्या बृहती निचृत् ; साम्नी पंक्तिर्निचृत् ; आर्ची गायत्री भुरिक् ;
साम्नी बृहती भुरिक् ; आर्ची उष्णिक् विराट् ।

२०. प्राजापत्या बृहती ; साम्नी पंक्तिः ; आर्ची उष्णिक् निचृत् ;
साम्नी त्रिष्टुप् विराट् ; आर्ची गायत्री स्वराट् ; साम्नी बृहती स्वराट् ।

२१. आर्ची उष्णिक् ; साम्नी त्रिष्टुप् निचृत् ; प्राजापत्या बृहती भुरिक् ;
साम्नी पंक्तिर्भुरिक् ।

२२. साम्नी त्रिष्टुप् ; आर्ची उष्णिग्भुरिक् ; प्राजापत्या पंक्तिर्विराट् ;
आर्ची गायत्री विराट् ; आर्ची अनुष्टुप् विराट् ; साम्नी जगती विराट् ;
प्राजापत्या बृहती स्वराट् ; साम्नी पंक्तिः स्वराट् ।

२३. प्राजापत्या पंक्तिर्निचृत् ; आर्षी गायत्री निचृत् ; आर्ची अनुष्टुप् निचृत् ;
साम्नी जगती निचृत् ; साम्नी त्रिष्टुप् भुरिक् ; आर्ची उष्णिक् स्वराट् ।

२४. प्राजापत्या पंक्तिः ; आर्षी गायत्री ; आर्ची अनुष्टुप् ;
साम्नी जगती ; साम्नी त्रिष्टुप् स्वराट् ; **गायत्री** ।

२५. प्राजापत्या पंक्तिर्भुरिक् ; आर्षी गायत्री भुरिक् ; आर्ची अनुष्टुब्भुरिक् ;
साम्नी जगती भुरिक् ; आर्ची बृहती विराट् ।

२६. आर्ची बृहती निचृत् ; प्राजापत्या त्रिष्टुप् विराट् ; आर्षी उष्णिक् विराट् ;
प्राजापत्या पंक्तिः स्वराट् ; आर्षी गायत्री स्वराट् ; आर्ची अनुष्टुप् स्वराट् ;
साम्नी जगती स्वराट् ।

२७. आर्ची बृहती ; प्राजापत्या त्रिष्टुप् निचृत् ; आर्षी उष्णिक् निचृत् ।

२८. प्राजापत्या त्रिष्टुप् ; आर्षी उष्णिक् ; आर्ची बृहती भुरिक् ;
आर्ची पंक्तिर्विराट् ; **उष्णिक्** ; (ककुप्)

२९. आर्ची पंक्तिर्निचृत् ; प्राजापत्या त्रिष्टुप् भुरिक् ; आर्षी उष्णिग्भुरिक् ;
आर्ची बृहती स्वराट् ।

अक्षर-संख्या	छन्द की विविध संज्ञायें		
३०.	आर्ची पंक्तिः ;	प्राजापत्या जगती विराट् ;	आर्षी अनुष्टुप् विराट् ;
	प्राजपत्या त्रिष्टुप् विराट् ;	आर्षी उष्णिक् स्वराट् ;	ऋचां पंक्तिः (मा० सर्वा०-२३/१९ देवः)
३१.	प्राजापत्या जगती निचृत् ;	आर्षी अनुष्टुप् निचृत् ;	आर्ची पंक्तिर्भुरिक् ;
	आर्ची त्रिष्टुप् विराट् ।		
३२.	प्राजापत्या जगती;	आर्षी अनुष्टुप् ;	आर्ची त्रिष्टुप् निचृत् ;
	आर्ची पंक्तिः स्वराट् ; **अनुष्टुप्** ।		
३३.	आर्ची त्रिष्टुप् ;	प्राजापत्या जगती भुरिक् ;	आर्षी अनुष्टुप् भुरिक् ।
३४.	आर्ची त्रिष्टुप् भुरिक् ;	आर्षी बृहती विराट् ;	आर्ची जगती विराट् ;
	ब्राह्मी गायत्री विराट् ;	प्राजापत्या जगती स्वराट् ;	आर्षी अनुष्टुप् स्वराट् ।
३५.	आर्षी बृहती निचृत् ;	आर्ची जगती निचृत् ;	ब्राह्मी गायत्री निचृत् ;
	आर्ची त्रिष्टुप् स्वराट् ।		
३६.	आर्षी बृहती ;	आर्ची जगती ;	ब्राह्मी गायत्री ; **बृहती** ;
	(सतोबृहती) ।		
३७.	आर्षी बृहती भुरिक् ;	आर्ची जगती भुरिक् ;	ब्राह्मी गायत्री भुरिक् ।
३८.	आर्षी पंक्तिर्विराट् ;	आर्षी बृहती स्वराट् ;	आर्ची जगती स्वराट् ;
	ब्राह्मी गायत्री स्वराट् ।		
३९.	आर्षी पंक्तिर्निचृत् ।		
४०.	आर्षी पंक्तिः ;	ब्राह्मी उष्णिक् विराट् ; (पंक्तिः) ;	(तन्द्रज्छन्दः मा० सं०-१४/९ श०ब्रा० ८/२/४/३) ।
४१.	ब्राह्मी उष्णिक् निचृत् ;	आर्षी पंक्तिर्भुरिक् ।	
४२.	ब्राह्मी उष्णिक् ;	आर्षी त्रिष्टुप् विराट् ;	आर्षी पंक्तिः स्वराट् ।
४३.	आर्षी त्रिष्टुप् निचृत् ;	ब्राह्मी उष्णिक् भुरिक् ।	
४४.	आर्षी त्रिष्टुप् ;	ब्राह्मी उष्णिक् स्वराट् ; **त्रिष्टुप्** ।	
४५.	आर्षी त्रिष्टुप् भुरिक् ।		
४६.	आर्षी जगती विराट् ;	ब्राह्मी अनुष्टुप् विराट् ;	जगती विराट् ;
	आर्षी त्रिष्टुप् स्वराट् ।		

अक्षर-संख्या	छन्द की विविध संज्ञायें		
४७.	आर्षी जगती निचृत् ;	ब्राह्मी अनुष्टुप् निचृत् ;	जगती निचृत् ।
४८.	आर्षी जगती ;	ब्राह्मी अनुष्टुप्; **जगती** (अतिच्छन्दाः) ।	
४९.	आर्षी जगती भुरिक् ;	ब्राह्म्यनुष्टुप् भुरिक् ;	जगती भुरिक् ।
५०.	अतिजगती विराट् ;	आर्षी जगती स्वराट् ;	ब्राह्म्यनुष्टुप् स्वराट् ; जगती स्वराट् ।
५१.	अतिजगती निचृत् ।		
५२.	अतिजगती ;	ब्राह्मी बृहती विराट् ।	
५३.	ब्राह्मी बृहती निचृत् ;	अतिजगती भुरिक् ।	
५४.	ब्राह्मी बृहती ;	शक्वरी विराट् ;	अतिजगती स्वराट् ।
५५.	शक्वरी निचृत् ;	ब्राह्मी बृहती भूरिक् ।	
५६.	शक्वरी;	ब्राह्मी बृहती भूरिक् । स्वराट् ; (महानाम्न्यो रेवत्यः मा० सं० २३/२५)	
५७.	शक्वरी भुरिक् ।		
५८.	ब्राह्मी पंक्तिर्विराट् ;	अतिशक्वरी विराट् ;	शक्वरी स्वराट् ।
५९.	ब्राह्मी पंक्तिर्निचृत् ;	अतिशक्वरी निचृत् ।	
६०.	ब्राह्मी पंक्तिः ;	अतिशक्वरी ।	
६१.	ब्राह्मी पंक्तिर्भुरिक् ;	अतिशक्वरी भुरिक् ।	
६२.	अष्टिर्विराट् ;	ब्राह्मी पंक्तिः स्वराट् ;	अतिशक्वरी स्वराट् ।
६३.	अष्टिर्निचृत् ।		
६४.	अष्टिः ;	ब्राह्मी त्रिष्टुप् विराट् ।	
६५.	ब्राह्मी त्रिष्टुप् निचृत् ;	अष्टिर्भुरिक् ।	
६६.	ब्राह्मी त्रिष्टुप् ;	अत्यष्टिर्विराट् ;	अष्टिः स्वराट् ।
६७.	अत्यष्टिर्निचृत् ;	ब्राह्मी त्रिष्टुप् भुरिक् ।	
६८.	अत्यष्टिः ;	ब्राह्मी त्रिष्टुप् स्वराट् ।	
६९.	अत्यष्टिर्भुरिक् ।		
७०.	ब्राह्मी जगती विराट् ;	धृतिर्विराट् ;	अत्यष्टिः स्वराट् ।

अक्षर-संख्या	छन्द की विविध संज्ञायें		
७१.	ब्राह्मी जगती निचृत् ;	धृतिर्निचृत्।	
७२.	ब्राह्मी जगती ;	धृतिः।	
७३.	ब्राह्मी जगती भुरिक् ;	धृतिर्भुरिक्।	
७४.	अतिधृतिर्विराट् ;	ब्राह्मी जगती स्वराट् ;	धृतिः स्वराट्।
७५.	अतिधृतिर्निचृत्।		
७६.	अतिधृतिः।		
७७.	अतिधृतिर्भुरिक्।		
७८.	कृतिर्विराट् ;	अतिधृतिः स्वराट्।	
७९.	कृतिर्निचृत्।		
८०.	कृतिः।		
८१.	कृतिर्भुरिक्।		
८२.	प्रकृतिर्विराट् ;	कृतिः स्वराट्।	
८३.	प्रकृतिर्निचृत्।		
८४.	प्रकृतिः।		
८५.	प्रकृतिर्भुरिक्।		
८६.	आकृतिर्विराट् ;	प्रकृति स्वराट्।	
८७.	आकृतिर्निचृत्।		
८८.	आकृतिः।		
८९.	आकृतिर्भुरिक्।		
९०.	स्वराडाकृतिः ;	विकृतिर्विराट्।	
९१.	निचृद्विकृतिः।		
९२.	विकृतिः।		
९३.	भुरिग् विकृतिः।		
९४.	संकृतिर्विराट् ;	विकृतिः स्वराट्।	
९५.	निचृत् संकृतिः।		
९६.	संकृतिः।		
९७.	संकृतिर्भुरिक्।		

अक्षर-संख्या	छन्द की विविध संज्ञायें	
९८.	विराडभिकृतिः ;	स्वराट् संकृतिः ।
९९.	निचृदभिकृतिः ।	
१००.	अभिकृतिः ।	
१०१.	भुरिगभिकृतिः ।	
१०२.	उत्कृतिर्विराट् ; स्वराडभिकृतिः ।	
१०३.	उत्कृतिर्निचृत् ।	
१०४.	उत्कृतिः ।	
१०५.	भुरिगुत्कृतिः ।	
१०६.	उत्कृतिः स्वराट् ।	
१०७.	विच्छन्दाः (द्र० मा० सं० २३/३४)	

तृतीय परिशेष
प्रमुख वैदिकछन्दों का पादाक्षरानुसार स्वरूप तथा उदाहरणस्थल-सूचिका

कात्यायन के अनुसार प्रतिपादित इस तालिका में क्रमशः क्रमसंख्या, छन्द की अक्षरसंख्या कोष्ठक में यथार्ह प्रथम, द्वितीय, षष्ठ आदि पादों में अक्षरसंख्या, तदनन्तर विशेषतुलना के लिये ऋक्संहिता, माध्यन्दिनीय संहिता आदि में उदाहरणस्थल तथा अतिरिक्त नाम उल्लिखित हैं। इयादि के द्वारा पूर्ति हेतु इ०, निचृत् के लिये नि०, भुरिक् हेतु भु० तथा स्वराट् विशेषण के लिये स्व० सङ्केत है।

१. त्रिपदा गायत्री (८,८,८) द्र० त्रिपदार्षी गायत्री (अथ०सर्वा०पृ० ६)
२. पदपंक्तिर्गायत्री (५,५,५,५,६) द्र०ऋ० ४/१०/२ इ०, मा० १५/४५ इ.
३. पदपंक्तिर्गायत्री (५,५,५,४,६) द्र० पञ्चपदा पदपंक्तिः, पदपंक्तिः (उ) द्र०ऋ० ४/१०/१ इ. मा० १५/४४ इ०
४. उष्णिग्गर्भा गायत्री (६,७,११) द्र०ऋ० ८/२५/२३
५. पादनिचृद्गायत्री (७,७,७) द्र०ऋ० ४/३१/३, मा० २७/४१
६. अतिनिचृद्गायत्री (७,६,७) द्र०ऋ० ६/४५/२९
७. यवमध्या गायत्री (७,१०,७) द्र०ऋ० ९/१०८/१३
८. वर्धमाना गायत्री (६,७,८) द्र०ऋ० ८/८३/७ इ०, मा० ३३/४७ इ० सा०पू० १/१/२
९. प्रतिष्ठा गायत्री (८,७,६) द्र०ऋ० १/२३/२१, मा० ४/१६ इ०
१०. ह्रसीयसी गायत्री (६,६,७)
११. त्रिपदोष्णिक् (८,८,१२) द्र० परोष्णिक् द्र०ऋ० १/७९/४ मा० १५/३५
१२. पुर उष्णिक् (१२,८,८) द्र०ऋ० ८/२३/१९ इ०, मा० ९/६ इ०
१३. ककुबुष्णिक् (८,१२,८) द्र०ऋ० ८/१९/१९, मा० १५/३८
१४. ककुम्न्यंकुशिरा उष्णिक् (११,१२,४) द्र०ऋ० ८/४६/१५
१५. तनुशिरा उष्णिक् (११,११,६) द्र०ऋ० १/१२०/५
१६. पिपीलिकमध्योष्णिक् (११,६,११) द्र० विराड्गायत्री ककुद्म्`, ऋ० १०/१०५/२, मा० २७/२२
१७. अनुष्टुब्गर्भोष्णिक् (५,८,८,८) द्र०ऋ० १/१८७/१, मा० ३४/७
१८. उष्णिक् (७,७,७,७) द्र०ऋ० ८/६९/२ मा० ३/६२
१९. अनुष्टुप् (८,८,८,८) द्र०ऋ० ४/३९/६ मा० २३/३२
२०. महापदपंक्तिः अनुष्टुप् (५,५,५,५,५,६) द्र०ऋ० ४/१०/५

२१. कृतिरनुष्टुप् (१२,१२,८) द्र०ऋ० १/१२०/८
२२. पिपीलिकमध्या कृतिरनुष्टुप् (१२,८,१२) द्र०ऋ० ९/११०/१ नि० मा० २२/१८ नि०इ०
२३. काविराडनुष्टुप् (९,१२,९) द्र०ऋ० १/१२०/३
२४. नष्टरूपानुष्टुप् (९,१०,१३) द्र०ऋ० १/१२०/४, मा० ७/१ नि०
२५. विराडनुष्टुप् (१०,१०,१०) द्र० विराट्पंक्तिः (उ०) द्र०ऋ० ७/२२/४ मा० १७/७६ इ०
२६. विराडनुष्टुप् (११,११,११) द्र० त्रिपदा विराड्गायत्री (अ०स०पृ० ४), विराट्पंक्तिः (उ) द्र०ऋ० ३/२५/४, मा० १८/३६ इ०, सा०पू० १/७/१०
२७. (पथ्या) बृहती (८,८,१२,८) द्र० पथ्या बृहती, सिद्धा बृहती (उ०) द्र०ऋ० ७/१६/१ इ०, मा० १५/३२ इ०, सा० पू० १/४/१
२८. पुरस्ताद् बृहती (१२,८,८,८) द्र०ऋ० १०/९३/१५, मा० ४/२८ इ०
२९. न्यङ्कुसारिणी बृहती (८,१२,८,८) द्र०ऋ० १०/१३२/१, मा० ३/३९ भु उरोबृहती (८,१२,८,८)
स्कन्धोग्रीवी बृहती (८,१२,८,८)
३०. उपरिष्टाद्बृहती (८,८,८,१२) द्र०ऋ० ८/८९/१ मा० २०/३० सा०पू० ३/७/६
३१. विष्टारबृहती (८,१०,८) द्र०ऋ० १/१२०/७
३२. ऊर्ध्वबृहती (१२,१२,१२) द्र० सतोबृहती, महाबृहती, विराडूर्ध्वबृहती (ऋ०) द्र०ऋ० ९/११०/४ नि० इ० मा० १२/७ नि०
३३. पिपीलिकमध्या बृहती (१३,८,१३) द्र०ऋ० ८/४६/१४ मा० १७/६७ स्व०, सा०पू० ३/८/३
३४. विषमपदा बृहती (९,८,११,८) द्र०ऋ० ८/४६/२०
३५. बृहती (९,९,९,९) द्र०ऋ० १/१८७/११
३६. पथ्या पंक्तिः (८,८,८,८,८) द्र० त्रिष्टुप् (उ०) पञ्चपदा द्र०ऋ० ५/६/१ मा० १५/४१
३७. विराट्पंक्तिः (१०,१०,१०,१०) द्र०ऋ० ८/९६/४ मा० ८/२५ भु०
३८. सतोबृहती पंक्तिः (१२,८,१२,८) द्र० सतः पंक्तिः, सिद्धा पंक्तिः (उ०) विष्टारपंक्तिः द्र०ऋ० ७/३२/२३ इ० मा० २७/३६ इ०
३९. विपरीताबृहती पंक्तिः (८,१२,८,१२) द्र० विपरीता पंक्तिः (ऋ०) सतः पंक्तिः (पि०) द्र०ऋ० ८/४६/१२ मा० ६/३३ नि०
४०. प्रस्तारपंक्तिः (१२,१२,८,८) द्र०ऋ० १०/९३/१, मा० १३/१८ भु०
४१. आस्तारपंक्तिः (८,८,१२,१२) द्र०ऋ० १०/२१/१, मा० ४/२३

४२. संस्तारपंक्तिः (१२,८,८,१२) द्र०ऋ० विरोध: १०/१७२/३
४३. विष्टारपंक्तिः (८,१२,१२,८) द्र०ऋ० विरोध: १०/१४०/५, मा० १२/११०
४४. त्रिष्टुप् (११,११,११,११) द्र०ऋ० ६/१७/१, मा० १/२८
४५. (जागतऋग्गणे) जगती (१२,१२,११,११) द्र०ऋ० १०/२३/४, मा० २५/१७ नि०
४६. (त्रैष्टुभऋग्गणे) त्रिष्टुप् (१२,१२,११,११) द्र०ऋ० १/१६२/१२, मा० २५/३५
४७. अभिसारिणी (१०,१०,१२,१२) द्र०ऋ० १०/२३/५
४८. विराट्स्थाना (९,९,१०,११) द्र०ऋ० १/८९/६, मा० २५/१९
४९. विराट्स्थाना (१०,१०,९,११) द्र०ऋ० १/८९/६ नि०, मा० २५/१९ नि०
५०. विराड्रूपा (११,११,११,८) द्र०ऋ० ५/१९/५, मा० २/२२ भु०
५१. ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् (१२,१२,१२,८) द्र० उपरिष्टाज्ज्योतिः, अष्टाक्षरपादस्य क्वाचित्कता
५२. पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् (८,१२,१२,१२) द्र० मा० १७/७४
५३. मध्येज्योतिः (१२,१२,८,१२) द्र०ऋ० ८/१०/२ मा० १९/८२
५४. उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् (१२,१२,१२,८) द्र०ऋ० ८/३५/१, मा० १२/१११
५५. महाबृहती त्रिष्टुप् (८,८,८,८,१२) द्र० पञ्चपदा जगती (उ०) द्वादशाक्षरपादस्य यत्र क्वचन सत्त्वम् द्र०ऋ० ८/३५/२३, मा० १९/७२
५६. यवमध्या त्रिष्टुप् (८,८,१२,८,८) द्र०ऋ० ६/४८/७
५७. पंक्त्युत्तरा त्रिष्टुप् (१०,१०,८,८,८)
विराट्पूर्वा त्रिष्टुप् (१०,१०,८.८.८) द्र०ऋ० ५/८६/६
५८. जगती (१२,१२,१२,१२) द्र०ऋ० ९/६१/१, मा० १५/२६
५९. महासतोबृहती जगती (८,८,८,१२,१२) द्र० क्रमाभावोऽत्र, द्र०ऋ० ६/४८/६
६०. महापंक्तिर्जगती (८,८,७,६,१०,९) द्र० अत्रापि न क्रमनियम: द्र०ऋ० १/१९१/१०, मा० १८/५५
६१. महापंक्तिर्जगती (८,८,८,८,८,८) द्र० जगतीपंक्तिः (पि०) द्र०ऋ० ८/३७/२, मा० ८/४२
६२. मध्येज्योतिष्मती जगती (१२,८,१२,९२) अ० १०/१/२९
६३. शंकुमती गायत्री (८,५,८) द्र०सा०पू० १/१/२
६४. अक्षरपंक्तिः (५,५,५,५) द्र०सा०पू० ५/५/१
६५. पदपंक्तिः (५,५,५,५,५) अ० १५/२/२७
६६. अनुष्टुप् ककुम्मती (८,६,८,८) अ० २/३३/३
६७. उपरिष्टाद् बृहती ककुम्मती (८,८,६,१२) अ० ४/३/७३
६८. अनुष्टुप् ककुम्मती (८,८,६,८) अ० ४/९/२

६९. शंकुमती (अनुष्टुप्) (८,५,८,८) अ० ४/१५/१५
७०. चतुष्पाद्गायत्री (६,६,६,६)
७१. अतिपादनिचृत् (६,८,७)
७२. नागी गायत्री (९,९,६)
७३. वाराही गायत्री (६,९,९)
७४. विराड् गायत्री (१२,८)
७५. त्रिपादनुष्टुप् (८,१२,१२)
७६. बृहती (१०,१०,८,८)
७७. ककुम्मती अनुष्टुप् (६,८,८,८) द्र०ऋ० ८/६३/१, अ० १/१०/३
७८. पिपीलिकमध्या गायत्री (८,४,८) द्र०ऋ० ९/१०७/१६
७९. पुरउष्णिक्ककुम्मती (१२,८,६) अ० १०/६०/२
८०. उष्णिक् शंकुमती (७,७,७,५) अ० १९/४४/४३
८१. पथ्यापंक्तिः शंकुमती (८,८,८,८,५) अ० १९/४३/२
८२. पथ्यापंक्तिः ककुद्मती (८,८,८,८,६) अ० १९/४२/३
८३. उपरिष्टाद्बृहती ककुम्मती (६,८,८,१२) अ० १९/४०/२३

●

चतुर्थ परिशेष

यजुश्छन्दों की अक्षरगणनानुसार उदाहरण-सूचिका[१]

अक्षरसंख्या	उदाहरण

१. ॐ (मा० सं० ४०/१५)
२. स्वाहा (मा० सं० ४/६)
३. इषे त्वा (मा० सं० १/१, २३/८, (४)
४. वायवः स्थ (मा० सं० १/१, २३/८ (१)
५. अग्नये स्वाहा २२/६ (९)
६. वरुणाय स्वाहा २२/६ (१०)
७. बृहस्पतये स्वाहा २२/६ (८)
८. विजृम्भमाणाय स्वाहा २२/७ (१९)
९. वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि २२/५ (३)
१०. इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि २२/५ (२)
११. प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि २२/५ (१)
१२. सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि २२/५ (४)
१३. अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु १/१९
१४. परापूतं रक्षः परापूता अरातयः १/१६, २६/४ (३)
१५. एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरिदगन् २३/१३ (२)
१६. तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि २२/१ (१), २३/१९ (१)
१७. तं वधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि २२/४ (३)
१८. अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् १/२३
१९. उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि २३/२ (१)
२०. ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम् २२/४ (२)
२१. देवा अशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितं रक्षत २२/१९ (२)
२२. देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा १/३ (२)
२३. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे २२/१ (३)
२४. सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः १/१२
२५. धूरसि ………… धूर्वामः १/८
२६. इदमहं तं वलग ………… निचखान ५/२३
२७. कुक्कुटोऽसि ………… जेष्म १/१६

---

१. सभी माध्यन्दिनीयसंहितोक्त उदाहरण क्रमशः १ से ३५ अक्षरों तक निर्दिष्ट हैं।

२८. देव्याय कर्मणे ········· वस्तच्छुन्धामि १/१३
२९. कस्त्वा विमुञ्चति ··············· विमुञ्चति पोषाय २/२३
३०. इन्द्रा‍ग्नी ·········· प्रसवेनापोहामि २/१५
३१. तपसस्तनूरसि ··········· पुषेयम् ४/२६
३२. मातरिश्वनो घर्मोऽसि ············ यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् १/२
३३. दीर्घामनु ············ पाणिना १/२०, २८/२३ (१)
३४. ध्रुवमसि ········ वधाय १/१९, २६/२ (१)
३५. यद्वातो ·············· मावर्तयामसि नः २३/७

●

पञ्चम परिशेष

प्रमुख वर्ण-वृत्तों के स्वरूप, नामभेद एवं लक्षणग्रन्थ

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
		एकाक्षर-छन्द	
१.	श्रीः	ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, छन्दोनु०, छ०वि०; **उक्तम्**-स्व०छ०, **गीः**-क०द०; **गौ**-वृ०स० ।
२.	इः	ल	वृ०मौ०, छन्दोनु०; **स्नु**-वाग्व०
		द्व्यक्षर-छन्द	
१.	कामः	ग.ग.	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **अत्युक्तम्**- स्व०छ०; **नौ**-वृ०स०; **स्त्री**-क०द०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०; **पद्मम्**-है०छ०ट०टी०, छन्दोनु०; **आशीः**-छ०वि०
२.	मही	ल ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **सुखं**-है०छ०अ०, छन्दोनु० ।
३.	सारः	ग ल	वृ०मौ०, वृ०मु०; **सारु**-प्रा०पै०, वा०भू०; **दुःखं**-है०छ०अ०; **चारु**-वाग्व०, **जत्रु**-छन्दोनु० ।
४.	मधुः	ग ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **मदः**-है०छ०अ०; **पुष्पम्**-है०छ०अ०टी०; **वलि**-छन्दोनु० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
		त्र्यक्षर-छन्द	
१.	ताली	म	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०; **नारी**-वृ०मौ०, क०द०, वृ०स०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **श्यामाङ्गी**-छन्दोनु० ।
२.	शशी	य	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०मु०, **मध्यमं**-स्व०छ०; **केशा**-है०छ०अ०, **धू:**-है०छ०अ०टी०; **बलाका**- वाग्व०, **वनम्**-छन्दोनु० ।
३.	प्रिया	र	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, **मध्यमम्**-स्व०छ०, **मृगी**-क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **तडित**-है०छ०अ०टी०; **सुधी**-छन्दोनु०, **चञ्चला**-छ०वि० ।
४.	रमण:	स०	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व: **मध्यमम्**-स्व० छ०; मदन:-है०छ०अ०; **रजनी**-छ०अ०टी०; **प्रवर:**-छन्दोनु० ।
५.	पञ्चालम्	त	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वाग्व०; **सेना**-छन्दोनु० ।
६.	मृगेन्द्र:	ज	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **मन्दरि**-वाग्व०; **हृदयम्**-छन्दोनु०
७.	मन्दर:	भ	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०भू०; **मन्दरि**-वाग्व०; **हृदयम्**-छन्दोनु० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
८.	कमलम्	न	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, **हरणि**-वाग्व:, **दृग्**-छन्दोनु० ।

चतुरक्षर-छन्द

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२.	व्रीडा	य ग	है०छ०अ०, क०द०, **क्रीडा**-वाग्व० **वृद्धिः**-छन्दोनु०
३.	समृद्धिः	र ग	है०छ०अ०, **पुण्य**-है०छ०अ०टी०, **नन्दः**-वाँग्व०, **चर्द्धिः**-छन्दोनु०
४.	सुमतिः	स ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **भ्रमरी**-है० छ०अ०टी०, **दोला**-वाग्व०, **रामा**- वाग्व०
५.	सोमप्रिया	त ग	है०छ०अ०, **धरा**-वाग्व०, **तारा**-छन्दोनु०
७.	सुमुखी	भ ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **ललिता**-है०छ०अ०टी०, **बला**-वाग्व०
८.	मृगवधूः	न ग	बृ०स०, है०छ०अ०, छ०म०, **सती**-वाग्व०, **मधु**-छन्दोनु० **कुसुमिता**-छ०वि०, **तरणिजा**-वाग्व०
९.	मुग्धम्	म ल	वाग्व०, **गोपाल**-वाग्व०, **वल्ली**-छन्दोनु०
१०.	वारि	य ल	वाग्व०, **कर्तृ**-वाग्व०, **सद्म**-छन्दोनु०
१२.	कारु	स ल	वाग्व०, **वीरु**-वाग्व०, **कदली**-छन्दोनु०
१३.	तावुरि	त ल	वाग्व०, **कृष्ण**-वाग्व०, **त्रपु**-छन्दोनु०
१४.	ऋजु	ज ल	वाग्व०, **जपा**-छन्दोनु०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१५.	अनृजु	भ ल	वाग्व०, **निशि**-वाग्व०, **जतु**-छन्दोनु०
१.	तीर्णा	म०ग०	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **कन्या**-वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **कीर्णा**-वाग्व०; **गीतिः**-छन्दोनु०
११.	धारी	र ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **वर्त्म**-छन्दोनु०।
६.	नगाणिका	ज ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **विलासिनी**-है०छ०अ०; **जया**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०; **कला**-वाग्व०।
१६.	शुभम्	न ल	वृ०मौ०, **पटु**-वाग्व०; **हरिः**-वाग्व०; **दयि**-छन्दोनु०।

पञ्चाक्षर-छन्द

२.	नाली	य ग ग	वाग्व०
३.	प्रीतिः	र ग ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **सूरिणी**-वाग्व०
४.	घनपंक्तिः	स ग ग	है०छ०अ०, **प्रगुणं**-वाग्व०, **चतुर्वंशा**-वाग्व०, **सुदती**-छन्दोनु०
६.	सती	ज ग ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **शिखा**-है०छ०अ०टी०, **कण्ठी**-वाग्व०
८.	कललि	न ग ग	वाग्व०
९.	सावित्री	म ल ग	है०छ०अ०, **हासिका**-वाग्व०
१०.	जया	य ल ग	क०द०, है०छ०अ०, **नरी**-वाग्व०
११.	विदग्धकः	र ल ग	है०छ०अ०, **वागुरा**-है०छ०अ०टी०, **वैनस**-वाग्व०, **शामिनी**-जा०छ०वि०, **धृति**-छन्दोनु०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१३.	नन्दा	त ल ग	क०द०, है०छ०अ०, छन्दोनु०, **कणिका**-वाग्व०
१४.	शिला	ज ल ग	वाग्व०
१५.	रतिः	भ ल ग	है०छ०अ०, **मण्डलम्**-वाग्व०, **शर्म**-छन्दोनु०
१६.	अभिमुखी	न ल ग	है छ०अ०, **मृगचपला**-है०छ०अ०टी०, **कनकमुखी**-छ०अ०टी०, **धृतिः**-छन्दोनु०, **सुलू**-वाग्व०
१७.	कुम्भारि	म ग ल	वाग्व०
१८.	भ्रूः	य ग ल	वाग्व०
१९.	ह्रीः	र ग ल	वाग्व०
२०.	पालि	स ग ल	वाग्व०
२१.	किञ्जल्कि	त ग ल	वाग्व०
२२.	वार्द्धि	ज ग ल	वाग्व०
२३.	विट्	भ ग ल	वाग्व०
२४.	पांशु	न ग ल	वाग्व०
२५.	मालीनम्	म ल ल	वाग्व०
२६.	वरीयः	य ल ल	वाग्व०
२७.	कल्किः	र ल ल	वाग्व०
२८.	जतु	स ल ल	वाग्व०
२९.	छिद्रम्	त ल ल	वाग्व०
३०.	क्षुपम्	ज ल ल	वाग्व०, **हरम्**-वाग्व०
३१.	क्षुत्	भ ल ल	वाग्व०, **विष्णुः**-वाग्व०
१.	सम्मोहा	म ग ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०; **सम्मोहासारः**-वा०भू०, वाग्व०; **बाला**-वाग्व०।
५.	हारी	त ग ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०; **हारीत**-वृ०मु०; **लोलं**-वाग्व०; **सहारी**-वाग्व०; **मृगाक्षि**-वृ०स०; **तिष्ठद्गु**-छन्दोनु०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
७.	हंसः	भ ग ग	वृ०मौ०,प्रा०पै०, वा०भू०, **पंक्तिः**-है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **अक्षरोपपदा**-है०छ०अ०टी०; **कुन्तलतन्वी**-है०छ०अ०टी०; **काञ्चनमाला**-छन्दोनु० ।
१२.	प्रिया	स ल ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **रमा**-छन्दोनु० ।
३२.	यमकम्	न ल ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०; **हलि**-वाग्व०; **जन्मि**-वाग्व: ।

षडक्षर-छन्द

	शिखण्डिनी	य म	है०छ०अ०, र०म०, **पन्था**-वाग्व०
३.	मालिनी	र म	ना०शा०, है०छ०अ०, **करेणु**-वाग्व०
४.	सूचीमुखी	स म	है०छ०अ०, र०म०, **अभिख्या**-वाग्व०
५.	वभ्रूः	त म	वाग्व०
६.	कञ्जा	ज म	वाग्व०
७.	विक्रान्ता	भ म	है०छ०अ०, **सिन्धुरया**-वाग्व०
८.	गुणवती	न म	वाग्व०
९.	सुनन्दा	म य	है०छ०अ०, **तन्त्री**-वाग्व०, **तटी**-छन्दोनु०
११.	पिकाली	र य	वाग्व०
१२.	विमला	स य	है०छ०अ०, **कमनी**-वाग्व०
१४.	अरजस्का	ज य	वाग्व०
१५.	कामलतिका	भ य	है०छ०अ०, **ईति**-वाग्व०, **कामललिता**-छन्दोनु०
१७.	तटी	म र	है०छ०अ०, **अवोढा**-वाग्व०
१८.	कच्छपी	य र	वाग्व०
२०.	मृदुकीला	स र	वाग्व०
२१.	जला	त र	है०छ०अ०, **स्थाली**-वाग्ब०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२२.	वलीमुखी	ज र	वाग्व०
२३.	लघुमालिनी	भ र	है०छ०अ०, **शुनकम्**-वाग्व०
२४.	निरसिका	न र	वाग्व०, **मणिरुचिः**-छन्दोनु०
२५.	मुकुलम्	म स	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **वीथी**-है०छ०अ०टी०, **निस्का**-वाग्व०
२६.	मशगा	य स	वाग्व०
२७.	कर्मदा	र स	वाग्व०
२९.	वसुमती	त स	है०छ०अ०, वाग्व०
३०.	कुही	ज स	वाग्व०
३१.	सौरभि	भ स	वाग्व०
३२.	सरि	न स	वाग्व०
३३.	साहूति	म त	वाग्व०
३४.	विन्दु	य त	वाग्व०
३५.	मन्त्रिका	र त	वाग्व०
३६.	ढुण्डि	स त	वाग्व०
३८.	क्षमापालि	ज त	वाग्व०
३९.	राढि	भ त	वाग्व०
४०.	अनिभृतम्	न त	वाग्व०
४१.	मङ्कुरम्	म ज	वाग्व०
४२.	वृत्तहारि	य ज	वाग्व०
४३.	आर्भवम्	र ज	वाग्व०
४४.	मधुमारकम्	स ज	वाग्व०
४५.	हाटकशालि	त ज	वाग्व०
४७.	पाकलि	भ ज	वाग्व०
४८.	पुटमर्दि	न ज	वाग्व०
४९.	कंसरि	म भ	वाग्व०
५०.	सोमश्रुति	य भ	वाग्व०
५१.	सोपधि	र भ	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
५२.	गुरूमध्या	स भ	है०छ०अ०, **शङ्खद्युतिः**-वाग्व०
५३.	इन्धा	त भ	वाग्व०
५४.	सावटु	ज भ	वाग्व०
५५.	नन्दि	भ भ	वाग्व०
५६.	अयमितम्	न भ	वाग्व०
५७.	प्रोथा	म न	वाग्व०
५८.	अर्त्तिः	य न	वाग्व०
५९.	कच्छपी	र न	है०छ०अ०, **प्रतरि**-वाग्व०
६०.	विससि	स न	वाग्व०
६१.	अतिकलि	त न	वाग्व०
६२.	सुदायि	ज न	वाग्व०
६३.	अनति	भ न	वाग्व०
१.	शेषा	म म	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **सावित्रि**-है०छ०अ०, छन्दोनु०; **विद्युल्लेखा**-वृ०र०छ०म०, वाग्व०।
२८.	तिलका	स स	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **रमणी**-है०छ०अ०; **नलिनी**-है०छ०अ०टी०; **कुमुदम्**-छन्दोनु०।
१९.	विमोहम्	र र	वृ०म०; **विमोहा**-वाग्व०; **विज्जोहा**-वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **मालती**-ना०शा०, **शफरिका**-है०छ०अ०; **गिरा**-है०छ०अ०टी०; **हंसमाला**-छन्दोनु०।
१६.	चतुरंसम्	न य	वृ०मौ०, वा०भू०; वृ०मु० **चउरंसा**-वृ०मौ०, **चतुरंसा**-प्रा०पै०; **शशिवदना**-है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **मकरकशीर्षा**-ना०शा०, है०छ०अ०टी०; **मुकुलिता**-है०छ०अ०टी०, र०म०; **कनकलता**-छन्दोनु०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३७.	मन्थानम	त त	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **मन्थाना**-वृ०मौ० ।
१०.	शङ्खनारी	य य	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०; **सोमराजी**-वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०; **शङ्खधारी**-वा०भू० **द्रुतम्**-छन्दोनु
४६.	सुमालतिका	ज ज	वृ०मौ०, वा०भू०; **मालती**-वृ०मौ०, प्रा०पै०; **मालतिका**-वाग्व०; **मनोहर**-वृ०मु० ।
१३.	तनुमध्या	त य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
६४.	दमनकम्	न न	वृ०मौ० प्रा०पै०, वा०भू० वृ०मु०; **उपवलि**-वाग्व० ।

सप्ताक्षर-छन्द

२.	प्रहाण	य म ग	वाग्व०
३.	सैरवी	र म ग	वाग्व०
४.	शम्बूकः	स म ग	वाग्व०
५.	निम्नाशया	त म ग	वाग्व०
६.	सुमोहिता	ज म ग	वाग्व०
७.	अधीरा	भ म ग	वाग्व०
८.	होला	न म ग	वाग्व०
९.	इभभ्रान्ता	म य ग	वाग्व०
१०.	अभीकम्	य य ग	वाग्व०
११.	अहिंसा	र य ग	वाग्व०
१२.	रसधारि	स य ग	वाग्व०
१३.	वेधा	त य ग	वाग्व०
१४.	पद्या	ज य ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१५.	किणपा	भ य ग	वाग्व०
१६.	कुमुद्वती	न य ग	है०छ०अ०, **सुरि**-वाग्व०
१७.	किर्मीरम्	म र ग	वाग्व०
१८.	वयस्य:	य र ग	वाग्व०
१९.	हंसमाला	र र ग	क०द०, है०छ०अ०, **भूरिधाम**-वाग्व०
२०.	दीप्ता	स र ग	है०छ०अ०, **हंसमाला**-वाग्व०, वृ०र०ना०
२१.	भीमार्जनम्	त र ग	वाग्व०
२२.	सुभद्रा	ज र ग	है०छ०अ०, **पुरोहिता**-वाग्व०
२३.	होडपदा	भ र ग	वाग्व०
२४.	मनोज्ञा	न र ग	है०छ०अ०, **खरकरा**-वाग्व०
२६.	मुदिता	य स ग	है०छ०अ०, **महनीया**-वाग्व०
२७.	उद्धता	र स ग	है०छ०अ०, ना०शा०, **शरगीति**-वाग्व०, **उद्यता**-छ०वि०
२८.	करभित्	स स ग	वाग्व०
२९.	भ्रमरमाला	त स ग	है०छ०अ०, ना०शा०, छन्दोनु०, **स्थूला**-वाग्व०, **वज्रक**-र०म०
३१.	विधुवक्त्रा	भ स ग	है०छ०अ०, **रुचिरं**-वाग्व०, **मदलेखा**-छन्दोनु०
३२.	दृति:	न स ग	वाग्व०
३३.	हिन्दीरम्	म त ग	वाग्व०
३४.	ऊपिकम्	य त ग	वाग्व०
३५.	मृष्टपादा	र त ग	वाग्व०
३६.	मायाविनी	स त ग	वाग्व०
३७.	राजराजी	त त ग	वाग्व०
३८.	कुठारिका	ज त ग	वाग्व०
३९.	कल्पमुखी	भ त ग	वाग्व०
४०.	परभृतम्	न त ग	वाग्व०
४१.	महोन्मुखी	म ज ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४२.	महोद्धता	य ज ग	वाग्व०
४४.	विमला	स ज ग	है०छ०अ०, **कठोद्गता**-वाग्व०
४५.	पूर्णा	ज ग	वाग्व०
४६.	बहिर्बलि	ज ज ग	वाग्व०
४७.	शारदी	भ ज ग	है०छ०अ०, **उन्दरि**-वाग्व०, **धुनी**-छन्दोनु०
४८.	पुरटि	न ज ग	वाग्व०
४९.	सरलम्	म भ ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **वर्करिता**-वाग्व०
५०.	केशवती	य भ ग	वाग्व०
५१.	सौरकान्ता	र भ ग	वाग्व०
५२.	अधिकारी	स भ ग	वाग्व०
५३.	चूडामणि	त भ ग	वृ०र०ना०, **निर्वाधिका**-वाग्व०
५४.	महोधिका	ज भ ग	वाग्व०
५५.	मौरलिकम्	भ भ ग	वाग्व०, **कलिका**-है०छ०अ०, छन्दोनु०, **सोपानम्**-है०छ०अ०टी०
५६.	स्वनकरी	न भ ग	वाग्व०
५७.	नवसरा	म न ग	वाग्व०
५८.	चिररुचिः	य न ग	वाग्व०
५९.	बहुलया	र न ग	वाग्व०
६०.	यमनकम्	स न ग	वाग्व०
६१.	हीरम्	त न ग	वाग्व०, **मधुकरिका**-है०छ०अ०, **वज्रम्**-है०छ०अ०टी०
६२.	स्विदा	ज न ग	वाग्व०
६३.	चित्रम्	भ न ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **उलपा**-वाग्व०
६५.	नीहारी	म म ल	वाग्व०
६६.	कंसासारि	य म ल	वाग्व०
६७.	खर्विणी	र म ल	वाग्व०
६८.	गृहिणी	स म ल	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भ-ग्रन्थ-सङ्केत
६९.	वर्धिष्णु	त म ल	वाग्व०, **शूर**-वाग्व०
७०.	श्रोणी	ज म ल	वाग्व०
७१.	व्याहारी	भ म ल	वाग्व०
७२.	किशलयम्	न म ल	वाग्व०
७३.	देवलम्	म य ल	वाग्व०
७४.	नर्दि	य य ल	वाग्व०
७५.	अनासादि	र य ल	वाग्व०
७६.	अलालापि	स य ल	वाग्व०
७७.	गुञ्जा	त य ल	वाग्व०
७८.	ऋचा	ज य ल	वाग्व०
७९.	नन्दथु	भ य ल	वाग्व०
८०.	अनु	न य ल	वाग्व०
८१.	अम्मेथी	म र ल	वाग्व०
८२.	मयूरी	य र ल	वाग्व०
८३.	सामिका	र र ल	वाग्व०
८४.	प्रोञ्छिता	स र ल	वाग्व०
८५.	वृन्दा	त र ल	वाग्व०
८६.	प्रतर्दि	ज र ल	वाग्व०
८७.	मीनपदी	भ र ल	वाग्व०
८८.	मणिमुखी	न र ल	वाग्व०
८९.	मौलिस्रक्	म स ल	वाग्व०
९०.	परभानु	य स ल	वाग्व०
९१.	मेथिका	र स ल	वाग्व०
९२.	गोधि	स स ल	वाग्व०
९३.	सरलांघ्रि	त स ल	वाग्व०
९४.	विरोही	ज स ल	वाग्व०
९५.	वरजापि	भ स ल	वाग्व०
९७.	सम्पाक:	म त ल	वाग्व०
९८.	पद्धरि	य त ल	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
९९.	गूर्णिका	र त ल	वाग्व०
१००.	काही	स त ल	वाग्व०
१०१.	कामोद्धता	त त ल	वाग्व०
१०२.	खर्परि	ज त ल	वाग्व०
१०३.	शन्तनु	भ त ल	वाग्व०, **लीला**-वाग्व०
१०४.	मुरजिका	न त ल	वाग्व०
१०५.	कालम्बी	म ज ल	वाग्व०
१०६.	उपोहा	य ज ल	वाग्व०
१०७.	कार्पिका	र ज ल	वाग्व०
१०८.	मुहुरा	स ज ल	वाग्व०
१०९.	दोषा	त ज ल	वाग्व०
११०.	उपोदरि	ज ज ल	वाग्व०
१११.	जासरि	भ ज ल	वाग्व०
११३.	भूरिमधु	म भ ल	वाग्व०
११४.	भूरिवसु	य भ ल	वाग्व०
११५.	हर्षिणी	र भ ल	वाग्व०
११६.	लोलतनु	स भ ल	वाग्व०
११७.	क्रोडान्तिकम्	त भ ल	वाग्व०
११८.	स्तरधि	ज भ ल	वाग्व०
११९.	पौरसरि	भ भ ल	वाग्व०
१२०.	वीरवटु	न भ ल	वाग्व०
१२१.	अमति:	म न ल	वाग्व०
१२२.	अहति:	य न ल	वाग्व०
१२३.	वरशशि	र न ल	वाग्व०
१२४.	धनधरि	स न ल	वाग्व०
१२५.	मुशकि	त न ल	वाग्व०
१२६.	कुरदि	ज न ल	वाग्व०
१२७.	कोशि	भ न ल	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१.	शीर्षा	म म ग	बृ०मौ०, वा०भू०, **शीर्षरूपक**-प्रा०पै०, **गान्धर्वी**-है०छ०अ०, छन्दोनु०, **मुक्तागुम्फ**-वृ०मु०, **शिप्रा**-वाग्व०
४३.	समानिका	र ज ग	बृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, **उष्णिक**-है०छ०अ०, **शिखा**-है०अ०टी०; **चामरम्**-वाग्व०; **गोभिनी**-छन्दोनु० ।
२१२.	सुवासकम्	न ज ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, **वासकि**-वाग्व०; **सवासनि**-वाग्व० ।
९६.	करहञ्चि	न स ल	वृ०मौ०, वा०भू०, **करहञ्च**-प्रा०पै०; **करहंस**-वृ०मु०; **अहरि**-वाग्व०; **करहन्तृ**-वाग्व०; **मुखदेव**-गोपिकागीत
३०.	कुमारललिता	ज स ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, सु०ति०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०
६४.	मधुमती	न न ग	वृ०मौ०, वृ०र०ना०, छ०म०; **हरिविलसितं**-है०छ०अ०; **हरिविलसितकं**-वृ०स०; **चपला**-है०छ०अ०; **द्रुतगतिः**-है०छ०अ०टी०; **लटहः**-छन्दोनु० ।
२५.	मदलेखा	म स ग	वृ०मौ०, क०द०, वृ०स०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०; छन्दोनु० में लक्षण—'भ स ग' है।
१२८.	कुसुमततिः	न न ल	वृ०मौ०; **अचटु**-वाग्व० ।

अष्टाक्षर-छन्द

२.	अनिर्भारः	य म ग ग	वाग्व०
७.	इन्द्रफला	भ म ग ग	वाग्व०, **इन्द्रबला**-वाग्व०
८.	गोपावेदी	न म ग ग	वाग्व०
१०.	भूमधारी	य य ग ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
११.	मौलिमालिका	र य ग ग	वाग्व०
१२.	युगधारि	स य ग ग	वाग्व०
१४.	विराजिकरा	ज य ग ग	वाग्व०
१५.	वात्या	भ य ग ग	वाग्व०
१६.	वाञ्चालाङ्घ्रि	न य ग ग	वाग्व०
१८.	कुलाधारी	य र ग ग	वाग्व०, **शुद्धगा**-वाग्व०
१९.	पद्मिनी	र र ग ग	जा०छ०वि०
२०.	परिधारा	स र ग ग	वाग्व०
२१.	विभा	त र ग ग	है०छ०अ०
२२.	यशस्करी	ज र ग ग	वाग्व०
२४.	कुररिका	न र ग ग	वाग्व०
२६.	मनोला	य स ग ग	वाग्व०
२८.	पञ्चशिखा	स स ग ग	वाग्व०, **रमणीयशिखा**–वाग्व०
३०.	भार्ङ्गी	ज स ग ग	वाग्व०
३२.	गुणलयनी	न स ग ग	है०छ०अ०, **रुद्राली**-वा०व०
३४.	परान्तचारी	य त ग ग	वाग्व०
३६.	कौचमार:	स त ग ग	वाग्व०
३७.	कराली	त त ग ग	वाग्व०, **केतुमाला**-छन्दोनु०
३८.	वारिशाला	ज त ग ग	वाग्व०, **वितान**-वाग्व०
४०.	वृत्तभार:	न त ग ग	वाग्व०
४३.	सिंहलेखा	र ज ग ग	ना०शा०, है०छ०अ०, वाग्व०, **मालिनी**-बृ०स०
४४.	दिगीश:	स ज ग ग	वाग्व०
४५.	सारावनदा	त ज ग ग	वाग्व०
४७.	कृष्णगतिका	भ ज ग ग	वाग्व०
४८.	चित्रविलसितम्	न ज ग ग	ना०शा०
४९.	प्रतिसीरा	म भ ग ग	वाग्व०
५२.	अतिमोहा	स भ ग ग	वाग्व०, **वितानम्**-है०छ०अ०, वृ०र०। वृ०र० और है०छ०अ०टी० के अनुसार **वितानं**-के 'त र ल ग' एवं 'त य ल ल' लक्षण भी हैं।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
५४.	चतुरीहा	ज भ ग ग	वाग्व०
५६.	वृतमुखी	न भ ग ग	वाग्व०
५७.	हंसरुतम्	म न ग ग	पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, वाग्व०
६१.	सन्ध्या	त न ग ग	वाग्व०
७४.	विहावा	य य ल ग	वाग्व०
७५.	अनुष्टुप्	र य ल ग	है०छ०अ०
८१.	क्षमा	म र ल ग	छन्दोनु०
८३.	हेमरूपम्	र र ल ग	वाग्व०
८४.	शल्लकप्लुतम्	स र ल ग	वाग्व०
८५.	नाराचिका	त र ल ग	वृ०र०ना०, वाग्व०, **नाराचम्**-स्व०छ०, है०छ०अ०, **नाराचक**-क०द०, छन्दोनु०
८८.	सुमालती	न र ल ग	ह०छ०अ०, छन्दोनु०, **उपलिनी**-वाग्व०, **कृतवती**-वाग्व०
९२.	मही	स स ल ग	है०छ०अ०, **कलिला**-वाग्व०, **करिला**-वाग्व०
९३.	श्यामा	त स ल ग	बृ०स०
१००.	सरघा	स त ल ग	वाग्व०
१०४.	माण्डवकम्	न त ल ग	वाग्व०
१०५.	हाठनी	म ज ल ग	वाग्व०
१०७.	श्रद्धरा	र ज ल ग	वाग्व०, **उद्धरा**-वाग्व०
१०९.	विद्या	त ज ल ग	वाग्व०, **उदया**-वाग्व०, **आनुष्टुब्**-छन्दोनु०
११०.	अरालि	ज ज ल ग	वाग्व०
११२.	ललितगतिः	न ज ल ग	है०छ०अ०, **अखनिः**-वाग्व०
११५.	कुरुचरी	र भ ल ग	वाग्व०
१२०.	गजगतिः	न भ ल ग	छ०म०, वाग्व०
१२१.	शिखिलिखिता	म न ल ग	वाग्व०
१२५.	ईडा	त न ल ग	वाग्व०, **ईला**-वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१२७.	अरि	भ न ल ग	वाग्व०
१२८.	कुसुमम्	न न ल ग	वृ०स०, **हरिपदं**-वाग्व०, **छतपदं**-वाग्व०
१४०.	नागारि	स य ग ल	वाग्व०
१४७.	लक्ष्मी:	र र ग ल	वाग्व०
१४८.	वलीकेन्दुः	स र ग ल	वाग्व०
१५०.	अमानिका	ज र ग ल	वाग्व०
१५२.	नखपदा	न र ग ल	वाग्व०
१६०.	हरित्	न स ग ल	वाग्व०
१६५.	किष्कु	त त ग ल	वाग्व०
१८०.	अनृतनर्म	स भ ग ल	वाग्व०, **नृतनर्म**-वाग्व०
१८१.	अमरन्दि	त भ ग ल	वाग्व०
१८२.	कुलचारि	ज भ ग ल	वाग्व०
१९०.	करञ्जि	ज न ग ल	वाग्व०
१९६.	वृन्तम्	स म ल ल	वाग्व०
१९८.	शाखोटकि	ज म ल ल	वाग्व०
१९९.	पञ्जरि	भ म ल ल	वाग्व०
२००.	अप्रीता	न म ल ल	वाग्व०, **प्रीता**-वाग्व०, **अतिप्रीता**-वाग्व०, **अलिप्रीता**-वाग्व०
२०१.	मन्थरि	म य ल ल	वाग्व०
२०२.	वातुलि	य म ल ल	वाग्व०
२०४.	सम्फुल्लकम्	त य ल ल	**रूपगोस्वामिकृत नन्दाहरणस्तोत्र**
२१०.	भाषा	य र ल ल	वाग्व०, **सम्भाषा**-वाग्व०, **सम्भासा**-वाग्व०
२१६.	पाकलि	न र ल ल	वाग्व०
२२०.	अमना	स स ल ल	वाग्व०
२३०.	आकतनु	ज त ल ल	वाग्व०
२३५.	आखेटम्	र ज ल ल	वाग्व०
२४१.	अतिजनि	म भ ल ल	वाग्व०
२४४.	सृतमधु	स भ ल ल	वाग्व०
२४६.	मरु	ज भ ल ल	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२५०.	चयनम्	य न ल ल	वाग्व०
२५१.	कुशकम्	र न ल ल	वाग्व०
२५२.	निरुदम्	स न ल ल	वाग्व०
२५३.	सिन्धुक्	त न ल ल	वाग्व०
२५४.	क्षरम्	ज न ल ल	वाग्व०, **क्षुरं**-वाग्व०
२५५.	वेशि	भ न ल ल	वाग्व०, **वेषि**-वाग्व०
१.	विद्युन्माल	म म ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, क०द०, सु०ति०, वृ०स०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, ज०छ०, छन्दोनु० ।
८६.	प्रमाणिका	ज र ल ग	वृ०मौ० क०द०, सु०ति०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, छन्दोनु०; **प्रमाणी**-है०छ०अ०, जय०छ०; **स्थिर**-बृ०सं०; **मत्तचेष्टितम्**-ना०शा०, है०छ०अ०टी०, **बालगर्भिणी**-छ०वि० ।
१७१.	मल्लिक	र ज ग ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **समानिका**-वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **समानी**-ज०छ०, छन्दोनु०; **समानं**-छ०वि० ।
६४.	तुङ्गा	न न ग ग	वृ०मौ०; **तुङ्ग**-प्रा०पै०, वा०भू०; **रतिमाला**-है०छ०अ०; **तुरङ्गा**-वा०भू० ।
९६.	कमलम्	न स ल ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०भू०, वृ०मु०; **लसदसु**-वाग्व० ।
१०३.	माणवकक्रीडितकम्	भ त ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, वृ०स०, वा०भू०र०म०, छ०वि०; **माणवकक्रीडा**-वृ०मु०; **माणवकम्**-स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
५५.	चित्रपदा	भ भ ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०; **वितानं**-वृ०स०, ज०छ०, छन्दोनु०; **चित्रपदम्**-र०म०; **हंसरुतम्**-छ०वि
	अनुष्टुप		वृ०मौ०, वा०भू०; **श्लोक**-वृ०स०, सु०ति०, वृ०मु० ।
२५६.	जलदम्	न न ल ल	वृ०मौ०, **कृतयुः**-वाग्व०; **कृशयुः** वाग्व० ।

नवाक्षर-छन्द

२.	मेघालोकः	य म म	वाग्व०
७.	वक्त्रम्	भ म म	है०छ०अ०
१६.	मायासारी	न य म	वाग्व०
२५.	खेलाढ्यम्	म स म	वाग्व०
२८.	तारम्	स स म	है०छ०अ०, **उदरश्रि**-वाग्व०, **उदरश्रक्**-वाग्व०, **उदराश्रक्**-वृ०स०
२९.	वैसारूः	त स म	वाग्व०, **वैसारम्**-वाग्व०
३०.	निर्विन्ध्या	ज स म	वाग्व०, **निर्वन्ध्या**-वाग्व०
३१.	कर्मिष्ठा	भ स म	वाग्व०, **किर्मिष्ठा**-वाग्व०
४९.	धृतहाला	म भ म	वाग्व०
५२.	कलहम्	स भ म	वाग्व०
५७.	अयनपताका	म न म	वाग्व०
६१.	मकरलता	त न म	है०छ०अ०, **रम्भा**-वाग्व०, क०द० के अनुसार 'म न य' लक्षण है ।
६४.	विशल्यम्	य य य	वाग्व०, **बृहत्यं**-छन्दोनु०
९७.	अर्धक्षमा	म त य	वाग्व०, **सुन्दरलेखा**-छन्दोनु०
१००.	सम्बुद्धिः	स त य	वाग्व०
१०३.	शम्बरधारी	भ त य	वाग्व०
११२.	शशिलेखा	न ज य	है०छ०अ०, **शरलीढा**-वाग्व०
११७.	रुचिरा	त भ य	है०छ०अ०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१२१.	कांसीकम्	म न य	वाग्व०
१२४.	सुगन्धि:	स न य	वाग्व०
१२५.	कामा	त न य	वाग्व०
१५२.	बृहतिका	न र र	स्व०छ०, है०छ०अ०
१६४.	निभालिता	स त र	वाग्व०
१६६.	चारूहासिनी	ज त र	छन्दोनु०
१७१.	कामिनी	र ज र	है०छ०अ०, **तरङ्गवती**-है०छ०अ०टी०, र०म०
१७३.	रवोन्मुखी	त ज र	वाग्व०
१७४.	अवनिजा	ज ज र	वाग्व०
१७५.	प्रवह्लिका	भ ज र	वाग्व०
१७६.	हलोद्‌गता	न ज र	वाग्व०
१८०.	मधुमल्ली	स भ र	वाग्व०
१८२.	सहेलिका	ज भ र	वाग्व०
१८३.	मदनोद्धुरा	भ भ र	वाग्व०, **उत्सुकम्**-है०छ०अ०, छन्दोनु०
१८४.	करशया	न भ र	वाग्व०
१८७.	भद्रिका	र न र	है०छ०अ०, वृ०र०ना०, वाग्व०, छन्दोनु०
१९२.	उपच्युतम्	न न र	है०छ०अ०, छन्दोनु०
२१५.	निषधम्	भ र स	वाग्व०
२१७.	कनकम्	म स स	है०छ०अ०, **गाथा**-छन्दोनु०
२२०.	सौम्या	स स स	है०छ०अ०, **अर्धकला**-वाग्व०
२२३.	रञ्जकम्	भ स स	वाग्व०
२३६.	अक्षि	स ज स	है०छ०अ०, छन्दोनु०
२३९.	अनवीरा	स भ स	वाग्व०
२४७.	प्रियतिलका	भ भ स	वाग्व०
२५१.	हलमुखी	र न स	पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०
२५३.	आकेकरम्	त न स	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२५५.	धौनिकम्	भ न स	वाग्व०
२९३.	वल्गा	त त त	वाग्व०
३००.	कीटमाला	स ज त	वाग्व०
३२०.	मसृणकम्	न न त	वाग्व०
३३६.	लीला	न य ज	वाग्व०
३५९.	वारिधियानम्	भ त ज	वाग्व०
३६६.	कुहू	ज ज ज	वाग्व०
३८३.	कठिनास्थि	भ न ज	वाग्व०, **अहीरी**-वाग्व०
४००.	विकचवती	न य भ	वाग्व०
४०९.	वन्दारु:	म स भ	वाग्व०
४३९.	दधि	भ भ भ	वाग्व०, **उदधि**-वाग्व०
४६४.	स्फुटघटिता	न य न	वाग्व०
१.	रूपामाला	म म म	वृ०मौ०, प्रा०पै०; **रूपामाली**-वा०भू०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व० ।
१४७.	महालक्ष्मिका	र र र	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वाग्व०, **महालक्ष्मी**-वृ०मु० ।
२०८.	सारङ्गम्	न य स	वृ०मौ०, **सारङ्गिका**-वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **मुखला**-वाग्व० ।
२४१.	पाइंत्तम्	म भ स	वृ०मौ०; **पाइंत्ता**-वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **पापित्ता**-वाग्व:; **सिंहाक्रान्ता**-है०छ०अ०; **वीरा**-वाग्व०; **अवीरा**-वाग्व० ।
२५६.	कमलम्	न न स	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०; **कमला**-छ०म०,वृ०मु०; **लघुमणिगुणनिकर:**-है०छ०अ०; **मदनकं**-वाग्व०; **रतिपदम्**-वाग्व० ।
९६.	बिम्बम्	न स य	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०मु०, वाग्व०; **गुर्वी**-वृ०स०, ज०छ०; **विशाला**-क०द०, है०छ०अ० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३६४.	तोमरम्	स ज ज	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व० ।
६४.	भुजगशिशुसृता	न न म	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वाग्व०, ज०छ०, र०म०, छ०वि०; **भुजगशिशुसृतम्**-छन्दोनु०; **भुजगशिशुभृता**-वृ०मौ०, सु०ति०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **मधुकरी**-ना०शा०; **मधुकरिका**-है०छ०अ०टी० ।
१९९.	मणिमध्यम्	भ म स	व०मौ०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छ० वि०; **मणिबन्धम्**-वृ०मु०, वाग्व० ।
१७२.	भुजङ्गसङ्गता	स ज र	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व० ।
५१२.	सुललितम्	न न न	वृ०मौ०, **चुलकम्**-वाग्व० ।

दशाक्षर-छन्द

२.	शेफाली	य म म ग	वाग्व०
१०.	धूम्राली	य य म ग	वाग्व०
२०.	नीरोहा	स र म ग	वाग्व०
३०.	वीरान्ता	ज स म ग	वाग्व०
४०.	निर्मेधा	न त म ग	वाग्व०
४९.	मध्याधारः	म भ म ग	वाग्व०
५०.	वंशारोपी	य भ म ग	वाग्व०
५५.	बन्धूकः	भ भ म ग	छन्दोनु०
६१.	कूलम्	त न म ग	वाग्व०
६३.	बन्धूकम्	भ न म ग	है०छ०अ०
६६.	बोधातुरा	य म य ग	वाग्व०, **सकृद्बोधा**-वाग्व०
८०.	सुराक्षी	न य य ग	वाग्व०
८९.	कुवलयमाला	म स य ग	ना०शा०
९०.	कलापान्तरिता	य स य ग	वाग्व०
९९.	द्वारवहा	र त य ग	वाग्व०, **भारवहा**-वा०व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१००.	विशदच्छाय:	स त य ग	वाग्व०
११०.	इन्द्र:	ज ज य ग	वाग्व०, **ऐन्द्री**-वाग्व०
११२.	विपुलभुजा	न ज य ग	है०छ०अ०
१२१.	हीराङ्गी	म न य ग	वाग्व०, **पणव:**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०, ज०छ०, र०म०, **पणवक**-छन्दोनु०, **पणला**-जा०छ०वि०, **कुवलयमाला**-है०छ०अ०टी०
१४७.	हेमहास:	र र र ग	वाग्व०, **बाला**-वाग्व०
१७१.	मयूरसारिणी	र ज र ग	पि०छ०सू०, ना०शा०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०, वा०व०, ज०छ०, छन्दोनु०, जा०छ०वि०
१७२.	सुखला	स ज र ग	वाग्व०
१७३.	नमेरु:	त ज र ग	वाग्व०, **लाजवती**-वाग्व०
१९५.	कलिका	र म स ग	है०छ०अ०
१९६.	गणदेहा	स म स ग	वाग्व०
२०५.	मदिराक्षी	त य स ग	छन्दोनु०
२०८.	नरगा	न य स ग	वाग्व०
२१७.	उद्धतम्	म स स ग	है०छ०अ०, **प्रसरा**-वाग्व०
२१९.	मणिरङ्ग:	र स स ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **केरम्**-वाग्व०
२२०.	उदितम्	स स स ग	वाग्व०, **वितानम्**-वृ०सं०
२३६.	माला	स ज स ग	है०छ०अ०, **प्रमिता**-है०छ०अ०टी०
२४४.	बलधारी	स भ स ग	वाग्व०
२५१.	अचलपंक्ति:	र न स ग	वाग्व०
२५२.	असितधारा	स न स ग	वाग्व०
२५३.	उन्नालम्	त न स ग	वाग्व०
२५४.	निरन्तिकम्	ज न स ग	वाग्व०
२५५.	उपधाय्या	भ न स ग	वाग्व०
२५६.	तनिमा	न न स ग	वाग्व०
२९३.	विशालान्तिकम्	त त त ग	वाग्व०
२९४.	विशालप्रभम्	ज त त ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२९६.	चरपदम्	न त त ग	वाग्व०
३००.	उपसङ्कुला	स ज त ग	वाग्व०
३०३.	खेटकम्	भ ज त ग	वाग्व०
३०९.	बर्हातुरा	त भ त ग	वाग्व०
३१७.	नीराञ्जलि:	त न त ग	वाग्व०
३२७.	दीपकमाला	भ म ज ग	छ०म०
३३१.	पंक्तिका	र य ज ग	स्व०छ०, है०छ०अ०, **कर्णपालिका**-वाग्व०, **मौक्तिकम्**-छन्दोनु०
३४२.	साविका	ज र ज ग	वाग्व०
३४५.	शुद्धविराट्	म स ज ग	पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, जा०छ०वि०, **विराट्**-वाग्व०
३४७.	अक्षरावली	र स ज ग	वाग्व०
३४८.	सहजा	स स ज ग	वाग्व०
३४९.	अहिला	त स ज ग	वाग्व०
३५१.	कुप्यम्	भ स ज ग	वाग्व०
३५२.	अनुचयिता	न स ज ग	वाग्व०
३६३.	वर्मिता	र ज ज ग	वाग्व०
३६५.	उपस्थिता	त ज ज ग	पि०छ०सू०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, र०म०, जा०छ०वि०
३६६.	उषिता	ज ज ज ग	है०छ०अ०, **जरा**-वाग्व०
३७५.	भिन्नपदम्	भ भ ज ग	वाग्व०
३७६.	वडिशभेदिनी	न भ ज ग	वाग्व०
३७७.	पणव:	म न ज ग	वृ०र०, वाग्व०
३८४.	चितिभृतम्	न न ज ग	वाग्व०
४००.	फलिनी	न य भ ग	वाग्व०
४१२.	सुरयानवती	स स भ ग	वाग्व०
४१५.	विरलम्	भ स भ ग	वाग्व०, **कटिका**-वाग्व०
४२४.	छलितकम्	न त भ ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४२८.	प्रवादपदा	स ज भ ग	वाग्व०
४३३.	हंसक्रीडा	म भ भ ग	छन्दोनु०
४३६,	वारवती	स भ भ ग	वाग्व०
४३७.	परिचारवती	त भ भ ग	वाग्व०
४३८.	काण्डमुखी	ज भ भ ग	वाग्व०
४४०.	शरत्	न भ भ ग	वाग्व०
४४७.	गहना	भ न भ ग	वाग्व०
४४८.	फलधरम्	न न भ ग	वाग्व०
४८७.	मृगचपला	भ त न ग	है०छ०अ०, **मौक्तिकमाला**-वृ०र०
४९२.	धमनिका	स ज न ग	वाग्व०
४९७.	हंसी	म भ न ग	वृ०र०ना०, वाग्व०
५०५.	कुमुदिनी	म न न ग	है०छ०अ०, **कुसुमसमुदिता**-है०छ०अ०टी०
५११.	कृतमणिता	भ न न ग	वाग्व०, **मणिता**-वाग्व०
५१२.	निलया	न न न ग	है०छ०अ०, **मकरमुखी**-वाग्व०
६९२.	महिमावसायि	स भ र ल	वाग्व०
६९३.	कामचारि	त भ र ल	वाग्व०
६९४.	नेमधारि	ज भ र ल	वाग्व०
६९५.	हीरलम्बि	भ भ र ल	वाग्व०
६९६.	वनिताविनोदि	न भ र ल	वाग्व०
६९९.	विरेकि	र न र ल	वाग्व०
७२८.	कृकपादि	न र स ल	वाग्व०
७३२.	लुलितम्	स स स ल	वाग्व०
७४८.	रसभूम	स ज स ल	वाग्व०
७६३.	चारुचारणम्	र न स ल	वाग्व०
७६५.	सरसमुखी	त न स ल	वाग्व०
७६८.	ऋतम्	न न स ल	वाग्व०
७७५.	कीलालम्	भ म त ल	वाग्व०
७८४.	खौरलि	न य त ल	वाग्व०
७९३.	कामनिभा	म स त ल	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
८००.	विस्रंसि	न स त ल	वाग्व०
	कान्तिडम्बरम्	र स ज ल	रूपगोस्वामिकृत सुदर्शनादिमोचन स्तोत्र
१०००.	वीरनिधि:	न त न ल	वाग्व०
	हारिहरिणम्	भ स न ल	रूपगोस्वामिकृत वर्षाशरद्विहारचरितम्
१.	गोपाल:	म म म ग	वृ०मौ०, **पद्मावर्त्त:**-वाग्व० ।
३६४.	संयुतम्	स ज ज ग	वृ०मौ०, वृ०मु०; **संयुता**-वृ०मौ०, प्रा०पै०, वाग्व०; **संयुगा**-वाग्व०; **सङ्गतिका**-वा०भू०; **संहतिका**-वाग्व० ।
१९९.	चम्पकमाला	भ म स ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, क०द०, प्रा०पै०, है०छ०अ०टी०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०; **रुक्मवती**-वृ०मौ०, सु०ति०, है०छ०अ०, वृ०र०छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०; **रुमवती**-छ०वि०; **रूपवती**-स्व०छ०, वाग्व०; **सुभावा**-है०छ०अ०टी०; **पुष्पसमृद्धि:**-है०छ०अ०टी० ।
४३९.	सारवती	भ भ भ ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०, वाग्व०; **हारवती**-वा०भू०; **चित्रगति**-है०छ०अ०, छन्दोनु; **विश्वमुखी**-वाग्व० ।
३९७.	सुषमा	त य भ ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व० ।
४९६.	अमृतगति:	न ज न ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०, वाग्व०; **मृगलतिका**-वाग्व० ।
२४१.	मत्ता	म भ स ग	वृ०मौ०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०; **हंसी**-वृ०मु०; **विलासिता**-छ०वि० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४९६.	त्वरितगति:	न ज न ग	वृ०मौ०, वृ०स०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०, छन्दोनु०।
३४४.	मनोरमम्	न र ज ग	वृ०मौ०; **मनोरमा**-वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०।
१०२४.	ललितगति:	न न न ल	वृ०मौ०; **कृतकवलि**-वाग्व०।
	एकादशाक्षर-छन्द		
५.	आराधिनी	त म म ग ग	वाग्व०
१०.	अमालीनम्	य य म ग ग	वाग्व०
१३.	मेघध्वनिपूर:	त य म ग ग	वाग्व०
१५.	उद्धतिकरी	म य म ग ग	वाग्व०
२०.	अपयोधा	स र म ग ग	वाग्व०
२५.	अन्तर्वनिता	म स म ग ग	वाग्व०
३०.	प्रफुल्लकदली	ज स म ग ग	वाग्व०
३९.	लक्षणलीला	भ त म ग ग	वाग्व०
४३.	कूलचारिणी	र ज म ग ग	वाग्व०, **कूलिका**-वाग्व०
४८.	विलुलितमञ्जरी	न ज म ग ग	वाग्व०
५७.	भूरिघटकम्	म न म ग ग	वाग्व०
६४.	कलितकमलमाला	न न म ग ग	वाग्व०
७५.	वल्लवीविलास:	र य य ग ग	वाग्व०
८०.	विकसितपद्मावली	न य य ग ग	वाग्व०
८६.	अमोघमालिका	ज र य ग ग	वाग्व०
९२.	ललितागमनम्	स स य ग ग	वाग्व०
१००.	संसृतशोभासार:	स त य ग ग	वाग्व०
१०८.	ललितालवलम्	स ज य ग ग	वाग्व०
११२.	वार्ताहारी	न ज य ग ग	वाग्व०
१२२.	कडारम्	य न य ग ग	वाग्व०
१२४.	उदितदिनेश:	स न य ग ग	वाग्व०
१३२.	जालपाद:	स म र ग ग	वाग्व०
१४७.	दारदेहा	र र र ग ग	वाग्व०, **दारुदेहा**-वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१८४.	रोचकम्	भ भ र ग ग	है०छ०अ०
१८७.	सुधाधारा	र न र ग ग	वाग्व०
१९२.	कुपुरूषजनिता	न न र ग ग	वृ०र०ना०
१९९.	कन्दविनोदः	भ म स ग ग	वाग्व०
२१७.	विलम्बितमध्या	म स स ग ग	वाग्व०
२२०.	विष्टम्भः	स स स ग ग	वाग्व०
२२३.	क्रोशितकुशला	भ स स ग ग	वाग्व०
२४४.	उपहितचण्डी	स भ स ग ग	वाग्व०
२४७.	श्रितकमला	भ भ स ग ग	वाग्व०
२५६.	वृन्ता	न न स ग ग	पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, **रथपदम्**-वाग्व०, **वृत्ता**-वाग्व०, **सुकृतिः**-वाग्व०
२८६.	उपस्थितम्	ज स त ग ग	क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, **शिखण्डितं**-छ०म०टी०
२९३.	प्राकारबन्धः	त त त ग ग	वाग्व०, **लयग्राहि**-है०छ०अ०, छन्दोनु०, **विध्वङ्कमाला**-छ०म०टी०
३००.	विहारिणी	स ज त ग ग	वाग्व०, **भासिनी**-वाग्व०
३०९.	ईहामगी	त भ त ग ग	वाग्व०
३२०.	परिमलललितम्	न न त ग ग	वाग्व०
	विलासिनी	ज र ज ग ग	पि०छ०सू०
३४८.	विमला	स स ज ग ग	वाग्व०
३५०.	सरोजवनिका	ज स ज ग ग	वाग्व०
३५१.	अमन्दपादः	भ स ज ग ग	वाग्व०
३५२.	पञ्चशाखी	न स ज ग ग	वाग्व०
३६४.	पटुपट्टिका	स ज ज ग ग	वाग्व०
३६५.	उपस्थिता	त ज ज ग ग	वाग्व०, छन्दोनु०
४००.	श्रुतकीर्तिः	न य भ ग ग	वाग्व०, **पतिता**-है०छ०अ०, बृ०सं०, वृ०र०ना०, छन्दोनु०, **श्रीः**-छन्दोनु०
४१२.	वर्णवलाका	स स भ ग ग	वाग्व०
४१५.	श्रमितशिखण्डी	भ स भ ग ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४४०.	रोधकम्	न भ भ ग ग	वाग्व०
४७२.	मदनमाला	न र न ग ग	वाग्व०
४८०.	अशोका	न स न ग ग	छ०अ०
५०५.	मात्रा	म न न ग ग	वाग्व०
५०८.	सुवृत्तिः	स न न ग ग	वाग्व०
५१२.	वृत्ताङ्गी	न न न ग ग	जा०छ०वि०
५८६.	भुजङ्गी	य य य ल ग	वाग्व०
६००.	जवनशालिनी	न र य ल ग	वाग्व०
६०६.	सारिणी	ज स य ल ग	र०म०, **सङ्गता**-जा०छ०वि०
६०८.	प्रसृमरकरा	न स य ल ग	वाग्व०
६२०.	सारणी	स ज य ल ग	है०छ०अ०
६४०.	गल्लकम्	न न य ल ग	वाग्व०
६५०.	प्रपातावतारम्	य य र ल ग	वाग्व०
६५९.	गह्वरम्	र र र ल ग	वाग्व०
६६३.	वारयात्रिकम्	भ र र ल ग	वाग्व०
६६४.	इन्दिरा	न र र ल ग	वाग्व०, छ०म०टी०, **कनकमञ्जरी-रूपगोस्वामिकृत** वस्त्रहरण स्तोत्र, **भाविनी**-वाग्व०, **भामिनी**-वाग्व०
६९२.	सीधुः	स भ र ल ग	वाग्व०, **अपरान्तिका**-छन्दोनु०
७००.	प्रतारिता	स न र ल ग	वाग्व०
७०१.	नीला	त न र ल ग	वाग्व०
७२०.	सौरभवर्द्धिनी	न य स ल ग	वाग्व०
७२८.	भुजगहारिणी	न र स ल ग	वाग्व०
७३१.	अच्युतम्	र स स ल ग	वाग्व०, छन्दोनु०
७३२.	विदुषी	स स स ल ग	है०छ०अ०, **उपचितम्**-वाग्व०, वृ०र०ना०, **सुचित्रं**-वाग्व०, **नरेशः**-वाग्व०
७३६.	सम्मदमालिका	न स स ल ग	वाग्व०
७४२.	कनककामिनी	ज त स ल ग	वाग्व०
७४७.	द्रुता	र ज स ल ग	छ०म०टी०, **उपदारिका**-वाग्व०
७४८.	दारिका	स ज स ल ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
७४९.	मालविका	त ज स ल ग	वाग्व०
७५०.	नाभसम्	ज ज स ल ग	वाग्व०
७५१.	सौभगकला	भ ज स ल ग	वाग्व०
७५२.	वीवधः	न ज स ल ग	वाग्व०
७५३.	आशापादः	म भ स ल ग	वाग्व०
८००.	भुजलता	न स त ल ग	वाग्व०
८२०.	हरिकान्ता	स भ त ल ग	वाग्व०
८२३.	कलस्वनवंशः	भ भ त ल ग	वाग्व०
८३२.	मदनया	न न त ल ग	वाग्व०
८७८.	खटका	ज ज ज ल ग	वाग्व०
८७९.	शल्कशकलम्	भ ज ज ल ग	वाग्व०
८८५.	उत्थापनी	त भ ज ल ग	है०छ०अ०टी०, **जिह्माशया**-वाग्व०
८८९.	कुशलकलावतिका	म न ज ल ग	वाग्व०
८९५.	अर्थशिखा	भ न ज ल ग	वाग्व०
९२८.	निरवधिगतिः	न स भ ल ग	वाग्व०
९६०.	दामघटिता	न न भ ल ग	वाग्व०
९६४.	विमला	स म न ल ग	है०छ०अ०
९७६.	कमलदलाक्षरी	न य न ल ग	है०छ०अ०, **रुचिरमुखी**-है०छ०अ०टी०, **समित्**-वाग्व०
९८५.	सामपदा	म स न ल ग	वाग्व०
१०२१.	मुखचपला	त न न ल ग	है०छ०अ०
११७१.	गम्भारि	र र र ग ल	वाग्व०
१२१३.	कामुकलेखा	भ म स ग ल	वाग्व०
१३१७.	संश्रयश्रीः	त त त ग ल	वाग्व०
१३७२.	पिचुलम्	स स ज ग ल	वाग्व०
१४००.	कालवर्म	न भ ज ग ल	वाग्व०
१५११.	सान्द्रपदम्	भ त न ग ल	वाग्व०, छ०म०टी०
१७७७.	शेषापीडम्	म भ स ल ल	वाग्व०
२०००.	केलिचरम्	न य न ल ल	वाग्व०
१.	मालती	म म म ग ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०; **माला**-वृ०मु०; **मारती**-वाग्व०; **भारती**-वाग्व०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४३९.	बन्धुः	भ भ भ ग ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वाग्व०; **दोधकम्**-वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, जा०छ०वि०, **उपचित्रा**-है०छ०अ०टी०, **सरोरुह**-वृ०मु०।
८८०.	सुमुखी	न ज ज ल ग	वृ०मौ०, क०द०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०; **द्रुतपदगतिः**-है०छ०अ०टी० ।
२८९.	शालिनी	म त त ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
३०५.	वातोर्मी	म भ त ग ग	वृ०मौ०, ना०शा०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०; **उर्मिला**-बृ०सं०; **वातोर्मीमाला**-र०म०, छ०वि० । है०छ०अ० एवं छन्दोनु० में म,भ,भ,ग,ग,–लक्षण भी माना गया है ।
	उपजातिः	शालिनी-वतोर्मीमिश्रा	वृ०मौ०
१०२४.	दमनकम्	न न न ल ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व० ।

प्रस्तार-संख्या	**छन्दोनाम**	**लक्षण**	**सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत**
६८३.	चण्डिका	र ज र ल ग	वृ०मौ०; **श्रेणिका**-वृ०मौ०; **श्रेणिः**-छन्दोनु०; **श्येनी**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, र० म०, छ०वि०; **श्येनिका**-स्व०छ०, वृ०र०, वाग्व०; **सेनिका**-वा०भू०, वाग्व०; **निःश्रेणिका**-स्व०छ०; **निःश्रेणिकम्**-है०छ०अ०टी०, **ताल**-वृ०मु० ।
१३६६.	सेनिका	ज र ज ग ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०; **सैनिकम्**-वाग्व० ।
३५७.	इन्द्रवज्रा	त त ज ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **उपस्थिता**-क०द०, है०छ०अ०टी० ।
३५८.	उपेन्द्रवज्रा	ज त ज ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
	उपजातिः इन्द्रवज्रोपेन्द्र-वज्रामिश्रा		वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मुं०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०; **इन्द्रमाला**-छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
६९९.	रथोद्धता	र न र ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०स०, स्व०छ०, क०द०, सु०ति०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४४३.	स्वागता	र न भ ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
१००९.	भ्रमरविलसिता	म भ न ल ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, बृ०सं०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, र०म०, छ०वि०; **भ्रमरविलसितम्**-पि०छ०सू०, वृ०स०, है०छ०अ०, वृ०र०, छन्दोनु०; **वानवासिका**-है०छ०अ०टी० ।
४८७.	अनुकूला	भ त न ग ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **कुड्मलदन्ती**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०; **श्री:**-है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०; **सान्द्रपदम्**-है०छ० अ०टी०; **मौक्तिकमाला**-वाग्व० ।
८७७.	मोटनकम्	त ज ज ल ग	वृ०मौ०, ना०शा०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०, **मोटकम्**-छन्दोनु० ।
३४५.	सुकेशी	म स ज ग ग	वृ०मौ०; **एकरूपम्**-स्व०छ०, है०छ०अ०, छन्दोनु०; **विश्वविराट्**-वाग्व०; **मणि:**-छन्दोनु० ।
७०४.	सुभद्रिका	न न र ल ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, वा०भू०, वाग्व०, र०म०; **भद्रिका**-क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०; **प्रसभम्**-बृ०सं०; **अपरवक्त्रम्**-है०छ०अ०टी०; **उत्तरान्तिका**-है०छ०अ०टी०; **समुद्रिका**-वाग्व० ।
२०४८.	बकुलम्	न न न ल ल	वृ०मौ०; **अगरिम**-वाग्व० ।

द्वादशाक्षर-छन्द

३१.	भाषितभरणम्	भ स म म	वाग्व०
३२.	विषमव्याली	न स म म	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
६१.	शम्पा	त न म म	वाग्व०
६४.	मिथुनमाली	न न म म	वाग्व०
९१.	किंशुकास्तरणम्	र स य म	वाग्व०
९२.	रसलीला	स स य म	वाग्व०
९३.	विशालाम्भोजाली	त स य म	वाग्व०, **अम्भोजाली**-वाग्व०
९४.	वीणादण्डम्	ज स य म	वाग्व०
९७.	मत्ताली	म त य म	वाग्व०
१२८.	वसनविशाला	न न य म	वाग्व०
१९३.	लीलारत्नम्	म म स म	वाग्व०
२५३.	विवरविलसितम्	त न स म	वाग्व०
२५६.	शुद्धान्तम्	न न स म	वाग्व०
३४८.	साक्षी	स स ज म	वाग्व०
३६४.	स्वरवर्षिणी	स ज ज म	वाग्व०
४४८.	धवलकरी	न न भ म	वाग्व०
४७६.	लुम्बाक्षी	स स न म	वाग्व०, **लुब्धाक्षी**-वाग्व०
५०५.	मलयसुरभिः	म न न म	वाग्व०
५२५.	वाहिनी	त य म य	र०म०
५७६.	पुटः	न न म य	पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, जा०छ०वि०, **पुटा**-र०म०
५७८.	आधिदैवी	य म य य	वाग्व०
६०४.	समयप्रहिता	स स य य	वाग्व०
६०८.	मिहिरा	न स य य	वाग्व०
६१४.	कलवल्लीविहङ्गः	ज त य य	वाग्व०
६६२.	असुधारा	ज र र य	वाग्व०, **अस्रधारा**-वाग्व०
६८८.	बलोर्जिता	न ज र य	वाग्व०, छन्दोनु०, **अचलमचर्चिका**-वाग्व०
६८९.	पुण्डरीकम्	म भ र य	वाग्व०
६९२.	बधिरा	स भ र य	वाग्व०
६९५.	वलभी	भ भ र य	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
७१६.	केकीरवम्	स य स य	है०छ०अ०, **महेन्द्रवज्रा**-छन्दोनु०, **शिविका**-छन्दोनु०
७३३.	कोलः	ज स स य	है०छ०अ०
७३७.	लीढालर्कः	म त स य	वाग्व०
७४१.	वनिताविलोकः	त त स य	वाग्व०
७४२.	कुमुदिनीविकाशः	ज त स य	वाग्व०
७५३.	वसन्तहासः	म भ स य	वाग्व०
७५७.	श्रुतिः	त भ स य	छन्दोनु०
७५८.	स्मृतिः	ज भ स य	छन्दोनु०
७८३.	सिक्तमणिमाला	भ य त य	वाग्व०, **श्वेतमणिमाला**-वाग्व०
७८४.	विद्रुमदोला	न य त य	वाग्व०
८१७.	सुखशैलम्	म भ त य	वाग्व०
८२०.	करमाला	स भ त य	वाग्व०
८३२.	विजयपरिचया	न न त य	वाग्व०
८६५.	कासारक्रान्ता	म त ज य	वाग्व०
८७७.	माया	त ज ज य	वाग्व०
८७८.	परिलेखः	ज ज ज य	वाग्व०, **धारी**-वाग्व०
८७९.	वरत्रा	भ ज ज य	वाग्व०
८८१.	कुम्भोध्नी	म भ ज य	वाग्व०
८८४.	शरमेया	स भ ज य	वाग्व०
८८५.	नीरान्तिकम्	त भ ज य	वाग्व०
८८८.	कलहंसा	न भ ज य	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **द्रुतपदम्**-वाग्व०. **द्रुतपदा**-वृ०सं०, है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०, **मुखरम्**-है०छ०अ०टी०
८९१.	अर्दितपादम्	र न ज य	वाग्व०
८९२.	परितोषा	स न ज य	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
८९३.	छलितकपदम्	त न ज य	वाग्व०
८९४.	उपधानम्	ज न ज य	वाग्व०
८९५.	पथिक्रान्ता	भ न ज य	वाग्व०
९७१.	कुमुदिनी	र य न य	है०छ०अ०, **कुमुदविभा**-ना०शा० तथा ना०शा० के अनुसार 'न य र य' लक्षण भी है।
९९१.	अर्पितमदना	भ स न य	वाग्व०
१०१६.	द्रुतपदम्	न भ न य	वृ०र०ना०
१०२१.	विरतिमहती	त न न य	वाग्व०
१०८०.	ततम्	न न म र	पि०छ०सू०, है०छ०अ०, ज०छ०, **ललितम्**-वाग्व०, वृ०र०ना०, **गौरी**-वाग्व०
११४२.	गलितनाला	ज भ य र	वाग्व०
११६२.	सरोजावली	य य र र	वाग्व०
११७६.	मेधावली	न र र र	है०छ०अ०, **वसन्त**-है०छ०अ०टी०
११९९.	विप्लुतशिखा	भ ज र र	वाग्व०
१२००.	विशिखलता	न ज र र	वाग्व०
१२३६.	सुतलम्	स र स र	वाग्व०
१३६५.	अन्तर्विकास-वासक:	त र ज र	वाग्व०
१३७१.	परिपुङ्खिता	र स ज र	वाग्व०
१३७६.	प्रसृमरमरालिका	न स ज र	वाग्व०
१३९०.	विधारिता	ज ज ज र	वाग्व०
१३९१.	पिकालिका	भ ज ज र	वाग्व०, **पिधायिनी**-वाग्व०
१४०४.	विरला	स न ज र	वाग्व०, **वीरला**-वाग्व०
१४०७.	अविरलरतिका	भ न ज र	वाग्व०
१४६०.	राधिका	स भ भ र	वाग्व०
१४७२.	उज्ज्वला	न न भ र	है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, **चपलनेत्रा**-है०छ०अ०टी०, **चलनेत्रिका**-ज०छ०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१५१५.	विपुलपालिका	र ज न र	वाग्व०
१५२४.	उपलेखा	स भ न र	वाग्व०
१५२६.	भसलविनोदिता	ज भ न र	वाग्व०
१५२७.	विरतप्रभा	भ भ न र	वाग्व०
१५३१.	मुकुलितकलिका-वलि	र न न र	वाग्व०
१६७६.	अतिवासिता	स य र स	वाग्व०
१६९१.	भुजङ्गजुषी	र स र स	वाग्व०
१६९५.	अर्जितफलिका	भ स र स	वाग्व०
१७०३.	ललना	भ त न स	वृ०र०ना०
१७२८.	ह्री:	न न न स	है०छ०अ०
१७३५.	ललना	भ म स स	वाग्व०, छ०म०टी०
१७३८.	कुरङ्गावतार:	य य स स	वाग्व०
१७७४.	विकत्थनम्	ज ज स स	वाग्व०
१७७५.	नीलगिरिका	भ ज स स	वाग्व०
१७८३.	वनिताभरणम्	भ भ स स	वाग्व०
१८२५.	सुभद्रावतरणि:	म त त स	वाग्व०
१८८१.	विरलाद्धता	म स ज स	वाग्व०
१८८२.	सुविहिता	य स ज स	वाग्व०
१८८४.	उदर्करचिता	स स ज स	वाग्व०
१८८५.	सुवनमालिका	त स ज स	वाग्व०, **उपवनमालिका**-वाग्व०
१९७२.	नगमहिता	स भ भ स	वाग्व०, **क्रमुकवती**-वाग्व०
१९७५.	सम्मदवदना	भ भ भ स	वाग्व०
१९८२.	कुमारगति:	ज न भ स	वाग्व०
२०१६.	उदयनमुखी	न स न स	वाग्व०
२०२०.	रसिकपरिचिता	स त न स	वाग्व०
२०२९.	व्यायोगवती	त ज न स	वाग्व०
२०३०.	वियोगवती	ज ज न स	वाग्व०
२०३१.	सङ्गमवती	भ ज न स	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२०४४.	ज्वलिता	स न न स	वाग्व०
२०४५.	रूपावलि:	त न न स	वाग्व०
२०४६.	अनीचकम्	ज न न स	वाग्व०
२०४७.	भासितसरणि:	भ न न स	वाग्व०
२०४८.	कृतकृतिका	न न न स	वाग्व०, **कतिका**-वाग्व०
२३६८.	विकलबकुलवल्ली	न न त त	वाग्व०
२४०६.	निमग्नकीला	ज त ज त	वाग्व०
३२६५.	वासरमणिका	भ स स भ	वाग्व०
३५०८.	अरिला	स भ भ भ	वाग्व०
१.	आपीड:	म म म म	वृ०मौ०; **विद्याधर:**-प्रा०पै०; **विद्याधार:**-वा०भू०, छ०म०, वाग्व०; **विद्याहार:**-वृ०मु०; **कल्याणं**-है०छ०अ०, **काञ्चनम्**-है०छ०अ०टी० ।
५८६.	भुजङ्गप्रयातम्	य य य य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, क०द०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०छ०वि०; **अप्रमेया**-ना०शा०, है०छ०अ०टी० ।
११७१.	लक्ष्मीधरम्	र र र र	वृ०मौ०, क०द०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **स्रग्विणी**-वृ०मौ०, पि०छ०सू०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०; **पद्मिनी**-ना०शा०, है०छ०अ०टी०; **शृङ्गारिणी**-वाग्व० ।
१७५६.	तोटकम्	स स स स	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२३४१.	सारङ्गकम्	त त त त	वृ०मौ०; **सारङ्गम्**-बा०भू०, छ०म०, वाग्व०; **सारङ्गरूपम्**-वृ०मु०; **सारङ्गरूपकम्**-प्रा०पै०; **कामावतार:**-है०छ०अ०, छन्दोनु० **मेनावली**-वाग्व०; **रङ्गक्रीडा** स्तोत्र में **'भृङ्गार:'** ।
२९२६.	मौक्तिकदाम	ज ज ज ज	वृ०मौ०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, छन्दोनु०, **मुक्तादाम**-वृ०मु० ।
३५११.	मोदकम्	भ भ भ भ	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०, **मोदक**-छ०म० ।
१४६४.	सुन्दरी	न भ भ र	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **हरिणप्लुता**-ना०शा०; **मत्तकोकिलकम्**-छन्दोनु० ।
१७७२.	प्रमिताक्षरा	स ज स स	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, क०द०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०; **प्रतिमाक्षरा**-छ०वि० ।
१९७९.	चन्द्रवर्त्म	र न भ स	वृ०मौ०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु० ।
१४६४.	द्रुतविलम्बितम्	न भ भ र	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **हरिणप्लुतम्**-ना०शा०, है०छ० अ०टी० ।
१३८२.	वंशस्थविला	ज त ज र	वृ०मौ०, **वंशस्थबिलम्**-वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **वंशस्तनितम्**-वृ०मौ०; **वंशस्थम्**-ना०शा०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, है०छ०अ०, वृ०र०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०,

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
			छन्दोनु०, छ०वि०; **वंशस्था**-पि०छ०सू०, र०म०; **वसन्तमञ्जरी**-वृ०स०, है०छ०अ०टी०; **अभ्रवंशा**-है०छ०अ०टी० ।
१३८१.	इन्द्रवंशा	त त ज र	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०;
	उपजाति		**इन्दुवंशा**-वाग्व०; **वीरासिका**-वाग्व० ।
	वंशस्थबिला-इन्द्रवंशामिश्रा		वृ०मौ०, वाग्व०; **करम्बजाति**-छन्दोनु०; **कुलालचक्रम्**-छन्दोनु०; **वंशमालिका**-छन्दोनु०; **वंशमाला**-छ०वि० ।
१८८६.	जलोद्धतगतिः	ज स ज स	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
५७७.	वैश्वदेवी	म म य य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **चन्द्रलेखा**-ना०शा० ।
१२१६.	मन्दाकिनी	न न र र	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **गौरी**-पि०छ०सू०; **प्रभा**-वृ०मौ०, वाग्व० ।
९७६.	कुसुमविचित्रा	न य न य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, छ०वि०; **मदनविकारा**-है०छ०अ०टी०; **गजललितम्**-है०छ०अ०टी०; **गजललिता**-छन्दोनु० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
८८०.	तामरसम्	न ज ज य	वृ०मौ०, क०द०, है०द०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **ललितपदा**-बृ०सं०, छन्दोनु०; **कमलविलासिनी**-है०छ०अ०टी० ।
१३९२.	मालती	न ज ज र	वृ०मौ०, बृ०सं०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **वरतनु**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०टी०, वृ०र०ना०, छन्दोनु०; **यमुना**-वृ०मौ० ।
७८१.	मणिमाला	त य त य	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०टी०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, छन्दोनु०; **अब्जविचित्रा**-छन्दोनु०, **पुष्पविचित्रा**-है०छ०अ०, ज०छ० ।
२४१.	जलधरमाला	म भ स म	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, वृ०र०ना०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०; **कान्तोत्पीडा**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०टी०; **सौदामिनी**-छ०वि० ।
१४००.	प्रियम्वदा	न भ ज र	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, **प्रियम्वदः**-वाग्व०; **मत्तकोकिला**-है०छ०अ०टी० ।
१३९७.	ललिता	त भ ज र	वृ०मौ०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **सुललिता**-वृ०मौ० ।
२०२३.	ललितम्	भ त न स	वृ०मौ०; **ललना**-ः मौ०, पि०छ०सू०, है०सू८अ०; **वीरणमाला**-वाग्व०; **रति**-छन्दोनु० ।
७०४.	कामदत्ता	न न र य	वृ०मौ०, ना०शा०, है०छ०अ०, छन्दोनु०; **परिमितविजया**-वाग्व० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१३६६.	वसन्तचत्वरम्	ज र ज र	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०टी०; **विभावरी**-है०छ०अ०; **पञ्चचामरम्**-वृ०र०, छ०म०; **ललामललिताधरा**-वाग्व० ।
१२१६.	प्रमुदितवदना	न न र र	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, छन्दोनु०, छ०वि०; **प्रभा**-वृ०मौ०, है०छ०अ०टी०, वृ०र०, वाग्व०; **चञ्चलाक्षी**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०टी०; **मन्दाकिनी**-वाग्व०; **गौरी**-वृ०र०ना० ।
९४४.	नवमालिनी	न ज भ य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **नवमालिका**-वृ०र०, छ०म०; **नयमालिनी**-वाग्व०, **वनमालिका**-वाग्व० ।
४०९६.	तरलनयनम्	न न न न	वृ०मौ०, वा०भू०, छ०म०, वाग्व; **तरलनयना**-वृ०मु०; **तरलनयनी**-प्रा०पै० ।

त्रयोदशाक्षर-छन्द

२२५.	उल्काभास:	म त स म ग	वाग्व०
२४१.	लीलालोल:	म भ स म ग	वाग्व०
३७५.	कलाधाम	भ भ ज म ग	वाग्व०
४३९.	वासविलासवती	भ भ भ म ग	वाग्व०
४७२.	विपन्नकदनम्	न र न म ग	वाग्व०, **विपन्नकलनं**-वाग्व०, **विपन्नकवलम्**-वाग्व०
७८४.	विभा	न य त य ग	वाग्व०
९७५.	रसधारा	न य न य ग	वाग्व०
१००९.	प्रज्ञामूलम्	म भ न य ग	वाग्व०, **भद्रा**-जा०छ०वि०
	क्षमा	न न म र ग	है०छ०अ०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
११५४.	चञ्चरीकावल	य म र र ग	वाग्व०, वृ०र०ना०, **चन्द्रणी**-है०छ०अ०, **चन्द्रिका**-छन्दोऽनु०
११६२.	दर्पमाला	य य र र ग	वाग्व०, **दर्भमाला**-वाग्व०
११६५.	भाजनशीला	त य र र ग	वाग्व०
११७१.	श्रद्धरान्ता	र र र र ग	वाग्व०
१२०९.	आनता	म न र र ग	वाग्व०
१२१६.	प्रमोद:	न न र र ग	वाग्व०, **चन्द्रिका**-है०छ०अ०
	कोडुम्भ:	म त स र ग	है०छ०अ०
१३६८.	सुकर्णपूरम्	न र ज र ग	वाग्व०
१३७२.	जगत्समानिका	स स ज र ग	वाग्व०
१३९०.	अतिरंह:	ज ज ज र ग	वाग्व०
१४६१.	माणविकाविकाश:	त भ भ र ग	वाग्व०
१४९६.	कीरलेखा	न र न र ग	वाग्व०
१६३९.	आननमूलम्	भ त य स ग	वाग्व०
१७५३.	लोध्रशिखा	म स स स ग	वाग्व०
	उपस्थितम्	ज स त स ग	वृ०र०
	गौरी	न न त स ग	है०छ०अ०। पि०छ०सू० के अनुसार 'न न न स ग' लक्षण है।
१८६६.	शलभलोला	य य ज स ग	वाग्व०
१८८१.	पङ्कजधारिणी	म स ज स ग	वाग्व०
१८८४.	कुबेरकटिका	स स ज स ग	वाग्व०
१८८६.	रुचिवर्णा	ज स ज स ग	वाग्व०, **साला**-वाग्व०
१८८७.	मयूखसरणि:	भ स ज स ग	वाग्व०
१९८४.	विधुरवितानम्	न न भ स ग	वाग्व०
	मदललिता	न ज न स ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
२३४१.	पारावत:	त त त त ग	वाग्व०
२३४२.	प्रवाहिका	ज त त त ग	वाग्व०
२३४३.	स्विन्नशरीरम्	भ त त त ग	वाग्व०
२३४४.	उर्वशी	न त त त ग	है०छ०अ०, **परिवृढम्**-वाग्व०, **कौमुदी**-छन्दोनु०
२३५१.	वामवदना	भ ज त त ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२२५२.	किरात:	न ज त त ग	वाग्व०
	विद्युत्	न न त त ग	वृ०र०ना०, **कुटिलगति:**-वृ०र०ना०
२३९९.	भसलमदम्	भ स ज त ग	वाग्व०, **भसलपदम्**-वाग्व०
२४००.	कठिनी	न स ज त ग	वाग्व०
२४०५.	वृद्धवामा	त त ज त ग	वाग्व०
२४२१.	मर्मस्फुरम्	त भ ज त ग	वाग्व०
२७०९.	पृषद्वती	त र र ज ग	वाग्व०, **निस्तुषा**-वाग्व०
२७१०.	अखण्डमण्डनम्	ज र र ज ग	वाग्व०
२७३१.	कलापतिप्रभा	र ज र ज ग	वाग्व०
२७५२.	अशोकपुष्पकम्	न न र ज ग	वाग्व०, **अशोकम्**-वाग्व०
२७६२.	करपल्लवोद्गता	य य स ज ग	वाग्व०
२७६३.	सार्द्धपदा	र य स ज ग	वाग्व०
२६६४.	सुदन्तम्	स य स ज ग	है०छ०अ०, **अम्बुदावली**-वाग्व०, **मणिकुण्डलम्**-छन्दोनु०
२७९०.	मञ्जुभाषिणी	ज त स ज ग	है०छ०अ०, **मञ्जुहासिनी**-वृ०र०ना०
२७९५.	मञ्जुमालती	र ज स ज ग	वाग्व०, **मञ्जुभाषिणी**-छन्दोनु०
२८०८.	विरोधिनी	न भ स ज ग	वाग्व०
२८१६.	नलिनम्	न न स ज ग	छन्दोनु०
२९०७.	चन्द्रहासकरा	र स ज ज ग	वाग्व०
२९०८.	द्रुतलम्बिनी	स स ज ज ग	वाग्व०
२९०९.	कनककेतकी	त स ज ज ग	वाग्व०
२९१०.	गरूदवारिता	ज स ज ज ग	वाग्व०
२९११.	अमितनगानिका	भ स ज ज ग	वाग्व०
२९१८.	आपणिका	ज त ज ज ग	वाग्व०
२९२६.	गुणसारिका	ज ज ज ज ग	वाग्व०, **गणसारिका**-वाग्व०
२९३३.	प्रमोदतिलका	त भ ज ज ग	वाग्व०, **अभ्रकम्**-है०छ०अ०
२९३६.	सारसनावलि:	न भ ज ज ग	वाग्व०
२९४३.	उपचितरतिका	भ न ज ज ग	वाग्व०
२९८२.	उदात्तहास:	ज त भ ज ग	वाग्व०
३०४६.	कलनायिका	ज त न ज ग	वाग्व०
३२७७.	अभ्रभ्रमशीला	त य स भ ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३३६०.	विदला	न स त भ ग	वाग्व०
३४२३.	प्रपातलिका	भ स ज भ ग	वाग्व०
३५११.	कर्मठः	भ भ भ भ ग	वाग्व०, **अङ्गरुचिः**-छन्दोनु०
३५४३.	लवलीलता	भ र न भ ग	वाग्व०
३७३६.	अनिलोद्धतमुखी	न र र न ग	वाग्व०
३७७१.	प्रबोधफलिता	र न र न ग	वाग्व०
३७८८.	कोमलकल्पकलिका	स य स न ग	वाग्व०
३८३५.	परगतिः	र न स न ग	वाग्व०
३८९२.	अभिरामा	स भ त न ग	वाग्व०
३९६४.	उपसरसी	स न ज न ग	वाग्व०
४०४८.	मदनजवनिका	न य न न ग	वाग्व०
४०६०.	वरिवशिता	स स न न ग	वाग्व०, **परिवशिता**-वाग्व०
४०६३.	अर्धकुसुमिता	भ स न न ग	वाग्व०
४०८४.	विनताक्षी	स भ न न ग	वाग्व०, **वनिताक्षी**-वाग्व०
४०८५.	नरावलिः	त भ न न ग	वाग्व०, **निरावलिः**-वाग्व०
४०८६.	अभीरुका	ज भ न न य	वाग्व०
४०८७.	कनकिता	भ भ न न ग	वाग्व०
४०९६.	त्वरितगतिः	न न न न ग	है०छ०अ०, **हरवनिता**-वाग्व०, **उपनमिता**-वाग्व०
४४६०.	सुखकारिका	स ज ज म ल	वाग्व०
५८१३.	अट्टहासिनी	त भ र स ल	वाग्व०
	अङ्गरुचिः	भ भ भ भ ल	है०छ०अ०
७८०७.	पङ्कावलिः	भ न य न ल	वाग्व०
८०००.	अशनिः	न न त न ल	वाग्व०
१.	वाराहः	म म म म ग	वृ०मौ०; **सव्यावली**-वाग्व०।
१६३३.	माया	म त य स ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **मत्तमयूरम्**-वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, क०द०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०य०, छन्दोनु०, छ०वि०; **मत्तमयूरः**-र०म०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१७५६.	तारकम्	स स स स ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व० ।
४६८२.	कन्दम्	य य य य ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **कन्दः**-वाग्व०; **कन्दुकम्**-छ०म० ।
७०३९.	पङ्क्तावलिः	भ न ज ज ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, **पङ्कवती**-वाग्व; **कमलावली**-वृ०मु० ।
१४०१.	प्रहर्षिणी	म न ज र ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, क०द०, सु०ति०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व० ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **मयूरपिच्छम्**-वृ०स० ।
२८०६.	रुचिरा	ज भ स ज ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, स्व०छ०, क० द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **प्रभावती**-ना०शा०; **सदागतिः**-वृ०स०; **अतिरुचिरा**-वृ०र०ना०, वाग्व० ।
१०९२.	चण्डी	न न स स ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **कमलाक्षी**-है०छ०अ०, **हाकलिका**-वाग्व०, **कलावती**-वृ०मु० ।
२७९६.	मञ्जुभाषिणी	स ज स ज ग	वृ०मौ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **सुनन्दिनी**-वृ०मौ०, **नन्दिनी**-स्व०छ०, है०छ०अ०, छन्दोनु०, छ०वि०; **प्रबोधिता**-वृ०मौ०, छ०म०; **कनकप्रभा**-पि०छ०सू०, वृ०र०ना०; **मनोवती**-है०छ०अ०टी०। छन्दोनु० में 'न,ज,स,ज,ग,' और वाग्व० में ज त ज स ग लक्षण भी माना गया है ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२३६८.	चन्द्रिका	न न त त ग	वृ०मौ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **उत्पलिनी**-वृ०मौ०, वाग्व०; **कुटिलमतिः**-पि०छ०सू०; **कुटिलगतिः**-है०छ०अ०; क०द० में **चन्द्रिका**-का लक्षण 'न,न,त,र,ग' है और छन्दोनु० में 'य,म,र,र,ग,' है।
१७७२.	कलहंसः	स ज स स ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **सिंहनादः**-वृ०मौ०, वाग्व; **कुटज**-वृ०मौ०, है०छ०अ०, छन्दोनु०; **कुटजा**-वाग्व, **भ्रमरः**-है०छ०अ०टी०, **भ्रमरी**-छन्दोनु०; **क्षमा**-वाग्वः।
१३९२.	मृगेन्द्रमुखम्	न ज ज र ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०, **सुवक्त्रा**-है०छ०अ०, छन्दोनु०; **अचला**-है०छ०अ०टी०।
	क्षमा	न न त र ग	वृ०मौ०, वृ०र०; है०छ०अ० में 'न,त,त,र,ग,' लक्षण है।
२९१२.	लता	न स ज ज ग	वृ०मौ०; **लय**-है०छ०अ०; **उपगतशिखा**-वाग्व०।
११८४.	चन्द्रलेखम्	न स र र ग	वृ०मौ०, वृ०र०ना०; **चन्द्रलेखा**-वृ०मौ०, है०छ०अ०; **चन्द्ररेखा**-छ०म०।
२३३६.	सुद्युतिः	न स त त ग	वृ०मौ०; **विद्युन्मालिका**-है०छ०अ०।
२८०५	लक्ष्मीः	त भ स ज ग	वृ०मौ०, बृ०सं०, है०छ०अ०, छन्दोनु०; **प्रभावती**-छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०; **रुचिः**-छन्दोनु०।
८१९२.	विमलगतिः	न न न न ल	वृ०मौ०; **अडमरु**-वाग्व०।

चतुर्दशाक्षर-छन्द

२०५.	वंशोत्तंसा	त य स म ग ग	वाग्व०
९६१.	कालध्वानम्	म म न य ग ग	वाग्व०, **कालध्वान्तम्**-वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१०२१.	पारावार:	त न न य ग ग	वाग्व०
१२९३.	प्रपन्नपानीयम्	त य त र ग ग	वाग्व०
१२९६.	अनिन्दगुर्विन्दुः	न य त र ग ग	वाग्व०, **गुर्विन्दुः**-वाग्व०, **पूर्वेन्दुः**-वाग्व०
१५३७.	धीरध्वानम्	म म म स ग ग	वाग्व०
१७४४.	ललितपताका	न य स स ग ग	वाग्व०
२०२२.	सम्बोधा	ज त न स ग ग	वाग्व०
२०६५.	विन्ध्यारूढम्	म र म त ग ग	वाग्व०, **बन्ध्यारूढम्**-वाग्व०
२३२१.	लक्ष्मी:	म र त त ग ग	स्व०छ०, है०छ०अ०, **चन्द्रशाला**-छन्दोनु०, **बिम्बालक्ष्यम्**-वाग्व०
२३२२.	दृप्तदेहा	य र त त ग ग	वाग्व०
२३२३.	बभ्रुलक्ष्मी	र र त त ग ग	वाग्व०
२३३२.	सरमासरणि:	स स त त ग ग	वाग्व०
२३३५.	पुष्पशकटिका	भ स त त ग ग	छन्दोनु०, **लक्ष्मी**-छन्दोनु०
२३३७.	निर्यत्पारावार:	म त त त ग ग	वाग्व०
२३३९.	कल्पकान्ता	र त त त ग ग	वाग्व०
२३४४.	परीवाह:	न त त त ग ग	वाग्व०
	शरभललितम्	न भ न त ग ग	है०छ०अ०, **शरभा**-है०छ०अ०टी०,
२६८७.	वाटिकाविकाश:	भ न य ज ग ग	वाग्व०, **वाटिकाविलासः**-वाग्व० **वाटिका**-वाग्व०।
२७३१.	अर्कशेषा	र ज र ज ग ग	वाग्व०
२७४०.	मदावदाता	स भ र ज ग ग	वाग्व०
२८०४.	वंशमूलम्	स भ स ज ग ग	वाग्व०, **सुनन्दा**-छन्दोनु०
२८०५.	चेलाञ्चलम्	त भ स ज ग ग	वाग्व०, **वेलाञ्चलम्, वेलान्तरम्**-वाग्व०
२८०६.	कुसुम्भिनी	ज भ स ज ग ग	वाग्व०
२८०८.	विलम्बनीया	न भ स ज ग ग	वाग्व०
२८१६.	अनन्तदामा	न न स ज ग ग	वाग्व०
	नदी	न न त ज ग ग	वृ०र०ना०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	कुमारी	न ज भ ज ग ग	वृ०र०ना०
	कृतमालम्	त ज य भ ग ग	वाग्व०
३२८७.	शारदचन्द्रः	त य स भ ग ग	वाग्व०
३३१३.	परिणाही	म भ स भ ग ग	वाग्व०
३४६९.	रतिरेखा	त य भ भ ग ग	वाग्व०
३४८४.	मन्मथः	स स भ भ ग ग	वाग्व०
३५११.	जाहमुखी	भ भ भ भ ग ग	वाग्व०
३५१५.	वलना	र न भ भ ग ग	है०छ०अ०, **लता**-है०छ०अ०टी०; **वनलता**-छन्दोनु०
३८९२.	प्रतिभादर्शनम्	स भ त न ग ग	वाग्व०
	राजरमणीयः	ज स र न ग ग	है०छ०अ०, र०म०; **रूपगोस्वामिकृत**-वत्सचारणादिस्तोत्र में **प्रफुल्ल–कुसुमाली** है।
	वरसुन्दरी	भ ज स न ग ग	वृ०र०ना०
	सुपवित्रम्	त र न न ग ग	वृ०र०ना०,
४००६.	उपचित्रम्	न न न न न ग	है०छ०अ०, छन्दोनु० **अलिपदम्**-वाग्व०
	ज्योत्स्ना	म र म य ल ग	स्व०छ०, है०छ०अ०, **ज्योत्स्निका**-स्व०छ०
४६७२.	करिमकरभुजा	न न म य ल ग	है०छ०अ०, **कामला**-वाग्व०
४६८२.	प्रपातः	य य य य ल ग	वाग्व०
४७०४.	जलदरसिता	न स य य ल ग	वाग्व०
४८४४.	पथ्या	स ज स य ल ग	वाग्व०, **प्रथिता**-छन्दोनु०
५२६७.	कल्पमीलिता	र र र र ल ग	वाग्व०
५४१९.	सुधाधरा	र ज त र ल ग	वाग्व०
५४५९.	कलाधरः	र र ज र ल ग	वाग्व०
५४६२.	कुडङ्गिका	ज र ज र ल ग	वाग्व०
	सुकेसरम्	न र न र ल ग	है०छ०अ०, वृ०र०ना०
	सुदर्शना	स ज न र ल ग	छन्दोनु०
५६६२.	वितानिता	न न न र ल ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	सिंह:	न म र स ल ग	है०छ०अ०
	जया	म र र स ल ग	स्व०छ०, है०छ०अ०
५८१३.	अलकालिका	त भ र स ल ग	वाग्व०, **अलिकालका**-वाग्व०
५८१५.	दर्दुरक:	भ भ र स ल ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
५८१९.	गगनोद्गता	र न र स ल ग	वाग्व०
५८५२.	विनन्दिनी	स स स स ल ग	वाग्व०
६१७२.	भूरिशिखा	स स म त ल ग	वाग्व०
६३६४.	क्रीडायतनम्	स स स त ल ग	वाग्व०, **क्रीडावसथम्**-वाग्व०
६५४१.	नासाभरणम्	त य भ त ल ग	वाग्व०
६५८३.	कर्णिशर:	भ भ भ त ल ग	वाग्व०
७०३२.	विपाकवती	न भ ज ज ल ग	वाग्व०
७०८६.	काकिणिका	ज ज भ ज ल ग	वाग्व०
७०८७.	कारविणी	भ ज भ ज ल ग	वाग्व०
७३१५.	कूर्चललितम्	र र र भ ल ग	वाग्व०
७५३२.	कलहेतिका	स ज ज भ ल ग	वाग्व०
७५३५.	अञ्चलवती	भ ज ज भ ल ग	वाग्व०
८०२७.	गगनगतिका	र स ज न ल ग	वाग्व०
०८१.	निर्मुक्तमाला	म र भ न ल ग	वाग्व०
९३६३.	कामशाला	र र र र ग ल	वाग्व०
९९७५.	उन्नर्म	भ भ स स ग ल	वाग्व०
११६२८.	उपकारिका	स ज ज भ ग ल	वाग्व०
११६३१.	हेममिहिका	भ ज ज भ ग ल	वाग्व०
११६३२.	हेति:	न ज ज भ ग ल	वाग्व०
१४०४४.	मधुपालि	स स स स ल ल	वाग्व०
१६०००.	वेशम्भरि	न न य न ल ल	वाग्व०
१.	सिंहास्य:	म म म म ग ग	वृ०मौ०; **संकल्पसार:**-वाग्व०; **संकल्पाधार:**-वाग्व०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२९३३.	वसन्ततिलका	त भ ज ज ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०; काश्यपमते-**सिंहोन्नता**-पि०छ०सू०, वृ०सं०, है०छ०अ०टी०, वृ०र०, वाग्व०, छ०वि०; सैतवमते- **उद्धर्षिणी**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०; **राममते मधुमाधवी**-वाग्व०; **भरतमते सुन्दरी**-वाग्व०; **वसन्ततिलकम्**-सु०ति०, र०म०, छ०वि०; **सैतवमते इन्दुमुखी**-छ०वि० ।
८१९१.	चक्रम्	भ न न न ल ग	वृ०मौ०, वा०भू०, वाग्व०; **चक्रपदम्**-प्रा०पै०, वृ०मु० ।
२०१७.	असम्बाधा	म त न स ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
५८२४.	अपराजिता	न न र स ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
८१२८.	प्रहरणकलिका	न न भ न ल ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, छ०म०, वाग्व०, छन्दोनु०, र०म०; **प्रहरणकलिता**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, ज०छ०; **प्रहरणगलिता**-छ०वि० ।
४८१.	वासन्ती	म त न म ग ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व० ।
३०९७.	लोला	म स म भ ग ग	वृ०मौ०,वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **अलोला**-है०छ०अ०, वाग्व० ।
२३६८.	नान्दीमुखी	न न त त ग ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, छ०म०, वाग्व०, **नन्दीमुखी**-है०छ०अ०टी०, **वसन्तः**-है०छ०अ०, छन्दोनु० ।
१००९.	वैदर्भी	म भ न य ग ग	वृ०मौ०, वृ०र०ना०; **कुटिला**-पि०छ०सू०, वृ०र०ना०; **कुटिलं**-है०छ०अ०, वृ०र०ना०, **हंसश्येनी**-है०छ०अ०टी०; **हंसश्यामा**-छन्दोनु०, **मध्यक्षामा**-वृ०र०न०, **चूडापीडम्**-वाग्व० ।
३८२३.	इन्दुवदनम्	भ ज स न ग ग	वृ०मौ०; **इन्दुवदना**-वृ०मौ०, वृ०र०, वाग्व०; **वरसुन्दरी**-पि०छ०सू०; **स्खलितं**-है०छ०अ०; **वनमयूरः**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०; **इन्द्रवदना**-वाग्व०; **विलासिनी**-छ०वि०; है०छ०अ० में 'भ,ज,स,न,ल,ग' लक्षण है ।
	शरभी	म भ न त ग ग	वृ०मौ०; **शरभा**-ना०शा० ।
७०९६.	अहिधृतिः	न न भ ज ल ग	वृ०मौ०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
७०८८.	विमला	न ज भ ज ल ग	वृ०मौ०; **धृतिः**-है०छ०अ०; **मणिकटकम्**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०; **प्रमदा**-वृ०र०ना०।
	मल्लिका	स ज स ज ल ग	वृ०मौ०, **मञ्जरी**-वृ०र०ना०, **कुररीरुता**-वाग्व०।
१६३६४.	मणिगणम्	न न न न ल ल	वृ०मौ०; **अकहरि**-वाग्व०; **अकुहरि**-वाग्व०।
	पञ्चदशाक्षर-छन्द		
१३.	वज्राली	त य म म म	वाग्व०
१६.	स्फोटक्रीडम्	न य म म म	वाग्व०
२२३.	क्रीडितकटका	भ स स म म	वाग्व०
४३३.	चार्वटकम्	म भ भ म म	वाग्व०
२२९९.	आनद्धम्	र न स त म	वाग्व०
	चन्द्रलेखा	र र त त म	छन्दोनु०
३३१६.	बहुलाभ्रम्	स भ स भ म	वाग्व०
३८८१.	वाणीभूषा	म म त न म	वाग्व०
४६८२.	सिंहपुच्छम्	य य य य य	वाग्व०
५५२५.	कुमारलीला	म न र य य	वाग्व०
५५३२.	भोगिनी	न न र य य	है०छ०अ०
	केतनम्	भ य स स य	है०छ०अ०
	शिशुः	त ज स स य	है०छ०अ०
	ऋषभः	स ज स स य	है०छ०अ०, छन्दोनु०
६६३१.	दीपकम्	भ त न त य	वाग्व०
७१२०.	परिमलम्	न य न ज य	वाग्व०
	मयूरललितम्	ज स न भ य	छन्दोनु०
७९३६.	शरकल्पा	न न स न य	वाग्व०
	चन्द्रोद्योतः	न न म र र	है०छ०अ०
९३६३.	लास्यकारी	र र र र र	वाग्व०
९६९८.	मदनमालिका	न र न र र	वाग्व०
	मृदङ्गः	त भ ज ज र	है०छ०अ०
११५७५.	प्लवङ्गमः	भ भ त य र	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
११६३१.	मयूवदना	भ ज ज भ र	वाग्व०
११६३२.	कलभाषिणी	न ज ज भ र	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **अरविन्दः**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०
११७१२.	गौः	न न भ भ र	है०छ०अ०
११९६३.	सारिणी	र न र न र	वाग्व०
११९६४.	चमरीचरम्	न न र न र	वाग्व०
१२४९६.	जननिधिवेला	न य स म स	वाग्व०
१३०५७.	लीलाचन्द्रम्	म म त य स	वाग्व०
१३५०२.	धोरितम्	भ न र र स	वाग्व०
१४०१५.	शान्तसुरभिः	भ न र स स	वाग्व०
१४२६०.	कर्णलता	स भ भ स स	वाग्व०
१५६०१.	विशकलिता	म भ स भ स	वाग्व०
१५७५७.	शीर्षविरहिता	त य भ भ स	वाग्व०
१६०५३.	शङ्कावली	त भ र न स	वाग्व०
२३१३१.	ऊहिनी	र स य ज ज	वाग्व०
२३२६४.	मितसक्थि	न स स ज ज	वाग्व०
१.	लीलाखेलः	म म म म म	वृ०मौ०, छ०म०; **सारङ्गिका**-वृ०मौ०, प्रा०पै०; **सारङ्गी**-वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व० **कामक्रीडा**-है०छ०अ०, वृ०र०ना०, वाग्व०; **लीलालेख**-वाग्व०, **ज्योतिः**-छन्दोनु०, **मित्रम्**-छन्दोनु०।
४६७२.	मालिनी	न न म य य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०। **नान्दीमुखी**-ना०शा०, है०छ०अ०टी०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१०९२३.	चामरम्	र ज र ज र	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०; **तूणकम्**-वृ०मौ०, हे०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०; **तोणकम्**-स्व०छ०; **तोटकम्**-वृ०स०, **पञ्चयामलं**-वाग्व०; **महोत्सवः**-छन्दोनु० ।
१४०४४.	भ्रमरावलिका	स स स स स	वृ०मौ०, वाग्व०; **भ्रमरावली**-वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु० ।
११६२८.	मनोहंस;	स ज ज भ र	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०; **मणिहंसः**-वाग्व०; **पदहंसकम्**-वृ०मु० ।
१६३८४.	शरभम्	न न न न स	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **शशिकला**-वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, हे०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०; छन्दोनु०; **मणिगुणनिकरः**-वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, स्व०छ०, हे०छ०अ०टी०, बृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **स्रक्**-वृ०मौ०, हे०छ०अ०टी०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, **चन्द्रावर्ता**-पि०छ०सू०, हे०छ०अ०टी०, छ०वि०; **माला**-पि०छ०सू०, हे०छ०अ०टी०, र०म०, छ०वि; **मणिनिकर**-वाग्व०; **रुचिरा**-छन्दोनु०; **चन्द्रवर्त्मा**-र०म० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१२०१५.	निशिपालकम्	भ ज स न र	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व० ।
९६९६.	विपिनतिलकम्	न स न र र	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व: ।
४६२५.	चन्द्रलेखा	म र म य य	वृ०मौ०, क० द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **चण्डलेखा**-वृ०मौ०; वृ०स०, है०छ०अ०। वृ०र०ना० में 'र,र,म,य,य,' और छन्दोनु० में 'र,र,त,त,म,' लक्षण है ।
४६०९.	चित्रा	म म म य य	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०; **चित्रम्**-वृ०मौ०, **मण्डुकी**-है०छ०ट०टी०, ज०छ०, छन्दोनु०, **चञ्चला**-है०छ०अ०टी० ।
११०८४.	केसरम्	न ज भ ज र	वृ०मौ०; **प्रभद्रकम्**-क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, **सुकेसरम्**-वृ०र०ना०, छन्दोनु० ।
८१७२.	एला	स ज न न य	वृ०मौ०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व:०, छन्दोनु० ।
११५८४.	प्रिया	न न त भ र	वृ०मौ०; **उपमालिनी**-क०द०, है०छ०अ०; **रूपमालिनी**-वृ०र०ना० ।
११७०७.	उत्सव:	र न भ भ र	वृ०मौ०; **सुन्दरम्**-है०छ०अ०; **मणिभूषणम्**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु० **रमणीयम्**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०; **नूतनम्**-वाग्व०; **सृक्कणं**-वाग्व० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३२७६८.	उडुगणम्	न न न न न	वृ०मौ०; **शरहतिः**-वाग्व: ।
		षोडशाक्षर-छन्द	
१०२४.	माल्योपस्थम्	न न न य म ग	वाग्व०
४०९६.	कल्पाहारी	न न न न म ग	वाग्व०
	वेल्लिता	स स स न म ग	है०छ०अ०, र०म०
५५३६.	प्रतीपवल्ली	स स भ र य ग	वाग्व०
७१५९.	आरभटी	भ भ न ज य ग	वाग्व०
९२८०.	वक्रावलोक:	न न म र र ग	वाग्व०
	सुरतललिता	म न स त र ग	है०छ०अ०
	चित्रम्	र ज र ज र ग	है०छ०अ०
१०१९२.	अभिधात्री	स स स ज र ग	वाग्व०
१३१०८.	अनिलोहा	स भ त य स ग	वाग्व०
	कान्तम्	न य न य स ग	छन्दोनु०
१३३०९.	भोगावलि:	त न न य स ग	वाग्व०
१४०४४.	कामुकी	स स स स स ग	है०छ०अ०, **सोमडकम्**-
			है०छ०अ०टी०, **कलधौतपदम्**-
			वाग्व०
	ललितपदम्	न न न ज स ग	है०छ०अ०, **कमलदलम्**-
			छन्दोनु०
१५३७६.	वलिवदनम्	न य म भ स ग	वाग्व०
१५५६५.	सूतशिखा	त य स भ स ग	वाग्व०
१५५८०.	परिखायतनम्	स स स भ स ग	वाग्व०. **परिखापतनं**-वाग्व०
१५६०१.	मालावलयम्	म भ स भ स ग	वाग्व०
	शरमाला	भ भ भ भ स ग	है०छ०अ०, **स्मरशरमाला**-
			छन्दोनु०
१६३६९.	भीमावर्त्त:	म भ न न स ग	वाग्व०
१६३८४.	शिशुभरणम्	न न न न स ग	वाग्व०
	कोमललता	म त स त त ग	है०छ०अ०, र०म०
२३२६४.	तरवारिका	न स स ज ज ग	वाग्व०
	मङ्गलमङ्गना	न भ ज ज ज ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
२५५५२.	कमलपरम्	न य न य भ ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२७८२४.	मणिकल्पलता	न ज र भ भ ग	क०द०, छ०अ०, वृ०र०ना०, **त्रोटकम्**-वाग्व०, **चिन्तामणि**-छन्दोनु०, **इन्दुमुखी**-छन्दोनु०
२८६७२.	कलहकरम्	न न न न भ ग	वाग्व०
	प्रमुदिता	भ र न र न ग	है०छ०अ०
३०५८४.	नरशिखी	न भ ज स न ग	वाग्व०
३१२०७.	सारवरोहा	भ त न त न ग	वाग्व०
	वरयुवतिः	भ र य न न ग	पि०छ०सू, है०छ०अ०, वृ०र०ना०
	ललना	र न न न न ग	है०छ०अ०, र०म०, जा०छ०वि०
३२७६८.	चलधृतिः	न न न न न ग	है०छ०अ०
३६९९७.	दन्तालिका	त म र म य ल	वाग्व०
४३६६७.	कल्पधारि	र र र ज र ल	वाग्व०, **चारि**-वाग्व०
५२४१७.	कुल्यावर्त्तम्	म म स भ त ल	वाग्व०, **कुल्यावृत्तं**-वाग्व०
१.	रामः	म म म म म ग	वृ०मौ०; **ब्रह्मरूपकम्**-वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०, **ब्रह्मरूपम्**-छ०म०; **ब्रह्म**-वा०भू०, वाग्व०; **कामुकी**-है०अ०छ०, **चन्द्रापीडम्**-वाग्व०।
२१८४६.	पञ्चामरम्	ज र ज र ज ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, छन्दोनु०; **नराचम्**-वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०।
२८०८७.	नीलम्	भ भ भ भ ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू० वृ०मु०, वाग्व०, **अश्वगतिः**-क०द०, वृ०र०ना०, छ०म०; **सङ्गतम्**-है०छ०अ०, **पद्ममुखी**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०;

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
			सुरता-है०छ०अ०टी०; **सद्यमुद्धरणम्**-है०छ०अ०टी०; **सोपानकम्**-है०छ०अ०टी०; **रवगतिः**-वाग्व०; **विशेषिका**- वाग्व० ।
४३६९१.	चञ्चला	र ज र ज र ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **चित्रसंज्ञं**- वृ०मौ०, वृ०र०ना०, छ०म०, **चित्रम्**-स्व०छ०, क०द०, वाग्व०; **चित्रशोभा**-स्व०छ० ।
२९१६९.	मदनललिता	म भ न म न ग	वृ०मौ०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०, **मदनललितम्**-स्व०छ० ।
११९८४.	वाणिनी	न ज भ ज र ग	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, छन्दोनु०। है०छ०अ० में **वाणिनी** का 'न,ज,ज,ज,र,ग,' लक्षण भी स्वीकार किया गया है।
१०१७८.	प्रवरललितम्	य म४ न स र ग	वृ०मौ०, ना०शा०, छ०म०, वाग्व०, **जयानन्दनम्**-है०छ०अ०, छन्दोनु०, वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **चन्द्रलेखा**-छ०वि० ।
१९३७६.	चकिता	भ स म त न ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व० ।
३०७५१.	गजतुरग	भ र न न न ग	वृ०मौ०, **ऋषभगजविलसितं**- वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, है०छ०अ०, न०र०, छ०म०, वाग्व०, ज० ०, छन्दोनु०; **गजवरविलसितं**-स्व०छ०; **मत्तगजविलसितं**-है०छ०अ०टी०; **वृषभगजविलसिता**-र०म०; **ऋषभगजविलसिता**-छ०वि० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	शैलशिखा	भ र न भ भ ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०; **भामिनी**-छन्दोनु० ।
३०१५१.	ललितम्	भ र न र न ग	वृ०मौ०, बृ०सं०; **धीरललिता**-वृ०र०ना०, छ०म०, **महिषी**-है०छ०अ० ।
	सुकेशरम्	न स ज स ज ग	वृ०मौ० ।
	ललना	स न न ज भ ग	वृ०मौ० ।
६५५३६.	गिरिवरधृतिः	न न न न न ल	वृ०मौ०; **अचलधृतिः**-वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ० ।

सप्तदशाक्षर-छन्द

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
११९६८.	वीरविश्रामः	न न र न र ग ग	वाग्व०
१६१८३.	वल्वजम्	भ भ त न स ग ग	वाग्व०, **वल्गुजम्**-वाग्व०
१६१८६.	क्रूराशनम्	त न त न स ग ग	वाग्व०, **कूराशनम्**-वाग्व०, **क्रूरासनं**-वाग्व०, **कूरासनं**-वाग्व०
२०३६८.	कामरूपम्	म र भ न त ग ग	वाग्व०
२३९००.	अतिशायिनी	स स ज भ ज ग ग	पि०छ०सू०,है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छन्दोनु०, वाग्व०, **यादवी**-है०छ०अ०टी०, **चित्रलेखा**-वृ०र०ना०
२३९०४.	शायिनी	न स ज भ ज ग ग	वाग्व०
	वाणिनी	न ज भ ज ज ग ग	है०छ०अ०, ज०छ०
३२३८३.	तितिक्षा	भ न य न न ग ग	वाग्व०
३२७६८.	वसुधारा	न न न न न ग ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
	रोहिणी	न स म म य ल ग	है०छ०अ०
३८७५१.	बालविक्रीडितम्	भ स ज स य ल ग	वाग्व०
३८७५८.	कालसारोद्धतः	ज त ज स य ल ग	वाग्व०
	कान्ता	य भ न र स ल ग	वृ०र०ना०
	हरिः	न न म र स ल ग	वृ०र०ना०
५२४६५.	विरुदरुतम्	म भ स भ त ल ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
५२९९३.	कासारम्	म म त न त ल ग	वाग्व०
५६१६७.	वंशल:	भ त ज ज ज ल ग	वाग्व०
	विलासिनी	न ज भ ज भ ल ग	बृ०सं०
६४६१२.	विधुरविरहिता	स त य भ न ल ग	वाग्व०
६४९२४.	शुकवनिता	स स भ भ न ल ग	वाग्व०. **शिशुकवनिता**-वाग्व०
६४९४७.	वाहान्तरितम्	त न भ भ न ल ग	वाग्व०
६९३९२.	कर्णस्फोटम्	न य त न म ग ल	वाग्व०
७४८९९.	प्रतीहार:	र र र र र र ग ल	वाग्व०
७५७१४.	कान्तारम्	य म न स र ग ल	वाग्व०
८११४०.	फल्गु:	स भ स भ स ग ल	वाग्व०
	ललितभृङ्ग:	भ स न ज न ग ल	रुपगोस्वामिकृत रासक्रीडास्तोत्र
१.	लीलाधृष्टम्	म म म म म ग ग	वृ०मौ०; **मानाक्रान्ता**-वाग्व०।
३८७५०.	पृथ्वी	ज स ज स य ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **विलम्बितगति:**-ना०शा०, है०छ०अ०टी०।
३८७५२.	मालावती	न स ज स य ल ग	वृ०मौ०; **मालाधर:**-वृ०मौ०, प्रा०पै०; वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०।
५९३३०.	शिखरिणी	य म न स भ ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स, सु०ति०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०,र०म०, छ०वि०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४६११२.	हरिणी	न स म र स ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **वृषभचरितम्**-बृ०सं०; **वृषभललितम्**-है०छ०अ०टी० ।
१८९२९.	मन्दाक्रान्ता	म भ न त त ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि; **श्रीधरा**-ना०शा०, है०छ०अ०टी० ।
६४९८३.	वंशपत्रपतितम्	भ र न भ न ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०स०, क०द०, ज०छ०, छन्दोनु०, छ०वि०; **वंशपत्रपतिता**-वृ०मौ०, र०म०, **वंशदलम्**-वृ०मौ०, है०छ०अ०टी०; **वंशतलं**-स्व०छ०; **वंशपत्रललितम्**-स्व०छ०; **वंशपत्रम्**-वाग्व० ।
५६२४०.	नर्दटकम्	न ज भ ज ज ल ग	वृ०मौ०, वाग्व० **नर्कुट**-सु०ति०; **नर्कुटकम्**-बृ०सं०, वृ०सं०, है०छ०अ०टी०, वृ०र०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०; **अवितथम्**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०ना० ।
५६२४०.	कोकिलकम्	न ज भ ज ज ल ग	वृ०मौ०; पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, वृ०र०ना०, छ०म०, वाग्व०, छन्दोनु० ।

इसका लक्षण 'नर्दटकम्' का है; परन्तु यति-भेद के कारण अपर नाम 'कोकिलकम्' दिया गया है ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३७८७३.	हारिणी	म भ न म य ल ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, छ०म०। वाग्व० में 'म,भ,न,य,म,ल,ग,' लक्षण है।
४६५७७.	भाराक्रान्ता	म भ न र स ल ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व०।
	मतङ्गवाहिनी	र ज र ज र ल ग	वृ०मौ०।
	पद्मकम्	न स म त त ग ग	वृ०मौ०, है०छ०अ०; **पद्मम्**-स्व०छ०।
१३१०७२.	दशमुखहरम्	न न न न न ल ल	वृ०मौ०; **अचलनयनम्**-वाग्व०।

अष्टादशाक्षर-छन्द

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३१४५०.	परामोदः	य स स ज न म	वाग्व०
३२२३०.	विलुलितवनमाला	न न म न न म	वाग्व०
	अनङ्गलेखा	न स म म य य	स्व०छ०, है०छ०अ०
	चन्द्रमाला	न न म म य य	स्व०छ०, है०छ०अ०
३७४४०.	नीलशार्दूलम्	न न म य य य	वाग्व०, **नीलशालूरं**-वाग्व०, **नीलमालूरम्**-वाग्व०
	मन्दारमाला	स त न य य य	छन्दोनु०
४४०२५.	सत्केतुः	म न न ज र य	वाग्व०
	पङ्कजवक्त्रा	न न स स त य	है०छ०अ०, **पङ्कजभुक्ता**-छन्दोनु०
	भङ्गिः	भ भ भ भ न य	है०छ०अ०, **विच्छित्तिः**-है०छ०अ०टी०
	काञ्ची	म र भ य र र	है०छ०अ०, **वाचालकाञ्ची**-है०छ०अ०टी०, र०म०
	केसरम्	म भ न य र र	स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०
७४८९९.	सिन्धुसौवीरम्	र र र र र र	वाग्व०
	निशा	न न र र र र	है०छ०अ०, **तारका**-है०छ०अ०टी० **महामालिका**-वृ०र०ना०
७७५०४.	पर्विणी	न न र न न र	वाग्व०
७७८०९.	क्रोडक्रीडम्	म भ न न र र	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	बुद्बुदम्	स ज स ज त र	है०छ०अ०
८९००८.	वसुपदमञ्जरी	न ज भ ज ज र	वाग्व०
	हरिणीपदम्	न स म त भ र	स्व०छ०, है०छ०अ०
९३०१७.	हरिणप्लुतम्	म स ज ज भ र	वृ०र०ना०, वाग्व०
	कुरङ्गिका	म त न ज भ र	स्व०छ०, है०छ०अ०
	चलम्	म भ न ज भ र	है०छ०अ०, वृ०र०ना० **अचलम्**-स्व०छ०
९५७०४	षट्पदेरितम्	न र न र न र	वाग्व०
९६०९४.	पार्थिवम्	ज स ज स न र	वाग्व०
	गुच्छकभेदः	न न न न न र	रुपगोस्वामिकृत-अरिष्टवधस्तोत्र
११२३४८.	परिपोषकम्	स स स स स स	वाग्व०
	क्रीडा	य म न स त स	है०छ०अ०, **सुधा**-वृ०र०ना०; **मुक्तमाला**-वृ०र०ना०, वाग्व०
	सुरभिः	स न ज न भ स	है०छ०अ०, छन्दोनु०
	मणिमाला	भ भ भ म भ स	है०छ०अ०, छन्दोनु०
१२६३९१.	अश्वगतिः	भ भ भ भ भ स	छन्दोनु०
१४९७९७.	अर्धान्तरालापि	त त त त त त	वाग्व०, **अद्धान्तरालापि**-वाग्व०
१४९७९८.	पतङ्गपादः	ज त त त त त	वाग्व०
२२४६९५.	हीरकहारधरम्	भ भ भ भ भ भ	वाग्व०
२४९६६१.	दण्डी	त न त न त न	वाग्व०
१.	लीलाचन्द्रः	म म म म म म	वृ०मौ०, प्रा०पै०।
१२६७२.	मञ्जीरा	म म भ म स म	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०।
९३०१९.	चर्चरी	र स ज ज भ र	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व०; **विबुधप्रिया**-पि०छ०सू०, वृ०र०ना०; **उज्ज्वलम्**-है०छ०अ०; **मलिकोत्तरमालिका**-है०छ०अ०टी०, छन्दोन०; **मत्तकोकिलम्**-वाग्व०, **कूर्परं**-वाग्व०; **चञ्चरी**-वाग्व०; रूपगोस्वामीकृत मुकुन्दमुक्तावली में **'रङ्गिणी'** और गोवर्द्धनोद्धरण में **'मुग्धसौरभम्'** नाम दिये हैं।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३७४५०.	क्रीडाचन्द्रः	य य य य य य	वृ०मौ०, वा०भू०, वाग्व० **क्रीडाचक्रम्**-वृ०मु०; **वारवाणा**-वाग्व०; **क्रीडगा**-वाग्व०; **चन्द्रिका**-वाग्व०।
३७८५७.	कुसुमितलता	म त न य य य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, छ०वि०; **चित्रलेखा**-ना०शा०; **चन्द्रलेखा**-वृ०स०; **कुसुमलतावेल्लिता**-वाग्व०; ज०छ०; **कुसुमितलतावेल्लिता**-छन्दोनु०, छ०वि०।
६७६२०.	नन्दनम्	न ज भ ज र र	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०।
७४९४४.	नाराचः	न न र र र र	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **नाराचकम्**-पि०छ०सू०; **मञ्जुला**-वृ०मौ०, **महामलिका**-वाग्व:०; **तारका**-क०द०; **वरदा**-छन्दोनु०; **निशा**-छन्दोनु०।
३७८७३.	चित्रलेखा	म भ न य य य	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, वाग्व०; **चन्द्रलेखा**-वाग्व०। महाराणा कुम्भकर्ण रचित पाठ्यरत्नकोष के अनुसार 'य,त,न,य,य,य,स,' लक्षण है।
१३०९७१.	भ्रमरपदम्	भ र न न न स	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
११६५६९.	शार्दूलललितम्	म स ज स त स	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, वाग्व० ।
	सुललितम्	न न म त भ र	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ० ।
२६२४४०.	उपवनकुसुमम्	न न न न न न	वृ०मौ०; **तुमुलकम्**-वाग्व० ।

एकोनविंशाक्षर-छन्द

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२०४९६.	झिल्लीलीला	न य म म ज म ग	वाग्व०
३१२२५.	विधुनिधुवनम्	म न न त न म ग	वाग्व०
४८१८९.	माराभिसरणम्	त न म भ स य ग	वाग्व०
७४८९९.	लोललोलम्बलीलम्	र र र र र र ग	वाग्व०
	विस्मिता	य म न स र र ग	वृ०र०ना०
	मुग्धकम्	य म न न र र ग	है०छ०अ०
	माधवीलता	म र भ स स ज ग	है०छ०अ०
	रतिलीला	ज स ज स ज स ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
	तरुणीवदनेन्दुः	स स स स स स ग	क०द०, है०छ०अ०
१३०३४९.	किरणकीर्त्तिः	त ज त भ न स ग	वाग्व०
	वञ्चितम्	म त न स त त ग	है०छ०अ०, **चन्द्रबिम्बम्**-स्व०छ०; **बिम्बं**-वृ०र०ना०; **विचितम्**-वृ०र०ना०
१५५४८१.	शिलीमुखोज्जृम्भितं	म स ज न ज त ग	वाग्व०
१७४७६३.	कलापदीपकम्	र ज र ज र ज ग	वाग्व०
१७४७८४.	प्रपञ्चचामरम्	न न र ज र ज ग	वाग्व०, **प्रपञ्चम्**-वाग्व०
	पञ्चचामरः	न न स ज र ज ग	वृ०र०ना०
१७८१३९.	कल्पलतापताकिनी	म न न स स ज ग	वाग्व०
	मकरन्दिका	य म न स ज ज ग	स्व०छ०,है०छ०अ०, वृ०र०ना०
	मणिमञ्जरी	य भ न य ज ज ग	वृ०र०ना०
	तरलम्	न भ र स ज ज ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
	ऊर्जितम्	र स स त ज ज ग	है०छ०अ०, **शार्ङ्गि**-छन्दोनु०
१९२१९२.	निर्गलितमेखला	न न र न भ ज ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	वायुवेगा	म स ज स न ज ग	है०छ०अ०, जा०छ०वि०
१९९९२१.	ग्रावास्तरणम्	म भ स भ म भ ग	वाग्व०
	समुद्रलता	ज स ज स त भ ग	वृ०र०ना०
२४१३३९.	टङ्कणम्	र न र न र न ग	वाग्व०
१.	नागानन्दः	म म म म म म ग	वृ०मौ० ।
१४९३३७.	शार्दूलविक्रीडितम्	म स ज स त त ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **शार्दूलसट्टकम्**-प्रा०पै० ।
५२३२६४.	चन्द्रम्	न न न ज न न ल	वृ०मौ०, वा०भू०, वृ०मु०; **चन्द्रमाला**-वृ०मौ०, प्रा०पै० ।
२६२१४४.	धवलम्	न न न न न न ग	वृ०मौ०, वा०भू०, वा०मु०, वाग्व; **धवला**-वृ०मौ०, प्रा०पै० ।
३१७२.	शम्भुः	स त य भ म म ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वाग्व० ।
७५७१४.	मेघविस्फूर्जिता	य म न स र र ग	वृ०मौ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०; **विस्मिता**-पि०छ०सू०; **सुवृत्ता**-बृ०सं०; **रम्भा**-स्व०छ०, है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०; **चन्द्रकान्ता**-वृ०स० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१४९४४२.	छाया	य म न त त ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, वाग्व० ।
२३७४५७.	सुरसा	म र भ न य न ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व० ।
८५७४५.	फुल्लदाम	म त न स र र ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **पुष्पदाम**-स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना० ।
५२४२८८.	मृदुलकुसुमम्	न न न न न न ल	वृ०मौ० ।
		विंशाक्षर-छन्द	
५२४६५.	वाणीबाण:	म भ स भ त य ग ग	वाग्व०
१२९०३१.	भेकालोक:	भ म म त न स ग ग	वाग्व०
	चित्रमाला	म र भ न त त ग ग	स्व०छ०, है०छ०अ०, **सुप्रभा**-वृ०जा०स०, है०छ०अ०टी०
१५१४१३.	विष्वग्वितानम्	त भ ज न त त ग ग	वाग्व०
१५१४८९.	भूरिशोभा	म म न न त त ग ग	वाग्व०
१६१२४०.	संलक्ष्यलीला	न र न र न त ग ग	वाग्व०
१६३६८८.	भारावतार:	न त ज न न त ग ग	वाग्व०, **हारावतार:**-वाग्व०
२२४६९५.	वीरविमानम्	भ भ भ भ भ भ ग ग	वाग्व०
२९८६७५.	मत्तेभविक्रीडितम्	स भ र न म य ल ग	है०छ०अ०, वाग्व०, छन्दोनु०
	रत्नमाला	म न स न म य ल ग	है०छ०अ०
२९९५९४.	अवन्ध्योपचार:	य य य य य य ल ग	वाग्व०
३५५७९९.	कामलता	भ र न भ भ र ल ग	है०छ०अ०, **उत्पलमालिक**-है०छ०अ०टी०, वाग्व०, छन्दोनु०
	दीपिकाशिखा	भ न य न न र ल ग	है०छ०अ०, र०म०
	मुद्रा	न भ भ म स स ल ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **उज्ज्वलम्**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०
	पुटभेदकम्	र स स स स स ल ग	छन्दोनु०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
५०७६५५.	सौरभशोभासार:	भ म त न स न ल ग	वाग्व०
१.	योगानन्द:	म म म म म म ग ग	वृ०मौ० ।
३७२०७६.	गीतिका	स ज ज भ र स ल ग	वृ०मौ०, वा०भू०, छ०म०, वाग्व०; **गीता**-प्रा०पै०; **हरिगीतम्**-वृ०मु० ।
६९९०५१.	गण्डका	र ज र ज र ज ग ल	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू० वाग्व; **चित्तवृत्तम्**-वृ०मौ०; **चित्रम्**-क०द०; **वृत्तम्**-वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०, छ०वि०; **मुण्डकं**-वृ०मू०, **ईदृशं**-वाग्व०; **मादृशं**-वाग्व० ।
१५१४९०.	शोभा	य म न न त त ग ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, वाग्व० ।
४६६८३३.	सुवदना	म र भ न य भ ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०; **वृत्तम्**-वृ०स०। छ०वि० के अनुसार 'म,र,भ,न,य,भ,ल,ल,' लक्षण है।
	प्लवङ्गभङ्गमङ्गलम्	ज र ज र ज र ल ग	वृ०मौ० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	शशाङ्कचलितम्	त भ ज भ ज भ ल ग	वृ०मौ०; **शशाङ्कचरितम्**-वृ०स०, **शशाङ्करचितम्**-है०छ०अ०।
	भद्रकम्	भ भ भ भ र स ल ग	वृ०मौ०; **नन्दकम्**-है०छ०अ०; **भासुरम्**-छन्दोनु०।
१०४८५७६.	अनवधिगुणगणम्	न न न न न न ल ल	वृ०मौ०।
		एकविंशाक्षर-छन्द	
८१९२१.	अशोकलोक:	म म म म त र म	वाग्व०, **अशोकलोकालोक:** वाग्व०
	ललितगति:	न न न य य र म	छन्दोनु०
८६०८०.	मन्दाक्षमन्दरम्	न न म म ज र म	वाग्व०
१९१८२७.	तल्पकतल्लजम्	भ भ भ भ भ ज म	वाग्व०
२९९५९४.	विद्युदाली	य य य य य य य	वाग्व०
५९७९०५.	दूरावलोक:	म र भ न य र र	वाग्व०
५९९५०८.	शरकाण्डप्रकाण्डम्	स र न र र र र	वाग्व०
६१९९९२.	कलमतल्लिका	न र न र न र र	वाग्व०
	ललितविक्रम:	भ र न र न र र	है०छ०अ०, र०म०
	वनमञ्जरी	न ज ज ज ज भ र	है०छ०अ०, छन्दोनु०
	कथागति:	त र भ न ज भ र	है०छ०अ०, र०म०
	पद्मसद्म	र स न ज न भ र	छन्दोनु०
८९८७८०.	प्रतिमा	स स स स स स स	वाग्व०, **सवैया**-वाग्व०
९००११२.	कमलशिखा	न य म भ स स	वाग्व०
९३६२४०.	ललितललाम	न ज त त त त स	वाग्व०
	मत्तक्रीडा	म म त न न न स	है०छ०अ०
	चन्दनप्रकृति:	र ज त न न न स	है०छ०अ०
१७९७५५९.	तडिदम्बरम्	भ भ भ भ भ भ भ	वाग्व०, **सवैया**-वाग्व०
१.	ब्रह्मानन्द:	म म म म म म म	वृ०मौ०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३०२९९३.	स्रग्धरा	म र भ न य य य	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, सु०ति, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
७६५६२७.	मञ्जरी	र न र न र न र	वृ०मौ०; **तरङ्गः**-है०छ०अ०, **तरङ्ग-मल्लिका**-छन्दोनु०; **कनकमालिका**-वाग्व० ।
४५०५१९.	नरेन्द्रः	भ र न न ज ज ज	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **सुरतरु**-वृ०मौ०, **सिद्धकम्**-वृ०मौ०, **सिद्धिः**-स्व०छ०, है०छ०अ०; **सिद्धिका**-क०द०; **शशिवदना**-पि०छ०सू०, है०छ०अ०टि०; **चित्रलता**-है०छ०अ०टी०; **चित्रलतिका**-छन्दोनु०; **सलिलम्**-वृ०र०ना०; **श्रीः**-वृर०ना०; **चम्पकमालिका**-वाग्व०, छन्दोनु०; **चम्पकावली**-वाग्व; **पञ्चकावली**-वाग्व० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
७११६००.	रुचिरा	न ज भ ज ज ज र	वृ०मौ०, है०छ०अ०टी०।
२०९७१५२.	निरुपमतिलकम्	न न न न न न न	वृ०मौ०।
	द्वाविंशाक्षर-छन्द		
२०२९५१.	वासकलीला	भ म स त य भ म ग	वाग्व०
३३१७७६.	द्रुतमुखम्	न न न न म र य ग	वाग्व०
५९०११३.	भीमाभोगः	म त त म म र र ग	वाग्व०
५९८६०२.	वीरनीराजना	य य य य र र र ग	वाग्व०
५९९१८५.	कङ्कणक्वाणवाणी	म र र र र र र ग	वाग्व०
५९९१८७.	कङ्कणक्वाणः	र र र र र र र ग	वाग्व०
	महास्रग्धरा	स त त न स र र ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
८१७६३८.	अर्भकमाला	भ त न त न म स ग	वाग्व०
८७६४४१.	भस्त्रानिस्तरणम्	म स भ न ज र स ग	वाग्व०
८९८७८०.	अयमानम्	स स स स स स स ग	वाग्व०
	दीपार्चिः	म स ज स ज स ज ग	है०छ०अ०, र०म०
	मदनसायकः	न भ ज भ ज भ ज ग	छन्दोनु०
१५७०४८५.	भोगावली	त भ र स न न ज ग	वाग्व०
१६३६०६०.	स्वर्णाभरणम्	स स स स न य भ ग	वाग्व०
१६७७५११.	निष्कलकण्ठी	भ म स त म स भ ग	वाग्व०
१९१४०३७.	भुजङ्गोद्धतम्	त भ र र स र न ग	वाग्व०
	लालित्यम्	म स र स त ज न ग	वृ०र०ना०
	वरतनुः	म त य न न न न ग	है०छ०अ०
२०९७१५२.	अचलविरतिः	न न न न न न न ग	वाग्व०
३१२४५८८.	वनवासिनी	स ज ज भ र न स ल	वाग्व०
	१. विद्यानन्दः	म म म म म म म ग	वृ०मौ०।
१०४८३२१.	हंसी	म त त न न न स ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व; **रजतहंसी**-वाग्व०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१७९७५५९.	मदिरा	भ भ भ भ भ भ भ ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, छ०म०, वाग्व०; **लताकुसुमम्**-क०द०, है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०; **सवैया**-वृ०मु०; **मद्रकम्**-पि०छ०सू०, ना०शा०, स्व०छ०, है०छ०अ०, ज०छ०, छन्दोनु०, छ०वि०; **भद्रकम्**-क०द०, वृ०र०, छ०म०, र०म०; **विशुद्धचरितम्**-वृ०स०। वाग्व० में 'भ,र, न,स,न,र,न,ग,' लक्षण है। **भद्रकं**-वाग्व०; **भद्रिका**-वाग्व०।
१९३१२२३.	शिखरम्	भ र न र न र न ग	वृ०मौ०।
	अच्युतम्	न न न न स ज ज ग	वृ०मौ०।
१९१५५०९.	मदालसम्	त भ य ज स र न ग	वृ०मौ०; **सितस्तबक**-वाग्व०; **परिस्तबक**-वाग्व०।
४१९४३०४	तरुवरवृत्तम्	न न न न न न न ल	वृ०मौ०।
	त्रयोविंशाक्षर-छन्द		
८४२१७६.	परिधानीयम्	न न भ त ज य स ग ग	वाग्व०
१७५२४७९.	विलासवास:	भ स भ भ स ज भ ग ग	वाग्व०, **सुभाग;** वाग्व० **विलासः**-वाग्व०
१७९८१०४.	मन्थरायनम्	न र न न भ भ भ ग ग	वाग्व०, **मन्थरं**-वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१८३१९०३.	पुलकाञ्चितम्	भ स न य न न भ ग ज	वाग्व०
२०८९४४७.	इन्द्रविमानम्	भ त न म भ न न ग ग	वाग्व०
	वृन्दारकम्	ज स ज स य य य ल ग	है०छ०अ०, र०म०
२८१७४०१.	विपुलायितम्	म न ज भ न ज र ल ग	वाग्व०
	चित्रकम्	र न र न र न र ल ग	क०द०, है०छ०अ०, छन्दोनु०
३२७०१४५.	पारावारान्तस्थम्	म म म स भ स त ल ग	वाग्व०, **पारावारान्तः**-वाग्व०
३३९४८०१.	रामाबद्धम्	म भ स भ त न त ल ग	वाग्व०
३५२८५४२.	विलम्बललितम्	ज स ज स ज स ज ल ग	वाग्व०, **बिलम्**-१७.
३५९५११७.	शङ्खः	त ज ज ज ज ज ज ल ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
३५९५१२०.	हंसगतिः	न ज ज ज ज ज ज ल ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०, **महातरुणीदयितम्**-है०छ०अ०टी०, छन्दोनु०; **श्रवणाभरणं**-वाग्व०, **विराजितम्**-वाग्व०
३६४३८७९.	गोत्रगरीयः	भ त न त य न ज ल ग	वाग्व०
	चपलगतिः	भ म स भ न न न ल ग	है०छ०अ०
४१९४३०४.	अमरचमरी	न न न न न न न ल ग	वाग्व०
५०४५३७५.	सम्भृतशरधिः	भ न य भ न य स ग ल	वाग्व०
५९९१८६३.	चकोरः	भ भ भ भ भ भ भ ग ल	वाग्व०
१.	दिव्यानन्दः	म म म म म म भ ग ग	वृ०मौ०।
३५९००४४.	सुन्दरिका	स स भ स त ज ज ल ग	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०; **सुन्दरी**-वृ०मु०।
३५९००४४.	पद्मावतिका	स स भ स त ज ज ल ग	वृ०मौ०, वा०भू०।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३८६१४२४.	अद्रितनया	न ज भ ज भ ज भ ल ग	वृ॰मौ॰, छ॰म॰, वाग्व; **अश्वललितम्**-वृ॰मौ॰, पि॰छ॰सू॰, ना॰शा॰, वृ॰र॰, वृ॰र॰, वाग्व॰, ज॰छ॰, छन्दोनु॰, र॰म॰, छ॰वि॰; **ललितम्**-स्व॰छ॰, है॰छ॰अ॰ **हयलीलाङ्गी**-वृ॰स॰।
१७९७५५९.	मालती	म भ भ भ भ भ भ ग ग	वृ॰मौ॰; **सवैया**-वृ॰मु॰; **मत्तगजेन्द्र**-वाग्व॰।
३५८५११८.	मल्लिका	ज ज ज ज ज ज ज ल ग	वृ॰मौ॰; **मानवती**-वाग्व॰; **मानिनी**-वाग्व॰।
४१९४०४९.	मत्ताक्रीडम्	म म त न न न न ल ग	वृ॰मौ॰, छ॰म॰, ज॰छ॰, छन्दोनु॰ **मत्ताक्रीडा**-पि॰छ॰सू॰, स्व॰छ॰, क॰द॰, है॰छ॰अ॰, वृ॰र॰, वाग्व॰, र॰म॰, छ॰वि॰।
८३८८६०.	कनकवलयम्	न न न न न न न ल ल	वृ॰मौ॰।
		चतुर्विंशाक्षर-छन्द	
६८८२९९.	वंशलोन्नता	र ज र म म ज र म	वाग्व॰
१०४६२६३.	धौरेयम्	भ भ स स न न स म	वाग्व॰
२३९६७४६.	भुजङ्गः	य य य य य य य य	वाग्व॰, **महाभुजङ्गः**-वाग्व॰, **सुधायः**-वाग्व॰
३१०२६३५.	भासमानबिम्बम्	र ज भ स ज भ स य	वाग्व॰, **मानबिम्बं**-वाग्व॰, **भासमानं**-वाग्व॰

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३५९५१२०.	समाहितम्	न ज ज ज ज ज ज ज य	वाग्व०
३६३८२७२.	विगाहितगेहम्	न न न य म न ज य	वाग्व० **गाहितगेहं**-वाग्व०, **गाहितदेहम्**-वाग्व०
३६५३११३.	अधीरकरीरम्	म न न भ स न ज य	वाग्व०
४१५६८५५.	अर्दितम्	भ भ भ भ भ भ न य	वाग्व०, **नर्दितम्**-वाग्व०
४१९०३३५.	पार्षतसरणम्	भ न य म न न न य	वाग्व०
	ललितलता	न न भ न ज न न य	है०छ०अ०, छन्दोनु०
४१९३४७९.	कोकपदम्	भ म स भ न न न य	वाग्व०, **हंसपदम्**-छन्दोनु०
४७९३४९१.	गङ्गोदकम्	र र र र र र र र	वाग्व०
	मेघमाला	न न र र र र र र	ना०शा०, है०छ०अ०, जा०छ०वि०
४८४८३०१.	उत्कटपट्टिका	त ज र ज न स र र	वाग्व०
	महामदनसायक:	न भ ज भ ज भ ज र	छन्दोनु०
	विभ्रमगति:	म स ज स त त भ र	है०छ०अ०, र०म०
५९९३९१२.	शम्बरम्	न भ भ र न भ भ र	वाग्व०
८३६८५६७.	वेल्लितवेलम्	भ भ भ म स न न स	वाग्व०
	द्रुतलघुपदगति:	भ भ भ त न न न स	है०छ०अ०
	सम्भ्रान्ता	न य भ त न न न स	है०छ०अ०
८३८८६०८.	अतुलपुलकम्	न न न न न न न स	वाग्व०
१.	रामानन्द:	म म म म म म म म	वृ०मौ० ।
७१९०२३६.	दुर्मिलका	स स स स स स स स	वृ०मौ०, वा०भू०; **दुर्मिला**-पि०छ००सू०, वृ०मु०; **द्विमिला**-वाग्व; **सवैया**-वृ०मु० ।
१४३८०४७१.	किरीटम्	भ भ भ भ भ भ भ भ	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वाग्व०; **सुभद्रम्**-है०छ०अ०; **सुभद्रकम्**-क०द०; **सवैया**-वृ०मु०; **मेदुरदन्तं**-वाग्व०; **मेदुरदं**-वाग्व० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३६५५३६७.	तन्वी	भ त न स भ भ नय	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, वृ०स०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
११९८३७२६.	माधवी	ज ज ज ज ज ज ज ज	वृ०मौ०; **अनामयं**-वाग्व० ।-
१६७७७२१६.	तरलनयनम्	न न न न न न न न	वृ०मौ० ।
		पञ्चविंशाक्षर-छन्द	
	मत्तेभ:	म म म म म त य म ग	छन्दोनु०
२९७६६०३.	शरभूरिणी	र स ज ज भ र स य ग	वाग्व०
४७९३४९१.	ह्रीणहैयङ्गवीनम्	र र र र र र र र ग	वाग्व०
७२०२८१५.	नीपवनीयकम्	भ न न स भ स स स ग	वाग्व०
७५७६८०८.	कुमुदमाला	न त स भ य न त स ग	वाग्व०
८२८३९०४.	रसिकरसाला	न न स स भ त न स ग	वाग्व०
८३६२४८९.	विरहविरहस्यम्	म न न त य न न स ग	वाग्व०
८३८१३११.	भास्करम्	भ न ज य भ न न स ग	वाग्व०
९५९२४६७.	चित्तचिन्तामणि:	र र र न ज त त त ग	वाग्व०
११३८५९७३.	व्याकोशकोशलम्	त य भ भ स स स ज ग	वाग्व०
	हंसलय:	न न न न स भ भ भ ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
१४३८०४७१.	शिविका	भ भ भ भ भ भ भ भ ग	वाग्व०
१५४४५६९१.	भाविनीविलसितम्	र न र न र न र न ग	वाग्व०
१६१७५१६८.	विशेषकवलितम्	न न म म ज ज ज न ग	वाग्व० **विशेषितं**-वाग्व०
	चपलम्	न ज ज य न न न न ग	है०छ०अ०
१६७७४७१७.	अभ्रभ्रमणम्	त न म स न न न न ग	वाग्व०
	हंसपदा	त य भ भ न न न न ग	क०द०, है०छ०अ०, र०म०
१६७७७२१६.	अलका	न न न न न न न न ग	वाग्व०, **अलिका**-वाग्व०
१९१७३९६२.	मल्लपल्लीप्रकाशम्	य य य य य य य य ल	वाग्व०
२३५२५०८४.	सौदामनदाम	स स स स न ज य स ल	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
१.	कामानन्दः	म म म भ म म म म म ग	वृ०मौ०।
१६७७६३८१.	क्रौञ्चपदा	भ म स भ न न न न न ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०; **क्रौञ्चपदी**-वृ०स०; **क्रोशपदा**-वाग्व०; **क्रौञ्चीपदा**-छ०वि०।
७१९०२३६.	मल्ली	स स स स स स स स ग	वृ०मौ०; **मुदिरम्**-वाग्व०।
३३५५४४३२.	मणिगुणम्	न न न न न न न न ल	वृ०मौ०।

षडविंशाक्षर-छन्द

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३३९९१६९.	तनुकिलकिञ्चितम्	म म म न ज न त य ग ग	वाग्व०
३९९४५७६.	विनयविलासः	न य न य न य न य ग ग	वाग्व०
९५११४९७.	विश्वविश्वासः	म य य य र र त त ग ग	वाग्व०
९५३४९६१.	अशोकानोकहम्	म भ न भ न र त त ग ग	वाग्व०
९५८७०६१.	आभासमानम्	य य य य त त त त ग ग	वाग्व०
९५८७०६५.	वीरविक्रान्तः	म न ज त त त त त ग ग	वाग्व०
१११८४८११.	विकुण्ठकण्ठः	र ज र ज र ज र ज ग ग	वाग्व०
११२०२८१६.	चारुगतिः	न न स म न ज र ज ग ग	वाग्व०
१५७९०३२१.	भसनशलाका	म भ स म न य त न ग ग	वाग्व०
१६७६७८७१.	उज्झितकदनम्	भ न ज ज ज न न न ग ग	वाग्व०
	मकरन्दः	न य न य न न न न ग ग	वाग्व०
	वनलतिका	न न न न न न न न ग ग	छन्दोनु०
१९१३२९९२.	कुहककुहरम्	न न म य न न म य ल ग	वाग्व०
१९२४८२८५.	सूरसूचकः	म स ज स स स य य ल ग	वाग्व०
१९८१५६१०.	विषाणाश्रितम्	य न र भ ज त स य ल ग	वाग्व०
२२३६९४२७.	विनिद्रसिन्धुरः	र र र र ज र ज र ल ग	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२२३८०१७७.	शकुन्तकुन्तल:	म र र न न र ज र ल ग	वाग्व०
२८१४२४२७.	काकलीकलकोकिल:	र स ज ज भ र स ज ल ग	वाग्व०
	सुधाकलश:	न ज भ ज ज ज भ ज ल ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
२९३३०९४३.	शृङ्खलवलयितं	भ न न भ म न न ज ल ग	वाग्व०
३२१७५७९२.	विरामवाटिका	न ज र स न ज र न ल ग	वाग्व०
३३५९२८२१.	कर्णाटकम्	त भ ज भ ज भ न न ल ग	वाग्व०
	आपीड:	भ न न स म न न न ल ग	है०छ०अ०
	वेगवती	न ज न स भ न न ल ग	है०छ०अ०
३८३४७९६८.	कुम्भकम्	न न र र र र र र ग ल	वाग्व०
५७५२१८८४.	वशंवद:	स स स स स स स स ल ल	वाग्व०
१.	गोविन्दानन्द:	म म म म म म म म ग ग	वृ०मौ०, **जीमूताधानम्**-वाग्व० ।
२३८५४८४९.	भुजङ्गविजृम्भितम्	म म त न न न र स ल ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, वृ०स०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
८३८८६०१.	अपवाह:	म न न न न न न स ग ग	वृ०मौ०, स०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०; **अपवाहक:**-पि०छ०सू०, छ०वि०, **अवबाधम्**-क०द० ।
१४३८०४७१.	मागधी	भ भ भ भ भ भ भ भ ग ग	वृ०मौ०; **प्रियजीवितम्**-वाग्व० ।
६७१०८८६४.	कमलदलम्	न यन न न न न न न ल ल	वृ०मौ० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
		प्रकीर्णक-छन्द	
२७.	मालावृत्त	म त त त न न य य य	स्व०छ०, क०द० **मालाचित्र**-है०छ०अ०
२७.	विकसितकुसुमम्	म भ न न न न न न स	छन्दोनु०, **मालावृत्तम्**-छन्दोनु०
२७.	मालावृत्तम्	म म त न भ म म भ म	छन्दोनु०
२७.	त्रिपदललितम्	न न न न भ न भ न स	छन्दोनु०
२८.	त्रिभङ्गी	न स भ न त ज त स य	छन्दोनु०
२९.	प्रमोदमहोदयः	म त य त न न न र स ल ग	है०छ०अ०
२९.	कला	न न न न न न न न न ल ग	छन्दोनु०
२९.	मणिकिरण	न न भ न ज न न न न ल ग	छन्दोनु०
३०.	नृत्तललितम्	भ ज स न भ ज स न भ य	है०छ०अ०, **वृत्तललितम्**-छन्दोनु०
३१.	लहरिका	न न न न न न न न न न ग	छन्दोनु०
३१.	विशालं	३१ वर्ण	वृ०मु०
३१.	खञ्जविशालं	३१ वर्ण	वृ०मु०
३२.	उपविशालं	३२ वर्ण	वृ०मु०
३२.	खञ्जोपविशालं	३२ वर्ण	वृ०मु०
३३.	चक्र	भ न न भ न न भ न न भ य	छन्दोनु०
३४.	चित्रलय	भ न न भ न न भ न न भ न ग	छन्दोनु०
३४.	अतिच्छन्दः	म म त न न न न स ज ज ग	र०म०, **मेघदण्डक**-जा०छ०वि०
३८.	ललितलता	न न न न न न न न न न न न ल ग	है०छ०अ०, छन्दोनु०
३८.	पिपीलिकादण्डकः	म म त न न न न न न न र स ल ग	जा०छ०वि०
४२.	पणवदण्डकः	म म त न न न न न न न न ज भ र	जा०छ०वि०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
४६.	करभदण्डक:	म म त न न न न न न न न न स ज ज ग	जा०छ०वि०
५०.	ललितदण्डक:	म न त न न न न न न न न न न न र स ल ग	जा०छ०वि०
	वारी	४६ मात्रा	वृ०मु०
	उपवारी	४२ मात्रा	वृ०मु०
	पिपीडिका	भ म त न न न न न ज भ र	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०; **जलद-दण्डक**-छ०वि० ।
	पिपीडिकाकरभ:	म म त न न न न न ल-५, ज भ र	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ० ।
	पिपीडिकापणव:	म म त न न न न न ल-१०, ज भ र	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ० ।
	पिपीडिकामाला	म म त न न न न न ल-१५, ज भ र	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ० ।
	द्वितीयत्रिभङ्गी	ल-२०, भ ग ग स ग ग ल ल ग ग	वृ०मौ०, वृ०मु० ।
	शालूर:	ग ग ल-२४, स	वृ०मौ०, वृ०मु० ।

दण्डक-छन्द

३३.	अर्णव:	[न न र-९]	स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, **अर्ण-**जा०छ०वि०
३६.	व्याल:	[न न र-१०]	स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, **प्लव:-**जा०छ०वि०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३९.	जीमूतः	[न न र-११]	स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, **व्यालः**-जा०छ०वि०
४२.	लीलाकरः	[न न र-१२]	स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, **जीमूत**-जा०छ०वि०
४५.	उद्दामः	[न न र-१३]	स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, **लीलाकरः**-जा०छ०वि०
४८.	शङ्खः	[न न र-१४]	स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, जा०छ०वि०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, **उद्यामः**-जा०छ०वि०
५१.	विश्ववाट्	[न न र-१५]	वाग्व०, **समुद्रः**-क०द०, है०छ०अ०, **अर्कः**-वृ०मु०; **आरामः**-वृ०र०ना०; **माला**-स्व०छ०; **सिंहः**-जा०छ०वि०
५४.	कालदण्डः	[न न र-१६]	वाग्व०; **संग्रामः**-वृ०र०ना०, वाग्व०; **भुजंगः**-क०द०; है०छ०अ०; **चन्द्रेशः**-वृ०मु०; **माला**-स्व०छ०; **समुद्रः**-जा०छ०वि०
५७.	पौण्ड्रकः	[न न र-१७]	वाग्व०; **सुरामः**-वृ०र०ना०; **भोगीन्द्रः**-वृ०मु० **मालाः**-स्व०छ०; **भुजङ्गः**-जा०छ०वि०
६०.	उदारपादः	[न न र-१८]	वाग्व०; **वैकुण्ठः**-वृ०र०ना०; **पीयूष**-वृ०मु०; **माला**-स्व०छ०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
६३.	सोत्कण्ठः	[न न र-१९]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **वाराहः**-वृ०मु०; **माला**-स्व०छ०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
६६.	सारः	[न न र-२०]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **वातः**-वृ०मु०; **माला**-स्व०छ०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
६९.	कासारः	[न न र-२१]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **माला**-स्व०छ०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
७२.	विस्तारः	[न न र-२२]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ० **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
७५.	संहारः	[न न र-२३]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
७८.	नीहारः	[न न र-२४]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
८१.	मन्दारः	[न न र-२५]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
८४.	केदारः	[न न र-२६]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
८७.	साधारः	[न न र-२७]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
९०.	सत्कारः	[न न र-२८]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
९३.	संस्कारः	[न न र-२९]	वृ०र०ना०, वाग्व०; **माला**-स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०; **प्रचितकः**-जा०छ०वि०
९६.	विमर्षः	[न न र-३०]	वाग्व०; **माकन्दः**-वृ०र०ना०; **माला**-स्व०छ०, **महाचण्डवृष्टिः**-वृ०मु०, **प्रचितकः**-छ०वि०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
९९.	शेषशाली	[न न र-३१]	वाग्व०; **गोविन्द-** वृ०र०ना०; **माला-** स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः-** वृ०मु०; **प्रचितकः-** जा०छ०वि०
१०२.	सानन्दः	[न न र-३२]	बृ०सं०, वृ०र०ना०; **माला-**स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः-**वृ०मु०; **प्रचितकः-**जा०छ०वि०
१०५.	सन्दोहः	[न न र-३३]	वृ०र०ना०; **माला-** स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः-** वृ०मु०; **प्रचितकः-** जा०छ०वि०
१०८.	नन्दः	[न न र-३४]	वृ०र०ना०; **माला-** स्व०छ०; **महाचण्डवृष्टिः-** वृ०मु०; **प्रचितकः-** जा०छ०वि०
२८.	पन्नगः	[न ग र-८]	है०छ०अ०, क०द०
३१.	दम्भोलिः	[न ग र-९]	है०छ०अ०, वृ०मु०
३४.	हेलावली	[न ग र-१०]	है०छ०अ०, वृ०मु०
३७.	मालती	[न ग र-११]	है०छ०अ०, वृ०मु०
४०.	केलिः	[न ग र-१२]	है०छ०अ०, वृ०मु०
४३.	कङ्केल्लिः	[न ग र-१३]	है०छ०अ०, वृ०मु०
४६.	लीलाविलासः	[न ग र-१४]	है०छ०अ०, वृ०मु०
२८.	शकायतनम्	[भ-९, ग]	वाग्व०
२९.	भुजगविलासः	[भ-९, ग ग]	स्व०छ०, है०छं०अ०, वृ०मु०
२८.	लावण्यलीला-प्लुतम्	[न य-८, ल]	वाग्व०
२८.	आलानिकम्	[न न र य-६, ल]	वाग्व०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
२९.	स्मारमालाकुल:	[स, य-८, ल ग]	वाग्व०
३१.	आर्द्रस्तबक:	[न य न य न य न य न य ल]	वाग्व०
४८.	विदग्धसुभङ्गी	[त न त न त न भ भ त न त न त न भ भ]	वाग्व०
५७.	विशेषस्तबकम्	[न य न य न य न य भ स भ स भ स म भ स भ स]	वाग्व०
२९.	चण्डपाल:	[ल ५, र-८]	स्व०छ०; **चण्डकील:**-वृ०मु०; **चण्डकाल:**-है०छ०अ०
३५.	चण्डपाल:	[ल ५, र-१०]	स्व०छ०
३२.	सिंहविक्रान्त:	[ल ५, य-९]	स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०, वाग्व०
३०.	मेघमाला	[न न म म, य-६]	स्व०छ०, वृ०मु० [न न यथेष्ट मगण], वृ०मु०, [न म यथेच्छ यगण] है०छ०अ०
३६.	चण्डवेग:	[न०न०य-१०]	स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०मु०
३२.	सिंहक्रीड:	[य-१०, ग ग]	स्व०छ०, वाग्व०
३०.	कामबाण:	[त-१०]	स्व०छ०, है०छ०अ०; **दाम**-वृ०मु० [यथेच्छ त, ग २; स, ग २; ज, ग २; य, ग २] वृ०मु०
२९.	सिंहविक्रान्त:	[ल-५, य-८]	वृ०मु०
३६.	उद्दालक:	[म-१२]	वृ०मु०
४८.	सिंहविक्रीड:	[य-१६]	है०छ०अ०, वृ०मु०; **सिंहविक्रान्त:**-वृ०र०ना०
३६.	वितानम्	[ज-१२]	वृ०मु०
३६.	वर्तुल:	[भ-१२]	वृ०मु०

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
३६.	अचल:	[न-१२]	वृ०मु०
२८.	वर्णक:	[न न भ-७, ग,]	बृ०सं०
३५.	समुद्र:	[न न र ज र ज र ज र ज र ल ग]	बृ०सं०
	उत्कलिका	[न न, पंचमात्रिकगण यथेष्ट]	है०छ०अ०
३०.	बाललीलातुर:	[१० गण ऐच्छिक]	वाग्व०
३२.	मनोहरणकवित्त	[१० गण ऐच्छिक, ल-२]	वाग्व०
८९.	कुसुमितकाय:	[म म त न त य ज त र भ स स भ स भ स भ स भ त य स भ त य स भ न न ग ग]	वाग्व०
	मकरालय:	[न ग र, सप्ताक्षरगण यथेच्छ]	वृ०मु०
	सिंह:	[ल० ३, यथेच्छ गण]	छन्दोनु०
	अब्द:	[ल० ४, यथेच्छ गण]	छन्दोनु०
	चण्ड:	[ल० ५, यथेच्छ गण]	छन्दोनु०
	वात:	[ल० ७, यथेच्छ गण]	छन्दोनु०
९९९.	महादण्डक:	[न न, र-३३३]	समयसुन्दरकृत-विज्ञप्तिपत्री
	चण्डवृष्टिप्रपात:	न न र-७	वृ०मौ०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०; **मेघमाला**-ना०शा०; **चण्डवृष्टि:**-स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०मु०; **चण्डवृष्टिप्रयात:**- पि०छ०सू०, क०द०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
	प्रचितक:	न न र-८	वृ०मौ०, पि०छ०सू० ।

प्रस्तार-संख्या	छन्दोनाम	लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	अर्णः	न न र-८	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०; **अर्णवः**-छ०वि० ।
	सर्वतोभद्रः	न न य य य य य य य	वृ०मौ०, **प्रचितकः**-क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु० ।
	अशोककुसुममञ्जरी	र ज र ज र ज र ज र ल	वृ०मौ०, **अशोकपुष्प-मञ्जरी**-स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, छ०म०, वाग्व० **अशोकमञ्जरी**-वृ०मु०
	कुसुमस्तबकः	स स स स स स स स स	वृ०मौ०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व, **कुसुमस्तर**-स्व०छ०; **कुसुमस्तरण**-है०छ०अ० ।
	मतङ्गमातङ्गः	र र र र र र र र र	वृ०मौ०, है०छ०अ०; **मत्तमातङ्गलीलाकरः**-स्व०छ०, छ०म०, वाग्व; **मत्तमातङ्गखेलितः**-वृ०मु० ।
	अनङ्गशेखरः	ज र ज र ज र ज र ज ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व० ।

अन्य वर्णवृत्त

वर्ण-संख्या	वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
		अर्द्धसमवृत्त		
(३,८)	कामिनी	[र]	[ज र ल ग]	है०छ०अ०
(३,१२)	शिखी	[र]	[ज र ज र]	है०छ०अ०
(३,१६)	नितम्बिनी	[र]	[ज र ज र ज ग]	है०छ०अ०
(३,२०)	वारुणी	[र]	[ज र ज र ज र ल ग]	है०छ०अ०
(३,२४)	वतंसिनी	[र]	[ज र ज र ज र ज र]	है०छ०अ०
(५,११)	इला	[स ल ग]	[स स स ल ग]	है०छ०अ०
(५,२४)	मृगाङ्कमुखी	[स ल ग]	[स स स स स स स स]	है०छ०अ०
(८,३)	वानरी	[ज र ल ग]	[र]	है०छ०अ०
(८,८)	प्रवर्तकम्	[र ज ग ग]	[ज र ल ग]	छन्दोनु०
(९,१०)	वैसारी	[त ज र]	[म स ज ग]	वाग्व०
(१०,१०)	अतैलम्	[ज त त ग]	[त त त ग]	वाग्व०; **अर्त्तिलम्**-वाग्व०
(१०,१३)	शुकावली	[त ज र ग]	[म न ज र ग]	वाग्व०
(१०,१२)	समुद्रकान्ता	[त ज र ग]	[म स स य]	वाग्व०
(१०,१४)	विलासवापी	[त ज र ग]	[स भ र ज ग ग]	वाग्व०
(१०,१०)	विश्वप्रमा	[त त त ग]	[ज त त ग]	वाग्व०
(१०,१२)	सम्पातशीला	[त म र ग]	[स न म य]	वाग्व०
(१०,१०)	घटिका	[त स ज ग]	[स स ज ग]	वाग्व०
(१०,१३)	जारिणी	[न त त ग]	[र र न त ग]	वाग्व०
(१०,९)	वासववन्दिता	[म स ज ग]	[त ज र]	वाग्व०
(१०,११)	करधा	[म स ज ग]	[न न र ल ग]	वाग्व०
(१०,११)	सुधा	[म स ज ग]	[स भ र ल ग]	वाग्व०
(१०,१०)	प्रभासिता	[म स ज ग]	[स स ज ग]	वाग्व०
(१०,१२)	मकरावली	[म स स ग]	[स भ भ स]	है०छ०अ०
(१०,१०)	आलोलघटिका	[स स ज ग]	[त स ज ग]	वाग्व०
(१०,१२)	अरून्तुदः	[स स ज ग]	[न ज ज र]	वाग्व०
(१०,१०)	प्रभासिता	[स स ज ग]	[म स ज ग]	वाग्व०

वर्ण-संख्या	वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
(१०,१२)	नवनीलता	[स स ज ग]	[स भ ज र]	वाग्व०; **अवनीलता**-वाग्व०; **अवलीलता**-वाग्व०
(११,११)	विपरीताख्या-निकी	[ज त ज ग ग]	[त त ज ग ग]	पि०छ०सू०, स्व०छ०, है०छ०अ०,वृ०र०, वाग्व०; ज०छ०, छन्दोनु०, छ०वि०
(११,११)	आख्यानिकी	[त त ज ग ग]	[ज त ज ग ग]	पि०छ०सू०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०; वाग्व० छन्दोनु० **आख्यानिका**-ज०छ०, र०म०, जा०छ०वि०
(११,१२)	किन्नटक:	[त ज ज ल ग]	[स स स स]	वाग्व०
(११,११)	समयवती	[त न त ल ग]	[स म न ल ग]	वाग्व०
(११,१२)	शिशिराशिखा	[न न र ल ग]	[न ज ज र]	वाग्व०
(११,१०)	वैयाली	[न न र ल ग]	[म स ज ग]	वाग्व०
(११,११)	पाटलिका	[न य न ग ग]	[भ भ भ ग ग]	वाग्व०
(११,१२)	साचीकृतवदना	[न य भ ग ग]	[त न भ स]	वाग्व०
(११,११)	औपगवम्	[न र र ग ग]	[भ र र ल ग]	व०
(११,१२)	उपाढ्यम्	[न स ज ग ग]	[भ भ र य]	वाग्व०
(११,११)	करभोद्धता	[भ त र ल ग]	[स न र ल ग]	वाग्व०
(११,१३)	विलसितलीला	[भ भ त ल ग]	[न ज न स ग]	है०छ०अ०, छन्दोनु०

वर्ण-संख्या	वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
(११,१२)	द्रुतमध्या	[भ भ भ ग ग]	[न ज ज य]	पि०छ०सू०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, ज०छ०, वाग्व०, र०म०, छन्दोनु०, जा०छ०वि०; **चलमध्या**-स्व०छ०
(११,११)	कोरकिता	[भ भ भ ग ग]	[न य न ग ग]	वाग्व०
(११,१२)	कमलाकरा	[भ भ भ ग ग]	[भ न ज य]	वाग्व०
(११,१०)	वर्गवती	[भ भ भ ग ग]	[स स स ग]	वाग्व०
(११,११)	अवहित्रा	[भ भ भ ग ग]	[स स स ल ग]	वाग्ब०
(११,१०)	केतुः	[भ र न ग ग]	[स ज स ग]	वाग्व०
(११,११)	औपगवीतम्	[भ र र ल ग]	[न र र ग ग]	वाग्व०
(११,१३)	बद्धास्यम्	[म भ न ल ग]	[स स न न ग]	वाग्व०
(११,१०)	युद्धविराट्	[म स ज ग ग]	[त ज र ग]	वाग्व०
(११,१२)	असुराढ्या	[म स ज ग ग]	[न न र य]	वाग्व०
(११,११)	वर्णिनी	[र न भ ग ग]	[र न र ल ग]	वाग्व०
(११,१२)	किलकिता	[र न र ल ग]	[न भ ज र]	वाग्व०
(११,११)	सारिका	[र न र ल ग]	[र न भ ग ग]	वाग्व०
(११,१०)	ललिता	[र स स ल ग]	[स ज ज ग]	वृ०र०ना०
(११,११)	शालभञ्जिका	[स न र ल ग]	[भ त र ल ग]	वाग्व०
(११,१२)	विमानिनि	[स भ र ल ग]	[म न ज र]	वाग्व०
(११,१०)	असुधा	[स भ र ल ग]	[म स ज ग]	वाग्व०
(११,१०)	सुन्दरी	[स भ र ल ग]	[स स ज ग]	वाग्व०; **सुरमालिका**-वाग्व०; **वियोगिनी**-वाग्व०
(११,११)	अयवती	[स म न ल ग]	[त न त ल ग]	वाग्व०

वर्ण-संख्या	वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
(११,१२)	मालभारिणी	[स स ज ग ग]	[स भ र य]	है०छ०अ०; र०म० **नितम्बिनी**-है०छ० अ०टी० **उपोद्गता**-वाग्व०; **वसन्तमालिका**-वाग्व०; **परिश्रुता**-वाग्व०; **सुबोधिता**-छन्दोनु०; **प्रिया**-छन्दोनु०
(११,१२)	हरिलुप्ता	[स स स ल ग]	[स भ भ र]	वाग्व०
(११,१२)	शङ्खनिधिः	[ज त ज र]	[त त ज र]	छन्दोनु०; **सुनन्दिनी**-छन्दोनु०
(१२,१२)	विपरीतभामा	[ज भ स य]	[त भ स य]	छन्दोनु०
(१२,३)	शिखण्डि	[ज र ज र]	[र]	है०छ०अ०
(१२,१३)	पद्मावती	[त भ ज य]	[स ज स स ग]	वाग्व०
(१२,१२)	सरसीकम्	[त भ ज य]	[स भ ज य]	वाग्व०
(१२,१२)	पद्मनिधिः	[त त ज र]	[ज त ज र]	छन्दोनु०; **नन्दिनी**-छन्दोनु०
(१२,११)	अवाचीकृत-वदना	[त न भ स]	[न य भ ग ग]	वाग्व०
(१२,१२)	भामा	[त भ स य]	[ज भ स य]	छन्दोनु०
(१२,१२)	सिंहप्लुतम्	[त भ स य]	[ज भ स य]	छन्दोनु०; **(श्रुति-स्मृति-उपजाति)**
(१२,११)	ईहा	[न ज ज य]	[भ भ भ ग ग]	वाग्व०
(१२,११)	अपरवक्त्रम्	[न ज ज र]	[न न र ल ग]	वाग्व०; **मृदुमालती**-वाग्व०
(१२,१०)	अनूपकम्	[न ज ज र]	[स स ज ग]	वाग्व०
(१२,१३)	मञ्जुसौरभम्	[न ज ज र]	[स ज य ज ग]	वृ०र०ना०
(१२,७)	क्षान्तिः	[न न न य]	[म म ग]	छन्दोनु०; **चूडा**-छन्दोनु०
(१२,१२)	कौमुदी	[न न भ भ]	[न न र र]	वृ०र०ना०
(१२,११)	सुराढ्या	[न न र य]	[म स ज ग ग]	वाग्व०

वर्ण-संख्या	वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
(१२,१५)	शरावती	[न न र य]	[स भ न ज र]	वाग्व०
(१२,११)	किलकिती	[न भ ज र]	[र न र ल ग]	वाग्व०
(१२,११)	अकुसमचरम्	[भ न ज य]	[भ भ भ ग ग]	वाग्व०
(१२,११)	आमलकी	[भ भ भ भ]	[भ भ भ ग ग]	छन्दोनु०; **चुक्षा**-छन्दोनु०
(१२,११)	उपाढ्यम्	[भ भ र य]	[न स ज ग ग]	वाग्व०
(१२,१२)	उलपोहा	[भ भ र य]	[स भ र ज]	वाग्व०
(१२,११)	विमानिनी	[भ न ज र]	[स भ र ल ग]	वाग्व०
(१२,१६)	अहीनताली	[म न ज र]	[स भ स ज र ग]	वाग्व०
(१२,१३)	वियद्वाणी	[म स ज म]	[स भ र य ग]	वाग्व०
(१२,१०)	कान्ता	[म स स य]	[त ज र ग]	वाग्व०
(१२,१३)	मृगीयवानी	[र ज र ज]	[ज र ज र ग]	वृ०र०ना०, ज०छ०
(१२,१३)	चमूरुभीरु:	[र न ज र]	[स न ज र ग]	वाग्व०
(१२,१०)	पातशीला	[स न म य]	[त म र ग]	वाग्व०
(१२,१२)	उपसरसीकम्	[स भ ज य]	[त भ ज य]	वाग्व०
(१२,१०)	करीरीता	[स भ ज र]	[स स ज ग]	वाग्व०
(१२,११)	लुप्ता	[स भ भ र]	[स स स ल ग]	वाग्व०
(१२,१२)	अर्भकपंक्ति:	[स भ र ज]	[भ भ र य]	वाग्व०
(१२,१३)	अप्रमाथिनी	[स भ र य]	[न ज ज र ग]	वाग्व०
(१२,११)	प्रमालिका	[स भ र य]	[स स ज ग ग]	वाग्व०; **उपोद्गता**-वाग्व०, **सौरभसंचितम्**-वाग्व०
(१२,११)	नटक:	[स स स स]	[त ज ज ल ग]	वाग्व०
(१३,१३)	प्रकीर्णकम्	[ज भ स ज ग]	[त भ स ज ग]	छन्दोनु०; **(रुचि-रुचिर-उपजाति)**
(१३,१३)	निर्मधुवारि	[त भ र स ल]	[स ज स ज ग]	वाग्व०
(१३,१४)	लास्यलीला-लय:	[त य र र ग]	[भ स त त ग ग]	वाग्व०
(१३,१२)	अञ्चिताग्रा	[न ज ज र ग]	[न न र य]	वाग्व०
(१३,१२)	प्रमाथिनी	[न ज ज र ग]	[स भ र य]	वाग्व०
(१३,१४)	आलेपनम्	[न त त त ग]	[न भ य य ल ग]	वाग्व०
(१३,१६)	परप्रीणिता	[न न त त ग]	[न न स त त ग]	वाग्व०

वर्ण-संख्या	वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
(१३,१३)	विमुखी	[न न भ स ल]	[न न स स ग]	वाग्व०
(१३,१५)	प्रमोद-परिणीता	[न न र ज ग]	[न ज ज भ य]	वाग्व०
(१३,१३)	सुरहिता	[न न स स ग]	[त न न न ग]	वाग्व०
(१३,१३)	रुचिमुखी	[न न स स ग]	[न न भ स ल]	वाग्व०
(१३,१३)	शिशुमुखी	[न भ ज ज ग]	[न भ स ज ग]	वाग्व०
(१३,१३)	अनिरया	[न भ स ज ग]	[न भ ज ज ग]	वाग्व०
(१३,१४)	प्रतिविनीता	[न य ज र ग]	[स भ र न ग ग]	वाग्व०
(१३,१३)	अल्परूतम्	[भ न ज ज ग]	[भ न य न ल]	वाग्व०
(१३,१३)	अर्धरुतम्	[भ न य न ल]	[भ न ज ज ग]	वाग्व०
(१३,१३)	अनङ्गपदम्	[भ भ भ भ ग]	[स स स स ग]	वाग्व०
(१३,१३)	धीरावर्त्तः	[म त य स ग]	[म भ स म ग]	वाग्व०
(१३, १३)	धीरावर्त्तः	[म भ स म ग]	[म त य स ग]	वाग्व०
(१३,१०)	किंशुकावली	[म न ज र ग]	[त ज र ग]	वाग्व०
(१३,१३)	अलिपदम्	[र र न त ग]	[न त त त ग]	वाग्व०
(१३,१३)	मधुवारि	[स ज स ज ग]	[त भ र स ल]	वाग्व०
(१३,१३)	कलनावती	[स ज स ज ग]	[स ज स स ग]	वाग्व०
(१३,१२)	पद्मावती	[स ज स स ग]	[त भ ज य]	वाग्व०
(१३,१३)	कलना	[स ज स स ग]	[स ज स ज ग]	वाग्व०
(१३,१२)	चमूरुः	[स न ज र ग]	[र न ज र]	वाग्व०
(१३,१२)	वियद्वाणी	[स भ र य ग]	[म स ज म]	वाग्व०
(१३,१४)	मन्दाक्रान्ता	[स स ज र ग]	[म स ज र ग ग]	वाग्व०
(१३,११)	कामाक्षी	[स स न न ग]	[म भ न ल ग]	वाग्व०
(१३,१३)	भुजङ्गभृता	[स स स स ग]	[भ भ भ भ ग]	वाग्व०
(१४,१५)	अवरोधवनिता	[न भ भ र ल ग]	[स स ज भ य]	वाग्व०
(१४,१३)	अनालेपनम्	[न भ य य ल ग]	[न त त त ग]	वाग्व०
(१४,१३)	लास्यलीला	[भ स त त ग ग]	[त य र र ग]	वाग्व०
(१४,१३)	सम्मदाक्रान्ता	[म स ज र ग ग]	[स स ज र ग]	वाग्व०
(१४,१८)	मार्दङ्गी	[स न स न ग ग]	[म न ज न ज य]	वाग्व०; **मातङ्गी**-वाग्व०
(१४,१०)	अकोशकृष्टा	[स भ र ज ग ग]	[त ज र ग]	वाग्व०
(१४,१३)	अतिप्रति-			

वर्ण-संख्या	वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
	विनीता	[स भ र न ग ग]	[न य ज र ग]	वाग्व०
(१५,१४)	उरूगी	[न न न न स]	[न न भ न ल ग]	छन्दोनु०
(१५,१५)	देवगीति	[र ज र ज र]	[ज र ज र य]	जा०छ०वि०
(१५,१३)	प्रमोदपदम्	[न ज ज भ य]	[न न र ज ग]	वाग्व०
(१५,१६)	आसववासिता	[न भ ज र य]	[स भ र ज स ग]	वाग्व०
(१५,१२)	बृहच्छरावती	[स भ न ज र]	[न न र य]	वाग्व०
(१५,१४)	अवरोधवनिता	[स स ज भ य]	[न भ भ र ल ग]	वाग्व०
(१६,३)	सारसी	[ज र ज र ज ग]	[र]	है०छ०अ०
(१६,१६)	वासिनी	[त ज भ ज ज ग]	[न ज भ ज ज ग]	वाग्व०
(१६,१६)	वासववासिनी	[न ज भ ज ज ग]	[त ज भ ज ज ग]	वाग्व०
(१६,१३)	अपरप्रीणिता	[न न स त त ग]	[न न त त ग]	वाग्व०
(१६,१५)	अनासव-वासिता	[स भ र ज स ग]	[न भ ज र य]	वाग्व०
(१६,१२)	हीनताली	[स भ स ज र ग]	[म न ज र]	वाग्व०
(१७,१८)	मानिनी	[भ र न ज न ल ग]	[न ज भ स न स]	है०छ०अ०
(१७,१८)	मानिनी	[भ र न भ र ल ग]	[न ज भ स न स]	छन्दोनु०
(१८,१४)	मार्दङ्गी	[म न ज न न य]	[स न स न ग ग]	छन्दोनु०
(२०,३)	अपरा	[ज र ज र ज र ल ग]	[र]	है०छ०अ०
(२४,३)	हंसी	[ज र ज र ज र ज र]	[र]	है०छ०अ०
(२९,३१)	शिखा	[न न न न न न न न न ल ग]	[न न न न न न न न न न ग]	पि०छ०सू०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, जा०छ०वि०
(३१,२९)	खञ्जा	[न न न न न न न न न न ग]	[न न न न न न न न न ल ग]	पि०छ०सू०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०, ज०छ०, छन्दोनु०, जा०छ०वि०

वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
पुष्पिताग्रा	१, ३ न न र य	२, ४ न ज ज र ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०; छ०वि०।
उपचित्रम्	१, ३ स स स ल ग	२, ४ भ भ भ ग	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, **उपचित्रा**-वाग्व०; **उपचित्रकम्**-पि०छ०सू०, स्व०छ०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०।
वेगवती	१, ३ स स स ग	२, ४ भ भ भ ग ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०।
हरिणप्लुता	१, ३ स स स ल ग	२, ४ न भ भ र	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वृ०मु०, वाग्व०, ज०छ०, छ०वि०; **हरिणोप्लुता**-छन्दोनु०, र०म०; **हरिणपदम्**-स्व०छ०, **हरिणोद्धता**-क०द०।

वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भ ग्रन्थ सङ्केत
अपरवक्त्रम्	१, ३ न न र ल ग	२, ४ न ज ज र	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, बृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।
सुन्दरी	१, ३ स स ज ग	२, ४ स भ र ल ग	वृ०मौ०, छ०म०, वाग्व०; **प्रबोधिता**-है०छ०अ०; **विबोधिता**-छन्दोनु०; **सुरमालिका**-वाग्व०; **वियोगिनी**-वाग्व० ।
भद्रविराट्	१, ३ त ज र ग	२, ४ म स ज ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०; **भद्रविराटिका**-स्व०छ० ।
केतुमती	१, ३ स ज स ग	२, ४ भ र न ग ग	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।

वृत्तनाम	विषमचरणों का लक्षण	समचरणों का लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ सङ्केत
वाङ्मती	१, ३ र ज र ज	२, ४ ज र ज र ग	वृ०मौ०; **यवमती**-पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, ज०छ०; **अमरावती**-वाग्व; **यमवती**-वाग्व० र०म०, छ०वि०, **यवध्वनि**-छन्दोनु०, र० म० के अनुसार 'र,ज,र,ज,ग,' 'ज,र,ज,र,ग,' लक्षण हैं।
षट्पदावली	१, ३ ज र ज र	२, ४ र ज र ज ग	वृ०मौ०, स्व०छ०, है०छ०अ०, वृ०र०ना०।

ध्यातव्य–१,३ अर्थात् प्रथम एवं तृतीय चरण का लक्षण।
२,४ अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ चरण का लक्षण।

विषमवृत्त*

उद्गता	[१. स ज स ल ३. भ न भ ग	२. न स ज ग ४. स ज स ग]	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, बृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०; **उद्गतः**- र०म० ।
उद्गताभेदः	[१. भ ज स ल ३. म न ज ल ग	२. न स ज ग ४. स ज स ग]	वृ०मौ०, छ०म०, छ०वि० ।
सौरभम्	[१. भ ज स ल ३. र न भ ग	२. न स ज ग ४. स ज स ज ग]	वृ०मौ०, वाग्व०; **सौरभकम्**- पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, ज०छ०, छन्दोनु०, **सौरभकः**- र०म०, **सौरभक्तं**-छ०वि० ।
ललितम्	[१. स ज स ल ३. न न स स	२. न स ज ग ४. स ज स ज ग]	वृ०मौ०, पि०छ०सू०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, छ०वि०; **ललितः**- र०म० ।
भावः	[१. म म ३. म म	२. म म ४. भ भ भ ग]	वृ०मौ० ।
वक्त्रम्	[लक्षण अनुष्टुप के समान हैं; किन्तु द्वितीय और चतुर्थ चरण में 'म ग य ग' होता है ।]		वृ०मौ०, पि०छ०सू०, ना०शा०, वृ०सं०, स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दो०, र०म०, छ०वि० ।
पथ्यावक्त्रम्	[लक्षण अनुष्टुप के समान हैं; किन्तु द्वितीय और चतुर्थ का पाँचवा, छठा और सातवा अक्षर 'जगण' होता है ।]		वृ०मौ०, पि०छ०सू०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०; **पथ्या**- स्व०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि० ।

* १. प्रथम चरण का लक्षण, २. द्वितीय चरण का लक्षण, ३. तृतीय चरण का लाक्षण, ४. चतुर्थ चरण का लक्षण

वैतालीयछन्द*

वैतालीयम्	१, ३ (१४ मात्रा-कला ६, र ल ग) २, ४ (१६ मात्रा-कला-८, र ल ग)	वृ०मौ०, पि०छ०सू० वृ०सं०, क०द०, वृ०स०, है०छ०अ०, वृ०र०, छ०म०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०।
औपच्छन्दस्कम्	१, ३ (१६ मात्रा-कला-६, र ल ग) २, ४ (१८ मात्रा-कला-८, र य)	वृ०मौ०, पि०छ० सू०, बृ०सं०, क०द०, वृ०स०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०
आपातलिका	१, ३ (१४ मात्रा-कला-६, भ ग ग) २, ४ (१६ मात्रा-कला-८, भ ग ग)	वृ०मौ०, पि०छ० सू०, क०द०, वृ०स०, है०छ० अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०।
नलिनम्	(१, ४ मात्रा-कला-६, भ ग ग)	वृ०मौ०।
अपरं नलिनम्	(१६ मात्रा-कला८, भ ग ग)	वृ०मौ०।
दक्षिणान्तिका वैतालीयम्	(१४ मात्रा-ल ग, कला-३, र ल ग)	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, छ०वि०।
उत्तरान्तिका वैतालीयम्	(१६ मात्रा-कला ८, र ल ग)	वृ०मौ०, वृ०र०।
प्राच्यवृत्तिः	१, ३ (१४ मात्रा-कला-६, र ल ग) २, ४ (१६ मात्रा-कला ३ ग, कला-३	वृ०मौ०, पि०छ० सू०, क०द०,

	र ल ग)	हैं०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, छ०वि०
उदीच्यवृत्तिः	१, ३ (१४ मात्रा-ल ग, कला-३, र ल ग) २, ४ (१६ मात्रा-८, र ल ग)	वृ०मौ०, पि०छ० सू०, क०द०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म० ।
प्रवृत्तकम्	१, ३ (१४ मात्रा-ल ग, कला-३, र ल ग) २, ४ (१६ मात्रा-कला ३, ग कला-३, र ल ग)	वृ०मौ०, पि०छ० सू०, क०छ०, हैं०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, **प्रसक्तम्**-छ०वि०
अपरान्तिका	(१६ मात्रा-कला-३, ग कला-३, र ल ग)	वृ०मौ०, पि०छ० सू०, क०द०, हैं०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छ०वि०; **अपरान्तिकम्**- छन्दोनु०।
चारुहासिनी	(१४ मात्रा-ल ग कला-३, र ल ग)	वृ०मौ०, पि०छ० सू०, क०द०, हैं०छ०अ०, वृ०र०, वाग्व०, ज०छ०, छन्दोनु० ।

---

* १, ३ अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण का लक्षण।
२, ४ अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ चरण का लक्षण।

षष्ठ परिशेष

प्रमुख मात्रा-छन्दों के स्वरूप, नामभेद एवं लक्षणग्रन्थ

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
गाथा	(१२, १८, १२, १५ : ड-७. ग, इसमें छठा 'ड' जगण होता है या चार लघु होते हैं। इसके विषम गणों में अर्थात् १, ३, ५, ७, 'ड' में जगण निषिद्ध है चतुर्थ चरण में छठा 'ड' केवल एक लघु होता है)	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०, गा०ल०। **आर्या**—है०छ०अ०, वृ०र०ना०, वा०व०, ज०छ०, छन्दोनु० र०म०, छ०वि०।
विगाथा	१२, १५, १२, १८	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०, गा०ल० **"उदगीति"** स्व०छ०, क०द०, है० छ०अ०, वृ०र०ना०, वा०व०, ज०छ०, छन्दोनु०, गा०ल०।
गाथिका	१२, १५, १२, १५	वृ०मु० **गाहू**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना० **"गाह"**—गा०ल० **उपगीति**—स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, है०छन्दोनु०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वा०व०, ज०छ०, छन्दोनु०, गा०ल०
उद्‌गाथा	१२, १८, १२, १८	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०, गा०ल०; **गीति**—स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, है०छन्दोनु०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वा०व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०, गा०ल०, छ०वि०।

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
गाथिनी	१२, १८, १२, २०	वृ०मु०, वाग्व० **गाहिनी**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, गा०ल०, **ललिता-वल्गुगीति**—वृ०र०ना०।
सिंहिनी	१२, २०, १२, १८	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०, **ललितावल्गुगीति**—वृ०र०ना०।
स्कन्धकम्	१२, २०, १२, २०	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, प्रा०पै०, है० छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०, गा०ल०; **आर्यागीति**—वृ०र०ना०, वा० व०, ज०छ०, छन्दोनु०, र०म०।
द्विपथा	(१३, ११, १३, ११, प्रथम और तृतीय चरण में ट, ड, ढ और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में ट, द, ल, अर्द्धसम)	वृ०मु०, **दोहा**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वा०व०, **दोहक**—क०द०, **द्विपथ्या**—वा०व०, **द्विपथक**—वृ०स०, एवं स्व०छ० गा०ल०।
रसिका	११ षट्पदी ड, ड, ढ	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०व०, **रसिक**—वृ०मु०, **उत्कृष्टा**—वृ० र०ना०, **सुललित**—वा०व०, **सुललितमति**—वा०भू०।
रोला	२४ चतुष्पदी	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०., वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०।
गन्धानक	(१७, १८, १७, १८, अर्द्धसम)	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, **गन्धा**—वृ०र०ना०, वा०व०, वृ०र०ना०,

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
चतुष्पदा	(३० चतुष्पदी, षोडशपदी समग्र मात्रा ४८०, ड-७, ग०)	वृ०र०ना०; **चौपाया**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वा०व०, **चतुष्पदी**—वृ०मु० ।
धत्ता	३१ द्विपदी, ड-७, ढ.ढ. त्रिलघुक होता है ।	वृ०मौ०, क०द०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व० । क०द० के अनुसार षट्पदी है । लक्षण भिन्न-भिन्न है । स्व०छ० के अनुसार चतुष्पदी लक्षण
धत्तानन्द	३१, ट.ड.ड.ड.ठ.ड.ड.	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ० र०ना०, वा०व० ।
काव्यम्	(२४, चतुष्पदी, ट.ड.ड.ड.ट. तीसरा ड. जगण हो या चार लघु हों)	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, **वस्तुवदन**-क०द० ।
उल्लालम्	२८, चतुष्पदी, ड.ड.ड.ढ.ट.ड.ढ.	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, **कर्पूर**—है०छ०अ० ।
षट्पद	२४, २४, २४, २४, २८, २८ मिश्रित षट्पदी ट.ड.ड.ड.ड.ड.ण. हो चरण उल्लाल के अनुसार	वृ०मौ०, क०द०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०वा०, **वस्तुक**—गा०ल० ।
पद्धतिका	१६, चतुष्पदी, ड-४, चौथा ड. जगण होता है ।	क०द०, **पज्झटिका**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०, **पद्धटिका**—स्व०छ०, है०छ०अ०, गा०ल०।
अरिल्लम्	१६, चतुष्पदी, ड-४, इसमें जगण वर्जित है और चरण के अन्त में दो	वृ०मु०, वाग्व०; **अडिल्ला**—वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०,

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
	लघु होने चाहिए।	वृ०स०, प्रा०पै०, है०छ०अ०, **अरिल्ला**—वा०भू०, **अलिला**—वा० व०, **अलिल्लिह**—वृ० र०ना०।
पादाकुलकम्	(१६, चतुष्पदी, गणनियम रहित)	वृ०मौ०, स्व०छ०, क०द०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०, ज०छ०, छन्दोनु०, छ०वि० छ०अ० के अनुसार १२ मात्रा चतुष्पदी होती है।
चतुर्वचनम्	१६, १४, १६, १४, अर्द्धसम	वृ०मु०, **चौबोला**—वृ०मौ०, प्रा०पै०।
नवपदम्	१५, १२, १५, ११, १५ दोहा के चार चरण, नवपदी प्रथम चरण में ढ.ड.ड.ड. अन्तिम ड. जगण हो या चार लघु हों, द्वितीय चरण में ड.ड.ड. तीसरा ड. चार लघुरूप में हो, तृतीय और पञ्चम चरण में ढ.ड.ड.ड. अन्त में दो लघु आवश्यक है। चतुर्थ चरण में ड.ड.ढ और अन्तिम चार चरण दोहा लक्षणानुसार होते हैं।	क०द०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वाग्व०, **रड्डा**—वृ० मौ०, स्व०छ०, क०द०, वृ०स०, प्रा०पै०, छ०अ०, वृ० र०ना०, वा०व०।
कलभी	१३, ११, १३, ११, १३ दोहा	वृ०र०ना०, **करभी रड्डा**—वृ०मौ०, वृ०स०, प्रा०पै०;
मोदनिका	१४, ११, १४, ११, १४ दोहा	वृ०स०, **नन्दा रड्डा**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना०।
मोहिनी रड्डा	१९, ११, १९, ११, १९ दोहा	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना०।

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
चारुसेना रड्डा	१५, ११, १५, ११, १५ दोहा	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना०; **चारुनेत्रा**—वृ०स०।
भद्रा रड्डा	१५, १२, १५, १२, १५ दोहा	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना०।
राजसेना रड्डा	१५, १२, १५, ११, १५ दोहा	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना०।
तालंकिनी रड्डा	१६, १२, १६, ११, १६ दोहा	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०र०ना०; **राहुसेनिका**—वृ०स०।
पद्मावती	३२; चतुष्पदी; ड-८; ये 'ड' ऽऽ, ।।ऽ, ऽ।।, ।।।।, रूप में होने चाहिए। जगण का निषेध है।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०; **पद्मावतिका**—वा०व०।
कुण्डलिका	दोहा-काव्य-मिश्रित	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वा०व०, प्राकृत पिङ्गलानुसार दोहा-उल्लाला-मिश्रित।
गगनाङ्गणम्	२५ मात्रा, २० वर्ण, चतुष्पदी, ट.ड.ड.ड.ड.ग.	वृ०मौ०, वा०भू०, वा०व०; **गगनाङ्ग**—प्रा०पै०, वृ०मु०; **मदनान्तक**—वृ०र०ना०।
द्विपदी	२८; ट.ड.ड.ड.ड.ग.	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, स्व०छ० के अनुसार मात्रा द्विपदी एवं क०द०, है०छ०अ०, छन्दोनु०, गा०ल० के अनुसा मात्रा चतुष्पदी; **द्विदला**—वा०व०, भाण्डीरक्रीडनस्तोत्र की टीका में १२ मात्रा चतुष्पदी माना है।
झुल्लणा	२७, द्विपदी, गणनियम रहित	वृ०मौ०; **झुल्लन**—प्रा०पै०, वृ०मु०।

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
खञ्जा	४१; द्विपदी; ड-९ रगण, 'ड' चार लघ्वात्मक हों।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, **खञ्जिका**—वा०व०, **खञ्जक**—स्व०छ०, क०द०, है०छ०अ० के अनुसार २३ **मात्रा चतुष्पदी** है।
शिखा	विषम द्विपदी, प्रथम पद में २८ मात्रा, २७ वर्ण, ड-६, जगण; द्वितीय पद में ३२ मात्रा, ३१ वर्ण, ड-७, जगण; दोनों पदों में 'ड' चार लघुरूप में हों।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०।
माला	विषम द्विपदी, प्रथम पद में ४५ मात्रा, ४१ वर्ण, ड-९, रगण, गुरुद्वय; द्वितीय पद में गाथा छन्द का तृतीय और चतुर्थ चरण अर्थात् २७ मात्रा।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०।
चूलिका	१३, १६, १३, १६ अर्द्धसम	वृ०र०ना०; **चुलिआला**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वा०व०।
सौराष्ट्रा	११, १३, ११, १३ अर्द्धसम	वृ०र०ना०; **सोरठा**—वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वा०व०; **सौराष्ट्र**—वृ०मु०, वा०व०; **सौराष्ट्री**—वा०व०।
हाकली	१४, चतुष्पदी-प्रथम द्वितीय चरण में ११-११ वर्ण और तृतीय चतुर्थ चरण में १०-१० वर्ण सगण या भगण दो गण हों और नगण तथा लघु गुरु हैं।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वा०व०; **काहलि**—वृ०र०ना०।
मधुभार	८; चतुष्पदी; 'ड', जगण	वृ०मौ०, प्रा०पै०. वा०भू०, वृ०मु०; **मधुभारत**—वृ०र०ना०; **वसुकला**—वा०व०; तालवनचरित की टीका में '**कलगीत**'।

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
आभीर	११; चतुष्पदी; चरण के अन्त में जगण अपेक्षित है।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०; यमलार्जुन भञ्जनस्तोत्र की टीका में **'अनुकूला'**।
दण्डकला	३२; चतुष्पदी; 'ड' 'ड' 'ड' 'ड' 'ट' 'ड' 'ड' गुरु।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वृ०मु०; **दण्डकाहल**—वृ०र०ना०।
कामकला	३२, चतुष्पदी, यतिभेद—दण्डकला में १०, ८-१४ पर यति होती है और इसमें १६-१६ पर यति होती है।	वृ०मौ०।
रुचिरा	३०; द्विपदी; ड. ७, गुरु; जगण निषिद्ध है।	वृ०मौ०, वा०भू०, वा०व०।
दीपक	१०; चतुष्पदी; 'ड' लघु २, जगण।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०र०ना०, वृ०मु०, वा०व०।
सिंहविलोकित	१६; चतुष्पदी; सगण और ४ लघु का यथेच्छ प्रयोग	वृ०मौ०, वा०भू०, वृ०मु०, वा०व०; **सिंहावलोक**—प्रा०पै०, वृ०र०ना०।
प्लवङ्गम	२१; चतुष्पदी; ट.ठ.ड. जगण गुरु	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वा०व०।
लीलावती	३२; चतुष्पदी; लघु गुरु वर्ण नियम रहित, ड-८, 'ड' में सगण, ४ लघु जगण भगण गुरुद्वय का प्रयोग अपेक्षित है।	वृ०मु०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, **लीलावतिका**—वा०व०।
हरिगीतम्	२८; चतुष्पदी; ठ.ट.ठ.ठ.ठ. गुरु।	वृ०मौ०, वा०भू०, वृ०मु०; **हरिगीतक**—वा०व०।

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
हरिगीतकम्	३०; चतुष्पदी; ठ.ट.ठ.ठ.ठ. गुरुद्वय।	वृ०मौ०।
मनोहर-हरिगीतम्	२८; चतुष्पदी; ठ.ट.ठ.ठ.ठ. गुरु, विराम पर 'ठ' गुर्वंत अपेक्षित है; यति १६, १२ पर है।	वृ०मौ०।
हरिगीता	२८; चतुष्पदी; ठ.ट.ठ.ठ.ठ. गुरु, विराम ९.७.१२ पर अपेक्षित है।	वृ०मौ०, प्रा०पै०।
अपरा-हरिगीता	२८; चतुष्पदी; ठ.ट.ठ.ठ.ठ. गुरु, विराम १४-१४ पर अपेक्षित है।	वृ०मौ०।
त्रिभंगी	३२; चतुष्पदी, 'ड'-८, जगण निषिद्ध है।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वा०व०।
दुर्मिलका	३२; चतुष्पदी, ड-८।	वृ०मौ०, वा०भू०; **दुर्मिला**—प्रा०पै०, वृ०मु०, वा०व०।
हीरम्	२३; चतुष्पदी, ट.ट.ट. रगण, 'ट' एक गुरु और ४ लघु रूप होना चाहिए।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०व०, **हीरक**—वा०भू०, वा०व०
जनहरणम्	३२; चतुष्पदी, 'ड'-८ जिसमें २८ लघु और अन्त में सगण हो।	वृ०मौ०, वृ०मु०; **जलहरण**—प्रा०पै०, वा०भू०, वा०व०।
मदनगृहम्	४०, चतुष्पदी, ड-१०, पहला 'ड' सगण होना चाहिए।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वा०व०, **मदनदीपन**—वृ०मु०।
मरहट्ठा	२९; चतुष्पदी, ट.ड.ड.ड.ड.ड. गुरु लघु।	वृ०मौ०, प्रा०पै०, वा०भू०, वृ०मु०, वा०व०।
मदिरा सवया	३० चतुष्पदी, भ-७, ग.।	वृ०मौ०।

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
मालती सवया	३२; चतुष्पदी, भ-७. ग. २।	वृ०मौ०।
मल्ली सवया	३४; चतुष्पदी, स-८. ग.।	वृ०मौ०।
मल्लिका सवया	३१; चतुष्पदी, ज.-७. ल.ग.	वृ०मौ०।
माधवी सवया	३३; चतुष्पदी ज:-७. ल.ग.ग.	वृ०मौ०।
मागधी सवया	३२; चतुष्पदी, ड.-८।	वृ०मौ०।
घनाक्षरम्	४८ मात्रा, ३१ वर्ण, चतुष्पदी।	वृ०मौ०।
गलितकम्	२१; चतुष्पदी, ठ.ठ.ड.ड. लघु गुरु।	वृ०मौ०, क०द०, है०छ०अ०, **सपिण्डितागलिता**—वृ०स०।
विगलितकम्	२३; चतुष्पदी, ठ.ठ.ड.ड.ठ.	वृ०मौ०, है०छ०अ०।
संगलिकतम्	१३, चतुष्पदी, ड.ड.ठ.	वृ०मौ०, है०छ०अ०, **पदगलिता**— वृ०स०।
सुन्दर-गलितकम्	१३; चतुष्पदी, ठ.ठ. लघु. गुरु.	वृ०मौ०, है०छ०अ०।
भूषण-गलितकम्	१६, चतुष्पदी; ठ.ठ.ढ.ढ.	वृ०मौ०, है०छ०अ०।
मुखगलितकम्	२०; चतुष्पदी, ट.ढ.ढ.ढ.ढ. गुरु।	वृ०मौ०, है०छ०अ०।
विलम्बित-गलिकतम्	२२; चतुष्पदी, ट.ड.ड.ड.ड. अन्तिम 'ड' गुर्वन्त हो।	वृ०मौ०, है०छ०अ०।
सम-गलितकम्	२५; चतुष्पदी, ड.ठ.ठ.ड.ड. लघु गुरु।	वृ०मौ०, है०छ०अ०।

छन्दोनाम	मात्रा-संख्या एवं लक्षण	सन्दर्भग्रन्थ-सङ्केत
अपरं सम-गलितकम्	३२; द्विपदी, प्रथम पद में-ड.ठ. ठ.ड.ड.ल.ग.ड.ढ.; द्वितीय पद में—ट.ढ.ढ.ढ.ढ.ग.ड.ड.ड.	वृ०मौ०।
अपरं-सङ्गलितकम्	३२; द्विपदी, अपरं सङ्गलितकम् की पदस्थिति पूर्णरूपेण विपरीत होती है।	वृ०मौ०।
अपरं-लम्बिता-गलितकम्	२२; चतुष्पदी; ड.ड.ड.ड.ड. गुरु; प्रथम और तृतीय चरण में जगण नहीं।	वृ०मौ०; **लम्बितागलितकम्**—वृ०स०, है०छ०अ०।
विक्षिप्तिका-गलितकम्	२५; चतुष्पदी; प्रथम और तृतीय चरण में ठ.ठ.ठ.ठ.ठ; द्वितीय और चतुर्थ चरण में ड.ठ.ठ.ठ.ठ.ग. होता है।	वृ०मौ०, **विच्छित्तिर्गलितकम्**—वृ०स०, है०छ०अ०।
ललिता-गलितकम्	२४; चतुष्पदी; ड.-६।	वृ०मौ०, वृ०स०, है०छ०अ०।
विषमिता-गलितकम्	२५; चतुष्पदी; प्रथम और द्वितीय चरण में ठ.ड.ड.ड.ड.ड; तृतीय एवं चतुर्थ चरण में ड.ड.ड.ड.ड.ड.ग. होता है।	वृ०मौ०, **विषमागलितम्**—है०छ०अ०।
माला-गलितकम्	४६; चतुष्पदी; ट.ड.-१०; अर्थात् १.३.५.७.९वां ड. जगण २.४.६.८वां ड चार लघ्वात्मक और १०वां 'ड' सगण होना चाहिए।	वृ०मौ०, है०छ०अ०।
मुग्धा माला-गलितकम्	३८; चतुष्पदी; ट.ड.-८।	वृ०मौ०, **मुग्धगलितकम्**—स्व०छ०, है०छ०अ०।
उद्गलितकम्	३०; चतुष्पदी; ट.ड.-६.	वृ०मौ०, **उद्गाता**—वृ०स०, **उग्रगलितकम्**— स्व०छ०, है०छ०अ०।

सप्तम परिशेष

गाथादि छन्दोभेदों के लक्षण एवं नाम-भेद

गाथा, स्कन्धक, दोहा, रोला, रसिका, काव्य एवं षट्पद नामक छन्दों के प्रस्तार-क्रम से भेद, लक्षण एवं नाम-भेद निम्नलिखित ग्रन्थों में प्राप्त हैं—

गाथा-प्रस्तार-भेद

प्रस्तार-क्रम	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	वृत्तरत्नाकर नारायणी-टीका	वाग्वल्लभ	गाथालक्षण और कवि-दर्पण
१	२७	३	३०	लक्ष्मी:	लक्ष्मी:	लक्ष्मी:	लक्ष्मी:	कमला
२	२६	५	३१	ऋद्धि:	ऋद्धि:	ऋद्धि:	ऋद्धि:	ललिता
३	२५	७	३२	बुद्धि:	बुद्धि:	बुद्धि:	बुद्धि:	लीला
४	२४	९	३३	लज्जा	लज्जा	लज्जा	लज्जा	ज्योत्स्ना
५	२३	११	३४	विद्या	विद्या	विद्या	विद्या	रम्भा
६	२२	१३	३५	क्षमा	क्षमा	क्षमा	क्षमा	मागधी
७	२१	१५	३६	देही	देही	गौरी	देही	लक्ष्मी
८	२०	१७	३७	गौरी	गौरी	देही	गौरी	विद्युत्
९	१९	१९	३८	धात्री	धात्री	रात्री	धात्री (रात्री)	माला
१०	१८	२१	३९	चूर्णा	चूर्णा	पूर्णा	चूर्णा	हंसी
११	१७	२३	४०	छाया	छाया	छाया	छाया	शशिलेखा
१२	१६	२५	४१	कान्ति:	कान्ति:	कान्ति:	कान्ति:	जाह्नवी
१३	१५	२७	४२	महामाया	महामाया	महामाया	महामाया	शुद्धि:
१४	१४	२९	४३	कीर्त्ति:	कीर्त्ति:	कीर्त्ति:	कीर्त्ति:	काली
१५	१३	३१	४४	सिद्धि:	सिद्धि:	सिद्धा	सिद्धा	कुमारी
१६	१२	३३	४५	मानी	मानिनी	मानी	मानिनी (मनोरमा)	मेधा
१७	११	३५	४६	रामा	रामा	रामा	रामा	सिद्धि:
१८	१०	३७	४७	विश्वा	गाहिनी	गाहिनी	गाहिनी	ऋद्धि:
१९	९	३९	४८	वासिता	विश्वा	विश्वा	विश्वा	कुमुदिनी
२०	८	४१	४९	शोभा	वासिता	वासिता	वासिता	धरणी
२१	७	४३	५०	हरिणी	शोभा	शोभा	शोभा	यक्षिणी
२२	६	४५	५१	चक्री	हरिणी	हरिणी	हरिणी	वीणा
२३	५	४७	५२	कुररी	चक्री	चक्री	चक्री	ब्राह्मी (वाणी)
२४	४	४९	५३	हंसी	सारसी	सारसी	सुरसी	गान्धर्वी
२५	३	५१	५४	सारसी	कुररी	कुररी	कुररी	मञ्जरी
२६	२	५३	५५	×	सिंही	सिंही	सिंही	गौरी
२७	१	५५	५६	×	हंसी	हंसी	हंसी (हंसपदवी)	×

●

स्कन्धक प्रस्तार-भेद

प्रस्तार-क्रम	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृतपैङ्गल	वृत्तरलाक नारायणी-टीका	वाग्वल्लभ
१	३०	४	३४	नन्दः	नन्दः	×	×
२	२९	६	३५	भद्रः	भद्रः	×	×
३	२८	८	३६	शिवः	शेषः	नन्दः	नन्द्रः
४	२७	१०	३७	शेषः	सारङ्गः	भद्रः	भद्रः
५	२६	१२	३८	सारङ्गः	शिवः	शेषः	शेषः
६	२५	१४	३९	ब्रह्मा	ब्रह्मा	सारङ्गः	सारङ्गः
७	२४	१६	४०	वारणः	वारणः	शिवः	शिवः
८	२३	१८	४१	वरुणः	वरुणः	ब्रह्म	ब्रह्मा
९	२२	२०	४२	मदनः	नीलः	चारणः	वारणः
१०	२१	२२	४३	नीलः	मदनः	वरुणः	वरुणः
११	२०	२४	४४	तालाङ्कः	तालाङ्कः	नीलः	नीलः
१२	१९	२६	४५	शेखरः	शेखरः	मदनः	निशङ्कः
१३	१८	२८	४६	शरः	शरः	तालङ्कः	मदनः
१४	१७	३०	४७	गगनम्	गगनम्	शेखरः	तालः
१५	१६	३२	४८	शरभः	शरभः	शरः	शेखरः
१६	१५	३४	४९	विमतिः	विमतिः	गगनम्	शरः
१७	१४	३६	५०	क्षीरम्	क्षीरम्	शरभः	गगनम्
१८	१३	३८	५१	नगरम्	नगरम्	विमतिः	सरभः
१९	१२	४०	५२	नरः	नरः	क्षीरम्	विमतिः
२०	११	४२	५३	स्निग्धः	स्निग्धः	नगरम्	क्षीरम्
२१	१०	४४	५४	स्नेहलुः	स्नेहः	नरः	नग्नम्
२२	९	४६	५५	मदकलः	मदकलः	स्निग्धः	नरः
२३	८	४८	५६	भूपः	भूपालः	स्नेहनम्	स्निग्धम्
२४	७	५०	५७	शुद्धः	शुद्धः	मदकलः	स्नेहः
२५	६	५२	५८	कुम्भः	सरित्	लोभः	मदकलः
२६	५	५४	५९	सरिः	कुम्भः	शुद्धः	भूपालः
२७	४	५६	६०	कलशः	कलशः	सरित्	शुद्धः
२८	३	५८	६१	शशी	शशी	कुम्भः	सरित्
२९	२	६०	६२	+	+	कलशः	कुम्भः
३०	१	६२	६३	+	+	शशधरः	शशी

दोहा प्रस्तार-भेद

प्रस्तार-क्रम	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	वृत्तरत्नाकर नारायणी-टीका	वाग्वल्लभ	गाथालक्षण
१	२३	२	२५	+	+	+	भ्रमर:	+
२	२२	४	२६	भ्रमर:	भ्रमर:	भ्रमर:	भ्रामर:	भ्रमर:
३	२१	६	२७	भ्रामर:	भ्रामर:	भ्रामर:	शरभ:	भ्रामर:
४	२०	८	२८	शरभ:	शरभ:	शरभ:	श्येन:	समर:
५	१९	१०	२९	श्येन:	श्येन:	श्येन:	मण्डूक:	सञ्चार:
६	१८	१२	३०	मण्डूक:	मण्डूक:	मण्डूक:	मर्कट:..	मकरन्द:
७	१७	१४	३१	मर्कट:	मर्कट:	मर्कट:	करभ:	मर्कटक:
८	१६	१६	३२	करभ:	करभ:	करभ:	नर:	नर:
९	१५	१८	३३	मदकल:	नर:	नर:	मराल:	मराल:
१०	१४	२०	३४	पयोधर:	मराल:	मराल:	मदकल:	मदकल:
११	१३	२२	३५	चल:	मदकल:	मदकल:	पयोधर:	पयोधर:
१२	१२	२४	३६	नर:	पयोधर:	पयोधर:	चल:	+
१३	११	२६	३७	मराल:	चल:	वल:	वानर:	+
१४	१०	२८	३८	त्रिकल:	वानर:	वानर:	त्रिकल:	+
१५	९	३०	३९	वानर:	त्रिकल:	त्रिकल:	कच्छप:	+
१६	८	३२	४०	कच्छ:	कच्छप:	कच्छप:	मत्स्य:	+
१७	७	३४	४१	मत्स्य:	मत्स्य:	मत्स्य:	शार्दूल:	+
१८	६	३६	४२	शार्दूल:	शार्दूल:	शार्दूल:	अहिवर:	+
१९	५	३८	४३	अहिवर:	अहिवर:	अहिवर:	व्याघ्र:	+
२०	४	४०	४४	व्याघ्र:	व्याघ्र:	व्याघ्र:	विडाल:	+
२१	३	४२	४५	उन्दुर:	विडाल:	विडाल:	श्वा	+
२२	२	४४	४६	शुनक:	शुनक:	श्वा	उदुम्बर: (उन्दुरु:)	+
२३	१	४६	४७	विडाल:	उन्दुर:	उन्दुर:	सर्प:	+
२४	०	४८	४८	सर्प:	सर्प:	सर्प:	शशधर:	+

रोला-प्रस्तार-भेद

प्र.क्र.	गुरु	लघु	मात्रा	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	लघु	गुरु	मात्रा	वृत्तरत्नाकर नारायणी-टीका	वाग्वल्लभ
१	६६	०	६६	रसिका	रसिका	६६	०	६६	लौहाङ्गिनी	लोहाङ्गी
२	६४	१	६६	हंसी	हंसी	५८	४	६६	हंसी	हंसिनी
३	६२	२	६६	रेखा	रेखा	५०	८	६६	रेखा	रेखा
४	६०	३	६६	तालाङ्का	तालङ्किनी	४२	१२	६६	तालङ्किनी	तालाङ्की
५	५८	४	६६	कम्पिनी	कम्पिनी	३४	१६	६६	कम्पी	कम्पी
६	५६	५	६६	गम्भीरा	गम्भीरा	२६	२०	६६	गम्भीरा	गम्भीरा
७	५४	६	६६	काली	काली	१८	२४	६६	काली	काली
८	५२	७	६६	कलरुद्राणी	कलरुद्राणी	१०	२८	६६	कलरुद्राणी	कलरुद्राणी

रसिका-प्रस्तार-भेद

प्र.क्र.	गुरु	लघु	मात्रा	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	प्रथम-चरणे गुरु	लघु	मात्रा	वृत्तरत्नाकर नारायणी-टीका	वाग्वल्लभ
१	१३	७०	९६	कुन्दः	कुन्दः	११	२	२४	कुन्दः	कुन्दः
२	१२	७२	९६	करतलः	करतलः	१०	४	२४	करतालः	कर्णांसलः
३	११	७४	९६	मेघः	मेघः	९	६	२४	मेघः	मेघः
४	१०	७६	९६	तालाङ्कः	तालाङ्कः	८	८	२४	तालङ्कः	तालाङ्कः
५	९	७८	९६	रुद्रः	कालरुद्रः	७	१०	२४	कालः	कालरुद्रः
६	८	८०	९६	कोकिलः	कोकिलः	६	१२	२४	रुद्रः	कोकिलः
७	७	८२	९६	कमलम्	कमलम्	५	१४	२४	कोकिलः	कमलः
८	६	८४	९६	इन्दुः	इन्दुः	४	१६	२४	कमलः	चन्द्रः
९	५	८६	९६	शम्भुः	शम्भुः	३	१८	२४	इन्द्रः	शम्भुः
१०	४	८८	९६	चमरः	चामरः	२	२०	२४	शम्भुः	चामरः
११	३	९०	९६	गणेशः	गणेश्वरः	१	२२	२४	चामरः	गणेश्वरः
१२	२	९२	९६	शेषः	सहस्राक्षः	०	२४	२४	गणेश्वरः	+
१३	१	९४	९६	सहस्राक्षः	शेषः					

रसिका छन्द के केवल प्रथम चरण के ही वाग्वल्लभ के मतानुसार ११ भेद होते हैं और वृत्तरत्नाकर के टीकाकार नारायणभट्ट के मतानुसार १२ भेद होते हैं। वाग्वल्लभ और नारायणी टीका के अनुसार अवशिष्ट द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरण २४ मात्रा सहित यथेष्ट गुरु, लघु निर्मित होते हैं।

●

काव्य-प्रस्तार-भेद

प्र.क्र.	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	वृत्तरत्नाकर-नारायणी-टीका
१	०	९६	९६	शक्रः	शक्रः	शक्रः
२	१	९४	९५	शम्भुः	शम्भुः	शम्भुः
३	२	९२	९४	सूर्यः	सूर्यः	शूरः
४	३	९०	९३	गण्डः	गण्डः	गण्डः
५	४	८८	९२	स्कन्धः	स्कन्धः	स्कन्धः
६	५	८६	९१	विजयः	विजयः	विजयः
७	६	८४	९०	तालाङ्कः	दर्पः	दर्पः
८	७	८२	८९	दर्पः	तालाङ्कः	ताराङ्कः
९	८	८०	८८	समरः	समरः	समरः
१०	९	७८	८७	सिंहः	सिंहः	सिंहः
११	१०	७६	८६	शेषः	शेषः	शीर्षः
१२	११	७४	८५	उत्तेजाः	उत्तेजाः	उत्तेजः
१३	१२	७२	८४	प्रतिपक्षः	प्रतिपक्षः	फणिः
१४	१३	७०	८३	परिधर्मः	परिधर्मः	रक्षः
१५	१४	६८	८२	मरालः	मरालः	प्रतिधर्मः
१६	१५	६६	८१	दण्डः	मृगेन्द्रः	मरालः
१७	१६	६४	८०	मृगेन्द्रः	दण्डः	मृगेन्द्रः
१८	१७	६२	७९	मर्कटः	मर्कटः	दण्डः
१९	१८	६०	७८	मदनः	मदनः	मर्कटः
२०	१९	५८	७७	राष्ट्रः	महाराष्ट्रः	अनुबन्धः
२१	२०	५६	७६	वसन्तः	वसन्तः	वासण्ठः
२२	२१	५४	७५	कण्ठः	कण्ठः	कण्ठः
२३	२२	५२	७४	मयूरः	मयूरः	मयूरः
२४	२३	५०	७३	बन्धः	बन्धः	बन्धः
२५	२४	४८	७२	भ्रमरः	भ्रमरः	भ्रमरः
२६	२५	४६	७१	भिन्नमहाराष्ट्रः	द्वितीयो महाराष्ट्रः	भिन्नमहाराष्ट्रः
२७	२६	४४	७०	बलभद्रः	बलभद्रः	बलभद्रः
२८	२७	४२	६९	राजा	राजा	राजा
२९	२८	४०	६८	वलितः	वलितः	वलितः
३०	२९	३८	६७	रामः	रामः	मयूखः
३१	३०	३६	६६	मन्थानः	मन्थानः	मन्थानः

प्र.क्र.	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	वृत्तरत्नाकर-नारायणी-टीका
३२	३१	३४	६५	मोहः	बली	बली
३३	३२	३२	६४	बली	मोहः	मोहः
३४	३३	३०	६३	सहस्रनेत्रः	सहस्राक्षः	सहस्राक्षः
३५	३४	२८	६२	बालः	बालः	बालः
३६	३५	२६	६१	दृप्तः	दृप्तः	दर्पितः
३७	३६	२४	६०	शरभः	शरभः	सरभः
३८	३७	२२	५९	दम्भः	दम्भः	दम्भः
३९	३८	२०	५८	दिवसः	अहः	उद्दम्भः
४०	३९	१८	५७	उद्दम्भः	उद्दम्भः	वलितांकः
४१	४०	१६	५६	वलितांकः	वलितांकः	तुरगः
४२	४१	१४	५५	तुरगः	तुरङ्गः	हारः
४३	४२	१२	५४	हरिणः	हरिणः	हरिणः
४४	४३	१०	५३	अन्धः	अन्धः	अन्धः
४५	४४	८	५२	भृङ्गः	भृङ्गः	भृङ्गः

●

षट्पद-प्रस्तार-भेद

प्र.क्र.	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	वृत्तरत्नाकर-नारायणी-टीका
१	७०	१२	८२	अजयः	अजयः	अजयः
२	६९	१४	८३	विजयः	विजयः	विजयः
३	६८	१६	८४	बलिः	बलिः	बलिः
४	६७	१८	८५	कर्णः	कर्णः	वर्णः
५	६६	२०	८६	वीरः	वीरः	वीरः
६	६५	२२	८७	वैतालः	वैतालः	वेतालः
७	६४	२४	८८	बृहन्नरः	बृहन्नलः	बृहन्नलः
८	६३	२६	८९	मर्कः	मर्कटः	मर्कटः
९	६२	२८	९०	हरिः	हरिः	हरिः

प्र.क्र.	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	वृत्तरत्नाकर-नारायणी-टीका
१०	६१	३०	९१	हरः	हरः	हरः
११	६०	३२	९२	विधिः	ब्रह्मा	ब्रह्मा
१२	५९	३४	९३	इन्दुः	इन्दुः	इन्दुः
१३	५८	३६	९४	चन्दनम्	चन्दनम्	चन्दनम्
१४	५७	३८	९५	शुभङ्करः	शुभङ्करः	शुभङ्करः
१५	५६	४०	९६	श्वा	श्वा	शालः
१६	५५	४२	९७	सिंहः	सिंहः	सिंहः
१७	५४	४४	९८	शार्दूलः	शार्दूलः	शार्दूलः
१८	५३	४६	९९	कूर्मः	कूर्मः	कूर्मः
१९	५२	४८	१००	कोकिलः	कोकिलः	कोकिलः
२०	५१	५०	१०१	खरः	खरः	खरः
२१	५०	५२	१०२	कुञ्जरः	कुञ्जरः	कुञ्जरः
२२	४९	५४	१०३	मदनः	मदनः	मदनः
२३	४८	५६	१०४	मत्स्यः	मत्स्यः	मत्स्यः
२४	४७	५८	१०५	तालाङ्कः	तालाङ्कः	सारङ्गः
२५	४६	६०	१०६	शेषः	शेषः	शेषः
२६	४५	६२	१०७	सारङ्गः	सारङ्गः	सारसः
२७	४४	६४	१०८	पयोधरः	पयोधरः	पयोधरः
२८	४३	६६	१०९	कुन्दः	कुन्दः	कुन्दः
२९	४२	६८	११०	कमलम्	कमलम्	कमलम्
३०	४१	७०	१११	वारणः	वारणः	कुन्दः
३१	४०	७२	११२	जङ्गमः	शरभः	वारणः
३२	३९	७४	११३	शरभः	जङ्गमः	शरभः
३३	३८	७६	११४	द्युतीष्टम्	द्युतीष्टम्	जङ्गमः
३४	३७	७८	११५	दाता	दाता	शरः
३५	३६	८०	११६	शरः	शरः	सुशरः
३६	३५	८२	११७	सुशरः	सुशरः	मसरः
३७	३४	८४	११८	समरः	समरः	सारसः
३८	३३	८६	११९	सारसः	सारसः	सरसः
३९	३२	८८	१२०	शारदः	शारदः	मेरुः

प्र.क्र.	गुरु	लघु	वर्ण	वृत्तमौक्तिक	प्राकृत-पैङ्गल	वृत्तरत्नाकर-नारायणी-टीका
४०	३१	९०	१२१	मदः	मेरुः	सकलः
४१	३०	९२	१२२	मदकरः	मदकरः	मृगः
४२	२९	९४	१२३	मेरुः	मदः	सिद्धः
४३	२८	९६	१२४	सिद्धिः	सिद्धिः	बुद्धिः
४४	२७	९८	१२५	बुद्धिः	बुद्धिः	कलकलः
४५	२६	१००	१२६	करतलम्	करतलम्	कमलाकरः
४६	२५	१०२	१२७	कमलाकरः	कमलाकरः	धवलः
४७	२४	१०४	१२८	धवलः	धवलः	मृतकः
४८	२३	१०६	१२९	मानसः	मनः	ध्रुवः
४९	२२	१०८	१३०	ध्रुवकः	ध्रुवः	वलयः
५०	२१	११०	१३१	कनकम्	कनकम्	किन्नरः
५१	२०	११२	१३२	कृष्णः	कृष्णः	शकः
५२	१९	११४	१३३	रञ्जनम्	रञ्जनम्	जनः
५३	१८	११६	१३४	मेघकरः	मेघकरः	मेधाकरः
५४	१७	११८	१३५	ग्रीष्मः	ग्रीष्मः	ग्रीष्मः
५५	१६	१२०	१३६	गरुडः	गरुडः	गरुडः
५६	१५	१२२	१३७	शशी	शशी	शशी
५७	१४	१२४	१३८	सूर्यः	सूर्यः	सूर्यः
५८	१३	१२६	१३९	शल्यः	शल्यः	शल्यः
५९	१२	१२८	१४०	नवरङ्गः	नवरङ्गः	नरः
६०	११	१३०	१४१	मनोहरः	मनोहरः	तुरगः
६१	१०	१३२	१४२	गगनम्	गगनम्	मनोहरः
६२	९	१३४	१४३	रत्नम्	रत्नम्	गगनम्
६३	८	१३६	१४४	नरः	नरः	रत्नम्
६४	७	१३८	१४५	हीरः	हीरः	नवः
६५	६	१४०	१४६	भ्रमरः	भ्रमरः	हीरः
६६	५	१४२	१४७	शेखरः	शेखरः	भ्रमरः
६७	४	१४४	१४८	कुसुमाकरः	कुसुमाकरः	शेखरः
६८	३	१४६	१४९	दीप्तः	दीपः	कुसुमाकरदीपः
६९	२	१४८	१५०	शङ्खः	शङ्खः	शङ्खः
७०	१	१५०	१५१	वसुः	वसुः	वसुः
७१	०	१५२	१५२	शब्दः	शब्दः	शब्दः

●

अष्टम परिशेष

मुख्य-लक्षणग्रन्थोक्त छन्दों की वर्णानुक्रमशः सूचिका

अकहरि (वाग्व०)
अकुहरि (वाग्व०)
अकुसुमचरम् (वाग्व० २७४)
अकोषकृष्टा (वाग्व० २७३)
अक्षरपङ्क्तिः (वाग्व १०३)
अक्षरावली (वाग्व०)
अहीरि (वाग्व०)
अखनिः (वाग्व०)
अखण्डमण्डनम् (वाग्व०)
अगरिम (वाग्व०)
अगाधिका (वाग्व०)
अचला (वाग्व०)
अचट्ठ (वाग्व०)
अचलम् (पि०वि०क० ६/४)
अचलधृतिः (वाग्व०)
अचलपङ्क्तिः (वाग्व०)
अचलनयनम् (वाग्व०)
अचलमचर्चिका (वाग्व० १७७)
अचलविरतिः (वाग्व०)
अजयः (वृ०र०)
अञ्चलवती (वाग्व०)
अञ्चिताग्रा (वाग्व० २६५)
अट्टासिनी (वाग्व०)
अडमरुः (वाग्व०)
अतिगीतिः (मं०म०)
अतिशिखा (वाग्व०)
अतिकलिः (वाग्व०)
अतिप्रतिविनीता (वाग्व० २७६)
अतिमोहा (वाग्व०)
अतिजनिः (वाग्व०)
अतिवासिता (वाग्व०)
अतिरुचिरा (वाग्व० १९७)
अतिसुचिरा (वृ०र०)
अतिशायिनी (पि० ८/१३, वाग्व०)
अतिरंहः (वाग्व०)
अतुला (वाग्व०)
अतुलपुलकम् (वाग्व०)
अतुलम् (वाग्व०)
अतैलम् (वाग्व०)
अर्तिलम् (वाग्व०)
अत्यापीडः (पि०सू० ५/२३ वि०क०)
अतिसुरहिता (वाग्व० २७८)
अत्सरु (वाग्व०)
अद्रितनया (छ०म० २/२३/१, वाग्व०)
अश्वललितम् (वाग्व०)
अधारा (वाग्व०)
अधिकारी (वाग्व०)
अधीरकरीरम् (वाग्व०)
अनय (अ०वृ०र०)
अनङ्गक्रीडा (वृ०र०, वाग्व०)
अनङ्गपदम् (वाग्व० २७२)
अनासादि (वाग्व०)
अनवीरा (वाग्व०)
अनङ्गशेखरः (वृ०र०)
अनामयम् (वाग्व०)
अनालेपनम् (वाग्व० २७१)
अनासववासिता (वाग्व० २७८)
अनिभृतम् (वाग्व०)
अनिरया (वाग्व० २७२)
अनिर्भारः (वाग्व०)
अनिलोद्धतमुखी (वाग्व०)
अनिन्दगुर्विन्दुः (वाग्व०)
अनिलोहा (वाग्व०)
अनीचकम् (वाग्व०)

अनु (वाग्व०)
अनति
अनवसिता (वृ०र०)
अनुकूला (वृ०र०, वाग्व०)
अनुगीतिः (वृ०र०)
अनुबन्धः (वृ०र०)
अनुचायिता (वाग्व०)
अनुष्टुब्वक्त्रम् (पि० ५/९)
अनुष्टुप् (वृ०र०)
अनूपकम् (वाग्व० २६६)
अनृजु (वाग्व०)
अनृतनर्म (वाग्व०)
अन्ध (वृ०र०)
अन्धभृङ्ग (वृ०र०)
अन्तर्विकासवासकः (वाग्व०)
अन्नविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
अन्तर्वनिता (वाग्व०)
अपरवक्त्रम् (पि० ५/४०, वाग्व०)
अपराजिता (पि० ७/६, वाग्व०)
अपरा सपादी (वाग्व०)
अपयोधा (वाग्व०)
अपरान्तिका (पि० ४/४१, वाग्व०)
अपरप्रीणिता (वाग्व० २७३)
अपवाहः (वाग्व०)
अपवाहकः (पि० ७/३२)
अब्जः (कृ०,पि० ७/३६ वि०क०)
अपरोद्गता (वाग्व०)
आपीडम् (वाग्व०)
अप्रीता (वाग्व०)
अप्रमाथिनी (वाग्व० २६९)
अतिप्रीता (वाग्व० १३६)
अलिप्रीता (वाग्व० १३६)
अभिख्या (वाग्व०)
अभिनवतामरसम् (वृ०र०)
अभिरामा (वाग्व०)
अभिधात्री (वाग्व०)
अभीकम् (वाग्व०)
अभीरुका (वाग्व०)
अभ्रभ्रमशीला (वाग्व०)
अभ्रभ्रमणम् (वाग्व०)
अमतिः (वाग्व०)
अमरन्दि (वाग्व०)
अमनाः (वाग्व०)
अमरचमरी (वाग्व०)
अमन्दपादः (वाग्व०)
अमरावती (वाग्व०)
अमानिका (वाग्व०)
अमालीनम् (वाग्व०)
अमितनगानिका (वाग्व०)
अमृतगतिः (प्रा० २/९९, वाग्व०)
अमृतगतिका (पि० ६/९ वि०क०)
अमृततिलका (पि० ६/९ वि०क०)
अमृतधारा (पि० २/२४, वाग्व०)
अमृतध्वनिः (वाग्व०)
अमोघमालिका (वाग्व०)
अम्मेथी (वाग्व०)
अम्भोजाली (वाग्व० १७४)
अम्बुदावली (वाग्व०)
अयमितम् (वाग्व०)
अयवती (वाग्व० २५८)
अयनपताका (वाग्व०)
अयमानम् (वाग्व०)
अरजस्का (वाग्वं०)
अरालि (वाग्व०)
अरिल्लम् (वाग्व०)
अरि (वाग्व०)
अरिला (वाग्व०)
अरुन्तुदः (वाग्व०)
अर्कच्छाया (वाग्व० ५८)
अर्कशेषा (वाग्व०)

अर्जितफलिका (वाग्व०)
अर्तिः (वाग्व०)
अर्थशिखा (वाग्व०)
अर्दितपदम् (वाग्व०)
अर्दितम् (वाग्व०)
अर्धकला (वाग्व०)
अर्धक्षामा (वाग्व०)
अर्धकुसुमिता (वाग्व०)
अर्धान्तराला (वाग्व०)
अर्णः (अ०पु० ३३४/३०, वृ०र०, वाग्व०)
अर्णवः (अ०पु० ३३४/३०, वाग्व०)
अर्द्धान्तराला (वाग्व० २३६)
अर्धरुतम् (वाग्व०)
अर्पितमदना (वाग्व०)
अर्भकमाला (वाग्व०)
अर्भकपङ्क्तिः (वाग्व०)
अलकालिका (वाग्व०)
अलाला (वाग्व०)
अलिकालका (वाग्व०)
अलिला (वाग्व०)
अलका (वाग्व०)
अलिका (वाग्व०)
अलिपदम् (वाग्व० २७२)
अलिल्लिह (वृ०र०)
अलोला (पि०सू० ७/५ वि०क०, वृ०र०, वाग्व०)
अनन्तदामा (वाग्व०)
अल्परुतम् (वाग्व०)
अवनिजा (वाग्व०)
अवनीलता (वाग्व० २७४)
अवलीलता (वाग्व० २७४)
अवहित्रा (वाग्व० २६४)
अबन्ध्योपचारः (वाग्व०)
अवाचीकृतवदना (वाग्व० २७४)
अवरोधवनिता (वाग्व०)
अविधम (पि० ८/१४)
अवितथ (वृ०र०)
अविरलरतिका (वाग्व०)
अवीरा (वाग्व० १४३)
अवोढा (वाग्व०)
अशनिः (वाग्व०)
अशोकमञ्जरी (वृ०र०)
अशोकपुष्पकम् (वाग्व०)
अशोकपुष्पमञ्जरी (वृ०चन्द्रिका, पि० ७/३६ वि०क०, वाग्व०)
अशोकम् (वाग्व०)
अशोकलोकः (वाग्व०)
अशोकालोकालोकः (वाग्व०)
अशोकानोकहम् (वाग्व०)
अश्वगतिः (वृ०र०प०, वाग्व०)
अश्वललितम् (पि० ७/२७)
असम्बाधा (पि० ७/५, वाग्व०)
असितधारी (वाग्व०)
असुराढ्या (वाग्व० २६१)
असुधारा (वाग्व०)
असुधा (वाग्व० २६१)
अस्रधारा (वाग्व० १७७)
अहरि (वाग्व०)
अहतिः (वाग्व०)
अहानिगा (वाग्व०)
अहिवरः (वृ०र०ना०, वाग्व०)
अहिला (वाग्व०)
अहिंसा (वाग्व०)
अहीनताली (वाग्व०)
अहीरि (वाग्व० १४५)
आकतनु (वाग्व०)
आकेकरम् (वाग्व०)

आखेटम् (वाग्व०)
आख्यानकी (छ०कौ०)
आख्यातकी (वि०क ५/३७ पि०)
आदिविपुला (पि० ४/२३, हला०,वि० क०)
आख्यानकी (पि० ५/३७, वाग्व०)
आधिदैवी (वाग्व०)
आनता (वाग्व०)
आनन्दः (तर्कवा०)
आननमूलम् (वाग्व०)
आनद्धम् (वाग्व०)
आन्दोलिका (मं०म०)
आन्दोलिता (वाग्व०)
आपणिका (वाग्व०)
आपातलिका (पि० ४/३४, वाग्व०)
आपातलिका चारुहासिनी (छ०कौ०)
आपातलिकापरान्तिका (छ०कौ०)
आपातलिका प्रवृत्तकम् (छ०कौ०)
आपातलिका प्राच्यवृत्तिः (छ०कौ०)
आपातलिकोदीच्यवृत्तिः (छ०कौ०)
आपीडः (पि० ५/२१)
आपातलिकौपच्छन्दसिक (वृ०र०)
आभासमानम् (वाग्व०)
आभीरम् (वाग्व०)
आरभटी (वाग्व०)
आराधिनी (वाग्व०)
आर्द्रस्तबकः (वाग्व०)
आर्द्रा (प्रा०पि०सू० २/१२२)
आर्भवम् (वाग्व०)
आर्या (वृ०म०को०, वृ०र०)
आर्यागीतिः (वाग्व०)
आर्यागीतिपच्या (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
आर्यागीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
आर्यागीत्यादिविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
आर्यागीत्युभयविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
आरामः (तर्कवा०, वृ०र०ना० वाग्व० ३०४)
आलानितम् (वाग्व०)
आलेपनम् (वाग्व०)
आलोलघटिका (वाग्व०)
आशापादः (वाग्व०)
आसारः (तर्कवा०)
आसववासिता (वाग्व०)
इन्दुवदना (पि०सू० ७/५, वि०क० वाग्व० २०८)
इन्दिरा (वृ०र० ३/८२, वाग्व० १६७)
इन्दुः (वृ०र०ना०)
इन्दुवंशा (वाग्व०)
इन्द्रफला (वाग्व०)
इन्द्रबला (वाग्व०)
इन्द्रः (वाग्व०)
इन्द्रवज्रा (पि० ६/१५, वाग्व०)
इन्द्रवंशा (पि० ६/२९ वाग्व० १८३)
इन्द्रवदना (वाग्व०)
इन्द्रविमानम् (वाग्व०)
इन्धा (वाग्व०)
इभभ्रान्ता (वाग्व०)
ईडा (वाग्व०)
ईला (वाग्व०)
ईतिः (वाग्व०)
ईदृशम् (वाग्व०)
इन्दुरुः (वाग्व० ८३)
ईहा (वाग्व०)
ईहामृगी (वाग्व०)

उज्ज्वला (मं०म०, वृ०र० ३/६१, वाग्व०)
उज्झितकदनम् (वाग्व०)
उत्कटपट्टिका (वाग्व०)
उत्कष्टा (वृ०र०ना०)
उत्कलिकाप्रायम् (वाग्व०)
उत्पलमालिका (मं०म०, वाग्व०)
उत्तरान्तिका (वृ०र०ना०)
उत्पलिनी (वृ०र०, वाग्व० १९५)
उत्तेजक (वृ०र०ना०)
उदधि: (वाग्व० १५४)
उदरश्रि (वाग्व०)
उदरस्रक् (वाग्व०)
उदरासृक् (वाग्व०)
उदर्करचिता (वाग्व०)
उदयनमुखी (वाग्व०)
उदया (वाग्व० १३३)
उद्धरा (वाग्व० १३३)
उदक् (वाग्व०)
उदात्तहास: (वाग्व०)
उदारपाद: (वाग्व०)
उदितम् (वाग्व०)
उदितदिनेश: (वाग्व०)
उदितविजोहा (वाग्व०)
उदीच्यवृत्ति: (छ०कौ०, वाग्व०)
उदुम्बर: (वाग्व०)
उद्गता (पि० ५/२५, वाग्व०)
उद्गाथ (वृ०र०ना०)
उद्गाथा (वाग्व० ४४)
उद्गीति: (वाग्व०)
उद्गीतिपथ्या (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उद्गीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उद्गीत्यादिविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उद्गीत्यार्या (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उद्गीत्युभयविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उद्दाम: (वृ०र० ३/१/३३)
उद्दामा (वाग्व०)
उद्धतिकरी (वाग्व०)
उद्धर्षिणी (पि० ७/१०, वाग्व० २०७)
उन्दरि (वाग्व०)
उन्दुर (वृ०र०ना०)
उद्दम्भ (वृ०र०ना०)
उन्नर्म (वाग्व०)
उन्नालम् (वाग्व०)
उपगीति: (वाग्व०)
उपगीतिपथ्यार्या (वि० ४/२३, हला०वि०क०)
उपगीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उपगीत्यादिविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उपगीत्यार्या (पि० ४/२१)
उपगीत्युभयविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उपचित्रम् (वृ०र०, वाग्व०)
उपचित्रकम् (पि० ५/३२)
उपचित्रा (वाग्व०)
उपचिता (पि० ४/ ६)
उपजाति: (पि० ६/१७, वाग्व०)
उपबलि: (वाग्व०)
उपमालिनी (वृ०र०ना० ३/९)
उपलिनी (वाग्व०)

उपपातलिका (वृ०र०ना०)
उपधाय्या (वाग्व०)
उपसंकुला (वाग्व०)
उपस्थितम् (वृ०र०ना० ३/४४, ७३, वाग्व०)
उपस्थितप्रकुपितम् (छ०कौ०)
उपस्थितप्रचुपितम् (पि० ५/२८, वाग्व०)
उपस्थिता (पि० ६/१४, वाग्व०)
उपहितचण्डी (वाग्व०)
उपदारिका (वाग्व०)
उपधानम् (वाग्व०)
उपलेखा (वाग्व०)
उपगतशिखा (वाग्व०)
उपचितरतिका (वाग्व०)
उपसरसी (वाग्व०)
उपकारिका (वाग्व०)
उपसरसीकम् (वाग्व०)
उपवनमालिका (वाग्व०, १८७)
उपवैतालिकम् (वाग्व०)
उपनयनम् (वाग्व०)
उपनमिता (वाग्व० २०१)
उपाढ्यम् (वाग्व०)
उपेन्द्रमाला (कृ०, पि० ६/१६, वि०क०)
उपेन्द्रवज्रा (पि० ६/१६, वाग्व०)
उपोहा (वाग्व०)
उपोदरि (वाग्व०)
उपोद्गता (वाग्व०)
उभयविपुला (पि० ४/२३, हला०वि०क०)
उभयापीड (वृ०र० ५/५ ना०)
उलपा (वाग्व०)
उलपोहा (वाग्व० २८१)
उल्काभास: (वाग्व०)
उल्लाल (वृ०र०ना०)
उल्लाला (वाग्व०)
ऊपिकम् (वाग्व०)
ऊर्वशी (मं०म०)
ऊहिनी (वाग्व०)
ऋचा (वाग्व०)
ऋजु (वाग्व०)
ऋतम् (वाग्व०)
ऋद्धि: (वाग्व०)
ऋषभम् (पि० ७/११ वि०क०)
ऋषभगजविजृम्भितम् (मं०म०)
ऋषभगजविलसितम् (पि० ७/१५, वाग्व०)
ऋषभविलसितम् (हला०पि०सू० ७/१६)
एकपादिका (ग०पु०पू० २०८/६)
एला (वृ०र० ३/८९, वाग्व०)
ऐन्द्री (वाग्व० १४७)
औपगवम् (वाग्व०)
औपगवीतम् (वाग्व०)
औपच्छन्दसिकम् (पि० ४/३३, वाग्व०)
औपच्छन्दसिकचारुहासिनी (छ०कौ०)
औपच्छन्दसिकदक्षिणान्तिका (छ०कौ०)
औपच्छन्दसिकप्रवृत्तकम् (छ०कौ०)
औपच्छन्दसिकप्राच्यवृत्ति: (छ०कौ०)
औपच्छन्दसिकापरान्तिका (ग०पु०)
औपच्छन्दसिकोदीच्यवृत्ति: (छ०कौ०)
कङ्कणक्वाण: (वाग्व०)
कङ्कणक्वाणवाणी (वाग्व०)
कच्छप: (वाग्व०)
कच्छपी (वाग्व०)
कञ्जा (वाग्व०)
कटिका (वाग्व० १५३)

कटुगीतिः (मं०म०)
कठिनास्थि (वाग्व०)
कठिनी (वाग्व०)
कठोद्गता (वाग्व०)
कडारम् (वाग्व०)
कणिका (वाग्व०)
कण्ठः (वृ०र०ना०)
कण्ठी (वाग्व०)
कतिका (वाग्व० १८९)
कनकमालिका (वाग्व०)
कनकमंजरी (वाग्व०)
कनकप्रभा (पि० ८/७)
कनकलता (मं०म०, पि० ७/२३ वि०क०)
कनककामिनी (वाग्व०)
कनककेतकी (वाग्व०)
कनकिता (वाग्व०)
कन्दः (प्रा०पि०सू० २/१६३, वाग्व०)
कन्दविनोदः (वाग्व०)
कन्दुकम् (छ०म० २/१३/१०)
कन्या (वाग्व०)
कमलि (वाग्व० ९९)
कमनी (वाग्व०)
कमलम् (प्रा०पि०, वृ०र०ना०, वाग्व० १३२)
कमलकरम् (वाग्व०)
कमलपरम् (वाग्व०)
कमठकरम् (वाग्व०)
कमलशिखा (वाग्व०)
कमला (प्रा० २/८३)
कमलाकर (वृ०र०ना०)
कमलाकरा (वाग्व०)
कम्पी (वृ०र०ना०)
करभः (प्रा०पि०सू०, वाग्व०)
करभित् (वाग्व०)
करधा (वाग्व० २७५)
करभोद्धता (वाग्व० २७२)
करञ्जि (वाग्व०)
करशया (वाग्व०)
करहन्तृ (वाग्व० १२३)
करमाला (वाग्व०)
करताल (वृ०र०ना०)
करपल्लवोद्गता (वाग्व०)
करहञ्चि (प्रा०पि०सू० २/६३)
करम्भ (वृ०र०ना०)
कराली (वाग्व०)
करीरिता (वाग्व० २७४)
करेणुः (वाग्व०)
कर्कटः (वृ०र०ना०)
कर्णिनी (वाग्व० २६६)
कर्णपालिका (वाग्व०)
कर्णलता (वाग्व०)
कर्णस्फोटम् (वाग्व०)
कर्णाटकम् (वाग्व०)
कर्णिशरः (वाग्व०)
कर्तृ (वाग्व० १०१)
कर्मदा (वाग्व०)
कर्मठः (वाग्व०)
कर्मिष्ठा (वाग्व०)
क्रमुकवती (वाग्व०)
कर्पूरम् (प्रा० २/८९)
कलकण्ठकम् (मं०म०)
कलगीतम् (मं०म०)
कलकल (वृ०र०ना०)
कलना (वाग्व०)
कलालि (वाग्व०)
कलहम् (वाग्व०)
कलहंसः (मं०म०, वाग्व०)

कलहंसी (मं०म०)
कलस्वनवंश: (वाग्व०)
कलवल्लीविहंग: (वाग्व०)
कलनायिका (वाग्व०)
कलहेतिका (वाग्व०)
कलधौतपदम् (वाग्व०)
कलहकरम् (वाग्व०)
कलमतल्लिका (वाग्व०)
कलनावती (वाग्व० २८२)
कलना (वाग्व०)
कलम्बडम्बरम् (वाग्व०)
कला (वाग्व०)
कलातन्त्रम् (पि० ७/१६ वि०क०)
कलापान्तरिता (वाग्व०)
कलाधाम (वाग्व०)
कलापतिप्रभा (वाग्व०)
कलाधर: (वाग्व०)
कलापदीपकम् (वाग्व०)
कलिका (ग०पु०, छ०कौ०,
वृ०र०, वाग्व०)
कलिला (वाग्व०)
करिला (वाग्व०)
कलितकमलमाला (वाग्व०)
कल्कि: (वाग्व०)
कल्पमुखी (वाग्व०)
कल्पकान्ता (वाग्व०)
कल्पमीलिता (वाग्व०)
कल्पाहारी (वाग्व०)
कल्पधारि (वाग्व०)
कल्पलतापताकिनी (वाग्व०)
काकिणिका (वाग्व०)
काकलीकलकोकिल: (वाग्व०)
काण्डमुखी (वाग्व०)
कान्ता (अ०वृ०र०,
ना० वाग्व० २७७)
कान्तारम् (वाग्व०)
कान्ति: (वाग्व०)
कान्तोत्पीडा (पि० ६/४०)
काम: (प्रा०पि०सू० २/४, वाग्व०)
कामक्रीडा (वृ०र०ना० ३/९० वाग्व०
२१४)
कामचारि (वाग्व०)
कामनिभा (वाग्व०)
कामला (वाग्व०)
कामशाला (वाग्व०)
कामरूपम् (वाग्व०)
कामकलशिका (वाग्व०)
कामा (वाग्व० ९८)
कामाक्षी (वाग्व०)
कामिनी (वृ०स०)
कामुकलेखा (वाग्व०)
कामोद्धता (वाग्व०)
कारु (वाग्व०)
कारविणी (वाग्व०)
कार्पिका (वाग्व०)
काल (वृ०र०ना०)
कालम्बी (वाग्व०)
कालवर्म (वाग्व०)
कालध्वानम् (वाग्व०)
कालध्वान्तम् (वाग्व०)
कालरुद्राणी (वृ०र०ना०)
कालसारोद्धत: (वाग्व०)
काली (व०र०ना०)
कालदण्ड: (वाग्व०)
कासार: (वृ०र० ३/११२, ना०)
कासारम् (वाग्व०)
कासारक्रान्ता (वाग्व०)
काहलि (वृ०र०ना०)

काही (वाग्व०)
किञ्जल्कम् (वाग्व०)
किञ्जल्कि (वाग्व०)
किणपा (वाग्व०)
किन्नर (वृ०र०ना०)
किरणकीर्तिः (वाग्व०)
किन्नटकः (वाग्व० २७०)
किरातः (वाग्व०)
किरीटः (वाग्व० २२५)
किरीटम् (प्रा०पि०सू० २/२७)
किर्मीरम् (वाग्व०)
किर्मिष्ठा (वाग्व० १३९)
किलकिता (वाग्व०)
किलकिती (वाग्व०)
किलिकिता (वाग्व०)
किशलयम् (वाग्व०)
किंशुकावली (वाग्व० २६८)
कीटमाला (वाग्व०)
कीरलेखा (वाग्व०)
कीर्णा (वाग्व० १००)
कीर्तिः (प्रा०पि०सू० २/१२२ वाग्व०)
कीलालम् (वाग्व०)
कुञ्जर (वृ०र०ना०)
किष्कु (वाग्व०)
कुटकम् (वृ०र०)
कुटजा (वाग्व० १९३)
कुटजगतिः (पि० ७/१ वि०क०)
कुटिलगतिः (पि० ८/८)
कुटिलम् (अ०वृ०र०)
कुटिला (पि० ८/१०)
कुठारिका (वाग्व०)
कुडङ्गिका (वाग्व०)
कुण्डलिका (वृ०र०ना०, वाग्व०)
कुड्मलदन्ती (पि० ८/२)
कुथिनी (वाग्व०)
कुपुरुषजनिता (वृ०र० ३/४४ ना०)
कुप्यम् (वाग्व०)
कुबेरकटिका (वाग्व०)
कुन्द (वृ०र०ना०)
कुमारगतिः (वाग्व०)
कुमारललिता (पि० ६/३, वाग्व०)
कुमारलीला (वाग्व०)
कुमारी (वृ०र०ना० ३/८३)
कुमुदः (कृ०, पि० ७/३६ वि०क०)
कुमुद्वती (वृ०म०को०)
कुमुदिनीविकाशः (वाग्व०)
कुमुदमाला (वाग्व०)
कुम्भकम् (वाग्व०)
कुम्भारि (वाग्व०)
कुम्भोध्नी (वाग्व०)
कुररी (वाग्व०)
कुरदि (वाग्व०)
कुररिका (वाग्व०)
कुरङ्गावतारः (वाग्व०)
कुररीरुता (वाग्व०)
कुरुचरी (वाग्व०)
कुलचारि (वाग्व०)
कुलटा (कृ०, पि० ६/८ वि०क०)
कुलाधारी (वाग्व०)
कुल्यावुत्तम् (वाग्व०)
कुल्यावृत्तम् (वाग्व०)
कुशकम् (वाग्व०)
कुशलकलावतिका (वाग्व०)
कुसुम्भिनी (वाग्व०)
कुसुमवती (प्रा० २/८१)
कुसुमविचित्रा (पि० ६/३५, वाग्व०)
कुसुमस्तबकः (वाग्व०)
कुसुमितकायम् (वाग्व०)

कुसुमितलतावेल्लिता(पि० ७/२१, वाग्व०)
कुसुमिता (पि० ६/७ वि०क०)
कुसुमाकर (वृ०र०ना०)
कुहककुहरम् (वाग्व०)
कुही (वाग्व०)
कुहूः (वाग्व०)
कूर्चललितम् (वाग्व०)
कूर्म (व०र०ना०)
कूलम् (वाग्व०)
कूलचारिणी (वाग्व०)
कूलिका (वाग्व०)
कृकपादि (वाग्व०)
कृतयुः (वाग्व०)
कृतमणिता (वाग्व०)
कृतवती (वाग्व० १३२)
कृतकवलि (वाग्व०)
कृतकतिका (वाग्व०)
कर्तृ (वाग्व०)
कृतमालम् (वाग्व०)
कृशयुः (वाग्व० १३८)
कृष्णम् (वाग्व० १०१)
कृष्णगतिका (वाग्व०)
केतुः (वाग्व० २७०)
केतुमती (पि ५/३६, वाग्व०)
केरम् (वाग्व०)
केदारः (वृ०र० ना०)
केलिचरम् (वाग्व०)
केशरम् (वृं०र० ३/१०० ना०)
केशवती (वाग्व०)
केसा (वृ०र०, पि० ६/१ वि०क०)
कोकपदम् (वाग्व०)
कोकिलपदकम् (पि० ८/१५)
कोकिल (वृ०र०ना०)
कोमलकल्पकलिका (वाग्व०)
कोकिलकम् (वृ०र० ३/९९, वाग्व० २३०)
कोरकिता (वाग्व०)
कौमुदी (वृ०र० ४/१२ ना०)
कौचमारः (वाग्व०)
कंसरि (वाग्व०)
कंसासारि (वाग्व०)
कांसीकम् (वाग्व०)
किंशुकास्तरणम् (वाग्व०)
क्रमुकवती (वाग्व० १८७)
क्रीडगा (वाग्व०)
क्रीडक्रोडम् (वाग्व०)
क्रीडचन्द्रम् (वाग्व०)
क्रीडा (वाग्व०)
क्रीडायतनम् (वाग्व०)
क्रीडावसथम् (वाग्व०)
क्रीडितकटका (वाग्व०)
क्रूराशनम् (वाग्व०)
कूरासनम् (वाग्व०)
क्रूरासनम् (वाग्व०)
कूराशनम् (वाग्व०)
क्रोडान्तिकम् (वाग्व०)
क्रोशि (वाग्व०)
क्रोशितकुशला (वाग्व०)
क्रोशपदा (वाग्व०)
क्रौञ्चपदा (पि० ७/३०)
क्षमा (वृ०र०, वाग्व० १९३)
क्षमापालि (वाग्व०)
क्षरम् (वाग्व०)
क्षीर (वृ०र०ना०)
क्षुरम् (वाग्व०)
क्षुत् (वाग्व०)
क्षुपम् (वाग्व०)

खजा (प्रा०पि०सू०, वृ०र० २/४०)
खञ्जा (पि० ५/४४)
खञ्जिका (वाग्व०)
खगति: (वाग्व०)
खर (वृ०र०ना०)
खटका (वाग्व०)
खरकरा (वाग्व०)
खर्परि (वाग्व०)
खर्विणी (वाग्व०)
खेटकम् (वाग्व०)
खेलाढ्यम् (वाग्व०)
खौरलि (वाग्व०)
गगन (वृ०र०ना०)
गगनाङ्गनम् (वाग्व०)
गगनोद्गता (वाग्व०)
गगनगतिका (वाग्व०)
गङ्गोदकम् (वाग्व०)
गजगति: (छ०म०, वाग्व०)
गजविलसितम् (मं०म०)
गण्डका: (प्रा०पि०सू० २/२५५ वाग्व० २४२)
गण्ड (वृ०र०ना०)
गणदेहा (वाग्व०)
गणेश्वर (वृ०र०ना०)
गन्धा (वृ०र०ना०)
गन्धानकम् (वाग्व०)
गम्भारि (वाग्व०)
गम्भीरा (वृ०र०ना०)
गरुड (वृ०र०ना०)
गरुदवारिता (वाग्व०)
गरुडरुतम् (छ०मं०, वाग्व०)
गलितनाला (वाग्व०)
गल्लकम् (वाग्व०)
गहना (वाग्व०)
गह्वरम् (वाग्व०)
गाथिनी (वाग्व०)
गाहितदेहम् (वाग्व० २५३)
गाहितगेहम् (वाग्व० २५३)
गाहिनी (वाग्व०)
गाहू (वृ०र०ना०)
गाथा (वाग्व०)
गीति: (पि० ४/२८, वाग्व०)
गीता (प्रा०पि०सू०)
गीतिका (प्रा०पि०सू०, वाग्व०)
गीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
गीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
गीत्याया (पि० ४/४८)
गीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
गुञ्जा (वाग्व०)
गुर्विन्दु: (वाग्व० २०३)
गुणाङ्गी (अ०वृ०र०)
गुणवती (वाग्व०)
गुणसारिका (वाग्व०)
गणसारिका (वाग्व०)
गूर्णिका (वाग्व०)
गूहिणी (वाग्व०)
गोकर्ण (प्रा०पिं०सू०)
गोपाल (वाग्व० १००)
गोत्रगरीय: (वाग्व०)
गोधि (वाग्व०)
गोपावेदी (वाग्व०)
गोविन्द: (वृ०र०ना०)
गोवृष: (अ०वृ०र०)
गौरी (वृ०र०ना०, वाग्व० २८१)
ग्रावास्तरणम् (वाग्व०)
ग्रीष्म (वृ०र०ना०)

घटिका (वाग्व० २८२)
घत्ता (वृ०र०ना०, वाग्व०)
घत्तानन्दम् (वाग्व०)
घनमयूरम् (मं०म०)
घनाक्षरम् (वाग्व०)
घनाक्षरी (वृ०चन्द्रिका)
घाटी (प्रा०पि०सू० २/३०)
घोटकम् (म०को०)
चकोरः (वाग्व०)
चक्रम् (वाग्व०)
चकिता (पि० ९/१४ वि०क०, वाग्व०)
चक्रपदम् (वृ०र०प०, छ०म०)
चक्री (वाग्व०)
चञ्चरीकावली (वृ०र०, वाग्व०)
चञ्चला (प्रा०पि०सू० २/२०६, वाग्व० २२६)
चञ्चलाक्षिका (पि० ६/३६)
चण्डरसा (छ०कौ०)
चण्डवृष्टिप्रयातः (पि० ७/३४)
चण्डवृष्टिप्रपातः (वृ०र० ३/११२, वाग्व०)
चण्डी (वृ०र०, छं०म०, वाग्व०)
चटुलम् (वाग्व०)
चतुष्पदा (वृ०र०ना०)
चतुष्पदी (वाग्व०)
चतुरसा (प्रा०पि०सू० २/४८)
चतुर्वणा (छ०कौ०)
चतुर्वंशा (वाग्व० १०२)
चतुष्पथा (वाग्व०)
चतुरीहा (वाग्व०)
चन्दन (वृ०र०ना०)
चपला (वृ०र०, वाग्व०)
चपलावक्त्रम् (वाग्व०)
चमरीचरम् (वाग्व०)
चम्पकमाला (वाग्व० १४८)
चम्पकमालिका (वाग्व० २४४)
चम्पकावली (वाग्व० २४४)
चमूरुः (वाग्व० २७०)
चमूरुभीरुः (वाग्व०)
चयनम् (वाग्व०)
चरणम् (वाग्व०)
चरपदम् (वाग्व०)
चलः (वाग्व०)
चन्द्रमाला (पि०प्रा०पि०सू० २/२४२)
चन्द्रलेखा (वृ०र०मा० ३/७५, वाग्व०)
चन्द्रवर्त्म (वृ०र०, छ०म०, वाग्व०)
चन्द्रसेना (कृ०)
चन्द्रहासकरा (वाग्व०)
चन्द्रापीडः (वाग्व०)
चन्द्रावर्ता (पि० ७/११)
चन्द्रिका (वृ०सा०, वृ०र० ३/७५ वाग्व० १२३)
चन्द्रौरसः (पि०सू० ७/५ वि०क०)
चपलार्या (पि० ४/२४)
चपलानुष्टुप् (पि० ५/१६)
चम्पकमाला (प्रा०पि०, वृ०र०ना० ३/२४)
चर्चरी (प्रा०पि०सू० २/२३२)
चलम् (पि० ९/२० वि०क०)
चामरम् (पि ९/११ वि०क०, वाग्व०)
चारु (वृ०चन्द्रिका, वाग्व०)
चारुहासिनी (पि० ४/४०, वाग्व०)
चारुसेनी (वृ०र०ना०)
चारण (वृ०र०ना०)
चारुचारणम् (वाग्व०)
चार्वटकम् (वाग्व०)
चारुगतिः (वाग्व०)

चारुगीतिः (वृ०र०ना०)
चितिभृतम् (वाग्व०)
चित्तचिन्तामणिः (वाग्व०)
चित्र (वृ०र० ३/९२ ना०, वाग्व०)
चित्रपदा (वाग्व०)
चित्ररेखा (पि० ९/२० वि०क० पृ० १६१)
चित्रलेखा (छं०म०, वाग्व० २३३)
चित्रा (पि० ४/४५, वाग्व०)
चिररुचिः (वाग्व०)
चिरकरका (वाग्व०)
चूडामणिः (पि० ६/३ वि०क०पृ० १०७ वृ०र०ना०)
चूलिका (पि० ४/५२)
चुलियाला (वाग्व०)
चुलकम् (वाग्व०)
चूडापीडम् (वाग्व०)
चूर्णकम् (वाग्व०)
चूर्णा (वाग्व०)
चेटीगतिः (मं०म०)
चेतोहिता (मं०म०)
चेलाञ्चलम् (वाग्व०)
चौपैया (वाग्व०)
छलितकम् (वाग्व०)
छलितकपदम् (वाग्व०)
छाया (पि० ७/२१ वि०क० वृ०र०ना० ३/१०१, वाग्व० ४८, २८३)
छिद्रम् (वाग्व०)
छेकवती (वाग्व०)
जगत्समानिका (वाग्व०)
जघनचपला (वाग्व०)
जघनविपुला (वाग्व०)
जघनचपलागीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलागीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपला गीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपला गीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलान्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलापथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलार्या (पि० ४/२६; वृ०र० २/१ ना०)
जघनचपलार्यागीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलार्यागीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलागीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलार्यागीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलोद्गीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलोद्गीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचलोपगीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलोपगीत्यन्तपथ्याविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलोपगीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
जघनचपलोपगीत्युभयविपुला (पि०

तूर्णकम् (वाग्व०)
तोटकम् (पि० ६/३१, वाग्व०)
तोमरम् (प्रा० २/८७, वाग्व०)
तन्त्री (वाग्व०)
त्रयी (अ०वृ०र०)
त्वरितगतिः (प्रा० २/९९, वाग्व० १५५)
त्रिकलः (वाग्व०)
त्रिभङ्गी (वाग्व०)
त्रोटकम् (वाग्व०)
दक्षिणान्तिकौपच्छन्दसिक (वृ०र०ना० २/२०)
दक्षिणान्तिका (ग० ५०, वृ०र० २/१५, वाग्व०)
दण्डकः (पि० ७/३३, अन्यत्रापि)
दण्डी (वाग्व० ७०, २३६)
दण्डत्रिभङ्गी (वाग्व०)
दण्ड (वृ०र०ना०)
दण्डकाहल (वृ०र०ना०)
दन्तालिका (वाग्व०)
दधि (वाग्व०)
दमनकम् (प्रा० २/१०९ वाग्व० ११३)
दमनकः (प्रा०पि०सू० २/५७)
दम्भ (वृ०र०ना०)
दर्प (वृ०र०ना०)
दर्पित (वृ०र०ना०)
दरदपूरम् (वाग्व०)
दर्पमाला (वाग्व०)
दर्भमाला (वाग्व०)
दामघटिता (वाग्व०)
दारदेहा (वाग्व०)
दारुदेहा (वाग्व०)
दारिका (वाग्व०)
दिगीशः (वाग्व०)
दीप (वृ०र०ना०)
दीपकम् (वाग्व० ६२, २१६)
दीपकमाला (पि० ६/८ वि०क० पृ० ११२)
दुग्धम् (पि० ६/२६ वि०क० पृ० १३६)
दुर्मिला (प्रा०पि०सू० २/२७७, वाग्व०)
दूरावलोकः (वाग्व०)
दृतिः (वाग्व०)
दृप्तदेहा (वाग्व०)
देवलम् (वाग्व०)
देही (वृ०र०ना०)
दैही (वाग्व०)
दोधकम् (वृ०र०ना०, वाग्व०)
दोर्लीला (वाग्व०)
दोला (वाग्व०)
दोषा (वाग्व०)
दोहा (वृ०र०ना० वाग्व० ७७)
द्रुतपदम् (वाग्व०)
द्रुतमध्या (पि० ५/३३, वाग्व० २६६)
द्रुतविलम्बितम् (पि० ६/३०, वाग्व०)
द्रुमिला (ना०पिं०सू० २/२७७)
द्रुतलम्बिनी (वाग्व०)
द्रुतमुखम् (वाग्व०)
द्वारहा (वाग्व०)
द्विदला (वाग्व०)
द्विपदी (वृ०र०ना०)
द्विमिला (वाग्व०)
धमनिका (वाग्व०)
धरा (वाग्व०)

धवला (प्रा०पिं०सू० २/२४४)
धवलकरी (वाग्व०)
धवलम् (वाग्व०)
धारावलिका (वृत्तसार)
धारि (वाग्व० २२६)
धारी (प्रा०पिं०सू० २/३० वाग्व० १७९)
धात्री (वाग्व०)
धीरध्वानम् (वाग्व०)
धीरललिता (वृ०र० ३/९२ ना०, पि० ७/१५ वि०क०)
धीरावर्त: (वाग्व०)
धूम्राली (वाग्व०)
धृतहाला (वाग्व०)
धृतश्री (वृ०र०ना०)
धृष्टपदम् (वाग्व०)
धोरितम् (वाग्व०)
धौनिकम् (वाग्व०)
धौरेयम् (वाग्व०)
ध्रुव (वृ०र०ना०)
नखपदा (वाग्व०)
नगमहिता (वाग्व०)
नगानिका (प्रा०पिं०सू० २/३२, वाग्व० १००)
नगस्वरूपिणी (श्रु०बो०, वाग्व० १३२)
नगर (वृ०र०ना०)
नगोनिता (वाग्व०)
नगोपमा (वाग्व०)
नटक: (वाग्व०)
नतभृगु (वाग्व०)
नदी (पिं०सू० ७/५ वि०क०)
नन्द: (वाग्व०)
नन्दा (वृ०र०ना०)
नन्दि (वाग्व०)

नन्दक: (वाग्व० ८४)
नर्दितम् (वाग्व० २५३)
नन्दथु: (वाग्व०)
नन्दनम् (पि० ७/२० वि०क० पृ० १६१, वाग्व०)
नन्दिनी (कृ०पि० ६/१५, ७/१ वि०क०)
नमेरु: (वाग्व०)
नर: (वृ०र०ना०, वाग्व०)
नरशिखी (वाग्व०)
नराचम् (प्रा०पिं०सू० २/२०२)
नरावलि: (वाग्व०)
नराच: (वाग्व०)
नरेन्द्र: (प्रा०पिं०सू० २/२६३)
नरेन्दु (वाग्व० ९९)
नर्कुटकम् (वृ०र० ३/९८)
नर्दटकम् (वाग्व०)
नयमालिनी (वाग्व०)
नयनपाली (वाग्व०)
नरेश: (वाग्व० १६८)
नरी (वाग्व०)
नरगा (वाग्व०)
नर्हि (वाग्व०)
नलिनी (पि० ९/१० वि०क० पृ० १५२)
नव (वृ०र०ना०)
नवपदम् (वाग्व०)
नवमालिनी (पि० ६/४३)
नवमालिका (वृ०र० ३/६४)
नवसरी (वाग्व०)
नवनीलता (वाग्व०)
नवासिका (वाग्व०)
नविपुला (छ०कौ०, वृ०र०, वाग्व०)
नाकि (वाग्व०)
नागारि (वाग्व०)

नान्दीमुखी (पिं०सू० ७/५ वि०क० वाग्व०)
नाभसम् (वाग्व०)
नाराचम् (वि०क०पृ० १६१, वाग्व०)
नाराचिका (वाग्व०)
नारी (वृ०र० ३/३)
नाली (वाग्व०)
नालीका (वाग्व०)
नासाभरणम् (वाग्व०)
निभालिता (वाग्व०)
निमग्नकीला (वाग्व०)
निम्नाशया (वाग्व०)
निरसिका (वाग्व०)
निरन्तिकम् (वाग्व०)
निरवधिगतिः (वाग्व०)
निरावलिः (वाग्व० २०१)
निरुदम् (वाग्व०)
निर्वाधिका (वाग्व०)
निर्विन्ध्या (वाग्व०)
निर्बन्ध्या (वाग्व०)
निर्मेधा (वाग्व०)
निर्यत्पारावारः (वाग्व०)
निर्मुक्तमाला (वाग्व०)
निर्मधुवारि (वाग्व० २८०)
निर्गलितमेखला (वाग्व०)
निशा (मं०म०)
निशापालकम् (वृ०र०प०, छ०म०)
निशि (वाग्व० १०१)
निशिपालम् (वाग्व०)
निश्रेणी (वाग्व०)
निस्तुषा (वाग्व० १९६)
निषधम् (वाग्व०)
निष्कलकण्ठी (वाग्व०)
निस्का (वाग्व०)
नीपवनीयकम् (वाग्व०)
नीपकम् (वाग्व०)
नीरनिधिः (वाग्व०)
नीराञ्जलिः (वाग्व०)
नीरान्तिकम् (वाग्व०)
नीरोहा (वाग्व०)
नीलम् (प्रा०पिं०सू० २/२०४, वाग्व०)
नीहारः (तर्कवा०, वृ०र०ना०)
नीहारी (वाग्व०)
नीलगिरिका (वाग्व०)
नील (वृ०र०ना०)
नीलम् (वाग्व० २२५)
नीला (वाग्व०)
नीलशार्दूलम् (वाग्व०)
नीलशालूरम् (वाग्व०)
नीलमालूरम् (वाग्व०)
नूतनम् (वाग्व०)
नृगणम् (वाग्व०)
नृतनर्म (वाग्व० १३५)
नेदिष्ठा (वाग्व०)
नेमधारि (वाग्व०)
पंकजधारिणी (वाग्व०)
पङ्कवती (वाग्व०)
पङ्कावलिः (वाग्व०)
पङ्कावली (प्रा०पि०सू० २/१६५)
पङ्क्तिः (छ०कौ०, छ०म०, वृ०र० ३/६, वाग्व०)
पञ्चकावली (पि० ८/१९, वाग्व० २४४)
पञ्चचामरम् (प्रा०पिं०सू० २/२०५, वृ०र० ३/६७)
पञ्चचामरः (पिं० ९/२१ वि०क० पृ० १६३)

पञ्चाल: (प्रा०पिं०सू० २/२०)
पज्झटिका (वाग्व०)
पञ्चशिखा (वाग्व०)
पञ्चयामलम् (वाग्व० २१७)
पञ्चशाखी (वाग्व०)
पञ्चास्याङ्घ्रि: (वाग्व० १२८)
पञ्जरि (वाग्व०)
पटु (वाग्व०)
पटुकट्टिका (वाग्व०)
पणव: (पि० ६/१०, वृ०र०, वाग्व०)
पतङ्गपाद: (वाग्व०)
पथिकान्ता (वाग्व०)
पथ्या (पिं०सू० ७/५ वि०क०, वृ०र० २/३ वाग्व० ४२, २०९)
पथ्यार्या (पिं० ४/२२)
पथ्यावक्त्रम् (पिं० ५/१४, वाग्व०)
पदचतुरूर्ध्वम् (पिं० ५/२०, वृ०र०, वाग्व०)
पद्धतिका (वाग्व०)
पद्धरि: (वाग्व०)
पन्था: (वाग्व०)
पद्ममाला (छ०कौ०)
पद्मिनी (वृत्तचन्द्रिका)
पद्मावतिका (वाग्व०)
पद्मावर्त: (वाग्व०)
पद्मावती (वृ०र०ना०, वाग्व०)
पद्मा (वाग्व०)
पयोधर: (वाग्व०)
परभृतम् (वाग्व०)
परभानु: (वाग्व०)
परगति: (वाग्व०)
परप्रीणिता (वाग्व०)

परवक्त्रम् (वाग्व० २६५)
परान्तिका (वाग्व० ९५)
परामोद: (वाग्व०)
परार्थिनी (वाग्व०)
परावती (कृ०पि० ५/४२ वि०क०)
परिचरिता (वाग्व०)
परिश्रुता (वाग्व० २६३)
परिधारा (वाग्व०)
परिचारवती (वाग्व०)
परिमलललितम् (वाग्व०)
परिमितविजया (वाग्व०)
परिलेख: (वाग्व०)
परितोषा (वाग्व०)
परिपुंखिता (वाग्व०)
परिवृढम् (वाग्व०)
परिणाही (वाग्व०)
परिमलम् (वाग्व०)
परिखायतनम् (वाग्व०)
परिखापतनम् (वाग्व०)
परिपोषकम् (वाग्व०)
परिधानीयम् (वाग्व०)
परिस्तबक: (वाग्व० २४८)
परीवाह: (वाग्व०)
पर्विणी (वाग्व०)
पवल्लविताग्रम् (वृ०म०को०)
पवित्रा (प्रा० २/८१)
पाइत्ता (प्रा० २/८१)
पाकलि (वाग्व० १११, १३६)
पाञ्चालम् (पि० ६/१ वि०क०पृ० १०३)
पाटलिका (वाग्व० २६६)
पातशीला (वाग्व० २७४)
पादाकुलम् (पि० ४/४९, वाग्व०)
पाञ्चालि: (वाग्व०)
पाञ्चालाङ्घ्रि: (वाग्व०)

पारान्तवाची (वाग्व०)
पारन्तीयम् (प्रा० २/८१)
पारावत: (वाग्व०)
पारावार: (वाग्व०)
पारावारान्तम् (वाग्व० २५०)
पारावारान्तस्थम् (वाग्व०)
पालि (वाग्व०)
पापित्ता (वाग्व० १४३)
पाटलिका (वाग्व० २६६)
पांशु (वाग्व०)
पार्षतसरणम् (वाग्व०)
पार्थिवम् (वाग्व०)
पिकाली (वाग्व०)
पिकालिका (वाग्व०)
पिचुलम् (वाग्व०)
पिधायिनी (वाग्व०)
पिशङ्गि (वाग्व०)
पुट: (पि० ६/३२, वाग्व०)
पुटमर्दि (वाग्व०)
पुरटि (वाग्व०)
पुरोहिता (वाग्व०)
पुलकाञ्चितम् (वाग्व०)
पुष्पशकटिका (वाग्व०)
पुष्पदाम (छ०मं०, वृ०र०ना० ३/१०१)
पुष्पिताग्रा (पि० ४/५१, वाग्व०)
पूर्णा (वाग्व०)
पूर्वेन्दु: (वाग्व० २०३)
पृथ्वी (पि० ४/३२, वाग्व०)
पृषद्वती (वाग्व०)
पौरसरि (वाग्व०)
पौण्ड्रक: (वाग्व०)
प्रगीति: (वृ०र०ना०)
प्रगुणा (वाग्व०)
प्रचित: (पि० ७/३६)
प्रचितक: (वाग्व०)
प्रणव: (पि० ६/१० वि०क०)
प्रज्ञामूलम् (वाग्व०)
प्रतरि (वाग्व०)
प्रतर्दि (वाग्व०)
प्रतारिता (वाग्व०)
प्रतिसीरा (वाग्व०)
प्रतिधर्म (वृ०र०ना०)
प्रतिभादर्शनम् (वाग्व०)
प्रतिमा (वाग्व०)
प्रतिविनीता (वाग्व०)
प्रतीपवल्ली (वाग्व०)
प्रतीहार: (वाग्व०)
प्रत्यपीड: (पि० ५/२२)
प्रत्यापीड: (वृ०र० ५/५ ना०)
प्रपन्नपानीयम् (वाग्व०)
प्रपञ्चम् (वाग्व०)
प्रपञ्चचामरम् (वाग्व०)
प्रपातावतारम् (वाग्व०)
प्रपातलिका (वाग्व०)
प्रपात: (वाग्व०)
प्रफुल्लकदली (वाग्व०)
प्रबोधफलिता (वाग्व०)
प्रबोधिनी (वृ०र०प०)
प्रभद्रकम् (पि० ९/१० वि०क० पृ० १५२, वाग्व०)
प्रभा (वृ०र० ३/६५, वाग्व०)
प्रभासिता (वाग्व०)
प्रभावती (वाग्व०)
प्रमदा (पि० ९/४ वि०क०पृ० १४९, मं०म०, वृ०र०२४३/८३ ना०)
प्रमाणिका (वाग्व० १३२, २६३)
प्रमादाननम् (वृ०र०)

प्रमाणी (पि० ५/९)
प्रमाथिनी (वाग्व०)
प्रमिताक्षरा (पि० ६/३९, वाग्व०)
प्रमुदितवदना (ग०पु०, वाग्व० १८२)
प्रमोदः (वाग्व०)
प्रमोदतिलका (वाग्व०)
प्रमोदपदम् (वाग्व० २७५)
प्रमोदपरिणीता (वाग्व०)
प्रवरललितम् (पि० ९/१४ वि०क० पृ० १५५, वाग्व०)
प्रवह्लिका (वाग्व०)
प्रवादपदा (वाग्व०)
प्रवाहिका (वाग्व०)
प्रवालान्तिकम् (वाग्व०)
प्रसरा (वाग्व०)
प्रसृमरकरा (वाग्व०)
प्रसृमरमरालिका
प्रवृत्तकम् (पि० ४/३९, वृ०र० २/१९, वाग्व०)
प्रहरणकलिका (वृ०र०, छ०म०, वाग्व०)
प्रहरणकलिता (पिं० ९/९)
प्रहर्षिणी (पि० ९/१, वाग्व०)
प्रहाणः (वाग्व०)
प्राकारबन्धः (वाग्व०)
प्राच्यवृत्तिः (छ०कौ०, वृ०र० २/१७, वाग्व०)
प्रियतिलका (वाग्व०)
प्रियंवदः (वृ०र० ३/५७, वाग्व०)
प्रियजीवितम् (वाग्व०)
प्रिया (प्रा०पि०सू० २/१४ वाग्व०९९)
प्रीता (वाग्व० १३६)
प्रेमा (प्रा०पि०सू० २/१२२)
प्रिषा (वाग्व०)
प्रोञ्छिता (वाग्व०)
प्रोथा (वाग्व०)
प्लवङ्गमः (वाग्व० ६३, २०७)
फणि (वृ०र०ना०)
फलधरम् (वाग्व०)
फलिनी (वाग्व०)
फल्गुः (वाग्व०)
फुल्लदाम (छं०म०, वाग्व०)
बधिरा (वाग्व०)
बद्धास्यम् (वाग्व० २७४)
बन्ध (वृ०र०ना०)
बन्धुः (प्रा० २/१०१, वाग्व० १६५)
बन्ध्यारूढम् (वाग्व० २०४)
बभ्रुलक्ष्मीः (वाग्व०)
बलभद्र (वृ०र०ना०)
बलधारी (वाग्व०)
बलाका (वाग्व० ९९)
बलिमोह (वृ०र०ना०)
बलोर्जिता (वाग्व०)
बहिर्बलि (वाग्व०)
बहुमता (वृ०म०को०)
बहुलया (वाग्व०)
बहुलाभ्रम् (वाग्व०)
बाणिनी (पिं० ९/१४ वि०क० पृ० १५५)
बालगीतिः (मं०म०१)
बालललिता (ग०पु०पू०खं० २०९/२)
बाला (प्रा०पिं०सू० २/१२२, वाग्व० १४८)
बालविक्रीडितम् (वाग्व०)
बाललीलातुरम् (वाग्व०)
बिडाल (वृ०र०ना०)
बिन्दु (वाग्व०)

बृहच्छरावती (वाग्व० २७५)
बिम्बम् (प्रा० २/८५, वृ०र०ना० ३/१०१, वाग्व०)
बिम्बालक्ष्यम् (वाग्व०)
बिम्बा (प्रा० २/८५)
बुद्धिः (प्रा०पिं०सू० २/१२२, वाग्व०)
बिलम् (वाग्व० २५०)
बोधातुरा (वाग्व०)
ब्रह्मनरूपकम् (प्रा०पि०सू० २/२०९)
ब्रह्म (वृ०र०ना०, वाग्व० २२१)
बृहन्नल (वृ०र०ना०)
भद्रम् (प्रा०पि०सू० २/४४)
भद्रकम् (वृ०र० ३/१०५, वाग्व०)
भद्रिकम् (वाग्व०)
भद्रविराट् (पिं० ५/३५, वाग्व०)
भद्रा (छं०कौ०)
भद्रिका (वृ०र० ३/४१, वाग्व०)
भसलविनोदिता (वाग्व०)
भसलमदम् (वाग्व०)
भसलपदम् (वाग्व०)
भसलशलाका (वाग्व०)
भस्रानिस्तरणम् (वाग्व०)
भणिता (वाग्व०)
भविपुला (छ०कौ०, वाग्व०)
भाजनशीला (वाग्व०)
भारती (वाग्व० १५८)
भारावतारः (वाग्व०)
भारवहा (वाग्व० १४७)
भार्ङ्गी (वाग्व०)
भाविनी (वाग्व० १६७)
भामिनी (पि० ६/२६, वि०क० पृ० १३७, वाग्व० १६७)
भाविनीविलसितम् (वाग्व०)
भाराक्रान्ता (अ०वृ०र०, वाग्व०)
भाषा (वाग्व०)
भासितभरणम् (वाग्व०)
भासिनी (वाग्व० १६२)
भासितसरणिः (वाग्व०)
भासमानबिम्बम् (वाग्व०)
भासमानम् (वाग्व०)
भास्करम् (वाग्व०)
भिन्न (वृ०र०ना०)
भिन्नपदम् (वाग्व०)
भीमार्जनम् (वाग्व०)
भीमावर्तः (वाग्व०)
भीमाभोगः (वाग्व०)
भुजगशशिभृता (छ०कौ०, वाग्व०)
भुजगशशिवृता (छ०कौ०, वाग्व०)
भुजगशशिसृता (छ०कौ०, वाग्व०)
भुजगशिशुभृता (वृ०र० ३/२०)
भुजगहारिणी (वाग्व०)
भुजलता (वाग्व०)
भुजङ्गः (वृ०र०ना०, वाग्व०)
भुजङ्गी (वाग्व०)
भुजङ्गजुषी (वाग्व०)
भुजङ्गोद्धतम् (वाग्व०)
भृङ्गः (वृ०र०ना०)
भुजङ्गभृता (वाग्व०)
भुजङ्गप्रयातम् (पि० ६६/३७, वाग्व०)
भुजङ्गविजृम्भितम् (पि० ९/३१, वाग्व०)
भुजङ्गसङ्गता (छ०कौ०, वाग्व०)
भुवनविरतिः (वाग्व०)
भूमधारी (वाग्व०)
भूरिधामा (वाग्व०)
भूरिमधु (वाग्व०)
भूरिवसु (वाग्व०)
भूरिघटकम् (वाग्व०)
भूरिशिखा (वाग्व०)

भूरिशोभा (वाग्व०)
भेकालोक: (वाग्व०)
भोगावलि: (वाग्व० २२३)
भोगावली (वाग्व० २४७)
भौरिकम् (वाग्व०)
भौजङ्गम् (वाग्व०)
भ्रमर: (वाग्व०)
भ्रमरपदकम् (पि० ७/२१ वि०क०, वृ०र०ना० ३/१००)
भ्रमरविलसिता (वाग्व०)
भ्रमरविलसितम् (पिं० ६/२१)
भ्रमरावली (प्रा०पिं०सू० २/१८५)
भ्रमरावलिका (वाग्व०)
भ्रामर: (वृ०र०ना०, वाग्व०)
भ्रू: (वाग्व०)
मकरन्दिका (पि०छ० ७/२१ वि०क० वृ०र०ना० ३/१०१)
मकरमुखी (वाग्व०)
मङ्कुरम् (वाग्व०)
मङ्क्षुमतिका (वाग्व०)
मञ्जरी (पि० ५/२४)
मञ्जरीकावली (वृ०र०)
मञ्जुगीति (वृ०र०ना०)
मञ्जिष्ठा (वाग्व०)
मञ्जीरा (प्रा०पिं०सू० २/२२९, वाग्व०)
मञ्जुभाषिणी (वृ०र० ३/१०४, वाग्व०)
मञ्जुमालती (वाग्व०)
मञ्जुसौरभ (वृ०र० ४/१२ ना०)
मञ्जुहासिनी (पि०छ०सू० ६/४३ वि०क०)
मणिकल्पलता (पिं० ९/१४ वि०क० पृ० १५५)
मणिगुणनिकर: (पिं० ९/१३, वाग्व० २२०)
मणिमुखी (वाग्व०)
मणिबन्धम् (श्रु०बो०, वाग्व०)
मणिनिकर: (वाग्व० २२०)
मणिमञ्जरी (पि० ७/२१ वि०क०, वृ०र०ना०)
मणिमाला (श्रु०बो०, वृ०र० ३१/५४, वाग्व०)
मणिमध्यम् (श्रु०बो०, वाग्व०)
मणिता (वाग्व० १५५)
मणित्थकम् (वाग्व०)
मणिहंस: (वाग्व०)
मण्डरी (कृ०पि० ५/२४ वि०क०)
मण्डलम् (वाग्व०)
मण्डूक: (वाग्व०)
मत्तचञ्चरीकम् (वाग्व०)
मत्ता (पि० ६/१३, वाग्व० ७०, १४१)
मत्ताक्रीडा (पि० ७/२८)
मत्ताली (वाग्व०)
मत्तकोकिलम् (वाग्व०)
मत्तचर्चरी (वाग्व०)
मत्तकूर्परम् (वाग्व०)
मत्तचंचरी (वाग्व०)
मत्तगजेन्द्र: (वाग्व०)
मत्तमयूर (वृ०र० ३/७२, वाग्व०)
मत्सर (वृ०र०ना०)
मत्ताक्रीडम् (वाग्व०)
मत्तमातङ्गलीलाकर: (वृ०र०ना०, वाग्व०)
मत्तेभम् (मं०म०)
मत्तेभविक्रीडितम् (वृ०र०, वाग्व०)
मत्स्य: (वाग्व०)
मदकलिनी (मं०म०)
मदनगृहम् (वाग्व०)
मदनललिता (छ०म० २/५)
मदकरणम् (वाग्व०)
मदलेखा (पि० ६/३ वि०क०,

वृ०र०ना०, वाग्व०)
मदकल: (वाग्व०)
मदन (वृ०र०ना०)
मदनोद्धुरा (वाग्व०)
मदनकम् (वाग्व०)
मदनान्तक (वृ०र०ना०)
मदनमाला (वाग्व०)
मदनया (वाग्व०)
मदनजवनिका (वाग्व०)
मदनमालिका (वाग्व०)
मदाक्रान्ता (वाग्व०)
मदावदाता (वाग्व०)
मदिरा (पि० ७/२५ वि०क०, वृ०र० ३/१०५ ना०, वाग्व०)
मद्रकम् (पि० ७/२६)
मधु (प्रा०पि०सू० २/६, वाग्व०)
मधुगीतिका (मं०म०)
मधुमती (पि० ६/३ वि०क०, वृ०र०ना० ३/११, वाग्व०)
मधुभारत (वृ०र०ना०)
मधुरा (वाग्व०)
मधुमाधवी (मं०म०, वाग्व २०७)
मधुमारकम् (वाग्व०)
मधुमल्ली (वाग्व०)
मधुपालि (वाग्व०)
मधुवारि (वाग्व०)
मध्यक्षामा (पि०सू० ९/५ वि०क०, वृ०र० ३/८३ ना०)
मध्याधार: (वाग्व०)
मनोजशेखर: (वृत्तचन्द्रिका)
मनोरमा (छ०कौ०, वृ०र० ३/२६, वाग्व० ४९)
मनोला (वाग्व०)
मनोहरणम् (वाग्व०)
मनोहर (वृ०र०ना०)
मन्त्रिका (वाग्व०)
मन्थरा (वृ०र० २/८ ना०)
मन्थरि (वाग्व०)
मन्थरायनम् (वाग्व०)
मन्थरम् (वाग्व०)
मन्थानम् (प्रा०पि०सू० २/५१)
मन्थानकम् (वाग्व०)
मन्दर: (प्रा०)
मन्दरि (वाग्व०)
मन्दाकिनी (अ०वृ०र०, मं०म०, वाग्व० १८२)
मन्दाक्रान्ता (पि० ६/१९, वाग्व०)
मन्दार: (तर्कवा०)
मन्दाक्षमन्दरम् (वाग्व०)
मन्देहा (वाग्व०)
मन्मथ: (वाग्व०)
मयूखसरणि: (वाग्व०)
मयूर (वृ०र०ना०)
मयूरसारिणी (पि० ६/१२, वृ०र० ३/२३, वाग्व०)
मयूख (वृ०र०ना०)
मयूरी (वाग्व०)
मयूवदना (वाग्व०)
मरहट्ठा (वाग्व०)
मराल: (वाग्व०)
मरालिका (पि० ६/९ वि०क०कृष्ण:)
मरु (वाग्व०)
मर्कट: (वृ०र०ना०, वाग्व०)
मर्मस्फुरम् (वाग्व०)
मलयसुरभि: (वाग्व०)
मल्लिका (प्रा०पि०सू० २/९१, वाग्व० १३५)
मल्लीपल्लीप्रकाशम् (वाग्व०)

मविपुला (छ०कौ०, वृ०र०ना०, वाग्व०)
मशगा (वाग्व०)
मसृणम् (वाग्व०)
महनीया (वाग्व०)
महाचपलागीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपला गीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपला गीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपला गीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलार्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलार्यागीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलार्यागीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलार्यागीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलार्यागीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोद्गीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोद्गीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोद्गीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोद्गीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोपगीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोपगीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोपगीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोपगीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महाचपलोभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
महामालिका (वाग्व० २३४)
महामालिका (मं०म०)
महालक्ष्मिका (वाग्व० १४१)
महाभुजङ्गः (वाग्व० २५२)
महामाया (वाग्व०)
महातुरा (वाग्व०)
महाराष्ट्र (वृ०र०ना०)
महालक्ष्मी: (प्रा० २/९९)
महासेन: (पि० ७/२१ वि०क०)
महितोज्ज्वला (वृ०र०)
महिमावसायि (वाग्व०)
मही (प्रा०पि०सू० २/८, वाग्व०)
महोन्मुखी (वाग्व०)
महोद्धता (वाग्व०)
महोधिका (वाग्व०)
माकन्दः (तर्कवा०)
माणवकम् (छ०कौ०, वृ०र०ना०, वाग्व०)
माणवकक्रीडितकम् (पि० ६/४)
माणवकक्रीडम् (वाग्व०)
माणविकाविकाशः (वाग्व०)
माणिक्यमाला (मं०म०)
माण्डवकम् (वाग्व०)
मातङ्गी (वाग्व० २७६)
मात्रा (वाग्व० १६६)
मादृशम् (वाग्व० २४२)

मात्रासमकम् (पिं० ४/४२)
मानवती (वाग्व०)
मानबिम्बम् (वाग्व० २५२)
मानसहंसः (पि० ७/११ वि०क०)
मानिनी (वाग्व० ४९, २४७, २५०)
मानमुखी (वाग्व०)
मानाक्रान्ता (वाग्व०)
मानी (वृ०र०ना०)
माया (प्रा०पिं०सू० २/१२२, वाग्व०)
मायाविनी (वाग्व०)
मायासारी (वाग्व०)
मारती (वाग्व०)
माराभिसरणम् (वाग्व०)
मार्दङ्गी (वाग्व०)
मालती (प्रा०पिं०सू० २/५५, वृ०र० ३/६६, वाग्व०)
मालतिका (वाग्व०)
मालनम् (मं०म०)
मालविका (वाग्व०)
माला (प्रा०पिं०सू० २/१२२, वृ०र०ना०, वाग्व०)
मालावलयम् (वाग्व०)
मालाधरः (प्रा०पिं०सू० २/११९, वाग्व०)
मालिनी (पिं० ७/१४, वृ०र०, वाग्व०)
मालीनम् (वाग्व०)
माल्योपस्थम् (वाग्व०)
मितसक्थि (वाग्व०)
मिथुनमाली (वाग्व०)
मिहिरा (वाग्व०)
मीनपदी (वाग्व०)
मुकुलितकलिकावली (वाग्व०)
मुक्तकम् (वाग्व०)
मुखविपुला (वाग्व०)
मुखचपला (वाग्व०)
मुखचपलागीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलागीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलागीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलागीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलान्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपला पथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलार्या (पि० ४/२५)
मुखचपलार्यागीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलार्यागीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलार्यागीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलार्यागीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोद्गीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोद्गीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोद्गीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोद्गीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोपगीतिपथ्या (पि० ४/२३ हला०वि०क०)

मुखचपलोपगीत्यन्तविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोपगीत्यादिविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोपगीत्युभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखचपलोभयविपुला (पि० ४/२३ हला०वि०क०)
मुखला (वाग्व०)
मुग्धम् (वाग्व०)
मुदिरम् (वाग्व०)
मुदावदना (ग०पु०)
मुरजिका (वाग्व०)
मुशकि (वाग्व०)
मुहुरा (वाग्व०)
मृग (वृ०र०ना०)
मृगी (छ०कौ०, वाग्व०)
मृगेन्द्रः (प्रा०, वृ०र० ५/१२ ना० षट्०)
मृगेन्द्रमुखम् (छ०म० २/९, वाग्व०)
मृगेन्दु (वाग्व०)
मृगलतिका (वाग्व० १५५)
मृत्युञ्जयः (अ०वृ०र०)
मृतक (वृ०र०ना०)
मृदवम् (वाग्व०)
मृदुकीला (वाग्व०)
मृदुमालती (वाग्व० २७७)
मृष्टिपादा (वाग्व०)
मेघ (वृ०र०ना०)
मेघध्वनिपूरः (वाग्व०)
मेघविस्फूर्जिता (वृ०र० ३/१०१ ना०, वाग्व०)
मेघाकर (वृ०र०ना०)
मेघालोकः (वाग्व०)
मेथिका (वाग्व०)
मेनावली (वाग्व० १८९)
मेदुरदन्तम् (वाग्व०)
मेरु (वृ०र०ना०)
मेदुरदम् (वाग्व०)
मेरुरूपा (वृत्तसार)
मोटनकम् (पि० ६/१५ वि०क०, वाग्व०)
मोदः (अ०वृ०र०)
मोदकः (प्रा०पि०सू० २/१४१)
मोदकम् (वाग्व०)
मोहप्रलापः (मं०म०)
मोहिनी (वाग्व०)
मौक्तिकदाम (वृ०र० ३/५४, प्रा०पि०सू० २/१३९, वाग्व०)
मौक्तिकमाला (वृ०र० ३/४३, वाग्व० १६६)
मौरलिकम् (वाग्व०)
मौलिस्त्रक् (वाग्व०)
मौलिमालिका (वाग्व०)
यमकम् (प्रा०पि०सू० २/४०)
यमनकम् (वाग्व०)
यवमती (वाग्व० २८२)
यमवती (पि० ५/४२, वृ०र० ४/१२)
यविपुला (वाग्व०)
यवानी (वृ०र० ४/१२ ना०)
यशस्करी (वाग्व०)
युगधारि (वाग्व०)
युग्मविपुला (छ०कौ० वृ०र० २/२५, वाग्व०)
युतकम् (वाग्व०)
युद्धविराट् (वाग्व० २६८)
रक्षस् (वृ०र०ना०)
रजतहंसी (वाग्व० २४७)
रञ्जकम् (वाग्व०)

रञ्जनम् (मं०म०)
रतिकरी (वाग्व०)
रञ्जिता (मं०म०)
रठ्ठा (वाग्व० ९१)
रत्न (वृ०र०ना०)
रति: (मं०म०)
रतिरेखा (वाग्व०)
रतिपदम् (वाग्व० १४४)
रथपदम् (वाग्व०)
रथोद्धता (पिं० ६/२२, वाग्व०)
रमण: (वाग्व०)
रमणीयशिखा (वाग्व० १२९)
रमणम् (प्रा०पि०सू० २/१८)
रम्भा (वाग्व० ९१)
रविपुला (छ०कौ०, वृ०र० २/२८,
वाग्व०)
रविरुचि (वाग्व०)
रजतहंसी (वाग्व०)
रवोन्मुखी (वाग्व०)
रसधारि (वाग्व०)
रसभूम (वाग्व०)
रसधारा (वाग्व०)
रसिकपरिचिता (वाग्व०)
रसिका (वाग्व० ९१)
रसिकरसाला (वाग्व०)
राज (वृ०र०ना०)
राजसेन (वृ०र०ना०)
राजहंसी (कृ०पि० ६/१५ वि०क०)
राजराजी (वाग्व०)
राढि (वाग्व०)
राधिका (वाग्व०)
रामा (प्रा०पि०सू० २/१२२,
वृ०र०ना०, वाग्व० १००)
रामाबद्धम् (वाग्व०)
रात्री (वाग्व० ४७)
रुचिरम् (वाग्व०)
रुक्मवती (पि० ६/११, वाग्व० १४८)
रुचिरा (पि० ७/२, वाग्व० ८५,
१९७)
रुचिवर्णा (वाग्व०)
रुचिमुखी (वाग्व०)
रुद्र (वृ०र०ना०)
रुद्राली (वाग्व०)
रूपवती (छं०म०, वाग्व० १४८)
रूपमाला (प्रा० २/८९)
रूपमाली (प्रा० २/८९)
रूपघनाक्षरी (वृत्तचन्द्रिका)
रूपामाली (वाग्व०)
रूपावलि: (वाग्व०)
रेखा (पि० ७/११ वि०क०)
रेखा (वृ०र०ना०)
रोला (वाग्व०)
रोधकम् (वाग्व०)
लता (पि० ६/४ वि०क०)
लक्षणलीला (वाग्व०)
लक्ष्मी: (पि०सू० ९/५ वि०क०,
वाग्व० ४६, १३४)
लक्ष्मीधरम् (प्रा०पि०सू० २/१३३,
वाग्व १८१)
लज्जा (वाग्व०)
लाजवती (वाग्व०)
ललना (पिं० ८/६, वृ०र०, वाग्व०)
ललामललिताधरा (वाग्व०)
ललितम् (पि० ५/२९, वाग्व० २८१,
२८४)
ललितागमनम् (वाग्व०)
ललितपदम् (वृ०र०, वाग्व०)
ललिता (वृ०र० ३/५९, वाग्व०)

ललितालवालम् (वाग्व०)
ललितपताका (वाग्व०)
ललितललाम (वाग्व०)
लवली (पि० ५/२४, वाग्व०)
लवलीलता (वाग्व०)
लसदसु (वाग्व०)
लाजवती (वाग्व० १४८)
लालसा (पि० ७/२१ वि०क०)
लासिनी (पि० ६/१ वि०क०)
लावण्यलीलाप्लुतम् (वाग्व०)
लास्यकारी (वाग्व०)
लास्यलीला (वाग्व०)
लास्यलीलालय: (वाग्व०)
लीलावतिका (वाग्व०)
लीला (वाग्व० ७६, १२४, १४४)
लीलाकर: (व०र० ३/११३)
लीलाखल: (पि० ७/११ वि०क०)
लीलारत्नम् (वाग्व०)
लीढालर्क: (वाग्व०)
लीलालोल: (वाग्व०)
लीलालेख: (वाग्व०)
लीलाचन्द्रम् (वाग्व०)
लुलितम् (वाग्व०)
लुम्बाक्षी (वाग्व०)
लुप्ता (वाग्व० २६७)
लुब्धाक्षी (वाग्व० १७५)
लोचनम् (पि० ६/९ वि०क०)
लोलम् (वाग्व० १०३)
लोलतनु (वाग्व०)
लोध्रशिखा (वाग्व०)
लोललोलम्बलीलम् (वाग्व०)
लोला (वाग्व० २०७)
लौहाङ्गिनी (वृ०र०ना०)
वक्रगीति: (मं०म०)

वक्त्रानुष्टुप् (वृ०र० २/२१)
वक्त्रम् (वाग्व०)
वक्रावलोक: (वाग्व०)
वज्राली (वाग्व०)
वडवा (वाग्व०)
वरवा (वाग्व०)
वडिशभेदिनी (वाग्व०)
वनवासिनी (वाग्व०)
वनमालिका (वाग्व० १००)
वनिताविनोदि (वाग्व०)
वनिताविलोक: (वाग्व०)
वनिताभरणम् (वाग्व०)
वनिताक्षी (वाग्व०)
वनीपकम् (वाग्व० २५६)
विनताक्षी (वाग्व०)
वन्दारु: (वाग्व०)
वन्दिता (वृत्तसार)
वभ्रू: (वाग्व०)
वयस्य: (वाग्व०)
वरजापि (वाग्व०)
वरतनु: (पि० ८/३, (वृ०र०)
वरयुवति: (पि ८/१२, वृ०र०)
वरशशि (वाग्व०)
वरसुन्दरी (पि० (८/४, वृ०र०)
वरत्रा (वाग्व०)
वरिवशिता (वाग्व०)
वरिवसिता (वाग्व०)
वरीय: (वाग्व०)
वरण (वृ०र०ना०)
वरूथिनी (मं०म०)
वर्करिता (वाग्व०)
वर्गवती (वाग्व०)
वर्ण (वृ०र०ना०)
वर्णबलाका (वाग्व०)

वर्तिकाविलसितम् (वाग्व०)
वर्द्धमानम् (पि० ५/२९, वृ०र०, वाग्व०)
वर्द्धिष्णु (वाग्व०)
वर्मवती (वाग्व० २६४)
वर्मिता (वाग्व०)
वर्हातुरा (वाग्व०)
वल्लरी (छ०कौ०)
वल (वृ०र०ना०)
वलभी (वाग्व० १७७)
वलय (वृ०र०ना०)
वल्गा (वाग्व०)
वला (वाग्व०)
वलि (वृ०र०ना०)
वलित (वृ०र०ना०)
वलिताङ्क (वृ०र०ना०)
वलिवदनम् (वाग्व०)
वलिमुखी (वाग्व०)
वलीकेन्दु (वाग्व०)
वल्लवीविकास: (वाग्व०)
वल्वजम् (वाग्व०)
वल्गुजम् (वाग्व०)
वशंवद: (वाग्व०)
वंशपत्रपतितम् (पि० ७/१८)
वंशस्था (पि० ६/३८)
वंशस्थानिलम् (मं०म०)
वसनविशाला (वाग्व०)
वसन्ततिलका (पिं० ७/८, वाग्व०)
वसन्तहास: (वाग्व०)
वसन्तमालिका (वाग्व०)
वसु (वृ०र०ना०)
वसुकला (वाग्व०)
वसुपदमञ्जरी (वाग्व०)
वसुमती (छ०कौ०, वृ०र० ३/१०, वाग्व०)
वाटिका (वाग्व० २०५)
वाटिकाविकास: (वाग्व०)
वाटिकाविलास: (वाग्व०)
वाणी (प्रा०पिं०सू० २/१२२)
वाणीभूषा (वाग्व०)
वाणिनी (वृ०र० ३/९२, वाग्व०)
वाणीवाण: (वाग्व०)
वातुलि (वाग्व०)
वातोर्मी (पि० ६/२०, वाग्व०)
वात्या (वाग्व०)
वानर: (वाग्व०)
वानवासिका (पि० ४/४३)
वान्तभार: (वाग्व०)
वामवदना (वाग्व०)
वारण (वृ०र०ना०)
वारवती (वाग्व०)
वारवाणावृत्तम् (वाग्व० १२३)
वारयात्रिकम् (वाग्व०)
वारि (वाग्व०)
वारिधियानम् (वाग्व०)
वारिशाला (वाग्व०)
वार्ताहारी (वाग्व०)
वाल (वृ०र०ना०)
वार्द्धि (वाग्व०)
वासन्ती (पि०सू० ७/५ वि०क०, वाग्व०)
वासिता (वाग्व०)
वासकि (वाग्व०)
वासण्ठ (वृ०र०ना०)
वासरमणिका (वाग्व०)
वासविलासवती (वाग्व०)
वासकलीला (वाग्व०)
वासववन्दिता (वाग्व० २७६)

वासववासिनी (वाग्व०)
वासिनी (वाग्व० २७६, २७८)
वाहान्तरितम् (वाग्व०)
वाहिनी (पि० ६/४२)
विकचवती (वाग्व०)
विकसितपद्मावली (वाग्व०)
विकत्थनम् (वाग्व०)
विकलबकुलवल्ली (वाग्व०)
विकुण्ठकण्ठ: (वाग्व०)
विगाथ (वृ०र०ना०)
विगाहितगेहम् (वाग्व०)
विगाथा (वाग्व० ४४)
विगीति: (वृ०र० २/११ ना०, मं०म०)
विजय (वृ०र०ना०)
विजयपरिचया (वाग्व०)
विज्जोहा (छ०कौ०)
विजोहा (वाग्व०)
विमोहा (वाग्व०)
विट् (वाग्व०)
विडाल: (वाग्व०)
वितानम् (पि० ५/८, वाग्व० १३०)
वितानिता (वाग्व०)
विदला (वाग्व०)
विदग्धक: (पि० ६/१ वि०क०)
विदग्धसुभङ्गी (वाग्व०)
विद्या (वाग्व० ४६, १३३)
विद्याधर: (प्रा०पिं०सू० २/१२८)
विद्याधार: (वाग्व०)
विद्युत् (वृ०र० ३/७५ ना०)
विद्युन्माला (पिं० ६/६, वाग्व०)
विद्युल्लेखा (वृ०र० ३/९, वाग्व०)
विद्युदाली (वाग्व०)
विद्रुमदोला (वाग्व०)
विधारिता (वाग्व०)
विधुरवितानम् (वाग्व०)
विधुरविरहिता (वाग्व०)
विधुनिधुवनम् (वाग्व०)
विध्वङ्कमाला (वृ०र०प०)
विनन्दिनी (वाग्व०)
विनयविलास: (वाग्व०)
विनिन्द्रसिन्धुर: (वाग्व०)
विन्ध्यारूढम् (वाग्व०)
विपथ्या (वाग्व०)
विपन्नकदनम् (वाग्व०)
विपन्नकलनम् (वाग्व०)
विपन्नकवलम् (वाग्व०)
विपरीताख्यानकी (पि० ५/३८, वाग्व०)
विपरीतपथ्यावक्त्रम् (पिं० ५/१५, वृ०र० २/२३, वाग्व० २९७)
विपाकवती (वाग्व०)
विपिनतिलकम् (पि० ७/११ वि०क०, वाग्व०)
विपुलपालिका (वाग्व०)
विपुला (वृ०र० २/४, वाग्व०)
विपुलायितम् (वाग्व०)
विपुलानुष्टुप् (पि० ५/१९)
विपुलार्या (पि० ४/२३)
विप्लुतशिखा (वाग्व०)
विबुधप्रिया (पि० ८/१६)
विमति (वृ०र०ना०)
विमोहा (वा०भू०)
विभा (वाग्व०)
विमला (वाग्व०)
विमुखी (वाग्व० २६८)
विमर्श: (वाग्व०)
विमानिनी (वाग्व०)
वियद्वाणी (वाग्व०)
वियोगवती (वाग्व०)

विरला (वाग्व०)
विरया (वाग्व०)
विरलम् (वाग्व०)
विरतिमहती (वाग्व०)
वीरला (वाग्व०)
विरतप्रभा (वाग्व०)
विरलोद्धता (वाग्व०)
विरहविरहस्यम् (वाग्व०)
विराजिकरा (वाग्व०)
विराट् (पिं० ६/९ वि०क०, वाग्व०)
विरामवाटिका (वाग्व०)
विराजितम् (वाग्व० २५१)
विरुदरुतम् (वाग्व०)
विरेकि (वाग्व०)
वियोगिनी (वाग्व० २६५)
विरोहि (वाग्व०)
विरोधिनी (वाग्व०)
विलम्बितमध्या (वाग्व०)
विलम्बनीया (वाग्व०)
विलम्बललितम् (वाग्व०)
विलाश: (छ०मं०)
विलास: (मं०म०, वाग्व० २४९)
विलासवास: (वाग्व०)
विलासवापी (वाग्व०)
विलासिती (पिं० ६/२६)
विलुलितमञ्जरी (वाग्व०)
विलुलितवनमाला (वाग्व०)
विवरविलसितम् (वाग्व०)
विशल्यम् (वाग्व०)
विशदच्छाय: (वाग्व०)
विशकलिता (वाग्व०)
विशकण्ठी (वाग्व०)
विशालप्रभम् (वाग्व०)
विशालान्तिकम् (वाग्व०)
विशालाम्भोजाली (वाग्व०)
विशिखलता (वाग्व०)
विशेषकवलितम् (वाग्व०)
विशेषस्तबकम् (वाग्व०)
विशेषिका (वाग्व० २२५)
विशेषितम् (वाग्व०)
विशेषशालीनम् (वाग्व०)
विश्लोक: (पि० ४/४४, वाग्व०)
विश्वम् (अ०वृ०र०)
विश्वमुखी (वाग्व०)
विश्वप्रभा (वाग्व० २८१)
विश्वविराट् (वाग्व०)
विश्वविश्वास: (वाग्व०)
विश्ववाट् (वाग्व०)
विश्वा (वृ०र०ना०)
विषमव्याली (वाग्व०)
विषाणाश्रितम् (वाग्व०)
विष्टम्भ: (वाग्व०)
विष्णु (वाग्व० १०५)
विष्वग्वितानम् (वाग्व०)
विससि (वाग्व०)
विसार: (वृ०र० ३/१२, तर्कवा०)
विस्रंसि (वाग्व०)
विस्तार (वृ०र०ना०)
विस्मिता (पि० ८/१८, वृ०र० ५/१२ ना०)
विहाया (वाग्व०)
विहारिणी (वाग्व०)
वीणादण्डम् (वाग्व०)
वीर (वृ०र०ना०)
वीरवटु (वाग्व०)
वीरणमाला (वाग्व०)
वीरलक्ष्मी: (प्रा० २/७७)
वीरविश्राम: (वाग्व०)

वीरविमानम् (वाग्व०)
वीरनीराजना (वाग्व०)
वीरविक्रान्तः (वाग्व०)
वीरा (वाग्व०)
वीरान्ता (वाग्व०)
वीरासिका (वाग्व० १८३)
वीरू (वाग्व०)
वीवधः (वाग्व०)
वृत्तम् (पिं० ७/२४, वृ०र० २/१०३)
वृत्ता (वै०पाठ पि०, वाग्व० १६२)
वृत्तहारि (वाग्व०)
वृत्तगन्धि (वाग्व०)
वृतमुखी (वाग्व०)
वृद्धिः (प्रा०पि०सू० २/१२२)
वृद्धवामा (वाग्व०)
वृन्ता (पिं० ६/२४, वृ०र० ३/४०)
वृन्तम् (वाग्व०)
वृन्दा (वाग्व०)
व्रीडा (पि० ६/१ वि०क०)
वेगवती (पि० ५/३४, वाग्व०)
वेताल (वृ०र०ना०)
वेधाः (वाग्व०)
वेलान्तरम् (वाग्व० २१६)
वेल्लितवेलम् (वाग्व०)
वेलाञ्चलम् (वाग्व० २१६)
वेशम्भारि (वाग्व०)
वेशि (वाग्व०)
वेश्याप्रीतिः (मं०म०)
वेषि (वाग्व०)
वैकुण्ठः (तर्कवा०, वृ०र० ३/११३ ना०)
वैतालीकम् (वाग्व० २८४)
वैतालीयम् (पि० ४/३२, वाग्व०)
वैतालीयचारुहासिनी (छ०कौ०)
वैतालीयदक्षिणान्तिका (छ०कौ०, वृ०र०)
वैतालीयप्रवृत्तकम् (छ०कौ०)
वैतालीयप्राच्यवृत्तिः (छ०कौ०)
वैतालीयापरान्तिका (छ०कौ०)
वैतालीयोदीच्यवृत्तिः (छ०कौ०)
वैतिका (वृ०र०, पि० ६/२५ वि०क०)
वैनसम् (वाग्व०)
वैयाली (वाग्व०)
वैश्वदेवी (पि० ६/४१, वृ०र० ३/६२ वाग्व०)
वैसारुः (वाग्व०)
वैसारम् (वाग्व०)
वैसारी (वाग्व०)
वंशारोपी (वाग्व०)
वंशस्था (पि० ६/२८)
वंशस्थम् (वृ०र० ३/४६, वाग्व०)
वंशस्थबिलम् (मं०म०, वाग्व०)
वंशमूलम् (वाग्व०)
वंशलः (वाग्व०)
वंशपत्रम् (वाग्व०)
वंशपत्रपतितम् (पि० ७/१८, वाग्व०)
वंशलोन्नता (वाग्व०)
वंशोत्तंसा (वाग्व०)
व्याकोशकौशलम् (वाग्व०)
व्याघ्रः (वाग्व०)
व्यायोगवती (वाग्व०)
व्यालः (वृ०र० ३/११३, वाग्व०)
व्याहारि (वाग्व०)
शक (वृ०र०ना०)
शकायतनम् (वाग्व०)
शक्र (वृ०र०ना०)
शकुन्तकुन्तलः (वाग्व०)
शङ्कावली (वाग्व०)

शङ्खः (वृ०र० ३/११३, वाग्व०)
शङ्खद्युति (वाग्व०)
शंखधारी (छ०कौ०, वाग्व० १०७)
शङ्खनारी (प्रा०पि०सू० २/५३)
शन्तनु (वाग्व०)
शम्पा (वाग्व०)
शब्द (वृ०र०ना०)
शम्बरधारी (वाग्व०)
शम्बरम् (वाग्व०)
शम्बूकः (वाग्व०)
शम्भुः (प्रा०पि०सू० २/२६३, वृ०र०ना०, वाग्व०)
शर (वृ०र०ना०)
शरगीतिः (वाग्व०)
शरभम् (प्रा०पि०सू० १/६४, वाग्व० २२०)
शरभः (प्रा०पि०सू०, वृ०र०ना०)
शरलीढा (वाग्व०)
शरत् (वाग्व०)
शरमेया (वाग्व०)
शरकल्पा (वाग्व०)
शरहतिः (वाग्व०)
शरकाण्डप्रकाण्डम् (वाग्व०)
शरभूरिणी (वाग्व०)
शरक्षामा (वाग्व०)
शरावती (वाग्व०)
शर्म (वाग्व०)
शलभलोला (वाग्व०)
शल्लकप्लुतम् (वाग्व०)
शल्कशकलम् (वाग्व०)
शल्य (वृ०र०ना०)
शशधरम् (वाग्व०)
शशिकला (वृ०र० ३/८४, वाग्व०)
शशि (वृ०र०ना०)
शशिकरी (वाग्व०)
शशिप्रभा (प्रा०वि०क० पृ० १०३)
शशिवदना (पि० ८/१९, वाग्व०)
शशी (प्रा०, पि०सू० २/१६, वाग्व० ९९)
शर्ङ्गिका (प्रा० २/७९)
शाखोटकि (वाग्व०)
शान्तसुरभिः (वाग्व०)
शायिनी (वाग्व०)
शारदचन्द्रः (वाग्व०)
शार्दूलः (वाग्व०)
शार्दूलम् (वृ०र०ना० ३/१००)
शार्दूलललितम् (छ०मं०, वाग्व०)
शार्दूलविक्रीडितम् (पि० ७/२२, वाग्व०)
शाल (वृ०र०ना०)
शालभञ्जिका (वाग्व०)
शाला (प्रा०पि०सू० २/१२२)
शालिनी (पि० ६/१९, वाग्व०)
शालूरम् (वृत्तचन्द्रिका)
शिखण्डितम् (छ०कौ०)
शिखरिणी (पिं० ७/२०, वृ०र० ३/९३, वाग्व०)
शिखा (पिं० ४/४९, वृ०र० २/३९, वाग्व०)
शिखिलिखिता (वाग्व०)
शिप्रा (वाग्व०)
शिशुभृता (ग०पु०)
शीर्षा (प्रा०पि०सू० २/६५, वाग्व० ११३)
शिला (वाग्व०)
शिलीमुखोज्जृम्भितम् (वाग्व०)
शिव (वृ०र०ना०)
शिविका (वाग्व०)

शिशिरशिखा (वाग्व०)
शिशुभरणम् (वाग्व०)
शिशुमुखी (वाग्व०)
शिशुवनिता (वाग्व०)
शीर्ष (वृ०र०ना०)
शीर्षविरहिता (वाग्व०)
शीर्षा (वाग्व० ११३)
शृङ्खलवलयितम् (वाग्व०)
शुकवनिता (वाग्व०)
शुकावली (वाग्व०)
शुद्धविराडार्षभम् (पि० ५/३०, वाग्व०)
शुद्धध्वनिः (वाग्व०)
शुद्धविराट् (पि० ६/६ वृ०र० ३/२१, वाग्व० १५१)
शुद्धगा (वाग्व० १२९)
शुद्धान्तम् (वाग्व०)
शुद्धविराड्वृषभम् (वृ०र० ५/११ ना०)
शृङ्गारिणी (वाग्व० १८१)
शुनकम् (वाग्व०)
शूरम् (वृ०र०ना०, वाग्व० १२०)
शुभम् (मं०म०)
शुभङ्कर (वृ०र०ना०)
शुभचरितम् (वृ०म०को०)
शेफाली (वाग्व०)
शेखर (वृ०र०ना०)
शेषराजः (वि०क०, पि० ६/२)
शेषा (प्रा०पि०सू० २/४२, वाग्व० १०६)
शेषापीडम् (वाग्व०)
शेष (वृ०र०ना०)
शैलशिखा (पि० ८/११)
शोभा (पि० ७/२३, वि०क०, वृ०र०ना० ३/१०३ वाग्व० ५०, २४१)
श्येनः (वाग्व०)
श्येनी (पि० ६/२५, वाग्व०)
श्वेतमणिमाला (वाग्व० १७८)
श्वा (वृ०र०ना०, वाग्व०)
श्येनिका (वृ०र० ३/४२, वाग्व०)
श्रीः (प्रा०पि०सू० २/१, वृ०र० ३/१, ३/३६, वाग्व० ९८, १६६)
श्रद्धरा (वाग्व०)
श्रद्धरान्ता (वाग्व०)
श्रमितशिखण्डी (वाग्व०)
श्रवणाभरणम् (वाग्व०)
श्रितकमला (वाग्व०)
श्रीमती (वाग्व०)
श्रुतकीर्तिः (वाग्व०)
श्रोणी (वाग्व०)
षट्पदेरितम् (वाग्व०)
षट्पदा (वृ०र० ४/१२ ना०)
षट्पदम् (वाग्व०)
सङ्कीर्णविपुला (पि० ५/१९ हला०)
सङ्ग्रामः (वृ०र० ३/११३ ना०)
सङ्गीति (वृ०र० २/११ ना०)
सकल (वृ०र०ना०)
सङ्कीर्णविपुलावक्त्र (वृ०र० २/३० ना०)
सती (वाग्व०)
स्रक् (वाग्व० २२०)
सत्कारः (वृ०र० ३/११३ ना०)
सत्केतुः (वाग्व०)
सकृद्बोधा (वाग्व० १४७)
सन्ध्या (वाग्व०)
सन्दोहः (तर्क०, वृ०र० ३/११३ ना०)
सपादी (वाग्व०)
समयप्रहिता (वाग्व०)
समयवती (वाग्व०)

समर (वृ०र०ना०)
समानिका (प्रा०पि०सू० २/५९ वृ०र० ३/१६ वाग्व०)
समानी (पि० ५/६)
समाहितम् (वाग्व०)
सम्मदाक्रान्ता (वाग्व० २७९)
सम्मोहा (वाग्व० १०२)
सम्मोहासार: (वाग्व० १०२)
सम्भाषा (वाग्व० १३६)
सम्भासा (वाग्व० १३६)
समित् (वाग्व०)
समुद्र: (वृ०र० पञ्चिका)
समुद्रकान्ता (वाग्व०)
समुद्रतता (वृ०र० ३/१०१ ना०)
सम्पाक: (वाग्व०)
सम्बुद्धि: (वाग्व०)
सम्बोधा (वाग्व०)
समृद्धि: (वृ०र० ३/११)
सम्मोहा (प्रा०पि०सू० २/३४)
सरि (वाग्व०)
सरभ: (वाग्व०)
सरलम् (कृ०पि० ५/२८ वि०क०, मं०म०)
सरलांघ्रि (वाग्व०)
सरघा (वाग्व०)
सरस (वृ०र०ना०)
सरसमुखी (वाग्व०)
सरमासरणि: (वाग्व०)
सरसी (पि० ७/२५ वि०क० वाग्व० ५१, २४४)
सरसीकम् (वाग्व०)
सराविका (वाग्व०)
सरोजवनिका (वाग्व०)
सरोजावली (वाग्व०)
सर्प: (वृ०र०ना०, वाग्व०)
सलेखा (वाग्व०)
सलिलनिधि: (पि० ७/२५ वि०क०, वृ०र० ३/१०४ ना०)
सवासनि (वाग्व० १२५)
सविपुला (पि० ५/१९ हला०, वाग्व०)
सव्याली (वाग्व०)
सहजा (वाग्व०)
सहस्राक्ष (वृ०र०ना०)
सहेलिका (वाग्व०)
साक्षी (वाग्व०)
साचीकृतवदना (वाग्व०)
सानन्द: (वृ०र०ना०)
साधार (वृ०र०ना०)
सान्द्रपदम् (छ०कौ०, वाग्व०)
सामपदा (वाग्व०)
सामिका (वाग्व०)
सार: (वृ०र०ना०)
सारङ्ग: (प्रा०पि०सू० २/१३७, वृ०र०ना०)
सारङ्गी (वाग्व० २१४)
सारङ्गिका (प्रा० २/७९, वाग्व० १४३)
सारवती (प्रा० २/९५, वाग्व० १५४)
सारस्वती (वाग्व०)
सारसा (प्रा० २/७९)
सारु: (प्रा०पि०सू० २/१०, वाग्व० ९८)
सारस (वृ०र०ना०
सारसी (वृ०र०ना०)
सारसनावली (वाग्व०)
सारवरोहा (वाग्व०)
सारावनदा (वाग्व०)
सारिणी (वाग्व०)

सारिका (वाग्व०)
सार्द्धपदा (वाग्व०)
सावटु (वाग्व०)
साला (वाग्व० १९४)
साहूति: (वाग्व०)
सिक्तमणिमाला (वाग्व०)
सितस्तबक: (वाग्व०)
सिद्ध (वृ०र०ना०)
सिद्धकम् (पि० ७/२५ वि०क०,
वृ०र० ३/१०४ ना०)
सिद्धा (वृ०र०ना०)
सिद्धि: (वाग्व०)
सिन्धुरया (वाग्व०)
सिन्धुक: (वाग्व०)
सिन्धुसौवीरम् (वाग्व०)
सिंह: (वृ०र०ना०)
सिंहपुच्छम् (वाग्व०)
सिंहनाद: (वृ०र०प०, वाग्व०)
सिंहलेखा (वाग्व०)
सिंहविक्रीडितम् (मं०म०)
सिंहविक्रान्त (वृ०र० ३/११ ना०)
सिंहविलोकितम् (वाग्व०)
सिंहावलोक (वृ०र०ना०)
सिंहिनी (वृ०र०ना०, वाग्व०)
सिंही (वाग्व०)
सिंहोद्धता (मं०म०)
सिंहोन्नता (पि० ७/९, वाग्व० २०७)
सीधु: (वाग्व०)
सुकर्णपूरम् (वाग्व०)
सुकृति: (वाग्व० १६२)
सुकेशठम् (पि०सू० ७/५ वि०क०,
वृ०र० ३/८३ ना०)
सुखशैलम् (वाग्व०)
सुखकारिका (वाग्व०)
सुखलेखकम् (पि० ७/११ वि०क०)
सुखेला (वाग्व०)
सुगीति (वृ०र०ना०)
सुगीतिका (मं०म०)
सुगन्धि: (वाग्व०)
सुगणम् (वाग्व० ४०)
सुचन्दामा (छ०कौ०)
सुतलम् (वाग्व०)
सुचित्रम् (वाग्व० १६८)
सुदायि (वाग्व०)
सुधा (पि० ७/२१ वि०क०,वृ०र० ३/
१०० ना०, वाग्व०)
सुधाधारा (वाग्व०)
सुधाधरा (वाग्व०)
सुधालहरी (मं०म०)
सुनन्दिनी (ग०पु० १/२०९/२१)
सुन्दरी (प्रा०पि०सू० २/२७१, वाग्व०
२०७)
सुरमालिका (वाग्व० २६५)
सुपवित्रम् (पि० ७/५ वि०क०, वृ०र०
३/८३ ना०)
सुभद्रिका (छ०कौ०, वाग्व०)
समुद्रिका (वाग्व०)
सुभद्रावतरणि: (वाग्व०)
सुभाग: (वाग्व० २४९)
सुमति: (वृ०र० ३/१०)
सुमालतिका (वा०भू०)
सुमुखी (वृ०र० ३/९, वाग्व०)
सुमोहिता (वाग्व०)
सुरयानवती (वाग्व०)
सुरनर्तकी (मं०म०)
सुरसा (पि० ७/२२ वि०क०, वाग्व०)
सुरहिता (वाग्व०)
सुरद्रु: (वाग्व०)

सुरामः (वृ०र०ना०)
सुराक्षी (वाग्व०)
सुराढ्या (वाग्व०)
सुरि (वाग्व०)
सुललिता (मं०म०)
सुललितम् (वाग्व०)
सुलूः (वाग्व०)
सुवदना (पिं० ७/२३, वाग्व०)
सुवनमालिका (वाग्व०)
सुवासः (प्रा०पि०सू० २/६१)
सुविलासा (छ०कौ०)
सुषमा (प्रा० २/९७, वाग्व०)
सुशर (वृ०र०ना०)
सुविहिता (वाग्व०)
सुवृत्तिः (वाग्व०)
सूतशिखा (वाग्व०)
सूरसूचकः (वाग्व०)
सूरिणी (वाग्व०)
सूर्य (वृ०र०ना०)
सृतमधु (वाग्व०)
सृक्कणम् (वाग्व० १८)
सैरवी (वाग्व०)
सेनिका (वा०भू०, वाग्व० १६७)
सैनिकम् (वाग्व०)
सोत्कण्ठ (वृ०र०ना०)
सोपाधि (वाग्व०)
सोमराजी (छ०कौ०, वाग्व०)
सोमश्रुति (वाग्व०)
सोरट्ठा (वाग्व० ७७)
सौम्या (पि० ४/५१)
सौरभि (वाग्व०)
सौरभकम् (पि० ५/२६)
सौरकान्ता (वाग्व०)
सौरभवर्द्धिनी (वाग्व०)
सौरभशोभासारः (वाग्व०)
सौरणम् (वाग्व०)
सौरलकम् (कृ०)
सौराष्ट्री (वाग्व०)
सौराष्ट्रम् (वाग्व०)
सौराष्ट्रा (वृ०र०ना०)
सौरभसञ्चितम् (वाग्व० २६३)
सौराङ्गी (वाग्व०)
सौदामनदाम (वाग्व०)
सौभगकला (वाग्व०)
संकलिः (वाग्व०)
संकल्पाधारः (वाग्व०)
सङ्कल्पासारः (वाग्व०)
सङ्ग्रामः (वाग्व० ३०४)
संगमवती (वाग्व०)
संपातशीला (वाग्व०)
संभृतशरधिः (वाग्व०)
संमदमालिका (वाग्व०)
संमदवदना (वाग्व०)
संलक्ष्यलीला (वाग्व०)
संवासनि (वाग्व०)
संश्रयश्रीः (वाग्व०)
संसृतशोभासारः (वाग्व०)
संस्कारः (वृ०र०ना०)
संहतिका (वाग्व०)
संहारः (वृ०र०ना०)
संयता (प्रा०पि०)
संयुगा (वाग्व०)
संयुता (प्रा०पि०, वाग्व० १५२)
संहारी (वाग्व० १०३
संज्ञाश्वम् (प्रा०)
स्कन्ध (वृ०र०)
स्कन्धकम् (प्रा०पि०सू० १/६३, वृ०र०ना०)

स्तरधि (वाग्व०)
स्तरंगी (वाग्व०)
स्त्री (छ०कौ०, वृ०र० ३/
२, वाग्व०)
स्त्रक् (वृ०र० ३/८५,)
स्त्रग्धरा (पि० ७/२५, वृ०र०
३/१०४, वाग्व०)
स्त्रग्विणी (पि० ६/३८, वाग्व०)
स्थाली (वाग्व०)
स्थूला (वाग्व०)
स्निग्ध (वृ०र०ना०)
स्नु (वाग्व०)
स्नेहन (वृ०र०ना०)
स्निग्धा (पि० ६/७ वि०क० श्रीकृष्णः)
स्फुटघटिता (वाग्व०)
स्फोटक्रीडम् (वाग्व०)
स्मारमालाकुलः (वाग्व०)
स्वनकरी (वाग्व०)
स्वरगीतिका (मं०म०)
स्वागता (पि० ६/२३, वाग्व०)
स्वरवर्षिणी (वाग्व०)
स्वर्णाभरणम् (वाग्व०)
स्विदा (वाग्व०)
स्विन्नशरीरम् (वाग्व०)
स्वैरिणीक्रीडनम् (मं०म०)
हठिनी (वाग्व०)
हर (वृ०र०ना०)
हरनर्तनम् (वृ०र०)
हरवनिता (वाग्व०)
हरणि (वाग्व०)
हरम् (वाग्व० १०५)
हरिः (पि० ७/१६ वि०क०,
वृ०र० ३/९९
ना०, वाग्व० १०१)
हरिगीतकम् (वाग्व०)
हरिण (वृ०र०ना०)
हरिणप्लुतम् (पि० ७/२१ वि०क०,
वृ०र० ३/१०० ना०, वाग्व०)
हरिणप्लुता (पिं० ५/३९)
हरिणी (पि० ७/१६, वृ०र०,
वाग्व० ५०, २२९)
हरिपदम् (वाग्व०)
हतपदम् (वाग्व० १३४)
हरित् (वाग्व०)
हरिकान्ता (वाग्व०)
हरिणीप्लुता (वाग्व०)
हरिप्लुता (वाग्व०)
हर्षिणी (वाग्व०)
हलमुखी (पिं० ६/८, वृ०र०,
वाग्व०)
हलि (वाग्व०)
हलोद्गता (वाग्व०)
हाकलिः (वाग्व०)
हाकलिका (वाग्व० १९४)
हार (वृ०र०ना०)
हाटकशालि (वाग्व०)
हारावतारः (वाग्व० २४१)
हारिणी (वाग्व०)
हारवती (पि० ६/९ वि०क०)
हारी (प्रा०पि०सू० २/३६)
हारीतबन्धः (प्रा०पि०सू० २/३६)
हासिका (वाग्व०)
हिन्दीरम् (वाग्व०)
हीनताली (वाग्व० २७३)
हीर (वृ०र०ना०)
हीरकः (वाग्व०)
हीरम् (वाग्व०)
हीरलम्बि (वाग्व०)

हीरकहारधरम् (वाग्व०)
हीराङ्गी (वाग्व०)
हेतिः (वाग्व०)
हेमरूपम् (वाग्व०)
हेमहासः (वाग्व०)
हेममिहिका (वाग्व०)
होला (वाग्व०)
होडपदा (वाग्व०)
हंसः (प्रा०पि०सू० २/३८, वाग्व० १०३)
हंसरुतम् (वृ०र० ३/१५, वाग्व०)
हंसमाला (पि० ६/३ वि०क०, वृ०र० ३/११ ना०, वाग्व०)
हंसश्येनी (पि० ७/५ वि०क०)
हंसी (वाग्व० ५१, १५५, २४७, प्रा०पि०, वृ०र०ना०)
ह्रीः (वाग्व०)
ह्रीणहैयङ्गवीनम् (वाग्व०)

गायत्रीमुखविपुलानुष्टुप्पादचपलोष्णिगुष्णीषा ।
पथ्यार्या बृहती नः साऽवतु छन्दोमयी देवी ।।
यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्जगती पङ्क्तिः कुकुद्मती बृहती ।
कृत्या धृत्योत्कृत्या छन्दोमूर्तिः शिवो जयति ।।इति।

परिशिष्ट–१

उद्धृत कृति-ग्रन्थकार-नामादि अनुक्रमणी

अ पृष्ठ संख्या

अगस्त्य ७, २६४
अग्निपुराण ६५, ७०, १७१, ३०९, ३१०, ३११
अच्युतचरित महाकाव्य १४९
अजितशान्तिस्तव २१७
अतिच्छन्द ४३
अतिनिचृत् ३४
अथर्ववेद ४८, ५९
अनन्त १७४
अन्य छन्द १६२
अन्वितार्थप्रकाशिका १७७
अपरान्त ७०
अभिक्रमण २९
अभिधानरत्नमाला ११४
अभिधावृत्तिमातृका ९८
अभिनवगुप्त ३५, ४३
अभिनवभारती ३५, ९७
अभिनन्द २९५
अभिनववृत्तरत्नाकर १६९
अमरचन्द्रसूरि १३९
अमरदास १८९
अमृतसंजीवनी (मृतजीवनी) १६९
अयोध्याप्रसाद १२३
अरिसिंह १४१
अर्जुन २२६
अर्थ २९, ३९
अर्धसमवृत्त २४१
अलङ्कार प्रबोध १४०
अवचूरिका १३४
अवधान सरस्वती १५४
अशोक ७५
अश्वतर २०६
असग १०६
अक्षर ४३
अक्षरानुसारिणी शैली ३०९
अक्षरछन्द २३८
अक्षरजाति-संज्ञा २५०
अक्षरवृत्ति २५०

आ

आग्नेय छन्दःसार ६४
आतपत्र २९८
आत्मस्वरूप १८९
आनन्दनाथ १९१
आम्नाय ३०९
आम्नाय परम्परा २६२
आर्या २६९

इ

इन्द्रवंशा २९३

ई

ईशानदेव ३११

उ

उक्ताद्या जातय: १७७
उक्थशास्त्र २९
उज्ज्वलनीलमणि १४९
उत्पलभट्ट १२, ९६, १२६
उदलक १७९, २६४
उद्योत १५६
उपजाति २४८
उपनिदानसूत्र ३०
उभयच्छन्द २४०
उवट ३५

ऋ

ऋक् ५
ऋक्प्रातिशाख्य १३, ३२
ऋक्सर्वानुक्रमणी २०, ३३
ऋगर्थदीपिका २०

ऐ

ऐतरेय ब्राह्मण २८६

क

ककुम्न्यङ्कुशिरा: ३४
कण्ठाभरणकार १५०, २६०
कपिल १०६
कंसारिशतक १४९
कम्बल २०६
करुणाकरदास १२३
कर्पूरमञ्जरी ३०१
क्रम २६०
कलाकलाप १४०
कलापक २४५
कलि २८
कविकल्पलता १४३, २६२
कविकौस्तुभ १६८
कविचिन्तामणि १२३
कविदर्पण १४२, २१७
कविदर्पणकार २४९, २५४
कविदर्पण वृत्ति २४०
कविरहस्य ११३
कविशिक्षा १४०
कविशिक्षावृत्ति १४०
कविसुन्दर ७८, २७३
कविसार प्रकरण २२६
कविसारटीका निश्चय २२६
कविसम्प्रदाय २४७, २६१
कवीन्द्राचार्य सरस्वती २८६
काञ्ची २९३
कादम्बरी २८५
काम: २६९
कात्यायन १२, २०, ३२, ३३, ३४, ४२, ६३
कालिदास १५, ९८, १००, २६२, ३०४, ३०१, ३००, १३०, ११६
कारिका १५२
काव्यकला ८५, १९५, २९६
काव्यकल्पलता १४०, १४३
काव्यकल्पलतापरिमल १४०
काव्यलतामञ्जरी १४०
काव्यानुशासन १३३, २१९
काश्यप ६३, ७८
किरातार्जुनीय २९६
कीर्तिलता १४६

कीर्तिसिंह १४६
कुञ्चन् १५२
कुटज २९३
कुन्दनलाल शर्मा ८५
कुमारदास ३०२
कुमारपाल १३३
कुमारपालचरित १३३
कुसुमलतावेल्लिता २९३
केदारभट्ट ११८
केदारनाथ २१
केसर २९४
क्षीरस्वामी ५
क्षेमेन्द्र ६४, ११५, ११७, २९२
कोंकण ७१
कौत्स ७५
कृत् २८
कृष्णराज ११३
कृष्णराम १७६
कृष्णराम भट्ट १७८
कृष्ण पण्डित १६८, १७६
कृष्ण शर्मा १६३
कृष्णसार १२३
कृष्णीय विवरणाख्य टीका २२५

ख

खुडिगदेव ११४

ग

गङ्गादास ७, १४८
गङ्गालहरी २९९
गङ्गासहाय १७७
गण २५१
गणच्छन्द २३९
गणस्वामी ९४, २५४
गणवृत्त २४१
गद्यच्छन्द २८६
गम्भीरराज दीक्षित ७६
गरुडाम्नाय ३०९
गरुडपुराण ६७, १७१, ३११
गार्ग्य ३०
गाथा ३०७, २१४, २४५, २४६
गाथालक्षण २१२, २१४
गीतगोविन्दकार ९८
गायत्रीपूर्वपञ्चक ४३
गुणस्थान कुमारोह २२५
गोपाल २०६
गोपालशतक १४९
गोविन्द २२६
गोविन्द दैवज्ञ १६५
गोविन्द विरुदावली १५६
गोसल २२६

च

चतुर्मुख २२६
चन्दनदास १७८
चन्द्रकीर्तिसूरि २२६
चन्द्रालोक ९८, १४९
चन्द्रदेव १६४
चन्द्रमोहन घोष १९७
चन्द्रलेखा २९३
चन्द्रशेखरभट्ट १५५, १५६, १५७
चन्द्रोद्योत २९४

चिन्तामणि १६
चित्रा २९३
चित्रमाला २९४

छ

छन्द: २९, ४६
छन्द:कन्दली २२६, २२७
छन्द:कोश २२५, ३०६
छन्द:कौस्तुभ ७६, १६९, १७५, २२७, २७५
छन्द:कौमुदी १९४
छन्दस्कलावती १९८
छन्द:परिशिष्ट २९, १७५
छन्द:पुरुष १
छन्द:प्रदीप २२४
छन्द:प्रबन्ध २०५
छन्द:प्रभाकर २२७
छन्द:शेखर १२७, २१६
छन्द:सारसंग्रह १९८
छन्द:सारहारावली १९१
छन्द:सन्दोह १९७
छन्द:सम्पत्ति ३०८
छन्द:समीक्षा २
छन्द:सिद्धान्तभास्कर १६७
छन्दश्चूडामणि १२१, १३२
छन्दोगोविन्द १४८, २२७
छन्दोगणितम् १७८, २६८
छन्दोऽङ्कुर २४९
छन्दोदेवता १
छन्दोऽनुशासन १०४, १२१, १३२
छन्दोऽनुक्रमणी ३८
छन्दोऽम्बुधि ३६
छन्दोभास्कर १६९, १७०
छन्दोमन्दाकिनी १९४
छन्दोमञ्जरी १४९, १५१, ३१०, ३१४
छन्दोमञ्जरीजीवन १५०
छन्दोमाणिक्य २२७
छन्दोमार्तण्ड १२३, २२७
छन्दोमातङ्ग १२३, २२०, २२७
छन्दोमाला २२७
छन्दोरत्नमहोदधि १९१
छन्दोरत्नाकर २२७
छन्दोरत्नावलि १३९, १४०
छन्दोवार्तिकराज १७०
छन्दोवेदाङ्ग ३०३
छन्दोवितस्ति २२७
छन्दोविचिति ३१२, २३, ८४, २२६, २२७
छन्दोविचय: २९
छन्दोविंशतिका १९, २०५
छन्दोविन्मण्डन १७८
छन्दोविचिति भाष्य ७६
छन्दोहृदयप्रकाश ७१
छन्दोर्णवपिङ्गल ७१
छविलालसूरि १९०
छाया २९५
छोटीवृत्ति ७६, १७०

ज

जगण २५२
जगन्नाथ मिश्र १७६

जगद्विजयच्छन्दः २८६
जज्जल २१९
जनार्दन १७४
जनार्दन विबुध १२२
जनाश्रय ९३, ९४, २५३
जानाश्रयी छन्दोविचिति १०२, ३१२
जयकीर्ति ६, ३५, ९७, १०४, १०५, २८८
जयचन्द्र २१८
जयदेव ३६, ९७, २६१, १४९
जयदेवच्छन्दः ३६, १०४, ३१४
जया २९४
जयानन्द २९३
जाति २४९, २५०
जानकीहरण ९४
जानी महापात्र १७६
जाम्बवतीजय ५८
जाम्बवतीविजय ६४, २९७
जिनप्रभीय १४२
जिनप्रभ सूरि २१७
जीवानन्द विद्यासागर १९३
जैमिनि ३०३
ज्योत्स्ना ११६, १७६, २९४

ट

टगण २५६

ठ

ठगण २५६

ड

डगण २५७

ढ

ढगण २५८

ण

णगण २५८

त

तगण २५१
तटि २६१
तनुमध्या २७०
तरुणवाचस्पति २४३
तातप्रसाद २४
तोटक २९३
तीन सप्तक ४३
त्रिक १२९
त्रिविक्रम १२०
त्रिविक्रम भट्ट ३६
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित १३३
त्रिस्थलीसेतु १२१
त्रेता २८

द

दामोदर ७७
दामोदर ठक्कुर १४७
दाशतयी १५
द्वापर २८
दिनेश द्विशतक १४९
दिवाकर १२३
दिव्य ४३, ८४
दिव्यमानुष ४३, ८४
दिव्येतर ४३, ८४
द्वितीय सप्तक ४३
दीनेशचन्द्र दत्त १९८

दु:खभञ्जनकवि १७८, २६४
दु:खभञ्जन कवीन्द्र १८०, १९३
दुर्गमबोध टीका २६६
दुर्गासहाय १९०
दुर्गेश्वरभट्ट १७५
देवयाज्ञिक २९, ३५
देवेश्वर १४३
देवीप्रसाद शर्मा १७९
देवीप्रसाद सुकुल १९३

ध

धनमाल १३४
धरणीधर ११४
ध्रुवा ८४

न

नगण २५२
नन्दिताढ्य २१३
नन्दिषेण १४२
नन्दी ७
नमिसाधु ३५, ९७
नाट्यशास्त्र ४८, २८०, ३१२
नाथनवरत्नमालामञ्जूषा १७०
नान्दी २४६
नाममाला १३३
नारदपुराण ६७, ७०
नारायण भट्ट २४३, २६९, २१२, १२१, १४३, १६७, २५०, २६०, ३१०
नारायणी १६७

निचृत् १७, ४१
निदान २४, ४४
निदानसूत्र २३, ४८
नीलकण्ठ १६५
नौका टीका ११९, १२३
न्यायसिद्धान्तमुक्तावली २२४
न्यङ्कुशिरानिचृत् ककुप् ३४

प

पउमचरिउ २०९, ३१०
पतञ्जलि ६, २३, २८, ६३, ७२
पताका २६७
पदशय्या २३८
पद्य २३९, २५०, २९४
पद्मप्रभसूरि ७७
पद्मानन्द महाकाव्य १४०
परशुराम ३००
परिमलपद्मगुप्त ३०२
पशुकवि ७७
पशुपति २२५
पाञ्चाला: २९
पाठ्यरत्नकोष १४४
पाणिनि १२, ६३, ६४, ७५, ११६, २९७
पातालविजय ६४, २९७
पाद २४३
पादविधान १८, ३९
पारिजातहरण काव्य १४९
पिङ्गल, पिङ्गलाचार्य २८, ३१, ३३, ६३,

	७४, ७०
पिङ्गल टीका	२२४
पिङ्गलतत्त्वप्रकाशिका	७६
पिङ्गलतत्वप्रदीपिका	२२४
पिङ्गलनाग छन्दोविचिति भाष्य	११४
पिङ्गलार्थप्रदीप	१४६
पिङ्गलार्थप्रदीप टीका	२२४
पिङ्गलप्रदीप	१५६, १५७, १६१, २२४
पिङ्गलप्रकाश	२२५
पिङ्गल वार्तिक	१५६, १५७
पिङ्गलसारविकाशिनी	२२४
पिङ्गलसूत्र-टीका	१२३
पिङ्गलसूत्रभाष्यराज	१६९
पिपीलिकमध्या	१७
पुन्नागचन्द्र	१२९
पुरुषसूक्त	२
पुरुषोत्तम भट्ट	७, १४७
पूर्वमीमांसा सरणि	१७१
पैङ्गलकाण्व	७०
पैङ्ग	७२
पौराणिक छन्द	२४७
पौराणिक शैली	३०९
प्रकाशिका	१२३
प्रगाथ	२१, ३४, ३९, २४७
प्रतिक्रमण	२९
प्रतिमाच्छन्दः	४८
प्रत्यय	२६५, २६६
प्रथम सप्तक	४३
प्रभा	११७
प्रभा टीका	१२२
प्रमाच्छन्दः	४८
प्रयोगरत्न	१२१
प्रसन्नराघव	९८
प्रस्तारचिन्तामणि	१६५
प्रस्तारचिन्तामणि भाष्य	१६६
प्रस्तारादिरत्नाकर	२६६
प्रस्तारपत्तन	१७६
प्रस्तारप्रक्रिया	१६६
प्राकृतपैङ्गलम्	७४, २१८, २१९, ३०६
प्राज्ञतोषिणी	१२३
प्रायः	३९
ब	
बलदेव विद्याभूषण	१७५
बालभारत	३०१
बालभारत महाकाव्य	१४०
बालरामायण	३०१
बृहती मर्कटी	२६७
बृहत्कथामञ्जरी	११६
बृहत्संहिता	९२
बृहत्सर्वानुक्रमणी	४०, २८६
बृहद्देवता	३८
भ	
भगण	२५२
भट्टहलायुध	३५
भट्टि	३०२
भट्टेन्दुराज	११७
भट्टोत्पल	९५, ९२, ९३, १३५
भरत, भरतमुनि	३०, ७२, ७८, ८४,

	२१४, २५२,	मत्तेभविक्रीडित	२९४
	२५४	मत्स्यपुराण	३१, ३११
भर्तृमेण्ठ	११७	मथुरानाथ शुक्ल	७७
भर्तृहरि	२६१, ३००	मथुराप्रसाद दीक्षित	१९५
भरतनाट्यशास्त्र	३१, ४३, ३०९	मदनललिता	२९४
भवभूति	११६, २९९	मनोहरकृष्ण	७७
भारवि	३०१, २९८,	मनोरथ	२२६
	११४, ११६	मन्दारमकरन्द	१६४
भावार्थदीपिका	१२२, १७४	मन्दारमरन्दचम्पू	२३८, २४३
भाष्यराज	७६, ११५,	मनमोहन घोष	३१, ८५
	१६९	मम्मट	९८
भाष्यराजवेदाङ्गच्छन्दः-		मयूरभट्ट	३०२
सूत्रार्थप्रकाशः	१७०	मरुवाणी	२०६
भास	१३०	मल्लिनाथ	११८
भास्कर	१२२, १६६	महाभारत	५८, ५९,
भास्करराय	११५, १६९,		६०, २८९
	३०९, ३१२,	महाभाष्य	६२, ७०
	६२, ६७,	महाभाष्यकार	२३
	२८६, १२३,	महामालिका	२७५
	२६५, २५०	महास्रग्धरा	२९४
भास्कराचार्य	७७	माघ	२९०,
भास्करविलास	१७०		२९९, ३०२
भीकंभट्ट	१६८	माच्छन्दः	४८
भुरिक्	३२, १७,	माण्डव्य	६३, ७८,
	४१		३१०
भुवनमोहन विद्यारत्न	१९२	माण्डूकेय	१३
भोजदेव	१२७, २१६	मात्रा	७३
भोजराज	१४६	मात्राछन्द	१८९
म		माधव वर्मा (प्रथम)	९४
मगण	२५१	माधव	३८
मञ्जुभाषिणी	२९३	माधुर्यरञ्जनी	१६४

मालतीमाधव	२८५		११४, १७०,
मालावृत्त	७८, २८०		३०१
मिताक्षरा	७७	यास्क	७, १०, १२,
मित्रधर सिद्ध	३१२		१९, २९, ७५,
मुक्तक	२४५		८४
मुकुलभट्ट	९८	युग्मक	२४५
मुक्ताकण	११७	युधिष्ठिर मीमांसक	७५
मुञ्ज	११४	योगशास्त्र	१३३
मुहूर्तचिन्तामणि	१६५	**र**	
मृतजीवनी	१२३, १६९	रगण	२५१
मृतसञ्जीवनी	७५, ११३,	रघुनाथ पण्डित	१६८
	१९३, ३११	रत्नाकर	२९८
मेघाविजयगणि	१६३	रत्नमञ्जूषा	१२८
मेघविस्फूर्जिता	२९४	रत्नशेखर	२२५
मेदिनी	९	रथोद्धता	२९३
मेरु	२६७	रविकर	१४६, २२४
मोटक	२९३	रविषेण	२१०
य		राजवार्तिककार	७
यगण	२५१	राजशेखर	१०, ११६,
यजुर्मन्त्र	१०		१२७, १२८,
यजुष् छन्द	५		२१६, ३०१
यजुस्सर्वानुक्रमणी	३४	राजेन्द्र दशावधान-	
यति	१५०, १६१,	भट्टाचार्य	२१६, ३०१,
	२६१		७६
यतिभेद	२६२	राणाकुम्भा	१४३
यतिदोष	२६४	रात	६३
यतिधर्मसमुच्चय	११५	राधादामोदर	१७५
यतिनियम	३०४	रामकृष्ण कवि	८५
यवमध्या	१७	रामचन्द्र विबुध	१२१, १५५
यशोवर्मा	३००	रामचरण शर्मसूरि	१७७
यादवेन्द्र	२२४, ३००	राम पाणिवाद	१५१, १५२
यादवप्रकाश	६, ६२,	रामानुजाचार्य	११४

रामायण ६०, २८९
रासक्रीडा १५३
रूपमालिनी २९४
रोहिणी २९४
ल
लघुमर्कटी २६७
लक्षणशैली २७७
लक्ष्मण सेन ११४
लक्ष्मीधर ७६, २२७
लक्ष्मीनाथ १४६
लक्ष्मीनाथ भट्ट १५७, १६०, १६१, १६२, १६३, २२०, २२४
लक्ष्यलक्षण शैली २७९
लक्ष्यलक्षण-विस्तार शैली २७९
लक्ष्यलक्षणसंयुतं छन्दः ११८
ललित २९३
ललिता २९३
लौकिकछन्द १०, ५८, ७३
व
वक्त्र ११९
वचनत्थजोतिका २२६
वनवास ७०
वसन्ततिलका २९३
वसन्तशेवडे १९६
वररुचि १००
वराहमिहिर ९२, १२६, ३११
वरवर्णिनी टीका १९३, १७८
वर्णच्छन्द १८९
व्यवाय १७१
वसवः १७१
व्यास ७, ३१५
व्यूहन १७, ४१
वस्तुपाल १३९
वाग्भट १४२, २१९
वाग्भटालङ्कार २१९
वाग्वल्लभ ४९, १७८, २१४, २६६, २९४, २८९, ३१४
वाणीभूषण १२२, १४६
वाचिकाभिनय ८५
वामनपुराण ७०
वामनाचार्य ७७
वादकुतूहल १६९
वार्तिकराज ७६
वाल्मीकि ४४, ५९
वामन २६४
विद्यापति १४७
विद्धशालभञ्जिका ३०१
विच्छन्द २०, ३०
वितान १७१
विरहाङ्क १००, १२७, २०७
विराट् १६, ४१
विरुदावली २८३
विलोमकाव्य १८०
विशल्यकरणी ७६
विश्वरूप ११४
विश्वनाथ १२२, २२०
विशेषक २४५
विश्वनाथपञ्चानन २२४

विषमवृत्त २४१
विष्णुधर्मोत्तरपुराण ६७
वीरप्रतापनाटक १९५
वीरपृथ्वीराजविजय नाटक १९५
वृत्त ३९, ४०, २४०, २४८, ३०६
वृत्तकौमुदी १२३, २२७
वृत्तचन्द्रिका १७२, २२७
वृत्तचन्द्रोदय १६९, २४२
वृत्तजातिसमुच्चय १३४, २०६
वृत्तदर्पण २२७
वृत्तप्रत्ययकौमुदी २२७
वृत्तप्रदीप १२२, २२७, १७४
वृत्तभेद १५३
वृत्तमञ्जरी १९६, १९७, ३१५
वृत्तमुक्तावली ४०, १७२, ३१४
वृत्तमौक्तिक ७, १२२, १४३, १४९, १५५, २३७, ३१४
वृत्तरत्नाकर ११, ११८, ११९, २१९, ३०९, ३१२
वृत्तरत्नाकरादर्श ७६, १२३, १४९
वृत्तरत्नावली १५४, २१९, २२७
वृत्तसार २२७
वृत्तानुसारिणी शैली ३०९
वृत्ति २४९
वृत्तिटीका ११९
वृत्तोदय (वुत्तोदय) २२६
वेंकटेश १५४
वेदान्तशतश्लोकी १५४
वेंकटमाधव १६, २०, ३८
वेबर ३१, ३२
वेदाङ्गराज ७७
वेदार्थदीपिका २०
वेणीकृपाण १४०
वेदेन्द्रभारती १२३
वैजयन्तीकोष ११४
वैतालीय ११९
वैदिक छन्द १०
वैदिकभाष्य ७७
वैदिकपद्धति ३०७
वैदिक सिद्धान्त ३०४
वैद्यविलास १६८
वंशीधर ७६, २२५

स

सगण २५१
सङ्गीतराज १४३, २३७
सङ्करक्खित २२६
सदाशिव १२२
सन्दानितक २४५
समयसुन्दर १६४
समयसुन्दरगणि १२१
समवृत्त २४१
सम्पत्ति (सम्पद्) १७
सरस्वतीभवन-ग्रन्थालय २२६
सर्वपार्षद १७१

सर्वङ्कषा टीका	२७५	सैतव	६३, ३१०,
सातवाहन	१३४		७८
साध्या देवा:	४	सोमचन्द्र	१२०
सामगा:	२९	सोमचन्द्र गणि	१२१, १६५
सामगानांछन्द:	२९	सोमसुन्दरगणि	१२१
सामवर्ग	४७	सौभाग्यभास्कर	१७०, १७६
सायण	३५, ३०३	स्कन्ध	२८३
सालाहण (हाल)	२०७	स्रग्धरा	२९४
साहित्यदर्पणकार	९	स्वयम्भू	३६, १००,
सुकृतसङ्कीर्तन	१४१		२०९
सुधा	१२२, १२३	स्वयम्भूछन्द:	४०, १२८,
सुधाव्याख्या	१६५		१३८, २०८,
सिलोय (श्लोक)	२१३		२५४
सुवृत्ततिलक	६४, ११६,	स्वराट्	१७, ४१
	३०८	स्यादिशब्दसमुच्चय	१४०
सुदन्त	२९३	**श, ष**	
सुधालहरी	१६३	शककुषाण	३२
सुल्हण	३५, ९७,	शङ्करभगवत्पाद	२९२
	१२०, १४१	शङ्करविजयनाटक	१९५
सुमति	२१९	शबरस्वामी	७०
सुवदना	२९५	शब्दानुशासन	१३३
सूची	२६८	शार्ङ्गधर पद्धति	१४३
सूत्रशैली	२८०	शाकल्य	७८
सूत्रात्मक शैली	३०९	शाकलसंहिता	३३
सूर्य पण्डित	१५४	शाङ्खायन श्रौतसूत्र	२२
सुगमावृत्ति	१२१, १६४,	शास्त्रप्रवर्त्तक	२५२
	१६९	शार्दूलललित	२९४
सुकविहृदयानन्दिनी	१२०	शिक्षाप्रकाश	७५
सुखबोधिनी	७६	शिशुपालवध	२९६, ३०१
सुबोधिनी	१०१, १९३	शूरवीर	१३
सेतु टीका	१२२, १६७	शृङ्गारशतक	२७२

शेषावतार ६७
शेषनाग ७१
शेखर ८५
शोभा २९४
शौनक १२, १९, २०, ३३, ४०, ४८
शिक्षाप्रकाश ७५
शिखा २७०
श्वेतमाण्डव्य ७
श्वेतपट ३५, ९७
श्री २६९
श्रीकृष्णभट्ट १७२
श्रीकण्ठ १२२
श्रीपादपूज्य १०४
श्रीपालचरित २२५
श्रीनिवास १९२
श्रीनारायणीय धातुकाव्य १५१
श्रीनिवासरथ २३८
श्रीहर्ष ३०२, १३४
श्रीमद्भागवत २९०, २९२
श्रीहर्षशर्मा ७७
श्रीगोपाल १२७
श्रीधरानन्द शास्त्री १२३
श्रुतिसुखदता २३६
श्रुतबोध १००, १०२, ११८, १७७, ३०९
षड्गुरुशिष्य २०, ३५, ६३, ३११

ह

हम्मीर २१८
हयग्रीव १७२
हरितोषमाला १३४
हरिभास्कर १२२, १२७, १६७
हरिहर २२०
हरिस्वामी ३५
हर्षट ३६, ३७, ९७, ९८
हर्षदेव २१७
ह्रस्व २५९
ह्रसीयसी गायत्री ३४
हलायुध ११, ३६, ६९, ९७, ११४, २३८, ३११
हलायुधवृत्ति २५०
हेमचन्द्र ६, ३५, ९७, ११५, ११६, १२०, १३२, २१३, २१६, २१७, ३०६

परिशिष्ट– २

सहायकग्रन्थतालिका

ग्रन्थनाम	लेखक/सम्पादक	प्रकाशक	वर्ष (ई०)
अग्निपुराण	बलदेव उपाध्याय	चौखम्भा, वाराणसी	१९६६
अजितशान्तिस्तव	नन्दिषेण	जोधपुर	१९६२
अमरकोष	अमरसिंह (रामाश्रमीटीका)	निर्णय सागर, बम्बई	१९०५
अथर्वसंहिता		विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान, होशियारपुर, पंजाब	१९६१
उपनिदानसूत्र	मंगलदेव शास्त्री	वाराणसी	१९६९
ऐतरेय आरण्यक		आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना	१९४३
ऐतरेय ब्राह्मण	सायणभाष्य सहित	आनन्दाश्रम पूना	१९३०-३१
ऋक्प्रातिशाख्य	वीरेन्द्र कुमार वर्मा	काशीहिन्दू विश्वविद्यालय	१९७०
ऋक्सर्वानुक्रमणी	(कात्यायन) मैक्डानल सम्पादित	हार्वर्ड ओरियेन्टल सिरीज	१८८६
ऋग्वेद संहिता	सायणभाष्ययुत		
ऋग्वेदानुक्रमणी	माधवभट्ट	मद्रास वि.वि.	१९३२
ऋग्वेदभाष्यभूमिका	स्कन्दस्वामी	मद्रास	१९३५
ऋग्यजुष परिशिष्ट	श्रीधरशास्त्री वारे	नासिक	
कविदर्पण	एच.डी. वेलणकर	राजस्थान पुरातन-	१९५९
		ग्रन्थमाला, जोधपुर	१९६२
कात्यायनीय छन्दःसूत्रम्	श्रीकिशोर मिश्र	आचार्य गोपालचन्द्र-मिश्रग्रन्थमाला, वाराणसी	१९९०
कातीयपरिशिष्ट-दशकम्	श्रीधर शास्त्री		
काठकसंहिता	(यजुर्वेदीया)	स्वाध्यायमण्डल, औन्ध	१९४३
काव्यकला	मथुराप्रसाद दीक्षित	जयभारत प्रेस, वाराणसी	१९६२
काव्यमीमांसा	राजशेखर	ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा	१९२४

काव्यादर्श	दण्डी	मालिन्यप्रोञ्छनी टीका कलकत्ता	१८६३
काशिका	न्यास एवं पदमञ्जरी सहित	तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी	१९६६
किरातार्जुनीय	भारवि	घण्टापथव्याख्यायुत, वाराणसी	१९५२
कुमारसम्भव	कालिदास	थैकरस्पिंक एण्ड को० कलकत्ता	१८७२
कौषीतकि ब्राह्मण (शांखायन ब्राह्मण)		आनन्दाश्रम, पूना	१९११
गरुडपुराण	रामशंकर भट्टाचार्य	बम्बई	वि.सं. १९६३
गाथालक्षण	नन्दिताढ्य (कविदर्पण में प्रकाशित)	राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला जोधपुर	१९५९ १९६२
चरणव्यूह	सं. श्रीकिशोर मिश्र	आचार्य गोपालचन्द्र मिश्र ग्रन्थमाला, प्रथमपुष्प, वाराणसी	१९९५
छन्दःकोश	रत्नशेखर	राजपुरातन ग्रन्थमाला जोधपुर	१९६२
छन्दःकौमुदी	नारायणशास्त्री खिस्ते	चौखम्भा सं. संस्थान	१९७२
छन्दःकौस्तुभ	राधादामोदर	हरिबोल कुटीर, नवद्वीप	४५७ श्रीगौराब्द
छन्दःशेखर	राजशेखर (स्वयम्भू छन्द में प्रकाशित)	जोधपुर	१९६२
छन्दश्चिह्नप्रकाशनम्	आत्मस्वरूप उदासीन	वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई	१९५३
छन्दःसमीक्षा	मधुसूदन ओझा	जयपुर	१९९१
छन्दःसन्दोह	दीनेशचन्द्र दत्त	जयपुर	१९६८
छन्दःसारसंग्रह	चन्द्रमोहन घोष	कलकत्ता	१८९३
छन्दःसारहारावली	आनन्दनाथ	कलकत्ता	१८९०
छन्दोऽनुशासन	जयकीर्ति	(जयदामन् में प्रकाशित) हरितोष समिति, बम्बई	१९४९
छन्दोङ्कुर	गङ्गासहाय	श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९६६ वि.
छन्दोऽनुशासन	हेमचन्द्र (वृत्तिसहित)	निर्णयसागर, मुम्बई भारतीयविद्याभवन बम्बई	१९१२ १९६१
छन्दोमञ्जरी	गंगादास	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	१९८७

छन्दोविचिति	अर्नेस्ट वाल्डश्मिट	बर्लिन एकेडेमी	१९५८
जयदेवच्छन्दः	हर्षटकृत विवृत्ति सहित	बम्बई	१९४९
जयदामन्	ह.दा.वेलणकर	विल्सन कालेज, बम्बई	१९४९
जानाश्रयी-छन्दोविचिति	जनाश्रय	अनन्तशयन ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम	१९४९
जिनप्रभीय (अजित-शान्तिस्तवटीका)	जिनप्रभ	राज० पुरातन ग्रन्थमाला, जोधपुर	१९६२
जैमिनिसूत्र शाबरभाष्य		सुधीप्रकाशन, वाराणसी तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी	१९८८ १९८४
ताण्ड्य ब्राह्मण (पञ्चविंश ब्राह्मण)	सायणभाष्य	कलकत्ता	१८७० १८७४
तैत्तिरीयारण्यक	सायणभाष्य	आनन्दाश्रम, पूना	१९३४ १९३८
नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	वाराणसी	१९८५ वि.
		चौखम्बा	१९२९, १९७२
		गायकवाड संस्करण, बड़ौदा	१९३४
		कलकत्ता संस्करण	१९६७
निदानसूत्र (पतञ्जलि)	के.एन. भटनागर	देहली	१९७१
निरुक्त	यास्क (दुर्गाचार्यकृत-वृत्तिसहित)	चौखम्भा, वाराणसी	१९६६
		आनन्दाश्रम, पूना	१९२१ १९२६
नीतिशतक	सं. हरिदास वैद्य	हरिदास एण्ड कं.प्रा.लि., मथुरा	१९२०
पाणिनीय अष्टाध्यायी	(सूत्रपाठ)	निर्णयसागर, बम्बई	
पादविधान (शौनक)	नरहरि	अड्यार, मद्रास	१९५०
प्रस्तारचिन्तामणि	चिन्तामणिदैवज्ञ	संस्कृत कालेज, कलकत्ता	१९९४
प्रस्तारादिरत्नाकर	अमरदास	श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९६६ वि.
प्राकृत पैङ्गल	भोलाशंकर व्यास भाग १-२	वाराणसी	१९५९-६२
पिङ्गलछन्दश्शास्त्र	विशल्यकरणी टीका सहित	निर्णयसागर, बम्बई	१९३८

पिङ्गलछन्दःसूत्र	अखिलानन्द शर्मा कृत वैदिकभाष्यसहित	मेरठ	१९०९
पिङ्गलछन्दस्सूत्र	हलायुधवृत्ति, जीवानन्द विद्यासागरकृत सुखबोधिनी टीका	वाचस्पत्य प्रेस, कलकत्ता	१९२८
पिङ्गलछन्दस्सूत्र	सं.अशोक चटर्जी	कलकत्ता वि.वि.	१९८७
बृहद्देवता (शौनक)	मैक्डॉनल	वाराणसी	१९६५
बृहत्संहिता एवं वृत्ति	वराहमिहिर उत्पलभट्ट	संस्कृत वि.वि. वाराणसी	१८९५ १९६८
बृहत्सर्वानुक्रमणी		दयानन्दमहाविद्यालय, लाहौर	१९४१
भारतीय संगीत का इतिहास	जयदेव सिंह	संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता	१९९४
भाष्यराज	भास्करराय	कलकत्ता सं० कालेज	२०००
भासनाटकचक्रम्	सं रामजी उपाध्याय	भारतीय सं० संस्थान, वाराणसी	१९८६
मनुस्मृति	कुल्लूकभट्टकृतव्याख्या सहित	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९४६
मन्दारमरन्द चम्पू	श्रीकृष्ण कवि (काव्यमाला-५२)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१८९५
महाभारत	महर्षिव्यास (छ:खण्ड)	गीताप्रेस, गोरखपुर	वि.सं.२०१२-३०
महाभाष्य	पतञ्जलि		
मात्रिक छन्दों का विकास		बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	
मेघदूत	कालिदास	पूना	१९१६
रघुवंश	संजीवनी टीकोपेत	चौखम्बा, वाराणसी	१९३३
रत्नमञ्जूषा	सभाष्य	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	१९४९
वाक्यपदीय	अम्बाकर्त्री व्याख्यासहित	सं.सं.वि.वि. वाराणसी, सरस्वतीभवन, ग्रन्थमाला	१९६३, १९६८ १९७७, १९७९
वाग्वल्लभ	दुःखभञ्जन वरवर्णिनी टीकासहित	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	१९३३
वाजसनेय-प्रातिशाख्य	उव्वटभाष्य अनन्तभाष्य (सं. वीरेन्द्र कुमार वर्मा)	वाराणसी	१९७५

वाणीभूषण		काव्यमाला	१८९५
	दामोदर मिश्र	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९२५
वामनपुराण		काशिराजन्यास, वाराणसी	१९६८
वाल्मीकीयरामायण		वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९५७
वृत्तप्रत्ययकौमुदी	रामचरण शर्मा	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९५६
विष्णुधर्मोत्तर पुराण		नाग पब्लिशर्स, दिल्ली	
वृत्तमुक्तावली	श्रीकृष्ण भट्ट	राजस्थानप्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर	१९५३
वृत्तजातिसमुच्चय	विरहांक गोपालकृत टीकासहित	राज० पुरातन ग्रन्थमाला, जोधपुर	- १९६२
वृत्तमञ्जरी	वसन्त शेवडे	चौखम्भा सुरभारती, वाराणसी	१९८९
वृत्तमौक्तिक	चन्द्रशेखर भट्ट लक्ष्मीनाथ भट्ट	राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला (७९) जोधपुर	१९६५
वृत्तरत्नाकर (केदारभट्ट)	(जयदामन में प्रकाशित)	बम्बई दिल्ली	१९४९ १९७१
वृत्तरत्नाकर टीका	रामचन्द्रविबुध	बम्बई	१९३६
वृत्तरत्नाकर टीका	समयसुन्दर (जयदामन से प्रकाशित)		
वृत्तरत्नाकर सेतु टीका	भास्कर कृत (जयदामन में प्रकाशित)		
वृत्तरत्नाकर (नारायणी टीका)	नारायण भट्ट	चौखम्भा सं० संस्थान	१९०४
वृत्तरत्नाकर भावार्थ-दीपिका टीका	जनार्दन कृत (जयदामन में प्रकाशित)		
वृत्तरत्नावलि	वेंकटेश नरहरि	अड्यार पुस्तकालय	१९५२
वृत्तरत्नावली	कालिदास	प्रभाकर प्रेस, मद्रास	१८६१
वृत्तरत्नावली	रविकर	जर्मन ओरियेन्टल सोसायटी	
वृत्तरत्नावली (कालिदास)	राजगोपाल राव	मद्रास	१९६४
वृत्तवार्तिक	रामपाणिवाद	अनन्तशयन सं.ग्रन्थावली त्रिवेन्द्रम्	१९३७

वेदाङ्ग	कुन्दनलाल शर्मा	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर	१९८३
वेदशाखापर्यालोचनम्	श्रीकिशोर मिश्र	आचार्य गोपालचन्द्रमिश्र ग्रन्थमाला-१	१९८५
वैदिकच्छन्द:पर्यालोचनम्	श्रीकिशोर मिश्र	आचार्य गोपालचन्द्रमिश्र ग्रन्थमाला-४	१९९०
वैदिकछन्दोमीमांसा	युधिष्ठिर मीमांसक	रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर	१९५९
वैदिक मीटर	ए.बी.कीथ		
वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	बालमनोरमा टीका, चौखम्भा वाराणसी	१९५४
		तत्त्वबोधिनी टीका वाराणसी	१९५१
शतपथब्राह्मण	सायण भाष्य	वेंकटश्वर प्रेस, बम्बई	वि.सं. १९९७
शांखायन श्रौतसूत्र	आलफ्रेड हिलेब्राण्ट	कलकत्ता	१८८८
श्रीमद्भागवत महापुराण		गीताप्रेस, गोरखपुर	वि.सं. १९९८ वि.सं. २००६ वि.सं. २०१०
श्रुतबोध	सं. कनकलाल ठक्कुर	चौखम्भा, वाराणसी	१९७२
शुक्लयजु: सर्वानुक्रम (कात्यायन)	याज्ञिक अनन्तदेव कृतभाष्य	वाराणसी	१८९२
सरस्वतीकण्ठा-भरणालङ्कार	विश्वनाथभट्टाचार्य	का०हि०वि०वि०	१९७९
स्वयम्भूछन्द:	स्वयम्भू	राज० पुरातन ग्रन्थमाला (३७), जोधपुर	१९५९
सुवृत्ततिलक	क्षेमेन्द्र	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी	१९६८
		काव्यमाला, निर्णयसागर बम्बई	१८९६
सुकविहृदयानन्दिनी	सुल्हण	(जयदामन में प्रकाशित)	
सङ्गीतरत्नाकर			
सङ्गीतराज	राणा कुम्भा	काशीहिन्दूविश्वविद्यालय	१९६३
संस्कृत छन्दों का उद्भव तथा विकास	राम किशोर मिश्र	ज्ञान प्रकाशन, मेरठ	२००२

संस्कृतवाङ्मय कोश	श्रीधर भास्कर वर्णेकर	भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता	
संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास	युधिष्ठिर मीमांसक	भारतीय प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, अजमेर	वि.सं. २००७, २०१९
संस्कृतशास्त्रों का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर, वाराणसी	१९६९
संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	शारदा संस्थान, वाराणसी	१९७३
हिन्दी काव्यधारा	राहुल सांकृत्यायन		
Artics of Sanskrit Metrics	Shivprasad Bhattacharya	Sanskrit College Calcutta	1963
Metres and Music		Puna Oriental	1943
History of Sanskrit Literature		A. B. Keith`	
A History of Sanskrit Literature		A. A. Macdonell	
Vedic Metre in its Historical Development		Barnan Arnold	1905



डॉ. श्रीकिशोर मिश्र संस्कृतविद्या के क्षेत्र में त्रिपुरुषविद्या के प्रतिनिधि मनीषी हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से वेदाचार्य तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम.ए. (संस्कृत) परीक्षाओं में सर्वोच्च स्थान के साथ स्वर्णपदकों को प्राप्त कर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से विद्यावारिधि उपाधि ग्रहण की। धर्मशास्त्र के विशेष अनुशीलन द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय से पुनः पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त कर आपने पौरस्त्य तथा पाश्चात्त्य अनुशीलनों का निदर्शन प्रस्तुत किया है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से अपनी अध्यापन-यात्रा १९८१ में प्रारम्भ कर विगत अनेक वर्षों से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापनरत हैं तथा सम्प्रति संस्कृत-विभाग (कला-सङ्काय) में प्रोफेसर पद को अलंकृत कर रहे हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की सभा के सदस्य तथा देश के अनेक विश्वविद्यालयों की महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक समितियों के सदस्य के रूप में आपने संस्कृतविद्या के प्रसार में विशिष्ट योगदान किया है।

राष्ट्रिय तथा अन्ताराष्ट्रिय स्तर के अनेक सम्मेलनों में आपने भाग लिया तथा सत्रों का संयोजन किया है। अनेक संगोष्ठियों में सत्रों की अध्यक्षता की तथा आपके द्वारा प्रस्तुत शोधपत्र प्रशंसित हुए। आपके निर्देशन में अनेक विदेशी तथा भारतीय शोधार्थियों ने शोधोपाधि प्राप्त की है।

प्रो. मिश्र के द्वारा प्रणीत ग्रन्थ उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, राजस्थान संस्कृत अकादमी, दिल्ली संस्कृत अकादमी आदि अनेक संस्थानों से पुरस्कृत हुए हैं तथा आपकी प्रतिभा अनेकधा गङ्गेश्वर वेदवेदाङ्ग सम्मान, हारीत पुरस्कार, अम्बिकादत्त व्यास पुरस्कार, शङ्कर पुरस्कार, खानखाना पुरस्कार, वेदपण्डित सम्मान आदि विशिष्ट सम्मान-पुरस्कारों से सत्कृत हुई है। आपकी प्रशंसित कृतियों में प्रमुख हैं—**वेदशाखापर्यालोचनम्, मधुपर्कपर्यालोचनम्, मूल्याध्यायभाष्य, कात्यायनीय-छन्दस्सूत्र, प्राचीनभारतीयसामाजिकधर्म, याज्ञिकन्यायमाला, वेदार्थपारिजातभाष्यसार, कौशिकसूत्रपरिभाषाध्यायभाष्य** आदि।

संस्कृतविद्या की सारस्वत-साधना के आप अनन्य उपासक हैं।

*

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय